Dr. C.V. Raman University
Kargi Road, Kota, BILASPUR, (C. G.),
Ph. : +07753-253801, +07753-253872
E-mail : info@cvru.ac.in | Website : www.cvru.ac.in

Corporate Legal Framework

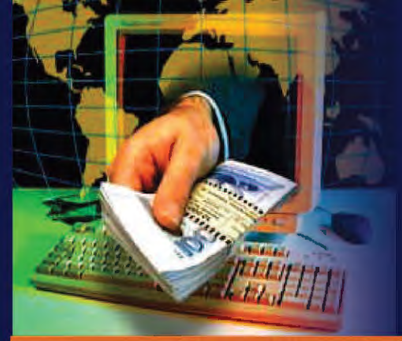

Institute of **Open** and **Distance Education**

Faculty of Commerce

Corporate Legal Framework

2MCOM4

DR. C.V. RAMAN UNIVERSITY
Chhattisgarh, Bilaspur
A STATUTORY UNIVERSITY UNDER SECTION 2(F) OF THE UGC ACT

2MCOM4

निगमीय वैधानिक रूपरेखा

[CORPORATE LEGAL FRAMEWORK]

2MCOM4, Corporate Legal Framework

Edition: March 2024

Compiled, reviewed and edited by Subject Expert team of University

1. Dr. Niket Shukla

(Professor, Dr. C. V. Raman University)

2. Dr. Archana Agrawal

(Associate Professor, Dr. C. V. Raman University)

3. Dr. Satish Kumar Sahu

(Assistant Professor, Dr. C. V. Raman University)

Warning:

All rights reserved, No part of this publication may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the publisher.

Published by:

Dr. C.V. Raman University

Kargi Road, Kota, Bilaspur, (C. G.),

Ph. +07753-253801, 07753-253872

E-mail: info@cvru.ac.in

Website: www.cvru.ac.in

विषय सूची

UNIT-I

1. कम्पनी अधिनियम, 1956 (Company Act, 1956) 01

2. कम्पनी की परिभाषा एवं प्रकार (Definition and Kinds of Company) 12

3. पार्षद सीमानियम (Memorandum of Association) 26

4. पार्षद अन्तर्नियम (Articles of Association) 36

5. प्रविवरण (Preerpiecins) 46

6. कम्पनी की अंशपूंजी एवं सदस्यता (Share Capital and Members of Company) 55

7. कम्पनी की सभाएँ एवं प्रस्ताव (Meeting and Resolution of Company) 67

8. कम्पनी का प्रबन्ध संचालक एवं पारिश्रमिक (Management of Company: Director and Remuneration) 79

9. कम्पनी का समापन एवं विघटन (Winding up and Dissolution of Company) 97

UNIT-II

10. विनिमय साध्य अभिलेख अधिनियम, 1881 (Negotiable Instruments Act, 1881) 114

11. विनिमय साध्य अभिलेख अधिनियम, 1881 के धारक तथा यथाविधि धारक (Hoider and Holder in the Due Course under-Negotiable Instruments Act, 1881) 126

12. चैक रेखांकन एवं प्रकार 133
(Crossing and Types of Cheque)

13. विनिमय साध्य पत्रों का हस्तान्तरण एवं प्रस्तुतीकरण 139
(Negotiation and Presentation of Negotiable Instruments)

UNIT-III

14. एकाधिकारात्मक एवं प्रतिबंधात्मक व्यापार व्यवहार अधिनियम, 1969 (MRTP) 147
(Monopolies and Restrictive Trade Practices Act. 1969)

UNIT-IV

15. उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 162
(Consumer Protection Act, 1986)

UNIT-V

16. विदेशी मुद्रा विनिमय प्रबन्धन अधिनियम, 1999 (फेमा) 174
(Foreign Exchange Management Act, 1999-FEMA)

17. विश्व व्यापार संगठन की नियमन रूपरेखा 181
(Regulatory Framework of World Trade Organisation)

18. WTO विकासशील देशों के प्रावधान एवं प्रभाव. 194
(Provisions and Effects of Developing Countries)

19. WTO क्षेत्रीय सामूहिक एवं तकनीक प्रभाव का उत्पाद कारोबार 207
(Product Business of Regional groupings and Technical Standard)

20. कस्टम शुल्क मूल्यांकन 213
(Customs Valuation)

1

NOTES

कम्पनी अधिनियम 1956
(COMPANY ACT 1956)

कम्पनी अधिनियम का विकास
(Development of Company Legislation)

संयुक्त पूँजी वाली कम्पनी का उद्‌गम सर्वप्रथम इटली में 12 वीं शताब्दी में हुआ। इंग्लैण्ड में कम्पनी की स्थापना 16 वीं शताब्दी में हुई और इसी को संयुक्त पूँजी वाली कम्पनी के विकास का युग कहा जाता है। भारत में कम्पनी अधिनियम का विकास ब्रिटिश कम्पनी अधिनियम के साथ हुआ। सन् 1600 में सर्वप्रथम कम्पनी ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना से हुई। इंग्लैण्ड में सर्वप्रथम 1844 में संयुक्त पूँजी कम्पनी पंजीयन अधिनियम 1844 पारित किया गया। इंग्लैण्ड के इस अधिनियम के आधार पर ही भारत में सर्वप्रथम एक अधिनियम पारित किया गया जो संयुक्त पूँजी कम्पनी पंजीयन अधिनियम 1850 कहलाया।

(I) संयुक्त पूँजी कम्पनी पंजीयन अधिनियम, 1850
(Joint Stock Companies Registration Act, 1850)

भारत में प्रथम संयुक्त पूँजी कम्पनी पंजीयन अधिनियम, 1850 पारित हुआ। यह इंग्लैण्ड के संयुक्त पूँजी कम्पनी पंजीयन अधिनियम, 1844 पर आधारित था। भारतीय संयुक्त पूँजी कम्पनी पंजीयन अधिनियम, 1850 की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित थीं –

(i) भारत में कम्पनियों के पंजीयन कराने की सुविधा प्रथम बार दी गई।

(ii) इसके अन्तर्गत केवल ऐसी कम्पनियों के पंजीयन का ही अधिकार दिया गया।

(iii) सर्वप्रथम इस अधिनियम के अन्तर्गत ही अंशों के हस्तान्तरण योग्यता सिद्धान्त को लागू किया गया।

(iv) प्रत्येक वर्ष में सदस्यों की एक से अधिक सामान्य सभाओं का बुलाया जाना।

(v) कम्पनी के संचालकों तथा अधिकारियों को ऋण देने अथवा ऋणों की जमानत देने पर प्रतिबन्ध का होना।

(vi) कम्पनी द्वारा अपने ही अंशों के खरीदने पर प्रतिबन्ध का होना।

(vii) प्रदत्त पूँजी को कम्पनी का ऋण माना जाना।

(viii) कम्पनी द्वारा अपने नाम से मुकदमा चलाने तथा कम्पनी पर मुकदमा चलाने का प्रावधान होना।

(ix) सात या इससे अधिक सदस्यों की माँग पर असाधारण सभा बुलाया जाना।

(x) इस अधिनियम में कम्पनी के अर्द्धवार्षिक अंकेक्षण का प्रावधान था।

(xi) इस अधिनियम के अनुसार कम्पनी का पंजीयन करने का अधिकार केवल बम्बई, मुद्रास तथा कलकत्ता के उच्च न्यायालयों को ही प्राप्त था।

(xii) इस अधिनियम के आधार पर केवल असीमित दायित्व के आधार पर ही कम्पनी की स्थापना की जा सकती थी।

(II) सन् 1857 से 1910 तक

1855 में इंग्लैण्ड में नवीन कम्पनी अधिनियम पारित हुआ। इस अधिनियम के समरूप भारत में संयुक्त पूँजी कम्पनी अधिनियम, 1857 पारित हुआ, जिसके अन्तर्गत हमारे देश में प्रथम बार कम्पनी में सीमित दायित्व के सिद्धान्त को मान्यता प्रदान की गयी।

उपर्युक्त अधिनियम की कमी को दूर करने हेतु **संयुक्त पूँजी कम्पनी अधिनियम, 1860** के अधीन कम्पनी के क्षेत्र में सीमित दायित्व के सिद्धान्त को बैंकिंग व बीमा कम्पनियों के लिए भी विस्तृत कर दिया गया।

विस्तृत कम्पनी अधिनियम, 1866 में पारित हुआ जिसमें कम्पनियों के समामेलन, विनियमन तथा समापन आदि से सम्बन्धित प्रावधान थे।

इसके पश्चात् सन् 1882 में भारत में एक कम्पनी अधिनियम पारित हुआ जिसका नाम **कम्पनी संघनन अधिनियम, 1882** था।

NOTES

1882 का कम्पनी अधिनियम सन् 1887 में संशोधित किया गया जिसके अनुसार 1887 के कम्पनी अधिनियम में कम्पनी के समापन (Winding up) के समय ऋणों की प्राथमिकता के सम्बन्ध में नियम निर्धारित किये गये।

1887 के कम्पनी अधिनियम में सन् 1891 में पुनः संशोधन किये गये।

1895 के कम्पनी (संशोधन) अधिनियम द्वारा कम्पनियों को यह सुविधा प्रदान की गई कि वे उच्च न्यायालय से अनुमोदन प्राप्त कर लेने के पश्चात् कम्पनी पार्षद सीमानियम के उद्देश्यों में परिवर्तन कर सकती थीं।

1900 के कम्पनी (संशोधन) अधिनियम द्वारा कुछ कम्पनियों को अपने सदस्यों सम्बन्धी पंजीयन पुस्तकें (Registers) इंग्लैण्ड में रखने की सुविधा प्रदान की गयी थी।

1910 में कम्पनी संशोधन अधिनियम (Company Amendment Act) पारित किया गया।

(III) कम्पनी अधिनियम 1913 (The Companies Act, 1913)

कम्पनी अधिनियम, 1882 में समय-समय पर किये गये उपर्युक्त संशोधन संतोषजनक सिद्ध नहीं हुए। इसी-बीच इंग्लैण्ड में इंगलिश कम्पनी एकीकरण अधिनियम, 1908 पारित किया गया। इसी के आधार पर भारत में **भारतीय कम्पनी अधिनियम, 1913** (The Indian Companies Act, 1913) पारित हुआ। इस कम्पनी अधिनियम में समय-समय पर क्रमशः सन् 1914, 1915, 1920, 1926, 1930 तथा 1932 में मामूली संशोधन किये गये थे।

बाद में सन् 1913 के कम्पनी अधिनियम में अनेक कमियाँ तथा कठिनाइयाँ अनुभव होने लगीं जिन्हें दूर करना आवश्यक था। फलतः सन् 1936 में **भारतीय कम्पनी (संशोधन) अधिनियम, 1936** [The Indian Companies (Amendment) Act, 1936] पारित किया गया, जो 15 जनवरी, 1937 से भारत में प्रभावी हुआ। यह अधिनियम इंग्लैण्ड के सन् 1929 के इंग्लिश कम्पनी अधिनियम पर आधारित था।

(IV) 1947 से लेकर 1951 तक की अवधि में कम्पनी अधिनियम का विकास

1947 से लेकर 1951 तक की अवधि में कम्पनी अधिनियम में किये गये संशोधन इस प्रकार थे – (i) 1950 में **'कानून ग्रहण आदेश'** (Adoption of Law Order) पास किया गया। (ii) सरकार ने कम्पनी के प्रबन्ध व अन्य गड़बड़ियों को सुधारने के लिए 28 अक्टूबर, 1950 में **'भाभा समिति'** (Bhabha Committee) की स्थापना की। (iii) सन् 1951 में भारत सरकार द्वारा **'भारतीय कम्पनी (संशोधन) अध्यादेश'** [Indian Companies (Amendment) Ordinance] जारी हुआ। इस अध्यादेश के स्थान पर **भारतीय कम्पनी संशोधित अधिनियम, 1951** एक अस्थायी शासन-पत्र के रूप में स्वीकृत किया गया।

(V) कम्पनी अधिनियम, 1956 (The Companies Act, 1956)

नया कम्पनी अधिनियम 1 अप्रैल, 1956 से लागू हो गया। इस अधिनियम में 658 धाराएँ तथा 12 अनुसूचियाँ (Schedules) हैं, जबकि पिछले कम्पनी अधिनियम अर्थात् सन् 1913 में जिसके स्थान पर कम्पनी अधिनियम, 1956 का निर्माण हुआ, 290 धारा तथा 4 अनुसूचियाँ थीं। भारतीय कम्पनी अधिनियम, 1956 विश्व के समस्त देशों के कम्पनी अधिनियमों में सम्भवतः सबसे बड़ा है।

(VI) कम्पनी (संशोधन) अधिनियम, 1960 [The Companies (Amendment) Act, 1960]

कम्पनी अधिनियम, 1956 को कार्यशील हुए अभी थोड़ा समय ही हुआ था कि आलोचकों द्वारा इसकी कार्यशीलता के बारे में कटु आलोचनाएँ की जाने लगीं। इसकी भाषा असाधारण है, इसके अन्तर्गत बहुत से अनावश्यक फॉर्म तथा विवरण पत्र फाइल करने पड़ते हैं तथा इस अधिनियम का व्यावहारिक प्रयोग बहुत सी दशाओं में सम्भव नहीं है। अधिनियम के दोषों को दूर करने के उद्देश्य से भारत सरकार ने 15 मई, 1957 को मद्रास उच्च न्यायालय के अवकाश प्राप्त न्यायाधीश श्री विश्वनाथ शास्त्री की अध्यक्षता में एक संपूर्ण समिति गठित की।

उपर्युक्त समिति के प्रतिवेदन के आधार पर कम्पनी संशोधन बिल, 1959 संसद के समक्ष प्रस्तुत किया गया। संसद ने इसे एक संयुक्त समिति को विचारार्थ सौंप दिया। इस समिति ने अपना प्रतिवेदन 16 अगस्त, 1960 को प्रस्तुत किया। राष्ट्रपति ने कम्पनी (संशोधित) अधिनियम, 1960 पर अपनी स्वीकृति 28 दिसम्बर, 1960 को दी और उसी तिथि से यह भारत में कार्यान्वित हो गया।

(VII) कम्पनी (संशोधन) अधिनियम, 1962 [The Companies (Amendment) Act, 1962]

भारत पर चीन के आक्रमण से उत्पन्न संकटकालीन स्थिति का मुकाबला करने के लिए सरकार ने राष्ट्रीय सुरक्षा कोष का निर्माण किया। अतएव इसका प्रावधान करने के लिए कम्पनी (संशोधन) अधिनियम, 1962 पारित किया गया। इसमें एक नवीन धारा 293-ब जोड़ी गयी जिसके अधीन कम्पनियों को राष्ट्रीय सुरक्षा कोष के लिए अथवा केन्द्रीय सरकार द्वारा राष्ट्रीय सुरक्षा के उद्देश्य से स्वीकृत कोष के लिए अंशदान करने का असीमित अधिकार प्रदान किया गया

(VIII) **कम्पनी (संशोधन) अधिनियम,** 1963 [The Companies (Amendment) Act, 1963]

28 नवम्बर, 1963 को कम्पनी (संशोधन) अधिनियम, 1963 लोकसभा के समक्ष प्रस्तुत किया गया जिसे पारित कर दिया गया।

(IX) **कम्पनी (संशोधन) अधिनियम, 1964** [The Companies (Amendment) Act, 1964]

शीघ्र ही 5 जुलाई, 1964 को राष्ट्रपति द्वारा एक कम्पनी (संशोधन) अधिनियम अध्यादेश निर्गमित किया गया। उसका उद्देश्य कम्पनी सम्बन्धी वाद न्यायाधिकरण में विचाराधीन होने की अवधि में अथवा निरीक्षक द्वारा जाँच के दौरान कम्पनियों के कर्मचारियों को अस्थायी संरक्षण प्रदान करना था। इस संशोधन के अनुसार कम्पनी अधिनियम में एक नवीन धारा 635-ब जोड़ी गयी।

(X) **कम्पनी (संशोधन) अधिनियम, 1965** [The Companies (Amendment) Act, 1965]

एक समिति **दफ्तरी-शास्त्री समिति** की नियुक्ति की गई। इस समिति में भारत के एटार्नी जनरल श्री सी के. दफ्तरी और श्री ए.वी. विश्वनाथ शास्त्री थे। समिति को सिफारिशों के आधार पर सन् 1964 में एक संशोधन बिल (कम्पनी द्वितीय संशोधन बिल, 1964) लोकसभा तथा राज्यसभा में विचार हेतु प्रस्तुत किया गया तथा फिर यह दोनों सभाओं की एक मिश्रित विशेष समिति की सिफारिशों के लिए सौंप दिया गया। 15 अक्टूबर, 1965 से कम्पनी (संशोधन) अधिनियम, 1965 लागू कर दिया गया।

(XI) **कम्पनी (संशोधन) अधिनियम 1966** [The Companies (Amendment) Act, 1966]

मूल अधिनियम की धाराओं 240 और 370 में संशोधन करने के लिए कम्पनी (संशोधन) अधिनियम, 1966 पारित हुआ जिस पर राष्ट्रपति की स्वीकृति 3 दिसम्बर, 1966 को प्राप्त हुई। 1 अप्रैल, 1967 को यह कार्यान्वित हुआ।

1966 में ही दूसरा कम्पनी (संशोधन) अधिनियम, 1966 पारित हुआ जिस पर 5 दिसम्बर, 1966 को राष्ट्रपति की स्वीकृति प्राप्त हुई।

(XII) **कम्पनी (संशोधन) अधिनियम,** 1967 [The Companies (Amendment) Act, 1967]

सन् 1967 में कम्पनी अधिनियम में पुनः संशोधन किया गया। इस पर 27 जून, 1967 को राष्ट्रपति की स्वीकृति प्राप्त हुई है और 1 जुलाई, 1967 से यह कार्यान्वित हुआ। इस अधिनियम के अनुसार कम्पनी लॉ ट्रिब्यूनल को समाप्त कर दिया गया तथा इससे सम्बन्धित धाराएँ 10(अ) से 10(द) तक समाप्त कर दी गईं तथा धाराएं 111, 156, 234-अ, 240-अ, 388-ब, 388-स, 388-द और 636-ब संशोधित कर दी गईं।

(XIII) **कम्पनी (संशोधन) अधिनियम, 1969** [The Companies (Amendment) Act, 1969]

कम्पनी (संशोधन) अधिनियम, 1969 के अनुसार कम्पनी अधिनियम में निम्नलिखित दो महत्वपूर्ण परिवर्तन किये गये –

(1) कम्पनियों द्वारा राजनैतिक दलों को अनुदान (Contribution) देने पर रोक लगा दी गयी।

(2) कम्पनियों में प्रबन्ध अधिकर्ता और सचिव एवं कोषाध्यक्ष का पद 3 अप्रैल, 1970 से समाप्त कर दिया गया। इस परिवर्तन के परिणामस्वरूप 3 अप्रैल, 1970 को 501 प्रबन्ध अभिकर्ता जिनकी अनुमानित विनियोजित पूँजी 49 करोड़ रु. थी और 45 सचिव एवं कोषाध्यक्ष अपने पदों से मुक्त हुए।

(XIV) **कम्पनी (संशोधन) अधिनियम,** 1971 [The Companies (Amendment) Act, 1971]

प्रस्तुत अधिनियम के अनुसार कम्पनी अधिनियम में नई धारा 193-य जोड़ी गई जिसके अनुसार कम्पनी के संचालकों अथवा उनके द्वारा अधिकृत व्यक्तियों को अथवा कम्पनी की साधारण सभा को राष्ट्रीय सुरक्षा कोष अथवा इसी प्रकार के अन्य कोषों में जो सरकार द्वारा मान्य हो, जितना उचित समझे उतना दान देने का अधिकार प्रदान किया गया।

(XV) **कम्पनी (संशोधन) अधिनियम,** 1974 [The Companies (Amendment) Act, 1974]

उपर्युक्त कम्पनी संशोधन अधिनियमों की अनेक कमियों को दूर करने तथा उनकी प्रशासकीय कार्यशीलता को बढ़ाने के लिए कम्पनी (संशोधन) अधिनियम, 1974 लोकसभा द्वारा पारित हुआ और 10 सितम्बर, 1974 को इस पर राष्ट्रपति ने अपनी स्वीकृति दे दी तथा 1 फरवरी, 1975 से यह भारत में कार्यान्वित हुआ। इस अधिनियम की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं –

(1) धारा 186 के अन्तर्गत सभा बुलाने का न्यायालय का अधिकार अब कम्पनी लॉ बोर्ड को दे दिया गया।

(2) प्रशासकीय स्वभाव के न्यायालय के कार्यों को केन्द्रीय सरकार को हस्तान्तरित किया गया।

(3) विदेशी कम्पनी सम्बन्धी धारा 591 में परिवर्तन किया गया।

(4) प्रबन्ध संचालक और पूर्णकालीन संचालक की नियुक्ति और पुनर्नियुक्ति दोनों ही दशाओं में केन्द्रीय सरकार की स्वीकृति लेना आवश्यक कर दिया गया।

(5) यदि कोई व्यक्ति तीन निरन्तर वित्तीय वर्षों में किसी कम्पनी के अंकेक्षक के पद पर कार्य कर चुका है तो उसकी पुनर्नियुक्ति बिना केन्द्रीय सरकार की अनुमति के नहीं हो सकेगी।

(6) विगत वर्षों में एकत्र किये गये लाभों में से लाभांश के वितरण पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया।

(7) धारा 43-अ के अन्तर्गत आने वाली कम्पनियों के क्षेत्र का विस्तार किया गया है।

(8) लागत लेखों का अंकेक्षण अब लागत लेखापालों के द्वारा ही किया जायेगा।

(9) केन्द्रीय सरकार को अब धारा 408 के अन्तर्गत दो से अधिक संचालकों की नियुक्ति का अधिकार दिया गया है।

(10) एकाकी विक्रय एजेण्टों की नियुक्ति रोकने के सम्बन्ध में धारा 294-अ-ब जोड़ी गई हैं।

(11) प्रबन्धक एवं पूर्णकालीन संचालकों की नियुक्ति के सम्बन्ध में धारा 269 में परिवर्तन किया गया है।

(12) प्रभारों के रजिस्टर में सुधार के आदेश देने का अधिकार कम्पनी लॉ बोर्ड को दिया गया है।

(13) प्रस्तुत अधिनियम में निवेशों को नियन्त्रित किया गया है। इसके लिए नई धारा 58-अ जोड़ी गई है।

(14) अंशों के रिक्त हस्तान्तरण पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया है।

(15) कम्पनी अन्तर्विनियोगों पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया है।

(16) अंश पूँजी के परिवर्तन करने के सम्बन्ध में कम्पनी के अधिकार विस्तृत किये गये हैं।

(17) अंशों की कटौती (Discount) पर निर्गमन की स्वीकृति न्यायालय के स्थान पर कम्पनी लॉ बोर्ड के द्वारा होगी।

(18) विशिष्ट कम्पनियों के अंशों के हस्तान्तरण पर प्रतिबन्ध लगाये गये हैं।

(19) 25 लाख रु. या इससे अधिक पूर्णदत्त (Paid-up) पूँजी वाली कम्पनी के लिए कम्पनी सचिव की नियुक्ति करना अनिवार्य कर दिया गया है।

(20) लोक वित्तीय संस्थाओं के अन्तर्गत अब अन्य कई संस्थाओं को भी सम्मिलित किया गया है।

(21) कम्पनी के पंजीकृत (Registered) कार्यालय तथा उद्देश्य वाक्य में किये गये परिवर्तन की पुष्टि कम्पनी लॉ बोर्ड करेगा।

(22) यदि एक अंश पूँजी वाली सार्वजनिक कम्पनी की चुकता पूँजी का कम से कम 25% भाग एक निजी कम्पनी के पास हो तो उक्त निजी कम्पनी को सार्वजनिक कम्पनी माना जायेगा।

(23) जिस निजी कम्पनी के तीन निरन्तर वित्तीय वर्षों का औसत वार्षिक कुल विक्रय एक करोड़ रु. या अधिक हो तो उसे सार्वजनिक कम्पनी माना जायेगा।

(24) कम्पनी लॉ बोर्ड के सदस्यों की संख्या 5 से बढ़ाकर 9 कर दी गई।

(25) प्रस्तुत कम्पनी अधिनियम में समूह (Group) कम्पनियों की धारणा का समावेश किया गया है।

कम्पनी (संशोधन) अधिनियम, 1974 में कुल मिलाकर 65 धाराओं अथवा उनके भागों को जोड़ा गया, 26 धाराओं अथवा उनके भागों को संशोधित किया गया, 7 धाराओं को प्रतिस्थापित किया गया और 4 धाराओं को हटा लिया गया।

(XVI) सन् 1975 में कम्पनी अधिनियम में किये गये संशोधन

सन् 1975 के वर्ष में कम्पनी अधिनियम में निम्नलिखित महत्वपूर्ण संशोधन एवं नवीन नियमों का समावेश किया गया :

(i) कम्पनी लॉ बोर्ड (बैंच) नियम, 1975

(ii) कम्पनी (लाभांशों पर अस्थायी प्रतिबन्ध) वारन्ट नियम, 1975

(iii) कम्पनी का समापन खाता (संशोधन) नियम, 1975

(iv) कम्पनी (केन्द्रीय सरकार को अपील) संशोधित नियम, 1975

(v) कम्पनी (लाभांशों पर अस्थायी प्रतिबन्ध) संशोधित अधिनियम, 1975

(vi) कम्पनी (एकाकी एजेण्टों की नियुक्ति) नियम, 1975

(vii) कम्पनी (सचिव का योग्यताएं) नियम, 1975

(viii) कम्पनी (अंशों में लाभदायक हित घोषणा) नियम, 1975

(ix) कम्पनी (निवेशों की स्वीकृति) संशोधन नियम, 1975

(x) कम्पनी (निवेशों की स्वीकृति) नियम, 1975

(XVII) सन् 1976 में किये गये संशोधन

सन् 1975 की भाँति 1976 में भी कम्पनी अधिनियम में कई संशोधन एवं नवीन नियमों का समावेश किया गया। उनमें से कुछ प्रमुख निम्नलिखित हैं –

(i) कम्पनी रजिस्ट्रार कार्यालय के अभिलेख डिस्पोजन नियम, 1976

(ii) प्रन्यासी (अंशों एवं ऋण-पत्रों की घोषणा) संशोधन नियम, 1976

(iii) कम्पनी संचय में लाभ का हस्तान्तरण संशोधन नियम, 1976

(iv) कम्पनी (अंकेक्षण प्रतिवेदन) संशोधन, 1976

(v) कम्पनी (कर्मचारी विवरण) नियम, 1976

(vi) कम्पनी पूँजी निर्गमन नियन्त्रण आदेश, 1976

(vii) कम्पनी (निवेशों की स्वीकृति) संशोधन नियम, 1976

(XVIII) कम्पनी (संशोधन) अधिनियम, 1977

कम्पनी (संशोधन) अधिनियम, 1977 लोकसभा में 24 नवम्बर, 1976 को प्रस्तुत किया गया जो 24 दिसम्बर, 1977 से लागू हो गया।

कम्पनी (संशोधन) अधिनियम, 1977 की प्रमुख बातें इस प्रकार हैं –

(i) कम्पनी अधिनियम की धारा 635 में एक नई उपधारा 635(4) जोड़ी गई।

(ii) कम्पनी लॉ बोर्ड के आदेशों को लागू करने के सम्बन्ध में एक नई धारा 634-अ जोड़ी गई।

(iii) सरकारी कम्पनियों से सम्बन्धित धारा 620(2) में संशोधन करके 30 दिन की अवधि को बढ़ाकर एक सम्पूर्ण सत्र कर दिया गया।

(iv) कम्पनी के संचालक मण्डल द्वारा धारा 293 के अन्तर्गत दान कोष या अन्य कोषों में दी जाने वाली अधिकतम राशि की मात्रा 25,000 रु. से बढ़ाकर 50,000 रु. कर दी गई।

(v) कम्पनी रजिस्ट्रार के पास चिट्ठे आदि की प्रतिलिपियों को भेजने के सम्बन्ध में धारा 220 में संशोधन किया गया।

(vi) अंशों की प्राप्ति (Acquisition of Shares) से सम्बन्धित धारा 108-च में संशोधन किया गया।

(vii) कम्पनी लॉ बोर्ड से सम्बन्धित धारा 10-ई में संशोधन किया गया।

(viii) निवेश और विज्ञापन से सम्बन्धित धारा 58-अ में संशोधन किया गया।

उच्चाधिकार प्राप्त समिति – सच्चर समिति, 1977 एवं उसकी सिफारिशें
(The High Powered Committee – Sacchar Committee, 1977 And Its Recommendations)

समिति की स्थापना (Establishment)

भारत सरकार ने कम्पनी अधिनियम तथा "एकाधिकार एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार अधिनियम" के प्रावधानों का सरलीकरण करने एवं उनका पुनरावलोकन करने हेतु आवश्यक संशोधनों पर विचार कर सुझाव देने के लिए एक उच्चाधिकार प्राप्त समिति की स्थापना अगस्त, 1977 में की।

समिति की सिफारिशें (Recommendations)

प्रमुख सिफारिशें निम्नलिखित हैं –

(1) सम्पूर्ण कम्पनी अधिनियम का सरलीकरण किया जाना चाहिए।

(2) राजनीतिक दान कोष के निर्माण के सम्बन्ध में प्रतिबन्ध होना चाहिए।

(3) कम्पनी के प्रबन्ध में श्रमिकों की सहभागिता होनी चाहिए।

NOTES

(4) सरकारी कम्पनी की परिभाषा एवं उसके सम्बन्ध में प्रावधानों में संशोधन किया जाना चाहिए।

(5) कम्पनी लॉ बोर्ड के गठन में परिवर्तन करने का सुझाव दिया गया।

(6) कम्पनियों के समापन के सम्बन्ध में कई नवीन व्यवस्थाएँ जोड़ने का सुझाव दिया गया।

(7) कम्पनियों के सामाजिक दायित्व की धारणा को महत्व देते हुए यह सुझाव दिया गया कि कम्पनी के संचालकों को एक 'सामाजिक प्रतिवेदन' भी प्रकाशित करना चाहिए।

(8) सार्वजनिक निक्षेपों को आवश्यक संरक्षण प्रदान किया जाना चाहिए।

(9) अन्तर्सहयोग विनियोगों / ऋणों को प्रोत्साहन मिलना चाहिए।

(10) कम्पनी के वित्तीय खातों के अंकेक्षण के साथ-साथ लागत खातों का भी अंकेक्षण किया जाना चाहिए।

(11) कम्पनियों के कुप्रबन्ध की रोकथाम की जानी चाहिए तथा अल्पमत अंशधारियों को पूर्ण संरक्षण मिलना चाहिए।

(12) संचालकों एवं कार्यवाहक पदाधिकारियों की योग्यताओं तथा उनके पारिश्रमिक को तय करने का कार्य कम्पनियों पर ही छोड़ना उपयुक्त रहेगा।

(13) कम्पनियों में पेशेवर प्रबन्धकों की नियुक्ति किया जाना आवश्यक है।

(14) असीमित दायित्व वाली कम्पनियों के निर्माण की व्यवस्था को समाप्त किया जाय।

(15) कम्पनी अधिनियम में प्रयुक्त कई शब्दों की परिभाषाओं एवं धारणाओं में संशोधन किया जाना चाहिए।

(XIX) सन् 1978 से 1987 तक किये गये संशोधन

सन् 1978 से लेकर 1987 तक कम्पनी अधिनियम एवं सम्बद्ध अन्य नियमों में किये गये प्रमुख संशोधन निम्न हैं –

(i) कम्पनीज (स्वीकृति एवं निक्षेप) पाँचवाँ संशोधन नियम, 1978, (ii) कम्पनी लॉ बोर्ड संशोधित नियम, 1978, (iii) प्रबन्धकीय पारिश्रमिक के लिए संशोधित मार्गदर्शिका 9 नवम्बर, 1978, (iv) कुछ धाराओं का सरकारी कम्पनियों पर लागू न होना अधिसूचना 20 नवम्बर, 1978, (v) जी.एस.आर. 220(E) के अनुसार चिट्ठे के ऊर्ध्वाधर प्रारूप (Vertical Form) को मान्यता 4 जनवरी, 1979, (vi) अधिसूचना 9 अप्रैल, 1979, (vii) कम्पनियों द्वारा राजनैतिक दलों को चन्दा देने पर प्रतिबन्ध– कम्पनी अधिनियम की धारा 293-अ में संशोधन 25 सितम्बर, 1979, (viii) प्रबन्धकीय पारिश्रमिक के सम्बन्ध में संशोधित मार्गदर्शिका 4 अक्टूबर, 1979, (ix) कम्पनीज निक्षेपों की स्वीकृति संशोधित नियम, 1980, (x) प्रबन्धकीय पारिश्रमिक के सम्बन्ध में नवीन मार्गदर्शिका 10 अक्टूबर, 1983, (xi) कम्पनी संशोधन अधिनियम, 1984 के अन्तर्गत कम्पनी द्वारा जनता को आवंटन करने हेतु प्रस्तुत किये जाने वाले अंशों (10 रु. वाले अंश) तथा ऋण-पत्रों (100 रु. वाले ऋण-पत्र) की न्यूनतम संख्या प्रतिज्ञावेदन पत्र पर एक साथ क्रमशः 50 व 5 निर्धारित की गई है। (xii) कम्पनी (संशोधन) अधिनियम, 1985। लोकसभा में 14 मई, 1985 को कम्पनी (संशोधन) विधेयक, 1985 पारित किया जिसके अन्तर्गत निम्नलिखित संशोधन किये गये –

1. राजनैतिक दलों को दान देने पर प्रतिबन्ध हटाना – 14 मई, 1985 में कम्पनी अधिनियम के अधीन किये गये संशोधन के अन्तर्गत अब प्रत्येक कम्पनी अपने लाभों में से राजनैतिक उद्देश्यों के लिए किसी राजनैतिक दल या व्यक्ति को दान के रूप में शुद्ध लाभ का 5% दे सकती है।

2. कम्पनी के समापन के समय कर्मचारियों के हितों की सुरक्षा – 14 मई, 1985 में किये गये संशोधन के अनुसार कम्पनी के समापन की दशा में कम्पनी के कर्मचारियों को देय धनराशि को सुरक्षित ऋणदाताओं की श्रेणी में सम्मिलित किया जायेगा।

3. सार्वजनिक कम्पनियों की प्रतिभूतियों के हस्तान्तरण एवं विपणन पर प्रतिबन्धों को हटाया जाना – 14 मई, 1985 को कम्पनी अधिनियम में किये गये संशोधन के अन्तर्गत सार्वजनिक कम्पनियों की प्रतिभूतियों के हस्तान्तरण एवं विपणन पर लगाये गये प्रतिबन्धों को हटा दिया गया।

बोनस अंशों के निर्गमन के अन्तराल में कमी – 15 दिसम्बर, 1986 को भारत सरकार के वित्त मंत्री द्वारा भारत की संसद में की गई घोषणा के अनुसार संयुक्त पूँजी वाली कम्पनियों द्वारा बोनस अंशों का निर्गमन अब 3 वर्ष के अन्तराल के स्थान पर 2 वर्ष के अन्तराल पर किया जा सकता है।

ब्याज दर तथा लाभांश दरों में कमी – कम्पनी (निवेश स्वीकृति) संशोधित नियम, 1987 के अनुसार 1 अप्रैल, 1987 से निवेशों (Deposits) पर दी जाने वाली अधिकतम ब्याज दर 15 प्रतिशत वार्षिक से घटाकर 14 प्रतिशत वार्षिक कर दी गई। इसी प्रकार पूर्वाधिकार अंशों पर दिये जाने वाले अधिकतम लाभांश की दर 1 अप्रैल, 1987 से 15 प्रतिशत से घटाकर 14 प्रतिशत कर दी गई।

(XX) कम्पनी संशोधन अधिनियम, 1988 एवं तत्पश्चात् सन् 1996 तक किये गये संशोधन

NOTES

इस अधिनियम में तथा तत्पश्चात् किये गये प्रमुख संशोधन निम्नलिखित हैं –

(1) अंशों तथा ऋणपत्रों के सभी सार्वजनिक निर्गमनों का अब अनिवार्य पंजीयन किया जायेगा।

(2) कम्पनी के मामलों में भारतीय प्रतिभूति तथा विनिमय मण्डल (SEBI) को व्यापक अधिकार प्रदान किये गये हैं।

(3) विनियोजनों की सुरक्षा के लिए कई कदम उठाये गये हैं।

(4) कुप्रबन्ध तथा अन्याय की रोकथाम सम्बन्धी प्रावधानों में परिवर्तन किया गया है।

(5) अब कम्पनियों को ऊर्जा परिवर्तन, विदेशी मुद्रा का आय-व्यय, तकनीकों में परिवर्तन तथा अधिक पारिश्रमिक पाने वाले प्रबन्धकीय कर्मचारियों के नाम, कम्पनी में स्वामित्व हित रखने वाले कर्मचारियों के नाम आदि की सूचना प्रकट करनी होगी।

(6) प्रस्तुत अधिनियम द्वारा 2 अनुसूचियों के और जोड़े जाने से कुल अनुसूचियों की संख्या अब 14 हो गई है।

(7) अब कम्पनियों के ऊर्जा संरक्षण, तकनीकों को अपनाने, विदेशी मुद्रा की आय एवं खर्च तथा प्रबन्धकीय कर्मचारियों से अधिक वेतन पाने वाले कर्मचारियों क नाम, पद तथा प्राप्त पारिश्रमिक सम्बन्धी वितरण संचालकों के प्रतिवेदन में देना आवश्यक कर दिया गया है।

(8) पूर्णकालिक सचिव नियुक्त न करने पर दण्ड की व्यवस्था की गई है।

(9) अन्तः कम्पनी जमाओं को अब ऋण माना जायेगा।

(10) अब कई अधिकार केन्द्रीय सरकार से छीनकर कम्पनी अधिनियम मण्डल को हस्तान्तरण कर दिये गये हैं।

(11) अब कम्पनियों के लिए यह अनिवार्य कर दिया गया है कि वे अपने खाते व्यापारिक विधि से रखें।

(12) सम्पूर्ण वार्षिक प्रत्याय अब 3 वर्ष में एक बार के स्थान पर 6 वर्ष में एक बार प्रस्तुत किया जायेगा।

(13) कम्पनी की सभा में मतगणना की माँग न्यूनतम अंशों के धारक को भी करने का अधिकार दिया गया है।

(14) कम्पनियों को अंशों के आवेदन-पत्रों के साथ प्रविवरण का संक्षिप्त रूप उपलब्ध कराना अनिवार्य कर दिया गया है।

(15) सभी कम्पनियों में चाहे वे प्राइवेट कम्पनी हों अथवा सार्वजनिक कम्पनी एक करोड़ रुपये तक के बोनस अंश निर्गमन के लिए अब पूँजी निर्गमन नियन्त्रक की अनुमति लेना आवश्यक नहीं है।

(16) अंश हस्तान्तरण प्रपत्र की चलन अवधि को 2 माह से बढ़ाकर 12 माह कर दिया गया।

(17) ह्रास की गई दरें अधिनियम में सम्मिलित की गई हैं।

(18) सार्वजनिक जमाओं के भुगतान के सम्बन्ध में प्रावधानों में संशोधन किया गया है।

(19) स्कन्ध विनिमय केन्द्रों में व्यवहार किये जाने की शर्त पर निर्गमित अंशों एवं ऋण-पत्रों के आवंटन के सम्बन्ध में प्रावधानों में व्यापक संशोधन किया गया है।

(20) पेशेवर कम्पनी सचिव को परिभाषित किया गया है।

(21) सभी निर्गमों का मान्यता प्राप्त स्कन्ध विपणियों में सूचीयन अनिवार्य कर दिया है।

(22) प्रबन्धकीय अधिकारियों की नियुक्ति तथा उन्हें दिये जाने वाले पारिश्रमिक सम्बन्धी प्रावधानों को संशोधित किया गया है।

(23) सार्वजनिक जमाओं के स्वीकार करने से पूर्व विज्ञापन करना अनिवार्य कर दिया गया है। इसके भुगतान सम्बन्धी प्रावधानों को कड़ा कर दिया है।

(24) सीमा नियम के पंजीयन सम्बन्धी नवीन धारा जोड़ी गई है।

(25) धारा 43-A(1A) मानी हुई सार्वजनिक कम्पनी (Deemed Public Co.) में आमूलचूल परिवर्तन किया गया है।

(26) स्वतन्त्र कम्पनी विधान मण्डल की स्थापना का प्रावधान किया गया है।

NOTES

(27) दोषी अधिकारी (धारा 5) के अर्थ को स्पष्ट किया गया है।

(28) धारा 2 (45) सचिव की परिभाषा में संशोधन किया है।

(29) प्रेस विज्ञप्ति संख्या 2/95 संख्या 14/3/87- (i-v) दिनांक 21.3.95 के अनुसार धारा 611 (2) में जून, 1994 में सुविधा दी गई है।

सन् 1996 में किये गये संशोधन (Amendments made in 1996) – सन् 1996 में केन्द्रीय सरकार द्वारा कम्पनी अधिनियम में निम्नलिखित संशोधन किये गये हैं :

(1) कम्पनी के समापन की दशा में किसी कर्मचारी की बकाया मजदूरी अथवा वेतन के दावे के सम्बन्ध में 1,000 रु. की सीमा को समाप्त कर दिया गया है।

(2) पार्षद सीमानियम के उद्देश्य वाक्य में परिवर्तन करने के लिए कम्पनी लॉ बोर्ड की अनुमति लेना आवश्यक नहीं है।

(3) कम्पनियाँ रजिस्ट्रार के कार्यालय में कम्प्यूटर फार्मेट पर प्रपत्र जमा करा सकती हैं।

(4) कम्पनियाँ अब 10 वर्ष के स्थान पर 20 वर्ष तक की अवधि वाले पूर्वाधिकार विमोचनशील अंशों का निर्गमन कर सकती हैं।

(5) भारतीय प्रतिभूति तथा विनिमय मण्डल (SEBI) द्वारा स्वीकृत म्यूचल फण्ड आदि को उन कम्पनियों की सभा में मतदान में भाग लेने का अधिकार प्राप्त हो गया है।

(6) कम्पनियाँ समता तथा पूर्वाधिकार अंशों के अतिरिक्त बिना मतदान वाले अंश (Non-voting Shares) भी निर्गमित कर सकती हैं।

(7) जो कम्पनियाँ निक्षेप का भुगतान अथवा उस पर ब्याज का भुगतान करने में असमर्थ रहती हैं उन पर रोक लगा दी गई है।

कम्पनी (संशोधन) अधिनियम, 1999

कम्पनी (संशोधन) अधनियम, 1999 में निम्नलिखित महत्वपूर्ण प्रावधानों का समावेश है :

(1) इन्फ्रास्ट्रक्चर डेवलपमेंट फाइनेंस कम्पनी लिमिटेड को सार्वजनिक वित्तीय संस्थान घोषित किया गया है।

(2) अंशधारकों, ऋणपत्रधारकों और सावधि जमाधारकों को नामांकन की सुविधा प्रदान करने की व्यवस्था।

(3) जहाँ खुली आरक्षितियों (Free Reserves) से कम्पनी स्वयं के अंश क्रय करती है तो एक निश्चित राशि पूँजी मोचन आरक्षिति (Capital Redemption Reserve Account) में अन्तरित करने का प्रबन्ध करने का प्रावधान।

(4) निवेशक शिक्षा एवं संरक्षण निधि (Investor's Education and Protection Fund) के गठन की व्यवस्था।

(5) लेखा मानक (Accounting Standard) हेतु राष्ट्रीय परामर्श समिति के गठन की व्यवस्था।

(6) लाभ-हानि खाता तथा तुलन पत्र तैयार करने में कम्पनी द्वारा लेखा मानकों के अनुपालन की व्यवस्था।

(7) केन्द्रीय सरकार की पूर्व अनुमति के बिना कुछ शर्तों के अधीन कम्पनियों द्वारा अन्तर्निगम (Inter Corporate) विनिधानों एवं ऋणों की अनुमति देना।

कम्पनी (संशोधन) अधनियम, 1999 के अन्तर्गत विधिक उपबन्धों को अधिक सरल, व्यावहारिक एवं विनिर्दिष्ट बनाने के लिए कुछ और स्पष्ट व्यवस्था दी गई है जो निम्न प्रकार है :

(i) कम्पनी द्वारा स्वयं के अंशों की खरीद को 25% तक प्रतिबन्धित किया गया है। प्रयुक्त समादत्त पूँजी और कोषों का प्रयोग समादत्त पूँजी और खुली आरक्षितियों के 25% से अधिक नहीं होनी चाहिए। 'क्रय द्वारा वापस लेने' के प्रयोजन के लिए खुली आरक्षितियों को परिभाषित किया गया है।

(ii) क्रय द्वारा वापस लेने के 24 माह के अन्दर क्रय की गई प्रतिभूति का निर्गम प्रतिबन्धित कर दिया गया है। अन्य प्रकार की प्रतिभूतियों के निर्गम के सम्बन्ध में कम्पनी पर प्रतिबन्ध नहीं है।

(iii) यदि सार्वजनिक वित्तीय संस्थानों को देय ऋण, हित के भुगतान में चूक नहीं हुई है तो 60% जक विनिधान/ऋण/गारण्टी के लिए वित्तीय संस्थानों द्वारा अनुमोदन की आवश्यकता नहीं है।

(iv) निधि का दावा करने की अवधि को 5 वर्ष से 7 वर्ष किया जाना। इस अवधि के बाद दावा प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है और इस प्रकार अदावाकृत निधि का अन्तरण कम्पनी से निवेशक संरक्षण निधि में किए जाने की व्यवस्था।

(७) अल्प साधारण अंश निर्गत करने के सम्बन्ध में साधारण प्रस्ताव के स्थान पर विशेष प्रस्ताव का प्रावधान।

इस प्रकार कम्पनी (संशोधन) अधिनियम, 1999 के अन्तर्गत वर्तमान आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए महत्वपूर्ण संशोधन एवं अन्तःस्थापन किया गया है।

NOTES

कम्पनी (संशोधन) अधिनियम, 2000

कम्पनी (द्वितीय संशोधन) विधेयक, 1999 के पारित होने में विलम्ब को देखते हुए नया नामकरण करते हुए कम्पनी (संशोधन) विधेयक, 2000 संसद् के दोनों सदनों में पेश किया गया। केन्द्रीय सरकार ने कम्पनी अधिनियम, 1956 में कम्पनी (संशोधन) अधिनियम, 2000 को पारित करते हुए व्यापक एवं महत्वपूर्ण संशोधन किए हैं। कम्पनी (संशोधन) अधिनियम, 2000 के प्रावधानों से स्पष्ट होता है कि इस संशोधन अधिनियम द्वारा पहले से अधिक बेहतर निगम शासन (Corporate Governence) और लघु निवेशकों के हितों को सुरक्षा प्रदान करने की व्यवस्था की गई है। संशोधन अधिनियम के प्रमुख प्रावधान निम्नलिखित हैं –

1. संशोधन अधिनियम के द्वारा अधिनियम के अन्तर्गत कुछ महत्वपूर्ण परिभाषाओं, यथा–संक्षिप्त विवरण पत्रिका (Abridged Prospectus), निक्षेपस्थान (Depository), लाभांश, कर्मचारी स्टाक विकल्प (Employee Stock Option), सूचना ज्ञापन (Information memorandum), सूचीबद्ध पब्लिक कम्पनी, प्रतिभूतियाँ आदि को अन्तःस्थापित किया गया है।

2. प्राइवेट कम्पनियों और पब्लिक कम्पनियों के लिए न्यूनतम समादत्त पूँजी क्रमशः **एक लाख** और **पाँच लाख** रुपए कर दी गई है। यह विद्यमान कम्पनियों पर भी लागू होगा।

3. इस संशोधन के माध्यम से सेवी (SEBI) को प्रतिभूतियों के अन्तरण और सूचीबद्ध पब्लिक कम्पनियों द्वारा लाभांश का भुगतान न किए जाने के बारे में कार्यवाही करने की शक्ति प्रदान की गई है।

4. पचास से अधिक व्यक्तियों को प्रतिभूतियों का अधिमानी प्रस्ताव/प्राइवेट स्थापन (Private Placement) सार्वजनिक निर्गम माना जाएगा। यह प्रावधान सार्वजनिक वित्तीय संस्थानों और गैर बैंककारी वित्तीय निगमों द्वारा किए गए अधिमानी प्रस्ताव पर भी लागू होगा।

5. शेल्फ विवरण-पत्रिका (Shelf Prospectus) और 'सूचना ज्ञापन' से सम्बन्धित प्रावधान अधिनियम के अन्तर्गत अन्तःस्थापित किए गए हैं।

6. यदि कोई सूचीबद्ध **कम्पनी 10 करोड़ रुपए** या उससे अधिक का आरम्भिक सार्वजनिक निगम जारी करती है तो यह मात्र अभौतिक (Dematerialise) प्रकार का होगा। इसके लिए डीमैट की व्यवस्था की गई है।

7. डिबेंचर न्यासियों की नियुक्ति, प्रतिभूतियों के सम्बन्ध में कम्पनी के दायित्व और डिबेंचर मोचन आरक्षिति (Debenture Redemption Reserve) के बारे में उपलब्ध किए गए हैं।

8. उच्चतर नैगम शासन के लिए डाक मत पत्र द्वारा मताधिकार को सुनिश्चित करने से सम्बन्धित प्रावधान को अन्तर्विष्ट किया गया है।

9. लाभांश, जिसमें अन्तरिम लाभांश सम्मिलित है, के भुगतान की अवधि को लाभांश की घोषणा की तिथि से 42 दिन से घटाकर 30 दिन कर दिए जाने का प्रावधान है। घोषित लाभांश की रकम को ऐसे लाभांश की घोषणा की तिथि से 5 दिनों के अन्दर पृथक बैंक खाते में जमा किया जाना आवश्यक बना दिया गया है।

10. कोई भी व्यक्ति एक समय में 15 से अधिक कम्पनियों के संचालक का पद ग्रहण नहीं कर सकता। इसमें प्राइवेट कम्पनियाँ सम्मिलित नहीं हैं।

11. प्रत्येक पब्लिक कम्पनी द्वारा, जिसकी समादत्त **पूँजी 5 करोड़** से कम नहीं है, संचालक मण्डल की एक 'लेखा परीक्षा समिति' (Audit Committee) का गठन करेगी।

12. कम्पनियाँ जिनके पास 10 लाख रुपए या इससे अधिक की समादत्त पूँजी है और जिनके लिए अपने नियोजन में पूर्णकालिक सचिव की नियुक्ति करना आवश्यक नहीं है उन्हें सचिव का पूर्णकालिक व्यवसाय करने वाले से 'सचिवीय अनुपालन प्रमाणपत्र' प्रस्तुत करना होगा। ऐसे प्रमाणपत्र की एक प्रति संचालक की रिपोर्ट के साथ संलग्न की जाएगी।

13. कम्पनी अधिनियम, 1956 की विभिन्न धाराओं में वर्णित दाण्डिक प्रावधानों (वित्तीय शास्तियों) में 10 गुना वृद्धि कर दी गई है।

NOTES

कम्पनी (संशोधन) अधिनियम, 2001

अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहारों में अधिक उदारता आने तथा सार्वभौमिकरण के बाद यह आवश्यक हो गया है कि पुराने एवं परम्परागत कम्पनी अधिनियम 1956 में प्रासंगिक संशोधन किये जावें। सरकार द्वारा उच्चतम न्यायालय के अवकाश प्राप्त न्यायाधीश न्यायमूर्ति बी. बालकृष्ण रेड्डी की अध्यक्षता में कम्पनियों के परिसमापन और दिवालियापन से सम्बन्धित कानूनों को जाँचने के लिए एक समिति का गठन किया गया। समिति ने कम्पनी अधिनियम, 1956, रुग्ण औद्योगिक कम्पनी (विशेष उपबन्ध) अधिनियम, 1985, बैंकों एवं वित्तीय संस्थानों को शोध्य ऋणों की वसूली अधिनियम, 1993 एवं प्रतिभूति संविदा (विनियमन) अधिनियम, 1956 के विभिन्न प्रावधानों पर गहन विचार-विमर्श किया गया। समिति की सिफारिश पर बीमार कम्पनियों के पुनः प्रवर्तन को सहज बनाने एवं मजदूरों के हितों को संरक्षण प्रदान करने और कम्पनियों के परिसमापन के उद्देश्य से कई महत्वपूर्ण संशोधन किये गये।

कम्पनी अधिनियम, 1956 के सिद्धान्त
(Principles of The Companies Act, 1956)

कम्पनी अधिनियम, 1956 कुछ निश्चित सिद्धान्तों पर आधारित है।

(1) **नियन्त्रण, निरीक्षण, पर्यवेक्षण तथा जाँच का सिद्धान्त** (Principle of Control, Inspection, Supervision and Investigation) – इस सिद्धान्त के अनुसार केन्द्रीय सरकार के समक्ष अथवा न्यायालय के आवेदन-पत्र प्रस्तुत किये जाने पर कम्पनी के मामलों में नियन्त्रण, निरीक्षण, पर्यवेक्षण व जाँच का आदेश केन्द्रीय सरकार अथवा न्यायालय द्वारा दिया जा सकता है।

(2) **कम्पनी के समामेलन के पर्दे को उठाने का सिद्धान्त** (Principle of Lifting of the Corporate Veil) – सामान्यतः कम्पनी और उसके सदस्यों के मध्य पर्दा होता है। कानून कम्पनी को देखता है न कि उसके पर्दे के पीछे बैठे हुए अंशधारियों को।

(3) **विनियोक्ताओं के हितों की सुरक्षा का सिद्धान्त** (Principle of Safety of Interest of the Investors)– इस सिद्धान्त के अनुसार कम्पनी में विनियोक्ताओं के हितों की सुरक्षा हेतु वर्तमान कम्पनी अधिनियम में विभिन्न प्रावधानों का समावेश किया गया है।

(4) **अंशों के हस्तान्तरणीय होने का सिद्धान्त** (Principle of Transferability of Shares) – इस सिद्धान्त के अनुसार एक कम्पनी में उसके अन्तर्नियमों के प्रावधानों के अधीन अंश हस्तान्तरणीय होते हैं।

(5) **न्याय एवं समता का सिद्धान्त** (Principle of Justice and Equity) – इस सिद्धान्त के अनुसार कम्पनी में समान प्रकार के ऋणदाताओं तथा अंशधारियों के साथ समान प्रकार का व्यवहार किया जाता है, पक्षपातपूर्ण व्यवहार नहीं।

(6) **समामेलन तथा समापन का सिद्धान्त** (Principle of Incorporation and Winding-up) – इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक कम्पनी का समामेलन तथा समापन दोनों कार्य कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत किये जा सकते हैं।

(7) **विशिष्ट उद्देश्यों का सिद्धान्त** (Principle of Specific Objectives) – इस सिद्धान्त के आधार पर प्रत्येक कम्पनी की स्थापना विशिष्ट उद्देश्य अथवा उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए की जाती है।

(8) **अल्पमत के हितों की सुरक्षा का सिद्धान्त** (Principle of Safe-guarding the Interest of the Minority) – इस सिद्धान्त के अनुसार कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत अल्पमत वाले सदस्यों के हितों की पूर्ण सुरक्षा की जाती है।

(9) **पृथक् स्वतन्त्र अस्तित्व का सिद्धान्त** (Principle of Separate Independent Entity) – इस सिद्धान्त के अनुसार 'कम्पनी का पृथक् एवं स्वतन्त्र अस्तित्व' होता है जो कि उसके सदस्यों से सर्वथा भिन्न होता है।

(10) **सामूहिक स्वामित्व का सिद्धान्त** (Principle of Joint Ownership) – इस सिद्धान्त के अनुसार कम्पनी पर स्वामित्व किसी विशेष व्यक्ति का न होकर व्यक्तियों के समूह का होता है।

(11) **सार्वमुद्रा का सिद्धान्त** (Principle of Common Seal) – इस सिद्धान्त के अनुसार कम्पनी के समस्त कार्यों का निष्पादन उसकी सार्वमुद्रा के अन्तर्गत होता है। इसका कारण यह है कि कम्पनी अधिनियम द्वारा निर्मित कृत्रिम व्यक्ति होती है।

(12) **प्रजातांत्रिक प्रबन्ध व्यवस्था का सिद्धान्त** (Principle of Democratic Management) – इस सिद्धान्त के अनुसार कम्पनी की प्रबन्ध व्यवस्था प्रजातंत्र के सिद्धान्तों पर आधारित है। जिस प्रकार प्रजातंत्र में संसद

सदस्य तथा विधायक जनता द्वारा चुने जाते हैं उसी प्रकार कम्पनी की प्रबन्ध व्यवस्था के लिए संचालकों का चयन कम्पनी के सदस्यों द्वारा होता है।

NOTES

(13) **शाश्वत उत्तराधिकार का सिद्धान्त** (Principle of Perpetual Succession)– इस सिद्धान्त के अनुसार कम्पनी का अस्तित्व स्थायी होता है। यही कारण है कि कम्पनी को शाश्वत अर्थात् अविच्छिन उत्तराधिकार वाली संस्था कहा जाता है।

(14) **सीमित दायित्व का सिद्धान्त** (Principle of Limited Liability) – इस सिद्धान्त के अनुसार एक कम्पनी में सदस्यों का दायित्व सामान्यतः सीमित होता है।

(15) **प्रबन्ध एवं स्वामित्व के पृथक्करण का सिद्धान्त** (Principle of Separation of Management and Ownership) – इस सिद्धान्त के अनुसार कम्पनी का स्वामित्व एवं प्रबन्ध दोनों बातें समान व्यक्ति या व्यक्तियों के पास न होकर अलग-अलग व्यक्तियों के पास होती हैं।

कम्पनी अधिनियम, 1956 के उद्देश्य
(Objectives of The Companies Act, 1956)

अधिनियम के संक्षेप में निम्नलिखित उद्देश्य बताये थे –

(1) कम्पनी अधिनियम के अतिरिक्त अधिनियम के प्रशासन हेतु उपयुक्त सत्ता की स्थापना किया जाना।

(2) समय-समय पर कम्पनी की सभाओं को बुलाया जाना एवं उनका उचित संचालन होना।

(3) कम्पनी के प्रविवरण अथवा उसके स्थानापन्न विवरण में कम्पनी के सम्बन्ध में पूर्ण सम्भव जानकारी प्रदान किये जाने का प्रावधान किया जाना।

(4) अल्पमत के हितों को सुरक्षा प्रदान करना।

(5) कम्पनियों के स्वस्थ विकास में सहायता प्रदान करना।

(6) अंशधारियों में विश्वास की भावना बनाये रखना।

(7) ऐसे क्षेत्रों में जो सार्वजनिक क्षेत्र के लिए सुरक्षित नहीं है, निजी पूँजी के विनियोजन को प्रोत्साहन देना तथा उसकी रक्षा करना।

(8) विनियोक्ताओं के हितों को सुरक्षित रखा जाना।

(9) कम्पनी के सदस्यों के सीमित दायित्व के तत्व को ध्यान में रखते हुए कम्पनी के ऋणदाताओं के हितों की रक्षा करना।

(10) कम्पनी का कारोबार अंशधारियों अथवा सामान्य जनता के हितों के प्रतिकूल चलाये जाने की दशा में सरकार कम्पनी के मामलों में हस्तक्षेप एवं जाँच करने का अधिकार प्रदान किया जाना।

(11) कम्पनियों के प्रबन्ध हेतु उत्तरदायी व्यक्तियों द्वारा अपने-अपने कर्तव्यों का उचित निष्पादन किया जाना।

(12) अंशधारियों की प्रभावी भागिता तथा उनके नियन्त्रण को स्थापित करना और उनके वैध हितों की सुरक्षा करना।

(13) कम्पनियों के मामले के सम्बन्ध में पूर्ण तथा उचित सभी आवश्यक जानकारी प्राप्त करना।

(14) कम्पनियों के प्रवर्तन और प्रबन्ध में व्यवसाय की सत्यनिष्ठा (integrity) संचालन का न्यूनतम स्तर निश्चित करना।

अपनी प्रगति की जाँच करें
Test your Progress

प्रश्न
Questions

1. भारत में कम्पनी विधान के इतिहास का संक्षिप्त विवरण दीजिये।
2. कम्पनी अधिनियम, 1956 के उद्देश्यों एवम् प्रावधानों को स्पष्ट कीजिए।
3. कम्पनी अधिनियम, 1956 किन कम्पनियों पर लागू होता है और किन पर नहीं? कम्पनी अधिनियम 1956 के प्रावधानों की रूपरेखा दीजिये।
4. कम्पनी अधिनियम, 1956 किस तिथि से प्रभावी हुआ?
5. भारत में कम्पनी अधिनियम के विकास पर एक लेख लिखिए।
6. भारतीय कम्पनी अधिनियम में अब तक किये गये संशोधनों को संक्षेप में समझाइये।

NOTES

2

कम्पनी की परिभाषा एवं प्रकार
(DEFINITION AND KINDS OF COMPANY)

परिचय – कम्पनी अधिनियम 1956 में 658 धाराएँ एवं 12 अनुसूचियाँ हैं जबकि भारतीय कम्पनी अधिनियम 1913 में 290 धाराएँ व 4 अनुसूचियाँ थीं। अंग्रेजी कम्पनी अधिनियम, 1948 में 462 धाराएँ और 18 अनुसूचियाँ हैं। भारत का कम्पनी अधिनियम विश्व में प्रत्येक देश के कम्पनी अधिनियम से बड़ा है।

साधारण बोलचाल की भाषा में कम्पनी का अर्थ उन व्यक्तियों के समूह से है जो समान उद्देश्य की पूर्ति हेतु संगठित होते हैं। कम्पनी से आशय कम्पनी अधिनियम 1956, अथवा इससे पूर्व लागू किए गए कम्पनी अधिनियमों के अन्तर्गत समामेलित कम्पनी से है। कम्पनी अधिनियम में समामेलित कम्पनियाँ प्रायः व्यापारिक कम्पनियाँ ही आती हैं। परन्तु व्यापारिक कम्पनियों के अतिरिक्त, दान-पुण्य, कला, धर्म, अनुसंधान अथवा अन्य उपयोगी क्षेत्र को बढ़ावा देने के उद्देश्य से भी कम्पनियों का गठन किया जा सकता है।

भारतीय कम्पनियों से सम्बन्धित कानून कम्पनी अधिनियम 1956 में दिया गया है।

कम्पनी की परिभाषा
(Definition of Company)

कम्पनी समान उद्देश्य हेतु कुछ व्यक्तियों द्वारा स्वेच्छा से निर्मित एक संगठन है। जिसकी पूँजी अनेक भागों में विभाजित होती है तथा दायित्व सीमित होता है। कम्पनी का अस्तित्व, कानून की केवल कल्पना मात्र है, कानून कम्पनी को व्यक्ति के रूप में मान्यता देता है। कम्पनी का अस्तित्व वास्तविक होता है और यह कोई कल्पित इकाई नहीं होती है।

(1) "सामान्यतया कम्पनी शब्द से आशय किसी सामान्य उद्देश्य से निर्मित अनेक व्यक्तियों के समूह से है।"

(2) **भारतीय कम्पनी अधिनियम**, 1956 की धारा 3 (1) (i) के अनुसार, "कम्पनी से आशय इस अधिनियम के अन्तर्गत निर्माणित एवं पंजीकृत अथवा किसी विद्यमान कम्पनी से है। विद्यमान कम्पनी से आशय ऐसी कम्पनी से है जो धारा 3 (i) (ii) के अन्तर्गत वर्णित पूर्व अधिनियम के अधिन निर्मित एवं पंजीकृत हुई है।"

(3) **श्री हैन** के अनुसार, "एक कम्पनी अधिनियम द्वारा निर्मित एक कृत्रिम व्यक्ति, है जिसका पृथक अस्तित्व, स्थायी अस्तित्व एवं सामान्य सील होती है।"

(4) **लार्ड जेम्स** के अनुसार, "एक कम्पनी से आशय किसी सामान्य उद्देश्य के लिए निर्माणित अनेक व्यक्तियों का संघ है।"

(5) **न्यायाधीश लिण्डसे** के अनुसार, "कम्पनी से आशय अनेक व्यक्तियों के ऐसे संघ से है जो संयुक्त स्टॉक में द्रव्य या अन्य सम्पत्ति प्रदान करते हैं तथा किसी सामान्य उद्देश्य के लिए उसका उपयोग करते हैं। ऐसे संयुक्त स्टॉक को जो द्रव्य में होता है, कम्पनी की पूँजी के माप से जानते हैं।"

(6) **मुख्य न्यायाधीश मार्शल** के अनुसार, "एक संयुक्त स्कन्ध प्रमण्डल अधिनियम के अनुसार एक कृत्रिम व्यक्ति है, जो अदृश्य, स्थायी एवं विद्यमान रहता है।"

(7) **श्रेष्ठ परिभाषा** – कम्पनी की परिभाषाओं एवं अर्थ समझने के बाद कम्पनी की श्रेष्ठ परिभाषा निम्न प्रकार से दी जा सकती है –

"कम्पनी एक वैधानिक एवं अदृश्य कृत्रिम व्यक्ति है, जिसका समामेलन भारतीय कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत होता है, जिसका अस्तित्व सदस्यों से पृथक होता है, सदस्यों का दायित्व साधारणतया सीमित होता है, निर्माण किसी विशिष्ट उद्देश्य से होता है और इसके पास एक सार्वमुद्रा होती है।"

कम्पनी के आवश्यक लक्षण
(Essential Characteristics of Company)

कम्पनी की आवश्यक विशेषताएँ या लक्षण निम्नलिखित हैं –

(1) **कृत्रिम व्यक्ति** (Artificial Person) – कम्पनी की स्थापना विधि द्वारा होती है, तथा उसका अन्त भी विधि द्वारा होता है। कम्पनी को मनुष्य की ही भाँति समस्त अधिकार प्राप्त होने से उसे कृत्रिम व्यक्ति माना जाता है।

(2) **कार्य क्षेत्र की सीमा** (Limitation of Action) – सीमा पार्षद एवं अन्तर्नियम द्वारा कम्पनी के कार्यक्षेत्र सीमा का निर्धारण कर दिया जाता है।

(3) **अविच्छिन्न उत्तराधिकार** (Perpetual Succession) – कम्पनी के जीवन पर सदस्यों के आने-जाने, मर जाने, या अंश बेचकर चले जाने से कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता। इसी से कम्पनी को अविछिन्न उत्तराधिकार वाली कम्पनी कहा गया है। एक युद्ध में प्राइवेट कम्पनी के सभी सदस्य जो कि एक कम्पनी की सभा में उपस्थित थे, एक बम गिरने से मारे गये परन्तु फिर भी कम्पनी का अस्तित्व बना रहा। कम्पनी का कोई भौतिक अस्तित्व न होने के कारण वह अपने एजेन्टों द्वारा कार्य करती है, परन्तु एजेन्टों द्वारा किए गए अनुबन्धों पर कम्पनी की मोहर होना अनिवार्य है।

(4) **प्रतिनिधित्व प्रबन्ध** (Representative Management) – कम्पनी में प्रबन्ध व्यवस्था संचालकों द्वारा की जाती है जो कि कम्पनी के चुने हुए प्रतिनिधि होते हैं।

(5) **अभियोग चलाने की क्षमता** (To Sue) – कम्पनी की समस्त कार्यवाहियाँ कम्पनी के नाम में ही की जाती हैं और किसी भी व्यक्ति पर अभियोग न चला कर उसे कम्पनी के नाम में ही चलाया जाता है।

(6) **ऐच्छिक संघ** (Voluntary Association) – यह सदस्यों द्वारा निर्माण किया गया एक ऐच्छिक संघ है जो लाभ अर्जित करने के उद्देश्यों से बनायी जाती है व उन लाभों का वितरण अंशधारियों में कर दिया जाता है।

(7) **स्वतंत्र कानूनी सत्ता** (Separate Legal Entity) – कम्पनी की स्वतंत्र सत्ता का महत्व Solomon v. Solomon & Co. Ltd. के मामले में अच्छी तरह उभर कर सामने आया। Solomon नाम के एक व्यक्ति ने अपना जूतों का व्यापार एक नवनिर्मित कम्पनी को पोंड 30000 में बेचा। उसकी पत्नी, पुत्री तथा 4 पुत्रों ने कम्पनी का पोंड 1 मूल्य का एक-एक अंश खरीदा। Solomon ने 20000 अंश खरीदे व पोंड 10000 मूल्य के ऋण पत्र भी लिए बाद में, जब कम्पनी का समापन हुआ तो उसकी सम्पत्तियों का मूल्य पोंड 6000 माना गया। कम्पनी के लेनदार पोंड 7000 के थे। लेनदारों का यह दावा था कि Soloman और कम्पनी एक ही व्यक्ति होने के कारण Solomon के ऋण की तुलना में प्राथमिकता दी जानी चाहिए, परन्तु House of Lords ने निर्णय लिया कि कम्पनी Solomon की एजेन्ट नहीं थी। Solomon कम्पनी के सभी अंशों का धारक होते हुए भी कम्पनी का जमानती लेनदार था अतः ऋण की वापस-अदायगी के सम्बन्ध में उसे गैर-जमानती लेनदारों की तुलना में प्राथमिकता पाने का अधिकार था। कानून की दृष्टि में कम्पनी का अस्तित्व ज्ञापन पत्र पर हस्ताक्षर करने वालों से सर्वथा भिन्न है। कानून की दृष्टि में न तो कम्पनी अंशधारियों की एजेन्ट है और न ही उसकी ट्रस्टी है।

Lee v Lee's Air Farming Ltd. के मामले में दिए गए निर्णय ने Soloman के मामले में प्रतिपादित सिद्धांत की और अधिक स्पष्ट किया गया है।

Lee Air Farming Ltd. के कुल 3000 अंशों में से 2999 अंश स्वयं Lee के पास थे। उसने स्वयं को कम्पनी का प्रबन्ध संचालक बना लिया तथा निश्चित वेतन पर कम्पनी की मुख्य विमान-चालक बन गया। कम्पनी के लिए काम करते समय एक विमान दुर्घटना में उसकी मृत्यु हो गई। उसकी विधवा पत्नी ने काम के दौरान हुई मृत्यु के लिए हानि हर्जाने की माँग की। बहस में कहा गया कि Lee एवं कम्पनी में कोई भिन्नता नहीं थी तथा हर्जाने का दावा मान्य न हो, परन्तु न्यायालय ने यह तर्क नहीं माना और पत्नी का दावा स्वीकार किया गया।

Abdul Haq V. Das Mal के मामले में एक कर्मचारी को कई महीनों से वेतन नहीं मिला। उसने कम्पनी के संचालक पर दावा कर दिया। न्यायालय की राय में यह गलत था क्योंकि यहाँ दावा कम्पनी के विरुद्ध किया जा सकता था, अंशधारियों या संचालकों के विरुद्ध नहीं।

कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत पंजीयन कराने से, कम्पनी का पृथक अस्तित्व बन जाता है जो अपने सदस्यों से पृथक मानी जाती है। कम्पनी एक वैधानिक व्यक्ति होता है। इस सिद्धांत पर सालोमन बनाम सालोमन एण्ड कम्पनी लिमिटेड[1] का निर्णय महत्वपूर्ण है।

(8) **सार्वमुद्रा** (Common Seal) – कम्पनी की अपनी मुद्रा होती है, जो कम्पनी के पृथक अस्तित्व का द्योतक है। यह मुद्रा कम्पनी के हस्ताक्षर की भाँति कार्य करती है।

(9) **कम्पनी का समापन** (Winding up of Company) – किसी भी कम्पनी का न्यायालय की आज्ञा लेकर, समापन किया जा सकता है और कम्पनी का अन्त हो जाता है।

(10) **दायित्व** (Liability) – प्रायः कम्पनियों की स्थापना सीमित दायित्व के आधार पर की जाती है, परन्तु सीमित एवं असीमित दोनों ही प्रकार की कम्पनियों की स्थापना की जा सकती है।

NOTES

अंशों द्वारा सीमित कम्पनी में, उसके सदस्यों का दायित्व अंशों पर बकाया देय राशि तक सीमित होता है।

निम्नांकित दशाओं में कम्पनी के सदस्यों का दायित्व असीमित भी हो सकता है –

(अ) यदि कम्पनी की सदस्य संख्या घटकर न्यूनतम आवश्यक संख्या (2 या 7 जैसी भी स्थिति हो) से कम हो जाती है तथा ऐसी कमी के बाद कम्पनी छः माह से अधिक समय तक व्यवसाय करती रहती है तो प्रत्येक ऐसा सदस्य जिसे इस बात की जानकारी है का दायित्व असीमित होगा। **[धारा 45]**

(ब) यदि को संचालक या सदस्य लिखित में असीमित दायित्व को स्वीकार करे। **[धारा 38]**

(स) यदि कम्पनी के सीमानियम में संचालकों के असीमित दायित्व का उल्लेख हो। **[धारा 322]**

(द) यदि कम्पनी का व्यवसाय कम्पनी के ऋणदाताओं या अन्य पक्षकारों के साथ धोखाधड़ी करने की नियत से संचालित किया गया हो तो ऐसे सदस्यों/संचालकों का दायित्व असीमित होगा। **[धारा 542]**

(11) **अंश पूँजी एवं अंशधारी** (Share capital and shreholders) – अंश पूँजी वाली कम्पनी की एक विशेषता यह भी होती है कि इसकी पूँजी कई छोटे-छोटे भागों में बँटी हुई होती है। इन छोटे-छोटे हिस्सों को ही अंश कहते हैं। जो व्यक्ति इन अंशों को क्रय करते हैं वे कम्पनी के अंशधारी कहलाते हैं। अब प्रत्येक कम्पनी में **कम से कम पाँच लाख रु. की तथा स्वतंत्र निजी कम्पनी में कम से कम एक लाख रु. की पूँजी होना आवश्यक है।** किन्तु, कला, विज्ञान तथा वाणिज्य के विकास के लिए बनायी गई कम्पनी में अंश पूँजी का होना आवश्यक नहीं है।

[2000 में संशोधित धारा 3]

कम्पनी व साझेदारी में अन्तर
(Differences between Company and Partnership)

एक कम्पनी व साझेदारी में प्रमुख अन्तर निम्नलिखित हैं –

(1) कार्यों से एक अंशधारी दूसरे को बद्ध नहीं कर सकता जबकि साझेदार कर सकता है। (2) कम्पनी का अस्तित्व पृथक होता है, साझेदार का नहीं होता। Dulichand V. Income Tax कमिश्न, नागपुर के मामले में साझेदार की स्थिति इस प्रकार रखी गयी थी। फर्म की न तो अपनी कोई सत्ता है और न ही कानूनी व्यक्तित्व। फर्म उसका निर्माण करने वाले व्यक्तियों का ही एक सामूहिक माप है। (3) सदस्यों की न्यूनतम संख्या 7, निजी कम्पनी में 2 तथा साझेदारी में संख्या 2 होती है। (4) कम्पनी अपनी पार्षद सोमानियम एवं अन्तर्नियमों द्वारा बँधी रहती है, जबकि साझेदारी आपसी ठहराव द्वारा ही बँधी रहती है। (5) कम्पनियों के खातों का अंकेक्षण अधिनियम द्वारा अनिवार्य है, जबकि साझेदारी के खातों का अंकेक्षण अनिवार्य नहीं है। (6) साझोदार के कार्यों से फर्म को बाध्य किया जा सकता है, जबकि अंशधारी कम्पनी का एजेन्ट नहीं होता और वह अपने कार्यों से कम्पनी को बाध्य नहीं कर सकता। (7) लोक कम्पनी के अंशधारी अपने अंशों का हस्तांतरण कर सकते हैं, साझेदारी में साझेदार अपने अंश का हस्तांतरण नहीं कर सकता। (8) कम्पनियों का दायित्व सीमित होता है जबकि साझेदारी संस्था में साझेदार का दायित्व असीमित होता है। (9) कम्पनियों का कार्य कम्पनी अधिनियम 1956 के अनुसार होता है, साझेदारी का कार्य साझेदारी अधिनियम द्वारा होता है। (10) कम्पनी के समापन के लिए न्यायालय की अनुमति आवश्यक है, साझेदारी में यह आवश्यक नहीं है। (11) प्रत्येक कम्पनी को समामेलन करना आवश्यक है, जबकि साझेदारी में इस प्रकार के पत्र की आवश्यकता नहीं होती। (12) कम्पनी प्रबन्ध में प्रत्येक सदस्य भाग न लेकर केवल संचालक-गण ही भाग लेते हैं, फर्म में प्रत्येक साझेदार भाग ले सकता है। (13) कम्पनी में सम्पत्ति के सदस्यों की न होकर कम्पनी की होती है, फर्म की सम्पत्ति पर समस्त साझेदारों का संयुक्त अधिकार होता है। (14) कम्पनी के अंशधारी की मृत्यु होने या दिवालिया होने से कम्पनी की समाप्ति नहीं होती परन्तु साझेदारी में किसी भी एक साझेदार की मृत्यु होने पर साझेदारी संस्था समाप्त हुई समझी जाती है।

कम्पनियों के समामेलन की पद्धतियाँ
(Methods of Incorporation of Companies)

कम्पनी के समामेलन की मुख्य पद्धतियाँ निम्नलिखित हैं –

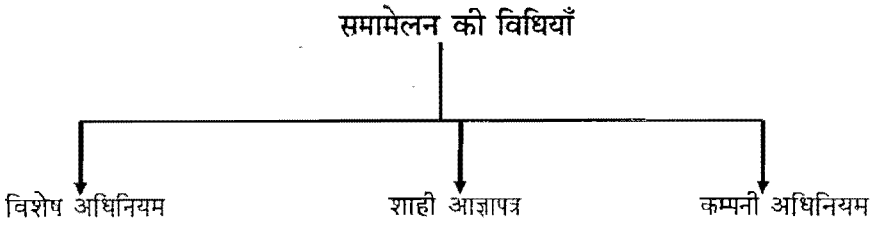

संसद के विशेष अधिनियम द्वारा की जाती है जिसका सीमित दायित्व होता है तथा जिन्हें वैधानिक कम्पनियाँ कहते हैं। ये कम्पनियाँ राष्ट्र हित के लिए स्थापित की जाती हैं। इनके अधिकार एवं कार्य-क्षेत्र की सीमाएँ अधिनियम द्वारा ही निर्धारित कर दी जाती हैं। इनका दायित्व सीमित होता है परन्तु इनके नाम में 'लिमिटेड' शब्द का प्रयोग नहीं होता। भारत में रिजर्व बैंक व स्टेट बैंक इसी प्रकार की कम्पनियों के उदाहरण हैं। धारा 616 (द) के अनुसार कम्पनी अधिनियम, 1956 की व्यवस्थाएँ इन कम्पनियों पर भी लागू की जाती हैं ।

NOTES

(2) **शाही आज्ञापत्र द्वारा** (By Royal Charter) – ऐसी कम्पनियों की स्थापना, सरकार द्वारा आवश्यकता पड़ने पर, शाही आज्ञापत्र द्वारा की जाती थी, जिसे विस्तृत अधिकार दिये जाते थे तथा कार्य क्षेत्र की सीमा आज्ञापत्र में निर्धारित कर दी जाती थी। सदस्यों पर कम्पनी के दायित्व का भार नहीं होता और एक व्यक्ति की भाँति सम्पत्ति पर कम्पनी को भी अधिकार प्राप्त होते हैं। ऐसी कम्पनियों का उदाहरण ईस्ट इण्डिया कम्पनी है। ऐसी कम्पनियाँ अब न तो इंग्लैण्ड में हैं और न ही भारत में हैं।

(3) **कम्पनी अधिनियम द्वारा समामेलन** (Incorporation under the Companies Act) – भारत में वैधानिक कम्पनियों को छोड़कर समस्त कम्पनियाँ इसी अधिनियम द्वारा समामेलित होती हैं जिन्हें पंजीकृत कम्पनियाँ कहते हैं। वर्तमान में कम्पनियों का पंजीयन भारतीय कम्पनी अधिनियम, 1956 के अधीन होती है। अधिनियम के अन्तर्गत धारा 12 (2) के अनुसार निम्न तीन प्रकार की कम्पनियों की स्थापना की जा सकती है, (i) अंशों द्वारा सीमित कम्पनियाँ, (ii) गारण्टी द्वारा सीमित कम्पनियाँ, (iii) असीमित दायित्व वाली कम्पनियाँ।

(i) **अंशों द्वारा सीमित कम्पनियाँ** (Companies Limited by Shares) – इन कम्पनियों में सदस्यों का दायित्व पार्षद सीमानियम के अनुसार निर्धारित राशि से अधिक नहीं होता। वर्तमान समय में ऐसी कम्पनियों की संख्या बढ़ती जा रही है क्योंकि इसमें जोखिम की मात्रा का अनुमान पहले से ही कर लिया जाता है।

(ii) **गारण्टी द्वारा सीमित कम्पनियाँ** (Companies Limited by Guarantee) – इन कम्पनियों में प्रत्येक सदस्य का दायित्व पार्षद सीमानियम द्वारा उस अधिकतम सीमा तक बँध जाता है जिसकी उसने गारण्टी दी है। धारा 13 (3) के अनुसार पार्षद सीमानियम में यह व्यवस्था होती है कि इन कम्पनियों में सदस्यों का दायित्व कम्पनी के समापन होने पर ही उत्पन्न होता है। यदि कम्पनी अंश पूँजी वाली है तो ऐसे सदस्य को गारण्टी राशि के अतिरिक्त अंशों पर अदत्त राशि का भी भुगतान करना पड़ता है। इन कम्पनियों की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं। (अ) सीमित दायित्व के अधिकार पंजीयन के बाद ही प्राप्त होते हैं, (ब) ऐसी कम्पनियाँ अंश या बिना अंश पूँजी वाली हो सकती है, (स) सदस्य के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों का प्राप्त होने वाले लाभ की व्यवस्था व्यर्थ होगी, (द) सदस्यों का दायित्व ऋण दाताओं के प्रति बना रहता है, (इ) इन कम्पनियों का पंजीयन धर्म, विज्ञान कला, पुण्यार्थ या खेलकूद के लिए किया जाता है।

(iii) **असीमित दायित्व वाली कम्पनियाँ** (Companies with Unlimited Liabilities) – "सीमित दायित्व का अधिकार न्यायोचित है, परन्तु समामेलन के लिए एक आवश्यक शर्त नहीं है।"[1] एक कम्पनी जिसके सदस्यों पर कोई सीमा न हो असीमित कम्पनी कहलाती है। धारा 27 (1) के अन्तर्गत एक असीमित कम्पनों में भी अन्तर्नियम होता है जिसमें सदस्य संख्या, अंशपूँजी आदि का वर्णन रहता है। यह कम्पनी मुद्राँक कर से मुक्त होती है तथा अपने अंशों को स्वयं क्रय कर सकती है।[2] ऐसी कम्पनियों की संख्या सीमित होती है। यह सदस्यों को भुगतान कर सकती है तथा उसके अंशों को क्रय कर सकती है।[3]

असीमित दायित्व वाली कम्पनी को सीमित दायित्व में बदलना

एक असीमित दायित्व वाली कम्पनी को सीमित दायित्व वाली कम्पनी में परिवर्तन किया जा सकता है, परन्तु इस सम्बन्ध में निम्न व्यवस्था करनी पड़ती है।

(i) **विशेष प्रस्ताव** – ऐसी कम्पनी को एक सभा बुलाकर एक विशेष प्रस्ताव पास करना होगा कि असीमित दायित्व को सीमित दायित्व में परिवर्तित करना है।

(ii) **प्रलेख भेजना** – कम्पनी का संचालक या अन्य अधिकारी को आवेदन पत्र के साथ निम्न प्रलेख रजिस्ट्रार के पास भेजने पड़ते हैं – (अ) विशेष प्रस्ताव की सत्य प्रतिलिपि, (ब) सदस्यों के नाम व पते, (स) नवीन पार्षद अन्तर्नियम, (द) अधिकृत पूँजी का विवरण, (इ) सदस्य के अंशों की सूची, (फ) दो संचालकों की सूचना कि समस्त कार्यवाही पूर्ण की जा चुकी है।

(iii) **फीस** – आवेदन-पत्र व प्रलेख के साथ रजिस्ट्रार के पास निर्धारित फीस भी भेजनी पड़ती है।

(iv) **प्रमाण पत्र मिलना** – यदि रजिस्ट्रार प्राप्त किये गये समस्त प्रलेखों से सन्तुष्ट हो जाता है तो कम्पनी के असीमित दायित्व को सीमित दायित्व में बदलने के आशय का एक प्रमाणपत्र जारी करता है। इसके उपरांत वह कम्पनी

NOTES

सीमित दायित्व वाली कम्पनी के रूप में परिवर्तित हो जाती है, परन्तु इसके अनुबन्धों, ऋणों व दायित्वों आदि पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

कम्पनी के भेद/प्रकार
(Types of Company)

कम्पनियों के विभिन्न भेद निम्न हैं –

1. **निजी कम्पनी** – निजी कम्पनी से आशय एक ऐसी कम्पनी से है – जिसकी परिभाषा **धारा 3** में दी गई है। कम्पनी अधिनियम की **धारा 3(i)(iii)** के अनुसार "निजी कम्पनी का आशय एक ऐसी कम्पनी से है, जो अपने अन्तर्नियमों द्वारा (अ) अपने अंशों (यदि कोई हो) के हस्तान्तरण के अधिकार पर प्रतिबन्ध लगा देती हैं। (ब) अपने सदस्यों की संख्या 50 तक सीमित रखती है एवं (स) अपने अंशों और ऋणपत्रों के खरीदने के लिए यह जनता को निमन्त्रण नहीं दे सकती है।" यह कम्पनी अपने सदस्यों संचालकों अथवा रिश्तेदारों के अतिरिक्त किसी भी व्यक्ति से जमाएँ आमंत्रित करने या स्वीकार करने पर निषेध लगाती है। **[2000 में संशो. धारा 3(i)(iii)]**

एक निजी कम्पनी अशों द्वारा सीमित, गारण्टी द्वारा सीमित और बिना अंश पूँजी वाली हो सकती है।

निजी कम्पनी के लक्षण या विशेषताएँ
(Essentials of Private Company)

निजी कम्पनी की निम्न विशेषताएँ होती हैं –

(i) इसके अंशों के हस्तांतरण के अधिकार पर प्रतिबन्ध होता है।

(ii) सदस्यों की अधिकतम संख्या 50 से अधिक नहीं होती है।

(iii) यह कम्पनी जनता को अभिदान के लिए निमन्त्रण देने पर रोक करती है।

(iv) यह कम्पनी सार्वजनिक जमाओं को स्वीकार करने पर भी निषेध करती है।

(v) निजी कम्पनी में कम से कम दो संचालकों का होना आवश्यक है।

(vi) निजी कम्पनी प्रविवरण निर्गमित नहीं करती है।

(अन्य) विशेषताएँ भी इस कम्पनी में होती हैं, जैसे–नाम के अन्त में प्रायवेट लिमिटेड शब्द लिखना व सीमित दायित्व होना आदि।

2. **सार्वजिक कम्पनी** – सार्वजनिक कम्पनी से आशय ऐसी कम्पनी से है, जिसके सदस्यों की संख्या अंशों की संख्या तक सीमित रहती है। इसके अंश हस्तांतरणीय होते हैं। यह कम्पनी अपने अंशों या ऋणपत्रों को खरीदने के लिए जनता को आमन्त्रित करती है।

निजी कम्पनी और सार्वजनिक कम्पनी में अंतर

अन्तर का आधार	निजी कम्पनी	सार्वजनिक कम्पनी
1. सदस्यों की संख्या	निजी कम्पनी में सदस्यों की संख्या न्यूनतम 2 एवं अधिकतम 50 होती है।	सार्वजनिक कम्पनी में न्यूनतम सदस्य संख्या 7 एवं अधिकतम कितनी भी हो सकती है।
2. अंश आवंटन	यह कम्पनी अपने समामेलन के तुरन्त बाद अंश आवंटित कर सकती है।	यह कम्पनी अंश आवंटित उस समय तक नहीं कर सकती, जब तक कि न्यूनतम अभिदान प्राप्त न हो जाय।
3. जनता को आमंत्रण	यह कम्पनी अपने अंशों व ऋणपत्रों को खरीदने के लिए जनता को आमन्त्रित नहीं कर सकती।	सार्वजनिक कम्पनी इसके लिए जनता को आमन्त्रित कर सकती है।
4. व्यापार का प्रारम्भ	निजी कम्पनी अपना व्यापार समामेलन प्रमाण-पत्र मिलने के तुरंत बाद शुरू कर सकती है।	यह अपना व्यापार उस समय तक आरम्भ नहीं कर सकती, जब तक कि व्यापार प्रारम्भ करने का प्रमाण-पत्र न मिल जाय।

5. वैधानिक सभा	इसके लिए वैधानिक सभा बुलाना और वैधानिक रिपोर्ट फाइल करना आवश्यक नहीं है।	इसके लिए वैधानिक सभा बुलाना तथा रजिस्ट्रार के पास वैधानिक रिपोर्ट फाइन करना परम आवश्यक है।
6. अंश हस्तान्तरण	इसके अंशों का स्वतन्त्रतापूर्वक हस्तान्तरण नहीं किया जा सकता है।	इसके अंशों का स्वतन्त्र हस्तान्तरण होता है।
7. प्रविवरण	इस प्रविवरण या इसका स्थानापन्न विवरण प्रकाशित करना आवश्यक नहीं है।	इसे प्रविवरण प्रकाशित करना जरूरी है। इसके अभाव में इसका स्थानापन्न विवरण प्रकाशित करना पड़ेगा।
8. संचालकों की संख्या	इसमें कम से कम 2 संचालक हो सकते हैं।	इसमें कम से कम 3 संचालक अवश्य होने चाहिए।
9. संचालकों का रिटायर होना	इसमें संचालक का पारी (Rotation) से रिटायर होना आवश्यक नहीं है।	इसमें रिटायर होने वाले संचालकों का तिहाई अवश्य ही पारी से रिटायर होना चाहिए।
10. प्रलेखों का फाइल करना	रजिस्ट्रार के पास निम्नलिखित प्रलेख नत्थी करना आवश्यक नहीं है – (a) संचालकों की सूची। (b) संचालकों की लिखित सहमति। (c) संचालकों के साथ किया गया ठहराव	संचालकों की सूची उनकी सहमति और उनके साथ किया गया अनुबन्ध, समामेलन के समय रजिस्ट्रार के पास फाइल कर देना चाहिए।
11. पार्षद सीमानियम पर हस्ताक्षर	इसके पार्षद सीमानियम पर केवल 2 व्यक्तियों के हस्ताक्षर होना पर्याप्त है।	इसके पार्षद सीमानियम पर कम से कम 7 व्यक्तियों के हस्ताक्षर होना आवश्यक है।
12. संचालकों को ऋण	संचालकों को ऋण देने के लिए केन्द्रीय सरकार की पूर्व अनुमति लेना आवश्यक नहीं है।	इसमें संचालकों को ऋण देने के लिए केन्द्रीय सरकार की पूर्व अनुमति लेना आवश्यक है।
13. अंश अधिपत्र	इसमें वाहक अंश अधिपत्र (Bearer Share Warrant) निर्गमित नहीं किया जा सकता।	इसमें वाहक अंश अधि पत्र निर्गमित किया जा सकता है, यदि वह पूर्णदत्त हो।
14. योग्यता अंश	संचालकों के लिए योग्यता अंश लेना आवश्यक नहीं।	संचालकों के लिए योग्यता अंश लेना अनिवार्य है।
15. अन्तर्नियम	इसमें अन्तर्नियमावली बनाना अनिवार्य है।	इसमें अन्तर्नियमों का बनाना आवश्यक नहीं। इसके अभाव में तालिका (अ) के नियम लागू होंगे।
16. अर्थ-प्रबन्ध	निजी कम्पनी अपने ही अंशों को क्रय करने के लिए आर्थिक सहायता प्रदान कर सकती है।	इसमें ऐसी सहायता देने की आज्ञा नहीं है।

निजी कम्पनी को प्राप्त छूटें एवं विशेषाधिकार
(Special Rights and Exemptions of a Private Company)

सभी निजी कम्पनियों को भले ही वे किसी पब्लिक कम्पनी की सहायक हैं अथवा नहीं, निम्न वैधानिक छूटें प्राप्त हैं –

1. अंशों एवं ऋण-पत्रों के आवंटन पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है।

2. जब कोई प्राइवेट कम्पनी अपनी प्रार्थित पूँजी में नये अंशों के निर्गमन द्वारा वृद्धि करती है, तो नये अंश विद्यमान अंशधारियों को ही प्रस्तुत करना आवश्यक नहीं है।

NOTES

3. समामेलन का प्रमाण-पत्र प्राप्त होते ही एक निजी कम्पनी अपना व्यापार प्रारम्भ कर सकती है।

4. प्राइवेट कम्पनी के लिए वैधानिक सभा बुलाना तथा रजिस्ट्रार के पास वैधानिक रिपोर्ट भेजना आवश्यक नहीं है।

5. इसे सम्पूर्ण वार्षिक खाते रजिस्ट्रार के पास फाइल नहीं करने पड़ते। केवल चिट्ठा तथा इसे सम्बन्धित अंकेक्षक रिपोर्ट भेजना ही पर्याप्त है।

6. जहाँ प्रथम संचालकों की नियुक्ति अन्तर्नियमों द्वारा हुई है, वहाँ संचालकों की नियुक्ति अथवा विज्ञापन पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है।

7. प्रविवरण अथवा इसका स्थानापन्न विवरण रजिस्ट्रार के पास भेजना आवश्यक नहीं।

8. निजी कम्पनी की स्थापना केवल 2 व्यक्तियों द्वारा ही (कर्मचारियों को छोड़कर) किसी भी समय सुविधापूर्वक की जा सकती है। निम्नलिखित छूटें केवल उसी कम्पनी को प्राप्त होती हैं, जो किसी सार्वजनिक कम्पनी की सहायक कम्पनी नहीं हैं –

(A) संचालकों के सम्बन्ध में (For Proprietors)

1. इसमें कम से कम 2 संचालक हो सकते हैं।

2. संचालकों को क्रम से पद त्यागने की आवश्यकता नहीं है।

3. संचालकों को योग्यता अंश लेने सम्बन्धि नियम इसमें लागू नहीं होते।

4. यह केन्द्रीय सरकार की अनुमति लिये बिना अपने संचालकों की संख्या में वृद्धि कर सकती है।

5. किसी भी संचालक के पद की किसी आकस्मिक शून्यता को यह किसी भी तरह पूर्ण कर सकती है।

6. एक व्यक्ति 20 से अधिक कम्पनियों का संचालक नहीं हो सकता, लेकिन इस संख्या में प्राइवेट कम्पनियों के संचालक पद शामिल नहीं किया जाते अर्थात् कोई व्यक्ति 20 सार्वजनिक कम्पनियों के अतिरिक्त निजी कम्पनियों में संचालक पद ग्रहण कर सकता है।

7. यह अपने संचालकों को ऋण या आर्थिक सहायता दे सकती है।

8. इसके संचालकों को पुरस्कार के स्वरूप और राशि पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है।

9. संचालक मण्डल के अधिकारों पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है।

10. यह किसी एक से अधिक कम्पनियों के प्रबन्ध संचालक या मैनेजर को अपना प्रबन्ध संचालक नियुक्त कर सकती है और यह आवश्यक नहीं कि उसकी नियुक्ति की अवधि 5 वर्ष हो।

11. इसके संचालक किसी भी अनुबन्ध पर, जिसमें उनका हित हो, स्वतन्त्रतापूर्वक विचार-विमर्श कर सकते हैं और मतदान में भाग ले सकते हैं।

12. यदि कोई रिटायर होने वाला संचालक पुनः संचालक नियुक्त किया जाता है, तो आवश्यक नहीं है कि वह रजिस्ट्रार के पास अपनी लिखित सहमति फाइल करे।

13. संचालकों की नियुक्ति के सम्बन्ध में ऐसे प्रतिबन्ध कि वे प्रबन्ध अभिकर्ताओं से सम्बन्धित या उनके प्रभाव में न हों, लागू नहीं होते हैं।

(B) प्रबन्ध अभिकर्ता के सम्बन्ध में (For Manager)

1. इसका प्रबन्ध अभिकर्ता से यह ठहराव हो सकता है कि उसका पद उत्तरदायित्व द्वारा हस्तान्तरित हो सकता है।

2. वह अपने प्रबन्ध अभिकर्ताओं को ऋण या अन्य आर्थिक सहायता प्रदान कर सकती है।

3. इस पर अपने प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं को चुकाये जाने वाले पुरस्कार के सम्बन्ध में कोई प्रतिबन्ध नहीं है।

4. इसमें प्रबन्ध अभिकर्ता किसी भी अनुबंध पर, जिसमें उनका व्यक्तिगत हित हो, स्वतन्त्रतार्पूवक विचार कर सकते हैं।

5. प्रबन्ध अभिकर्ताओं की नियुक्ति पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है।

(C) अन्य छूटें (Other Exemptions)

1. वह अपने ही अंश खरीदने के लिए किसी भी व्यक्ति को आर्थिक सहायता दे सकती है।

2. यदि संचालकगण इसके अंश की रजिस्ट्री अस्वीकार कर दें, तो इसके अंशधारियों को केन्द्रीय सरकार से अपील करने का अधिकार नहीं होता है।

3. इसके अन्तर्नियम यह व्यवस्था करते हैं कि सभा करने से सम्बन्धित सन्नियन के कुछ आदेश (जैसे–सूचना, कोरम, मतदान) लागू नहीं होंगे।

NOTES

4. ऐसी कम्पनी पर प्रबन्धकीय पारिश्रमिक की 11 प्रतिशत की अधिकतम सीमा लागू नहीं होती है।

5. यह उसी ग्रुप की किसी अन्य कम्पनी के अंशों व ऋण-पत्रों में अपने कोषों का विनियोग कर सकती है।

6. कम्पनी का व्यवसाय बेचने, संचालक पर ऋण छोड़ने, आदि के सम्बन्ध में इस पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है।

7. संचालक मण्डल के ऐसे परिवर्तन जो कम्पनी के अहित में हों, को रोकने के सम्बन्ध में केन्द्रीय सरकार के अधिकार इसमें लागू नहीं होते।

इस प्रकार एक निजी कम्पनी को सार्वजनिक कम्पनी की तुलना में उपर्युक्त कई छूटें एवं विशेषाधिकार प्राप्त हैं।

निजी कम्पनी का लोक कम्पनी हो जाना
(Private Company to become a Public Company)

कम्पनी (संशोधित अधिनियम, 1960 की धारा 43 [अ]) अनुसार निम्न परिस्थितियों में एक निजी कम्पनी को लोक कम्पनी में अपने आप परिवर्तित हुआ समझा जायेगा –

(1) **सूचना रजिस्ट्रार को देना** – निजी कम्पनी का लोक कम्पनी बन जाने पर उसे 3 माह के अन्दर रजिस्ट्रार को सूचित करना होगा। दोषी व्यक्ति पर 500 रुपये प्रतिदिन के हिसाब से जुर्माना किया जा सकता है।

(2) **बैंकिंग कम्पनी द्वारा लिये गये अंश** – यदि कोई अंश बैंकिंग कम्पनी द्वारा निम्न कार्यों के लिये जाये तो उन्हें 25% की गणना करने में प्रयोग नहीं किया जा सकता।

(अ) (i) यदि अंश एक प्रन्यास की विषय सामग्री हो। (ii) यदि वे अंश बैंक द्वारा प्रन्यास की ओर से अपने नाम में लिए गए हों। (iii) यदि यह अंश किसी समामेलित संस्था के लाभ के लिए पृथक् कर दिये गये हों।

(ब) (i) यदि अंश मृत व्यक्ति की सम्पत्ति का एक भाग हो। (ii) बैंकिंग कम्पनी ने अंशों को मृत व्यक्ति के प्रबन्धक की तरह लिया हो। (iii) मृत व्यक्ति ने अंशों को किसी संस्था की वसीयत न की हो।

(3) **फिर से निजी कम्पनी न बनना** – केन्द्रीय सरकार की अनुमति प्राप्त किये बिना ऐसी परिवर्तित लोक कम्पनी फिर से निजी कम्पनी नहीं बन सकती।

(4) **चुकता पूँजी का 25% भाग दूसरी कम्पनी के पास होने पर** – यदि किसी निजी कम्पनी की चुकता पूँजी के कम से कम 25% भाग पर किसी अन्य कम्पनी या संस्था का स्वामित्व हो तो उस तिथि से ऐसी कम्पनी एक लोक कम्पनी माना जायेगी।

ऐसी लोक कम्पनी में निजी कम्पनी की व्यवस्थाएँ लागू हो सकती हैं तथा न्यूनतम सदस्यों की संख्या भी 7 से कम रह सकती है।

(5) **रजिस्ट्रार को प्रमाण-पत्र देना** – प्रत्येक अंश पूँजी वाली निजी कम्पनी को अपने वार्षिक प्रत्याय के साथ रजिस्ट्रार के पास एक प्रमाण-पत्र देना होगा कि कम्पनी की आर्थिक पूँजी का 25% भाग किसी भी कम्पनी ने नहीं लिया है।

(6) **अपवाद** – एक निजी कम्पनी का लोक कम्पनी में परिवर्तित होने सम्बन्धी निम्न अपवाद हैं –

(i) **एक से अधिक संस्था द्वारा अंश धारण करने पर** – एक निजी कम्पनी पर वह व्यवस्था लागू न होगी जिसके अंशों को विदेशों में समामेलित संस्थाओं ने धारण किये हों।

(ii) **कुछ पूँजी दूसरी कम्पनी द्वारा धारण करने पर** – एक ऐसी निजी कम्पनी जिसकी कुल पूँजी दूसरी निजी कम्पनी धारण किये हुए हो जिसका समामेलन विदेशों में हुआ हो।

(iii) **अन्य कम्पनियाँ** – किसी अन्य निजी कम्पनी पर लागू न होना, यदि वह निम्न शर्तों को पूर्ण करे।

(अ) जो कम्पनियाँ ऐसी निजी कम्पनियों से अंश धारण किये हुए हों, जो स्वयं निजी कम्पनियाँ हों। (ब) यदि अंश रखने वाली कम्पनी के सदस्य एवं निजी कम्पनी के सदस्य दोनों मिलकर संख्या में 50 से अधिक नहीं हैं। (स) निजी कम्पनी के अंश धारण करने वाली कम्पनी के अंशों को किसी अन्य संस्था ने धारण न किया हो।

NOTES

(7) **प्रतिबन्धों का पालन करने पर** – यदि एक निजी कम्पनी अंशों के हस्तांतरण के प्रतिबन्ध एवं अन्य निषेधों का पालन नहीं करती है तो कम्पनी अधिनियम की व्यवस्थाएँ इस कम्पनी पर सार्वजनिक कम्पनी की भाँति लागू होंगी। (धारा 43)

यदि न्यायालय इस तथ्य से सन्तुष्ट हो जाए कि उसने इन प्रतिबन्धों का उल्लंघन जानबूझकर नहीं किया है तो वह कम्पनी को इस प्रभाव से मुक्त कर सकती है।

निजी कम्पनी का लोक कम्पनी में परिवर्तन
(Conversion of Private Company into Public Company)

एक निजी कम्पनी को लोक कम्पनी में परिवर्तन करने सम्बन्धी निम्न व्यवस्था है –

(1) **आवश्यक शर्तें** – परिवर्तन के पश्चात् यह आवश्यक होगा कि कम्पनी में कम से कम 7 सदस्य एवं 3 संचालक हों।

(2) **स्थानापन्न प्रविवरण** – कम्पनी द्वारा प्रविवरण के स्थान पर स्थानापन्न प्रविवरण प्रस्तुत करने पर यह आवश्यक होगा कि उसमें समस्त अधिनियम सम्बन्धी बातों का समावेश किया जाना चाहिए।

(3) **प्रविवरण प्रस्तुत करना** – निजी कम्पनी द्वारा अन्तर्नियम में परिवर्तन करने पर, उसे उस तिथि के 30 दिन के अन्दर रजिस्ट्रार के पास एक प्रविवरण या स्थानापन्न प्रस्तुत करना होगा। (धारा 44)

(4) **अन्तर्नियम में परिवर्तन** – अन्तर्नियम में परिवर्तन करने से कम्पनी निजी कम्पनी नहीं रहेगी।

(5) **प्रविवरण में उल्लेख** – ऐसे प्रविवरण में उन समस्त बातों एवं विवरण पत्रों का उल्लेख होना चाहिए जो कि एक सार्वजनिक कम्पनी को प्रविवरण जारी करते समय उल्लेख करना होता।

(6) **सम्पत्तियों व देनदारियों में परिवर्तन** – यदि प्रविवरण भेजने के पश्चात् कम्पनी की सम्पत्तियों एवं देनदारियों में कोई परिवर्तन किया जाता है तो विवरण पत्र तैयार करके ऐसे परिवर्तन के कारणों का उल्लेख करना होगा।

(7) **दण्ड व्यवस्था** – यदि नियमों का उल्लंघन किया जाता है तो दोषी व्यक्ति पर प्रत्येक दिन 500 रुपये तक जुर्माना हो सकता है। यदि प्रविवरण या स्थानापन्न प्रविवरण में कोई असत्य कथन है तो दोषी व्यक्ति को 2 वर्ष की सजा या 5,000 रुपये तक जुर्माना या दोनों हो सकते हैं।

परिवर्तन की विधि –एक निजी कम्पनी को लोक कम्पनी में परिवर्तन करने की विधि निम्न प्रकार है –

(1) **नोटिस भेजना** – कम्पनी के प्रत्येक सदस्य को सभा का नोटिस भेजा जाता है तथा समाचार-पत्रों में भी छपवाया जाता है।

(2) **संचालकों की सहमति** – परिवर्तन के पश्चात् संचालकों की सहमति प्राप्त करना आवश्यक होता है, इसके अतिरिक्त उनके योग्यता अंशों का वर्णन भी करना होगा।

(3) **प्रस्ताव पास करना** – निजी कम्पनी को लोक कम्पनी में परिवर्तित करने के लिए एक प्रस्ताव पास करना होगा।

(4) **असाधारण सभा बुलाना** – यह प्रस्ताव कम्पनी की असाधारण सभा में रखा जाएगा। इस प्रस्ताव को असाधारण सभा में पारित होना आवश्यक है।

(5) **रजिस्ट्रार को प्रलेख भेजना** – विशेष प्रस्ताव पारित हो जाने पर उसकी एक प्रमाणित प्रतिलिपि रजिस्ट्रार के पास भेज दी जाती है।

(6) **वैधानिक घोषणा** – कम्पनी अधिकारी द्वारा रजिस्ट्रार को एक ऐसी वैधानिक घोषणा देना आवश्यक होगा कि समस्त वैधानिक कार्यवाहियों को पूर्ण कर लिया गया है।

(7) **प्रमाण-पत्रों में परिवर्तन** – अंश प्रमाण-पत्रों में आवश्यक परिवर्तन करके उन्हें वापस कर दिया जाता है।

लोक कम्पनी को निजी कम्पनी में बदलना
(Conversion of a Public Company into a Private Company)

एक लोक कम्पनी को निजी कम्पनी में निम्न ढंग से परिवर्तित कर सकते हैं –

(1) **पार्षद अन्तर्नियमों में परिवर्तन करके** – एक लोक कम्पनी अपने को निजी कम्पनी में परिवर्तित कर सकती है यदि वह अपने अन्तर्नियम में इस प्रकार परिवर्तन करे कि निजी कम्पनी की शर्तें पूर्ण हों।

(2) **केन्द्रीय सरकार की स्वीकृति प्राप्त करना** – निजी कम्पनी के अन्तर्नियम में परिवर्तन होने पर एक लोक कम्पनी निजी कम्पनी में परिवर्तित हो जाती है, परन्तु इसके लिए केन्द्रीय सरकार की अनुमति प्राप्त करनी होगी।

(3) **प्रातालाप राजस्ट्रार को भेजना** – केन्द्रीय सरकार की अनुमति प्राप्त करने के 1 माह अवधि में परिवर्तित अन्तर्नियम की छपी हुई एक प्रतिलिपि रजिस्ट्रार को भेजना आवश्यक होगा। (धारा 39 [2] [3])

निजी कम्पनी में अन्तर्नियमों का होना अति आवश्यक है। (धारा 27)

NOTES

निजी कम्पनी की विशेषताएँ – निजी कम्पनियों की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं –

(i) **अंशों के हस्तांतरण पर प्रतिबंध** – एक निजी कम्पनी के अंशों के हस्तांतरण पर कानूनी प्रतिबन्ध लगाये गये हैं, अंशधारी अपने अंशों को केवल विद्यमान अंशधारियों को ही हस्तान्तरित कर सकेंगे।

(ii) **सदस्यों की संख्या 50 तक सीमित** – निजी कम्पनी में सदस्यों की संख्या 50 तक सीमित रहती है और न्यूनतम संख्या 2 होती है।

(iii) **जनता को नियंत्रण देने पर प्रतिबंध** – एक निजी कम्पनी को अपनी पूँजी की प्रबन्ध व्यवस्था स्वयं करनी पड़ती है और इसके लिए जनता को आमंत्रित नहीं किया जा सकता।

(iv) **पार्षद अन्तर्नियम में उल्लेख** – निजी कम्पनी के प्रतिबन्धों का वर्णन पार्षद अन्तर्नियम में करना आवश्यक है। यदि कम्पनी इन्हें कार्यक्रम में परिणत नहीं करे तो वह निजी कम्पनी नहीं रहेगी।

एक नीजी कम्पनी को अपने नाम के अन्त में 'प्राइवेट लिमिटेड' शब्द लगाना आवश्यक होगा। धारा 45 के अनुसार यदि निजी कम्पनी के सदस्यों की संख्या 2 से कम हो जाती है और वह 6 माह से अधिक समय तक व्यापार करती रहती है, तो इस अवधि में जानकारी रखने वाली प्रत्येक व्यक्ति कम्पनी के समस्त दायित्वों के प्रति उत्तरदायी बना रहेगा और ऐसी कम्पनी का न्यायालय द्वारा अन्त किया जा सकता है।
(धारा 433 डी)

एक निजी कम्पनी को अपना वार्षिक विवरण देते समय एक प्रमाण-पत्र देना होता है कि उसने अपने अंशों या ऋण-पत्रों को जनता को नहीं बेचे हैं, तथा उसके सदस्यों की अधिकतम संख्या 50 से अधिक नहीं है। (धारा 161)

2. **लोक कम्पनी** (Public Company) – 'लोक कम्पनी' का आशय ऐसी कम्पनी से है जो निजी कम्पनी नहीं है। (धारा 2 [1] [iv])

लोक कम्पनी में सदस्यों की संख्या कम से कम 7 होनी चाहिए (धारा 12 [1]) यदि किसी कम्पनी में सदस्यों की संख्या 7 से कम हो जाती है और ऐसी कम्पनी 6 माह से भी अधिक समय तक व्यापार करती रहती है तो ऐसा प्रत्येक सदस्य जिसे इस तथ्य की जानकारी थी, कम्पनी द्वारा दिये गये समस्त कार्यों के प्रति उत्तरदायी ठहराया जाएगा (धारा 45)। ऐसी लोक कम्पनी का विघटन न्यायालय द्वारा किया जा सकता है। (धारा 43 [डी])। यदि किसी कम्पनी का रजिस्टर्ड कार्यालय अदन, पाकिस्तान या बर्मा में है और यह कम्पनी भारत से पृथक् होने से पूर्व कम्पनी की परिभाषा में आती हो, तो उसे भारत से बाहर ही निर्मित एवं पंजीयत माना जाएगा। (धारा 433 [डी])

अलोक एवं लोक कम्पनी में अन्तर
(Difference Between Private and Public Company)

अलोक एवं लोक कम्पनी में मुख्य अन्तर के आधार निम्नलिखित हैं –

(i) **जनता को आमंत्रण** – अलोक कम्पनी अपने अंशों व ऋणपत्रों के लिए जनता को आमंत्रित नहीं कर सकती, जबकि लोक कम्पनी जनता को आमंत्रित कर सकती है।

(ii) **प्रविवरण** – अलोक कम्पनी में प्रविवरण या स्थानापन्न प्रविवरण निर्गमित करना आवश्यक नहीं है, जबकि लोक कम्पनी को प्रविवरण अथवा स्थानापन्न प्रविवरण निर्गमित करना अत्यावश्यक है।

(iii) **प्रलेख** – रजिस्ट्रार के कार्यालय में अलोक कम्पनी को संचालकों के योग्यता अंश, संचालकों की अनुमति आदि सम्बन्धी आवश्यक प्रलेखों को भेजना आवश्यक नहीं है, जबकि लोक कम्पनी में इन प्रलेखों को भेजना आवश्यक समझा जाता है।

(iv) **'लिमिटेड शब्द'** – निजी कम्पनी को अपने नाम के साथ 'प्राइवेट लिमिटेड' शब्द लगाना आवश्यक है, जबकि लोक कम्पनी को केवल 'लिमिटेड' शब्द ही लगाना पड़ता है।

(v) **हस्ताक्षर** – निजी कम्पनी में पार्षद सीमानियम पर कम से कम दो संचालकों के हस्ताक्षर होना आवश्यक है, जबकि लोक कम्पनी में हस्ताक्षर करने वालों की संख्या 7 निर्धारित की गयी है।

(vi) **ऋण** – निजी कम्पनी के संचालकों को ऋण देने में केन्द्रीय सरकार की अनुमति लेना आवश्यक नहीं है, जबकि लोक कम्पनी में अनुमति लेना आवश्यक होगा।

(vii) **अंशों का हस्तांतरण** – निजी कम्पनी में अंशों के हस्तान्तरण पर प्रतिबन्ध लगाया जाता है जबकि लोक कम्पनी में अंशों के हस्तान्तरण पर कोई प्रतिबन्ध नहीं होता।

NOTES

(viii) **व्यापार प्रारम्भ** – निजी कम्पनी समामेलन के तुरन्त बाद व्यापार प्रारंभ कर सकती है, परन्तु लोक कम्पनी उस समय तक व्यापार प्रारंभ नहीं कर सकती, जब तक कि उसे व्यापार प्रारंभ करने का प्रमाण-पत्र प्राप्त न हो जाए।

(ix) **अंशपूँजी** – एक निजी कम्पनी की प्रदत्त पूँजी कम से कम 1 लाख रु. की होनी चाहिए जबकि सार्वजनिक कम्पनी की प्रदत्त पूँजी 5 लाख रु. कम से कम होनी चाहिए।(2000 में संशोधित धारा 3)

(x) **सदस्यों की संख्या** – निजी कम्पनी में सदस्यों की न्यूनतम संख्या दो व अधिकतम 50 हो सकती है, जबकि लोक कम्पनी में यह न्यूनतम संख्या 7 व अधिकतम संख्या के लिए कोई सीमा निर्धारित नहीं की गयी है।

(xi) **वैधानिक सभा** – निजी कम्पनी को वैधानिक सभा बुलाना आवश्यक नहीं है, जबकि सार्वजनिक कम्पनी में वैधानिक सभा बुलाना आवश्यक है।

(xii) **अवकाश** – निजी कम्पनी में संचालकों को पारी से अवकाश ग्रहण करना आवश्यक नहीं है, जबकि लोक कम्पनी में कम से कम 1/3 संचालकों को पारी से अवकाश ग्रहण करना आवश्यक होता है।

(xiii) **शेयर वारण्ट** – निजी कम्पनी में शेयर वारण्ट निर्गमित नहीं किया जा सकता, जबकि लोक कम्पनी में अंशों के पूर्णदत्त होने पर शेयर वारण्ट जारी करना आवश्यक होता है।

(xiv) **संचालकों का पारिश्रमिक** – संचालकों के पारिश्रमिक से सम्बन्धित अधिकतम सीमा संबंधी प्रतिबंध निजी कम्पनी पर लागू नहीं होता, जबकि यह व्यवस्थाएँ लोक कम्पनी पर लागू होती हैं।

(xv) **अन्तर्नियम** – निजी कम्पनी में अन्तर्नियमों का बनाना जरूरी नहीं है, जबकि सार्वजनिक कम्पनी से इसे बनाना आवश्यक है।

(xvi) **संचालक** – अलोक कम्पनी में न्यूनतम दो संचालक एवं लोक कम्पनी में कम से कम तीन संचालकों का होना अत्यन्त आवश्यक है। लोक कम्पनी में संचालकों की अधिकतम सीमा 12 तक होती है।

(xvii) **अंशों का आवंटन** – अलोक कम्पनी समामेलन के बाद अंशों का आवंटन कर सकती हैं, परन्तु लोक कम्पनी उस समय तक आवंटन नहीं कर सकती जब तक कि न्यूनतम आवेदन राशि प्राप्त न हो जाय।

(xviii) **मतगणना** – निजी कम्पनी में 2 सदस्य तथा लोक कम्पनी में 5 सदस्य मतगणना की माँग कर सकते हैं।

(xix) **संचालकों की नियुक्ति** – निजी कम्पनी में संचालकों की नियुक्ति पर प्रतिबंध लागू नहीं होते हैं जबकि लोक कम्पनी में लागू होते हैं।

3. **सूत्रधारी कम्पनी** (Holding Company) – (धारा 4 [4]) के अन्तर्गत जब एक कम्पनी का दूसरी कम्पनी पर नियंत्रण हो तो उसे सूत्रधारी कम्पनी कहेंगे और जिसे नियंत्रित किया जाता है उसे सहायक कम्पनी कहते हैं। नियंत्रण निम्न परिस्थितियों में माना जा सकता है– (1) जब दूसरी कम्पनी के संचालक मण्डल को नियंत्रण करने का अधिकार हो, (2) जब एक कम्पनी दूसरी कम्पनी के अधिकांश अंशों पर अधिकार रखती हो, (3) यदि सूत्रधारी कम्पनी की सहायक कम्पनी की स्वयं कोई सहायक कम्पनी हो। सूत्रधारी कम्पनी के चिट्ठे के साथ सहायक कम्पनी के निम्न प्रपत्रों को नत्थी करना होता है – (i) सहायक कम्पनी के चिट्ठे की प्रति, (ii) सहायक कम्पनी का लाभ-हानि खाता, (iii) संचालक वे अंकेक्षण की रिपोर्ट की प्रति, (iv) सूत्रधारी कम्पनी के हित की मात्रा, (v) वित्तीय वर्ष में अन्तर होने पर और उसमें परिवर्तन करने की जानकारी।[1]

सदस्यों के अधिकार – (i) सहायक कम्पनी की जाँच के लिए केन्द्रीय सरकार से निरीक्षक नियुक्त कराना, एवं (ii) सहायक कम्पनी के बहीखातों को निरीक्षण करने की व्यवस्था करना।

4. **सहायक कम्पनी** (Subsidiary Company) – [धारा 3 (1)] के अनुसार एक कम्पनी किसी भी कम्पनी की सहायक कम्पनी निम्न परिस्थितियों में हो सकती है –

(i) **सहायक होना** – वह किसी ऐसी कम्पनी की सहायक है जो स्वयं उस कम्पनी की सहायक कम्पनी है।

(ii) **संचालक मण्डल पर नियंत्रण** – वह कम्पनी इस कम्पनी के संचालक मण्डल पर नियंत्रण कम्पनी है।

(iii) **आधे से अधिक मताधिकार पर नियंत्रण** – अन्य कम्पनी निम्न कम्पनियों पर आधे से अधिक मताधिकारों पर नियंत्रण रखती है।

5. **विदेशी कम्पनियाँ** (Foreign Companies) – वे कम्पनियाँ जिनका पंजीयन भारत से बाहर हुआ और जो अपना व्यापार भारत में ही करती हों उन्हें विदेशी कम्पनी कहते हैं।

भेद – विदेशी कम्पनियों में निम्नलिखित को सम्मिलित करते हैं –

(i) ऐसी कम्पनियाँ जिनका समामेलन भारत से बाहर हुआ हो और उन्होंने अपने व्यापार का स्थान भारत में स्थापित कर लिया हो।

(ii) ऐसी कम्पनियाँ जिनका समामेलन भारत से बाहर हुआ हो, परन्तु अधिनियम के प्रारंभ होने के बाद भी भारत में व्यापार का स्थान स्थापित करती हो। (धारा 591)

NOTES

विदेशी कम्पनियों से संबंधित नियम
(Rules Relating to Foreign Company)

(1) **दस्तावेज** – धारा 592 के अन्तर्गत 1 अप्रैल, 1956 के बाद भारत में व्यापार स्थान प्रारंभ करने वाली प्रत्येक विदेशी कम्पनी को व्यापार प्रारम्भ करने के 30 दिनों के अन्दर पंजीयक के पास विभिन्न दस्तावेज फाइल करने होंगे।

(2) **लेखे** – कम्पनी द्वारा रखी जाने वाली लेखा पुस्तकों सम्बन्धी प्रावधान विदेशी कम्पनियों पर भी लागू होते हैं।

(3) **नाम** – कार्यालय पर कम्पनी का नाम व देश का नाम प्रदर्शित करना होगा।

(4) **प्रभारों का पंजीकरण** – प्रभारों के पंजीकरण, लेखा पुस्तकों आदि प्रावधान विदेशी कम्पनियों पर भी लागू होते हैं। (धारा 600)

(5) **प्रविवरण** – प्रविवरण जारी करते समय महत्वपूर्ण बातें देनी होंगी।

(6) **समापन** – समापन होने की दशा में उसका एक गैर पंजीकृत कम्पनी के समान समापन किया जा सकता है। कानून के अनुसार समापन होने पर उसका समापन किया जा सकता है।

रजिस्ट्रार के पास नत्थी होने वाले प्रपत्र –

विदेशी कम्पनियों को 30 दिन के अन्दर निम्न प्रपत्र रजिस्ट्रार को भेजने होते हैं– (i) कम्पनी के पंजीकृत कार्यालय का नाम एवं पता, (ii) एक या अधिक भारत के लिये ऐसे निवासियों के नाम एवं पते जो कम्पनी की ओर से प्रपत्रों को स्वीकार करते हैं, (iii) पार्षद सीमानियम, अन्तर्नियम एवं चार्टर की प्रमाणित प्रतिलिपि, (iv) कम्पनी के सचिव एवं संचालकों की सूची, (v) भारत में कम्पनी के कार्यालय का पूरा पता।

विदेशी कम्पनी का प्रविवरण (Prospectus of Foreign Company) – एक विदेशी कम्पनी एक प्रविवरण जारी कर सकती है जो कि समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति करेगा तथा मिथ्या-वर्णन करने पर उसकी वही जिम्मेदारी होगी जो कि भारत में पंजीकृत कम्पनी की होती है।[1] विदेशी कम्पनी के प्रविवरण में निम्न अतिरिक्त जानकारी और होनी चाहिए।

(i) कम्पनी के निर्माण का वर्णन होना, (ii) किस अधिनियम के अन्तर्गत उसका समामेलन हुआ, (iii) भारत में ऐसा पता, जहाँ प्रलेखों की जाँच की जा सकती हो; (iv) समामेलन की तिथि एवं देश का नाम, तथा (v) भारत में व्यापार करने का मुख्य स्थान व उसका पता।

1972 के कम्पनी संशोधित अधिनियम के अनुसार विदेशी कम्पनी की पूँजी का 10 प्रतिशत भाग रखने वाला अपने हित के एक अंश को भी केन्द्रीय सरकार की बिना अनुमति के किसी भी अभारतीय या भारतीय कम्पनी को हस्तान्तरण नहीं कर सकेगा। 1974 के संशोधित अधिनियम के अन्तर्गत यदि प्रार्थित पूँजी का 51% भाग भारतीय हाथों में है तो उस पर वे समस्त प्रावधान लागू होंगे जो भारतीय कम्पनी पर लागू होते हैं। [धारा 591 (1)]

धारा 600 के संशोधन के अनुसार विदेशी कम्पनियों पर निम्न प्रावधान लागू किए गए। वार्षिक प्रत्याय प्रस्तुत करना (धारा 159), पूँजी में से ब्याज का भुगतान (धारा 208), खातों का निरीक्षण (धारा 299 अ), सरकार द्वारा विशेष अंकेक्षण के आदेश देना (धारा 233 अ), लागत खेतों का निरीक्षण (धारा 233 ब) एवं अनुसंधान (धारा 234-246)।

6. **बीमा कम्पनियाँ** (Insurance Companies) – धारा 2 (21) के अनुसार, वह कम्पनी जो केवल बीमा का व्यापार या अन्य व्यापार के साथ बीमा का व्यापार करती है, उसे बीमा कम्पनी कहते हैं। ऐसी कम्पनियों का पंजीयन कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत होता है, परन्तु उन पर बीमा अधिनियम, 1938 लागू होता है। वर्तमान समय में कम्पनी अधिनियम की धाराएँ इन कम्पनियों पर उस समय तक लागू रहती हैं जब तक कि उनका विरोध बीमा अधिनियम की धाराओं के साथ न हो। [धारा 616 (अ)]

7. **संयुक्त पूँजी कम्पनी** (Joint Stock Company) – धारा 566 के अनुसार, ऐसी प्रत्येक कम्पनी जो निश्चित राशि की पूँजी रखती हो, पूँजी अंशों में विभाजित हो, अंश हस्तान्तरित हो सकते हों, पूँजी स्टॉक के रूप में या अंशतः अंश व अंशतः स्टॉक के रूप में हो तथा वह सीमित दायित्व से पंजीकृत हो, तो ऐसी कम्पनी को अंशों द्वारा सीमित दायित्व वाली कम्पनी माना जायेगा।

8. **बिजली कम्पनी** (Electricity Company) – 1948 में विद्युत पूर्ति अधिनियम (Electricity Supply Act) पारित किया गया। इससे पूर्व बिजली कम्पनियों पर कम्पनी अधिनियम लागू होता था। वर्तमान समय में कम्पनी अधिनियम की धाराएँ केवल उस समय तक ही लागू होती हैं जहाँ तक उनका विरोध बिजली अधिनियम की धाराओं के साथ न हो। [धारा 616 (स)]

9. **बैंकिंग कम्पनियाँ** (Banking Companies) – जो कम्पनियाँ बैंकिंग का कार्य करती हैं, उन्हें बैंकिंग कम्पनियाँ कहा जाता है। बैंकिंग कम्पनी का आशय उस कम्पनी से है जो बैंकिंग कम्पनीज अधिनियम, 1949 में दिया हुआ है। वर्तमान समय में बैंकिंग कम्पनीज पर बैंकिंग कम्पनी अधिनियम लागू होता है। कम्पनी अधिनियम की धाराएँ केवल उस समय तक ही लागू होती है जब तक कि बैंकिंग एक्ट की धाराओं के साथ इनका विरोध न हो। [धारा 616 (ब)]

10. **विनियोग कम्पनियाँ** (Investment Companies) – एक कम्पनी जिसका मुख्य उद्देश्य ऋण पत्रों, अंशों का अन्य प्रकार की प्रतिभूतियों में विनियोग करना हो उसे विनियोग कम्पनी कहा जाता है।

11. **सरकारी कम्पनी** (Government Company) – सरकारी कम्पनी से आशय ऐसी कम्पनी से है जिसकी चुकता पूँजी का कम से कम 51 प्रतिशत भाग केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार के पास हो तथा वह कम्पनी भी इसमें सम्मिलित की जाती है, जो सरकारी कम्पनी की सहायक कम्पनी हो। [धारा 617]

सरकारी कम्पनी का अंकेक्षण, केन्द्रीय सरकार द्वारा भारत के कम्पट्रोलर एवं आडीटर जनरल के परामर्श से किया जाता है। [धारा 619 (2)]

1974 का संशोधित अधिनियम समस्त सरकारी कम्पनियों पर लागू होता है, परन्तु केन्द्रीय सरकार गजट में अधिसूचना निकालकर अधिनियम के प्रावधानों को किसी कम्पनी पर लागू करने से छूट दे सकती है। यह अधिसूचना संसद द्वारा स्वीकृत सीमा तक ही कार्यशील होगी।

वार्षिक रिपोर्ट – केन्द्रीय सरकार, कम्पनी की सदस्य होने पर एक वार्षिक रिपोर्ट तैयार है, जिसमें निम्न महत्वपूर्ण सूचनाएँ होती हैं –

(i) **तीन माह की अवधि** – वार्षिक साधारण सभा के तीन माह के अन्दर यह रिपोर्ट तैयार की जाती है और उसमें अंकेक्षक की रिपोर्ट रखी जाती है। यह रिपोर्ट धारा 619 (5) के अनुसार ही रखी जाती है।

(ii) **संसद के दोनों सदनों में रखना** – अंकेक्षक की रिपोर्ट एवं आलोचनाओं को संसद के दोनों सदनों में रखा जाता है।

(iii) **विधानसभा में रखना** – जब राज्य सरकार सरकारी कम्पनियों की सदस्य हों, तो वह भी इन कम्पनियों की वार्षिक रिपोर्ट लेती है और अंकेक्षण की रिपोर्ट एवं आलोचनाओं के साथ उसे विधानसभा के दोनों सदनों में रखती है।

(12) **निष्क्रिय कम्पनियाँ** (Defunct Companies) – वे कम्पनियाँ जो व्यापार नहीं कर रहीं या जिन्होंने व्यापारिक कार्य बन्द कर दिया है, निष्क्रिय कम्पनियाँ कहलाती हैं। यदि प्रदेश के रजिस्ट्रार को यह विश्वास हो जाये कि कोई कम्पनी व्यापार नहीं कर रही तो वह एक पत्र डाक द्वारा उस कम्पनी व्यापार के बन्द करने के कारणों को पूछेगा धारा 560। यदि एक माह के अन्दर उस कम्पनी से कोई जवाब प्राप्त नहीं होता तो माह समाप्त होने के 14 दिन के अन्दर पहले पत्र के संदर्भ में ही एक रजिस्टर्ड पत्र कम्पनी को भेजा जाता है। यदि इसका भी जवाब 1 माह के अन्दर प्राप्त नहीं होता तो रजिस्ट्रार सरकारी गजट में नोटिस प्रकाशित करके रजिस्ट्रार से कम्पनी का नाम हटा सकता है। यदि कोई सदस्य या लेनदार 20 वर्ष में आवेदन करें और न्यायालय को संतोष हो जाये कि उस समय कम्पनी व्यापार कर रही थी तो कम्पनी का नाम पुनः रजिस्टर में लिख दिया जायेगा।

(13) **निधि व पारस्परिक लाभकारी समितियाँ** – ऐसी कम्पनियाँ, जिन्हें केन्द्रीय सरकार, सरकारी गजट में सूचना देकर, निधि या पारस्परिक लाभदायक समिति घोषित करें उसे इसके अन्तर्गत सम्मिलित किया जायेगा। केन्द्रीय सरकार सरकारी गजट में सूचना देकर यह व्यवस्था कर सकती है कि अधिनियम की कोई विशेष व्यवस्था इन निधियों या पारस्परिक लाभकारी समितियों पर लागू नहीं होगी या सूचित परिवर्तनों या अपवादों के साथ ही लागू होगी। ऐसी सूचना की प्रतिलिपि को संसद के प्रत्येक सदन में रखना आवश्यक होगा।

कम्पनी के भेद को निम्न प्रकार रखा जा सकता है –

NOTES

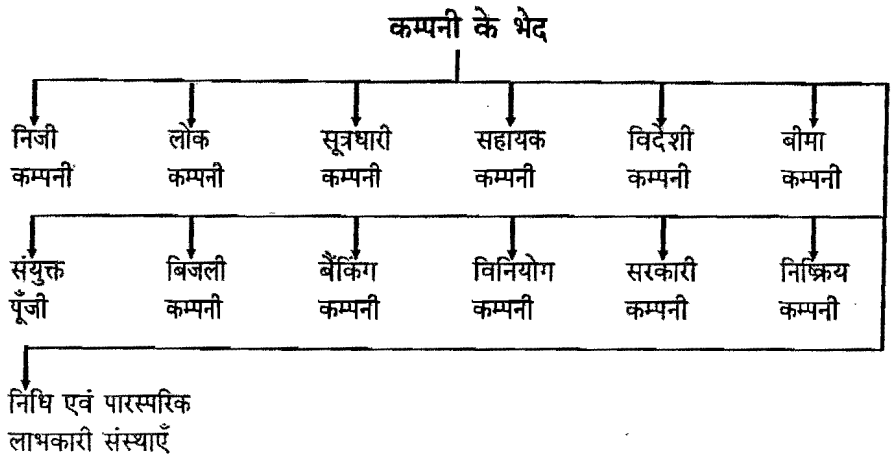

कम्पनी के भेद

- निजी कम्पनी
- लोक कम्पनी
- सूत्रधारी कम्पनी
- सहायक कम्पनी
- विदेशी कम्पनी
- बीमा कम्पनी
- संयुक्त पूँजी
- बिजली कम्पनी
- बैंकिंग कम्पनी
- विनियोग कम्पनी
- सरकारी कम्पनी
- निष्क्रिय कम्पनी
- निधि एवं पारस्परिक लाभकारी संस्थाएँ

प्रश्न
(Questions)

1. कम्पनी की परिभाषा दीजिए। कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत स्थापित होने वाली विभिन्न कम्पनियों का वर्णन कीजिए। एक प्राइवेट कम्पनी तथा पब्लिक कम्पनी में अन्तर बतलाइए।
2. एक प्राइवेट कम्पनी की परिभाषा दीजिए। यह पब्लिक कम्पनी से किस प्रकार भिन्न है? कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत प्रायवेट कम्पनी को प्राप्त छूट तथा विशेष अधिकारों का वर्णन कीजिए।
3. एक प्रायवेट कम्पनी को पब्लिक कम्पनी में तथा एक पब्लिक कम्पनी को प्रायवेट कम्पनी में बदलने की विधि का वर्णन कीजिए।
4. एक प्रायवेट कम्पनी की परिभाषा दीजिए। इसे कौन सी वैधानिक छूटें प्राप्त हैं? एक प्रायवेट कम्पनी कैसे पब्लिक कम्पनी बनती है तथा एक पब्लिक कम्पनी कैसे प्रायवेट कम्पनी बनती है? वर्णन कीजिए।
5. सूत्रधारी कम्पनी पर एक विस्तृत टिप्पणी लिखिये।
6. सरकारी कम्पनी की परिभाषा दीजिए। सरकारी कम्पनी के बारे में कम्पनी अधिनियम के प्रावधानों का वर्णन कीजिए।
7. भारत में व्यापार कर रही विदेशी कम्पनियों द्वारा कौन-कौन से प्रपत्र एवं विवरण रजिस्ट्रार के पास फाइल किये जाना चाहिए।
8. कम्पनी की परिभाषा लिखिए। एक कम्पनी की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
9. प्रायवेट कम्पनी की परिभाषा दीजिए। कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत एक प्रायवेट कम्पनी पर क्या वैधानिक प्रतिबंध है?

अपनी प्रगति की जाँच करें
Test your Progress

NOTES

3

पार्षद सीमानियम
(MEMORANDUM OF ASSOCIATION)

प्रारम्भिक – कम्पनी के समामेलन कराने से पूर्व रजिष्ट्रार के कार्यालय को भेजे जाने वाले अनेक प्रपत्रों में से पार्षद सीमानियम अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रपत्र माना जाता है। कम्पनी का एक महत्वपूर्ण प्रलेख होने से, उसके बाहर किये गये समस्त कार्य व्यर्थ होते हैं। अतः इसका निर्माण सावधानी एवं सतर्कता के साथ किया जाना चाहिए।

पार्षद सीमानियम की परिभाषाएँ
(Definitions of Memorandum of Association)

पार्षद सीमानियम की प्रमुख परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं –

(i) **कम्पनी अधिनियम धारा 2 (28)** – "सीमानियम से आशय, कम्पनी के ऐसे पार्षद सीमानियम से है, जो पिछले कम्पनी अधिनियमों अथवा इस अधिनियम के अधीन मूल रूप से निर्मित किये गये अथवा समय-समय पर परिवर्तित किये गये हैं।"

(ii) "पार्षद सीमानियम एक कम्पनी का चार्टर होता है, जिसमें अधिनियम के अन्तर्गत स्थापित कम्पनी के अधिकारों की सीमा का उल्लेख किया जाता है।" – **लॉर्ड केयनर्स (Lord Cairns)**

(iii) "पार्षद सीमानियम का मुख्य उद्देश्य लेनदारों, अंशधारियों एवं कम्पनी से व्यवहार करने वाले समस्त व्यक्तियों को इस योग्य बनाना कि वे कम्पनी के सम्पूर्ण कार्यक्रम के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकें।"
– **लॉर्ड मैकमिलन (Lord Macmillan)**

(iv) "सीमानियम उन मौलिक शर्तों को दर्शाता है, जिनके आधार पर कम्पनी को समामेलित होने के लिए आज्ञा प्रदान की आती है। यह शर्तें अंशधारियों एवं बाह्य व्यक्तियों के लिए बतायी जाती हैं।" – **एल.जे. बॉवेन**

(v) "सीमानियम का कार्य कम्पनी के वास्तविक उद्देश्यों को प्रकट करना न होकर, कम्पनी की समस्त कार्यविधियों को इसमें कहीं न कहीं सम्मिलित करने से है।" – **लॉर्ड व्रेनबरी (Lord Wrenbury)**

(vi) "पार्षद सीमानियम कम्पनियों का महत्वपूर्ण एवं अपरिवर्तनीय विधान है। पार्षद सीमानियम में दिये हुए उद्देश्यों के लिए ही कम्पनियों का समामेलन किया जाता है।" – **लॉर्ड सेलबॉर्न (Lord Selborne)**

पार्षद सीमानियम के द्वारा अंशधारियों, लेनदारों एवं अन्य व्यक्तियों की सीमाओं का अध्ययन किया जाता है। (इजिपसियन साल्ट एण्ड सोडा कं. लि. बनाम पोर्ट सेड साल्ट एसोसिएशन लि. 1931)।

पार्षद सीमानियम का महत्व
(Importance of Memorandum of Association)

किसी कम्पनी की शक्तियों के निर्धारण करने में पार्षद सीमानियम अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रलेख माना जाता है। इसके महत्व को निम्न प्रकार रखा जा सकता है –

(i) **मौलिक प्रपत्र** – प्रत्येक कम्पनी के लिए इसे मौलिक प्रपत्र माना जाता है। प्रत्येक नवीन कम्पनी को इसे समामेलन से पूर्व बनाना आवश्यक होता है।

(ii) **सदस्यों के जोखिम को प्रकट करना** – पार्षद सीमानियम सदस्यों के जोखिम को स्पष्ट रूप से प्रकट करने में सहायता प्रदान करता है।

(iii) **अपरिवर्तनीय चार्टर** – वर्तमान कम्पनी अधिनियम की धारा 16 इस प्रपत्र के अपरिवर्तनीय स्वभाव को मान्यता प्रदान करती है।

(iv) **वैधानिक उद्देश्य** – रजिस्ट्रार को यह अधिकार है कि वह ऐसी संस्थाओं का पंजीयन करने से इन्कार कर दें जिनका निर्माण वैधानिक उद्देश्य के आधार पर नहीं किया गया है। (किंग बनाम रजिस्ट्रार ऑफ कम्पनीज, 1914)।

पार्षद सीमानियम के निर्माण में ध्यान देने योग्य बातें – पार्षद सीमानियम का निर्माण करते समय निम्न बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है –

(i) **मुद्रित एवं पैराग्राफ में विभाजित** – पार्षद सीमानियम ठीक प्रकार से मुद्रित एवं विभिन्न पैराग्राफों में विभाजित होना चाहिए तथा प्रत्येक पर क्रमागत संख्या पड़ी होनी चाहिए। [धारा 15 (अ, स)]

(ii) **न्यूनतम संख्या** – पार्षद सीमानियम पर हस्ताक्षर करने वाले व्यक्तियों की संख्या लोक कम्पनी में 7 तथा अलोक कम्पनी में 2 से कम नहीं होनी चाहिए।

(iii) **बाहरी शक्ति द्वारा प्रमाणन** – हस्ताक्षर का प्रमाणन ऐसे व्यक्ति द्वारा किया जाना चाहिए, जो उस कम्पनी से सम्बन्धित न हो।

(iv) **एजेन्ट द्वारा हस्ताक्षर** – पार्षद सीमानियम पर सदस्य के स्थान पर उसके एजेण्ट द्वारा हस्ताक्षर किये जा सकते हैं। यह अधिकार मौलिक या लिखित दिया जा सकता है।

(v) **गवाह द्वारा प्रमाणित** – पार्षद सीमानियम किसी बाह्य व्यक्ति द्वारा प्रमाणित होना चाहिए। यह गवाह अपने हस्ताक्षर के साथ-साथ अपना पता, पेशा एवं विवरण भी लिखेगा।

पार्षद सीमानियम के उद्देश्य
(Objects of Memorandum of Association)

सीमानियम का दोहरा उद्देश्य होता है –

(i) **जानकारी दिलाना** – ऐसे व्यक्तियों को विश्वास दिलाना जो कि कम्पनी के साथ अनुबन्ध स्थापित करना चाहते हैं कि कम्पनी के कार्य उद्देश्य की सीमा में हैं।

(ii) **अवगत कराना** – विनियोक्ता को इस बात से अवगत कराना कि किस सीमा तक कम्पनी में जोखिम उठाया जा सकता है। कम्पनी के उद्देश्य क्या हैं तथा क्या कम्पनी से किया जाने वाला अनुबन्ध कम्पनी के उद्देश्यों के सीमा क्षेत्र में हैं। [कोटमैन बनाम ब्रोद्यम (1958) Ac. 514]

गुइनैस बनाम लैण्ड कारपोरेशन ऑफ आयरलैण्ड के मामले में न्यायाधीश ब्राउन का कथन था कि सीमानियम में वे मूलभूत शर्तें होती हैं जिनके आधार पर कम्पनी के समामेलन की अनुमति दी जाती है। यह शर्तें कम्पनी के लेनदारों तथा अंशधारियों के लाभ के लिए शामिल की जाती हैं।

पार्षद सीमानियम के प्रारूप
(Forms of Memorandum of Association)

कम्पनी का पार्षद सीमानियम अनुसूची प्रथम की तालिका ब, स, द तथा ई में से कोई भी एक निर्धारित प्रारूप में होना चाहिए। विभिन्न प्रकार की कम्पनियों के लिए निम्न प्रारूप हो सकते हैं –

तालिका	कम्पनी
ब	अंशों द्वारा सीमित कम्पनी
स	अंशों रहित गारण्टी द्वारा सीमित कम्पनी
द	अंशों सहित गारण्टी द्वारा सीमित कम्पनी
इ	असीमित कम्पनीयों के लिए (धारा 14)

पार्षद सीमानियम की विषय-सामग्री (धारा 13)
(Contents of Memorandum of Association)

धारा 13 के अनुसार प्रत्येक कम्पनी के पार्षद सीमानियम में निम्न विवरण का होना आवश्यक है –

1. **प्रत्येक कम्पनी** – प्रत्येक कम्पनी के पार्षद सीमानियम में निम्न बातों का उल्लेख होना चाहिए –

(i) **कम्पनी का नाम** – लोक कम्पनी की दशा में लिमिटेड एवं अलोक (Private) सीमित कम्पनी की दशा में 'प्राइवेट लिमिटेड' शब्द का प्रयोग होना चाहिए।

(ii) **राज्य का नाम** – कम्पनी के रजिस्टर्ड कार्यालय स्थापित होने वाले राज्य का नाम भी लिखा जाता है।

(iii) **दायित्व** – सीमित कम्पनी की दशा में यह लिखना आवश्यक है कि सदस्यों का दायित्व सीमित है।

(iv) **पूँजी** – इसमें अंशपूँजी, अंशों की संख्या आदि का पूर्ण विवरण दिया होता है।

(v) **अधिकतम गारण्टी** – गारण्टी वाली सीमित कम्पनी की दशा में सदस्यों से वसूल की जाने वाली गारण्टी की अधिकतम धनराशि का उल्लेख करना होगा।

NOTES

(vi) **उद्देश्य** – कम्पनी के उद्देश्यों का विस्तार से वर्णन करना आवश्यक माना जाता है।

2. **गारण्टी द्वारा सीमित कम्पनी** – गारण्टी वाली कम्पनियों के सीमानियम में यह विवरण होता है कि कम्पनी के समापन की दशा में प्रत्येक सदस्य का किस सीमा तक धनराशि देने का उत्तरदायित्व होगा।

3. **सीमित कम्पनी** – सीमित कम्पनी के पार्षद सीमानियम में इस बात का उल्लेख होना चाहिए कि उसके सदस्यों का दायित्व सीमित है।

4. **अंशों द्वारा सीमित कम्पनी** – अंशों द्वारा सीमित कम्पनी के पार्षद सीमानियम से निम्न बातों का उल्लेख होता है – (i) कम्पनी का नाम, (ii) राज्य का नाम जहाँ उसका रजिस्टर्ड कार्यालय हो, (iii) कम्पनी के उद्देश्य, (iv) सदस्यों से सीमित दायित्व का विवरण, (v) कम्पनी की पूँजी की रकम एवं उसका अंशों में विभाजन, (vi) हस्ताक्षरकर्ता द्वारा एक वाक्य यह लिखना कि उन्हें कम्पनी के रूप में निर्माण होना है, (vii) अन्य सूचनाओं का विवरण भी दिया जाता है।

5. **असीमित दायित्व वाली कम्पनी** – असीमित दायित्व वाली कम्पनी के पार्षद सीमानियम में – (i) संघीय वाक्य, (ii) कम्पनी का नाम, (iii) सदस्यों की सूचना, (iv) राज्य का नाम, (v) उद्देश्य, एवं (vi) विशेष वाक्य का वर्णन रहता है।

पार्षद् सीमानियम के वाक्य
(Clauses of Memorandum of Association).

पार्षद सीमानियम में निम्नलिखित को सम्मिलित किया जाता है –

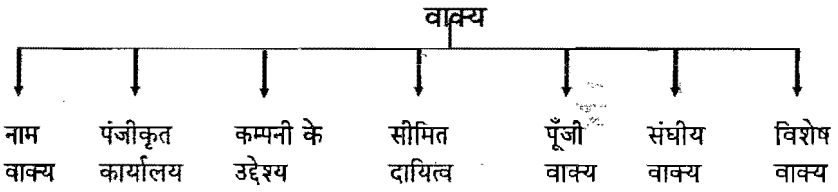

(1) **नाम वाक्य** (Name Clause) – इनमें कम्पनी के नाम का उल्लेख किया जाता है। कम्पनी के नाम का चुनाव करते समय निम्न बातों को ध्यान में रखना होगा –

(i) **अधिनियम के अन्तर्गत निषिद्ध न होना** – नाम अधिनियम 1950 (Emblems and Names Act, 1950) के अन्तर्गत कुछ नामों को केन्द्रीय सरकार की अनुमति के बिना व्यापार आदि के लिए प्रयोग में नहीं लाया जा सकता। उदाहरण के लिए, विश्व स्वास्थ्य संगठन (W.H.O.), संयुक्त राष्ट्र संघ (U.N.O.) राष्ट्रीय ध्वज एवं सरकारी सीलों को व्यापार के लिए प्रयोग में नहीं लाया जा सकता।

(ii) **जनता को धोखे में न डालना** – जनता को धोखे में डालने वाले नाम को कम्पनी नहीं चुन सकती। नार्थ चैशियर एण्ड मानकेस्टर बुअरी कम्पनी बनाम मानचेस्टर बुअर कम्पनी के मामले में निर्णय दिया गया था कि कम्पनी इस नये नाम को नहीं रख सकती, भले ही कम्पनी का उद्देश्य धोखा देना न रहा हो। मानचेस्टर बुअरी कम्पनी लि. अनेक वर्षों से इसी नाम से व्यापार कर रही थी। एक दूसरी कम्पनी नार्थ चैशियर बुअरी कं. लि. ने अपना नाम बदलकर नार्थ चैशियर एण्ड मानचेस्टरी बुअरी कं. लि. रखना चाहा। इस विवाद में निर्णय दिया गया कि नार्थ चैशियर बुअरी कम्पनी लि. इस नए नाम को नहीं रख सकती है, क्योंकि ऐसा करने से जनता को धोखा हो सकता है। इसी प्रकार के.एम. मुल्तानी बनाम पैरामाउण्ट टाकीज लि. एवं अन्य (के.एम. मुल्तानी बनाम पैरामाउण्ट टाकीज ऑफ इण्डिया लि. एण्ड अन्य, 1942) के मामले में भी एक अन्य कम्पनी को जो समान प्रकार का व्यापार करने जा रही थी, जनता को धोखे से बचाने हेतु ही उसे स्थापना की आज्ञा नहीं दी गयी।

(iii) **नाम अवांछनीय न हो** – किसी भी कम्पनी का पंजीयन उस नाम से नहीं हो सकता जो केन्द्रीय सरकार की दृष्टि में अवांछनीय हो तथा जिससे जनता को किसी प्रकार का धोखा हो। [धारा 20 (2)]

कम्पनी के नाम के पीछे 'लिमिटेड' शब्द तथा प्राइवेट कम्पनी को अपने नाम के अन्त में 'प्राइवेट लिमिटेड' शब्द लिखना अनिवार्य है, अन्यथा सदस्यों पर व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होगा। अटकिन एण्ड कं. लि. बनाम वार्डले 58, एलटी.क्यू.बी. 377 के केस में संचालको ने कम्पनी की ओर से एक विनिमय-पत्र स्वीकार किया और उस पर कम्पनी के संचालक के रूप में हस्ताक्षर किए। न्यायालय की राय में, हस्ताक्षर करते समय लि. नाम छोड़ देने से संचालक व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी थे। कोई भी नवीन कम्पनी पुरानी कम्पनी से मिलता-जुलता नाम नहीं रख सकती। (मेनेचेस्टर ब्रेमरी कं. लि.) प्रत्येक कम्पनी का अपना नाम अपने पंजीकृत कार्यालय के बाहर लिखा होना चाहिए, जिससे उसे आसानी से देखा जा सके। कम्पनी को अपनी सार्वमुद्रा पर भी स्पष्टतया कम्पनी का नाम खुदवाना चाहिए। प्रत्येक बिल, नोटिस

एवं अन्य व्यवसाय पर कम्पनी का नाम स्पष्ट अक्षरों में वर्णित होना चाहिए। दानधर्म आदि के संघ अपने नाम में लिमिटेड या प्राइवेट लिमिटेड शब्द लगाए बिना कम्पनी के रूप में पंजीकृत हो सकते हैं। [धारा 147]

(2) पंजीकृत कार्यालय (Registered Office) – धारा 13 (1) (अ) के अनुसार प्रत्येक कम्पनी को अपने पंजीकृत कार्यालय के राज्य का नाम पार्षद सीमानियम में उल्लिखित होना चाहिए। (गोसा बनाम कमिश्नर इंग्लैण्ड रेवेन्यू 1917), प्रत्येक कम्पनी को व्यापार प्रारम्भ करने या समामेलन के 30 दिन के अन्दर, जो भी पहले हो, उस स्थान को निश्चित करना होगा, जहाँ उसका पंजीकृत कार्यालय हो, जिससे पत्र-व्यवहार में सरलता रहे। जैसे कम्पनी का कार्यालय ग्वालियर में होने पर पार्षद सीमानियम में ग्वालियर न लिखकर मध्य प्रदेश ही लिखा जायेगा। [धारा 25 (8) (10)] कार्यालय के पते की सूचना समामेलन की तिथि के 10 दिन के अन्दर रजिस्ट्रार कार्यालय को देनी चाहिए। [धारा 146]

(3) कम्पनी के उद्देश्य (Objects of a Company) – कम्पनी के कार्य उद्देश्यों की सीमा से बँधे रहते हैं। यदि सीमानियम में कम्पनी द्वारा ही अपने अंशों को क्रय करने की व्यवस्था हो तो यह संवैधानिक होगा। ट्रेवर बनाम ब्राइटवर्थ 12 ए.सी. 409। कोई भी कम्पनी उद्देश्य के बाहर कार्य नहीं कर सकेगी (आशबरी रेलवे केरिज एण्ड आयरन कं. बनाम रिचे 1875, एल.आर. 7, एच.एल. 656, पेज 670)। इस केस में कहा गया कि पार्षद सीमानियम में उद्देश्यों का हवाला दोहरा कार्य करता है। यदि कम्पनी अधिकारों का उल्लंघन करके कोई अनुबन्ध करें तो यह शक्ति के बाहर होगा और सारे अंशधारी मिलकर भी ऐसे अनुबन्ध की पुष्टि नहीं कर सकते।

इवान्स बनाम ब्रुनरमोण्ड एण्ड कं. – रसायन निर्माण में लगी एक कम्पनी ने विज्ञान-शिक्षा के प्रोत्साहन हेतु एक बड़ी राशि खर्च करने का निर्णय लिया और कहा गया कि इससे कम्पनी को लाभ होगा, परन्तु एक अंशधारी ने विरोध किया और कहा कि यह कार्य कम्पनी के लिए शक्तिबाह्य था। न्यायालय ने कम्पनी के निर्णय को उसके अधिकारों से सम्बद्ध कार्य बताया।

रि एमलगामेटेड सिन्डीकेट केस – एक कम्पनी का गठन तीन ऐसी कम्पनियों का एकीकरण करने हेतु किया गया जिनका कार्य बैठने के स्थान बनाकर उन्हें हीरक जयन्ती हेतु किराए पर देना था। हीरक-जयन्ती के बाद संचालकों ने सहायक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु कम्पनी को बनाए रखने का निर्णय किया। न्यायालय ने निर्णय दिया कि मुख्य उद्देश्य की समाप्ति के बाद कम्पनी का समापन अनिवार्य था।

उद्देश्य के सम्बन्ध में ध्यान देने योग्य बातें – कम्पनी के उद्देश्यों को बताते समय अग्रांकित बातों पर ध्यान देना आवश्यक होगा –

(i) **सार्वजनिक नीति के विरुद्ध न होना** – कम्पनी के उद्देश्य सरकार की नीति के विरुद्ध नहीं होने चाहिए। जैसे शत्रु राष्ट्र के साथ व्यापार करना।

(ii) **अधिनियम के विरुद्ध न होना** – कम्पनी के उद्देश्य कम्पनी अधिनियम के विरुद्ध नहीं होने चाहिए।

(iii) **व्यापक उद्देश्य वाक्य** – कम्पनी के उद्देश्य काफी व्यापक होने चाहिए जिससे समस्त कार्यों को उसमें समाविष्ट किया जा सके।

(iv) **अधिकारों के बाहर कार्य न करना** – उद्देश्यों का निर्माण दूरदर्शिता को ध्यान में रखकर किया जाता है। एक कम्पनी अपने अधिकारों से बाहर कार्य कर सकती है और यदि वह ऐसा करती हैं तो वह कार्य व्यर्थ माना जाता है।

(v) **कठोरता या लचक का अभाव** – कम्पनी के उद्देश्य वाक्य को इस प्रकार बनाना चाहिए कि उसमें कठोरता एवं लचक का अभाव पाया जाए। [वमनलाल छोटालाल पारिख बनाम सिंधिया स्टीम नेवीगेशन कं. 1944] इस मामले में इसकी पुष्टि की गयी थी।

(vi) **वैधानिक होना** – कम्पनी के उद्देश्य वैधानिक होने चाहिए और उसका निर्माण वैधानिक उद्देश्यों के लिए ही होना चाहिए।

(vii) **स्पष्ट उद्देश्य** – डियूचर बनाम गैस, लाइट एण्ड कोक कम्पनी 1925 में इसको स्पष्ट किया गया था।

(viii) **दोहरे उद्देश्य को ध्यान में रखना** – कम्पनी के दोहरे उद्देश्य को ध्यान में रखना चाहिए। एक ओर तो वह कम्पनी के सदस्यों को संरक्षण प्राप्त करता है तथा दूसरी ओर यह बाह्य व्यक्तियों को भी संरक्षण प्रदान करता है जो कम्पनी के साथ व्यवहार करते हैं।

(ix) **अधिकारों में भिन्नता** – उद्देश्य व अधिकारों में भिन्नता होने के कारण अधिकारों को पार्षद सीमानियम में नहीं लिखा जा सकता।

NOTES

(x) **विधान के विरुद्ध न होना** – कम्पनी के उद्देश्य विधान के विरुद्ध नहीं होने चाहिए, जैसे लाटरी को प्रारम्भ करना आदि।

(xi) **उद्देश्य व अधिकार स्वतन्त्र होना** – कम्पनी के उद्देश्य व अधिकार स्वतन्त्र होते हैं, अतः इसका वर्णन उद्देश्य वाक्य के निर्माण करते समय कर देना आवश्यक होगा। कम्पनी के अधिकारों का उल्लेख पार्षद सीमानियम में नहीं किया जाता है। (कोटमन बनाम ब्रोमेन)।

(xii) **जोखिम व सुरक्षा** – कम्पनी के उद्देश्य सूक्ष्म होने चाहिए जिससे सदस्यों की जोखिम कम रहे। यदि उद्देश्य बड़े होंगे तो व्यापार करने वाले व्यक्तियों को अधिक सुरक्षा मिलेगी। कोटमेन बनाम ब्रोमेन में इसकी पुष्टि की गयी।

(xiii) **सीमित शब्दों का प्रयोग** – कम्पनी के उद्देश्य लिखते समय सीमित शब्दों का प्रयोग करना चाहिए, जिससे उसका सही अर्थ निकाला जा सके।

(4) **सीमित दायित्व वाक्य** (Limited Liability Clause) – अंशों या गारण्टी द्वारा सीमित कम्पनियों के पार्षद सीमानियम में यह उल्लेख रहता है कि कम्पनी के अंशधारियों का दायित्व सीमित है। [धारा 13 (2)] इसका अर्थ यह है कि सदस्यों को किसी भी समय केवल प्रत्येक अंश पर अदत्त राशि चुकाने के लिए ही बाध्य किया जा सकता है। असीमित दायित्व की दशा में यह वाक्य नहीं होता।

सीमित दायित्व का असीमित दायित्व में परिवर्तन होना – यदि एक सीमित दायित्व वाली कम्पनी अवैधानिक कार्य करे तो उसका सीमित दायित्व असीमित दायित्व में परिवर्तित हो जाता है। दायित्व का असीमित होना निम्नलिखित दशाओं में हो पाता है – (i) कम्पनी द्वारा विशेष प्रस्ताव पारित करना [धारा 323], (ii) अधिकारियों के दायित्व को असीमित घोषित किया जा सकता है [धारा 322], (iii) कपटपूर्ण व्यापार करने वाले दोषी व्यक्तियों का दायित्व असीमित होगा [धारा 542], (iv) सदस्यों की संख्या न्यूनतम के कम हो जाने पर दायित्व असीमित होगा।

(5) **पूँजी वाक्य** (Capital Clause) – धारा 13 (4)a के अनुसार प्रत्येक अंश पूँजी वाली सीमित दायित्व वाली कम्पनी के पार्षद सीमानियम में यह अवश्य लिखा रहता है कि कम्पनी कितनी अंश पूँजी से पंजीकृत होगी तथा उसका वितरण अंशों में किस प्रकार से किया जाएगा। इसके अतिरिक्त पार्षद सीमानियम पर हस्ताक्षर करने वाले व्यक्ति को अपने नाम के आगे लिए जाने वाले अंशों की संख्या का विवरण भी लिखना होगा। ध्यान रहे कि प्रत्येक सदस्य को कम से कम कम्पनी का एक अंश तो अनिवार्य रूप से लेना ही होगा। कम्पनी केवल समता एवं पूर्वाधिकारी अंश जारी कर सकता है, परन्तु इन अंशों को असमान अधिकार नहीं दिए जा सकते। वैसे तो कोई भी कम्पनी अपनी अधिकतम पूँजी कितनी भी रख सकती हैं किन्तु कम्पनी (संशोधन) अधिनियम 2000 द्वारा **पूँजी की न्यूनतम सीमा निजी कम्पनी के सीमानियम में कम से कम 1 लाख रु. व सार्वजनिक कम्पनी के सीमानियम में कम से कम 5 लाख रु.** की अधिकृत पूँजी दिखाई जाना अनिवार्य कर दिया गया है।

(6) **संघीय तथा अंशदान वाक्य** (Association and Subcsription Clause) – पार्षद सीमानियम पर हस्ताक्षर करने वाले व्यक्तियों को यह घोषणा करना आवश्यक होता है कि वे एक कम्पनी का निर्माण करके योग्यता अंश लेने को तत्पर हैं इसमें उस राशि का भी वर्णन होता है जो प्रवर्तकों द्वारा दी जाती है।

हस्ताक्षरकर्ता के दायित्व – सीमानियम पर हस्ताक्षर करने वाले व्यक्तियों के निम्न दायित्व उदय हो जाते हैं –

(i) **भुगतान का दायित्व** – प्रत्येक हस्ताक्षरकर्ता अपने नाम में लिये गये अंशों के भुगतान के लिए उत्तरदायी माना जाता है।

(ii) **हस्ताक्षर की पुष्टि न होने पर दायित्व** – यदि सदस्य के हस्ताक्षर की पुष्टि ठीक प्रकार से नहीं हुई है तो भी सदस्य अपने दायित्व से बच नहीं सकता और सौदों को इस आधार पर व्यर्थ नहीं किया जा सकता। छोटेलाल बनाम दलसुखराम 893 के मामले में इसकी पुष्टि की गयी थी।

(iii) **अनिर्गमित अंशों का दायित्व** – कम्पनी के विघटन होने पर प्रत्येक सदस्य अपने नाम में होने वाले अनिर्गमित अंशों के भुगतान के लिए भी पूर्ण रूप से उत्तरदायी बना रहेगा। [मिर्जा अहमद 1914]

(iv) **मिथ्यावर्णन पर दायित्व** – यदि हस्ताक्षर मिथ्यावर्णन के आधार पर किये जायें। तो भी सदस्य अपने दायित्वों से मुक्ति नहीं पा सकता।

हस्ताक्षरकर्ता के कर्तव्य– पार्षद सीमानियम पर हस्ताक्षर करने वाले के प्रमुख कर्तव्य निम्नलिखित हैं –

(i) प्रथम संचालकों की नियुक्ति करना। (ii) अपने नाम में लिखे गये अंशों का भुगतान करना। (iii) अन्तर्नियम पर हस्ताक्षर करना। (iv) प्रथम संचालकों की नियुक्ति के पूर्व संचालक की भाँति कार्य करना। (v) कम्पनी के पंजीयन के लिए आवश्यक प्रपत्रों को रजिस्ट्रार के कार्यालय में भेजना।

धारा 15 (स) के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को कम से कम एक गवाह की उपस्थिति में हस्ताक्षर करना होता है जो कि इन हस्ताक्षरों को प्रमाणित करता है।

(7) **विशेष वाक्य** (Special Clause) – पार्षद सीमानियम में धारा 16 में दी गई विषय-सामग्री के अतिरिक्त अन्य सूचनाएँ भी दी जा सकती हैं, जैसे मैनेजर, सचिव, संचालक, प्रबन्ध अभिकर्ता आदि की नियुक्ति के सम्बन्ध में पूर्ण विवरण।

पार्षद सीमानियम में परिवर्तन
(Alteration in Memorandum of Association)

पार्षद सीमानियम में विभिन्न प्रकार के परिवर्तन निम्न तरह से किये जा सकते हैं –

(1) **नाम वाक्य में परिवर्तन** – कम्पनी के नाम को (i) विशेष प्रस्ताव पास करके, एवं (ii) केन्द्रीय सरकार की अनुमति लेकर बदला जा सकता है। इस सम्बन्ध में 'प्राइवेट' शब्द लगाने या हटाने के लिए केन्द्रीय सरकार की अनुमति प्राप्त करना आवश्यक नहीं है। **[धारा 21]**

यदि भूल से एक कम्पनी का समामेलन उस नाम से हो जाता है जो पहले से ही विद्यमान है, तो कम्पनी एक साधारण प्रस्ताव पास करके तथा केन्द्रीय सरकार की लिखित अनुमति लेकर उसमें परिवर्तन कर सकती है। यदि समामेलन के 12 माह के अन्दर केन्द्रीय सरकार कम्पनी को नाम बदलने की आज्ञा देती है तो कम्पनी को यह नाम 3 माह के अन्दर बदल लेना होगा। दोषी अधिकारियों पर 100 रुपये प्रतिदिन के हिसाब से आर्थिक दण्ड देना होगा। **[धारा 22]**

यदि कम्पनी अपना नाम बदल लेती है तो कम्पनियों के रजिस्ट्रार में पुराने नाम के स्थान पर नवीन नाम लिख दिया जाएगा और उस कम्पनी को एक नवीन समामेलन का प्रमाण-पत्र जारी कर दिया जायेगा। इस प्रमाण-पत्र के साथ ही कम्पनी के नाम का परिवर्तन प्रभावशील माना जायेगा। (धारा 23)। नाम परिवर्तन होने से कम्पनी के अधिकार, कर्तव्य और मुकदमों आदि पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। इसकी पुष्टि-अब्दुल कय्यूम बनाम महिन्द्रा 1953 के मामले में की गयी थी। यदि सीमित दायित्व वाली निजी कम्पनी, 1956 से पूर्व विद्यमान हों तो रजिस्ट्रार उनके नाम में 'प्राइवेट लिमिटेड' शब्द और लगा देगा। यदि नाम में प्राइवेट लिमिटेड शब्द जोड़ना है तो रजिस्ट्रार, कम्पनी के रजिस्ट्रार में आवश्यक परिवर्तन कर लेगा और यही परिवर्तन समामेलन पत्र तथा पार्षद सीमानियम में भी कर दिया जाएगा। **[धारा 24]**

(2) **पंजीकृत कार्यालय में परिवर्तन** – यदि कम्पनी का पंजीकृत कार्यालय एक ही राज्य के अन्दर एक स्थान से दूसरे स्थान को परिवर्तित होता है तो वह कम्पनी एक विशेष प्रस्ताव पारित करके ऐसा कर सकती है और इस परिवर्तन की सूचना 30 दिन के अन्दर रजिस्ट्रार को देना आवश्यक होगा, परन्तु राज्य सरकार की आपत्ति पर ऐसे स्थानान्तरण की अनुमति नहीं दी जाएगी। (ओरियण्ट पेपर मिल्स लि. बनाम राज्य 1957) बाद में उच्च न्यायालय ने इसके विरोध में निर्णय देते हुए स्थानान्तरण की अनुमति प्रदान की। यह अनुमति मैकिनांन मैचेन्जी एण्ड कं. (मेकिननांन मैचेन्जी एण्ड कं. 1967) में प्रदान की गयी थी।

एक राज्य से दूसरे राज्य को कार्यालय बदलने पर विशेष प्रस्ताव पास करके कम्पनी लॉ बोर्ड की स्वीकृति लेनी पड़ती है। बोर्ड अपनी स्वीकृति निम्न शर्तों के पूर्ण होने पर देता है –

(i) लेनदारों को सूचित कर दिया गया हो, (ii) लेनदारों से परिवर्तन की सहमति प्राप्त कर ली गयी है, (iii) रजिस्ट्रार को सूचित कर दिया गया है, (iv) सदस्यों एवं लेनदारों के हितों को ध्यान में रखा गया है।

परिवर्तन की विधि – पंजीकृत कार्यालय के परिवर्तन की विधि निम्न प्रकार है –

(i) कम्पनी द्वारा विशेष प्रस्ताव पारित करना होगा।

(ii) पुष्टीकरण हेतु न्यायालय को एक आवेदन-पत्र देना होगा।

(iii) न्यायालय इसकी सूचना रजिस्ट्रार को देगा।

(iv) न्यायालय परिवर्तन का आदेश देकर उसकी पुष्टि करेगा।

(v) परिवर्तन के आदेश की प्रमाणित प्रतिलिपि दोनों राज्यों के रजिस्ट्रार को देनी होगी।

(vi) एक राज्य के रजिस्ट्रार द्वारा दूसरे राज्य के रजिस्ट्रार को आवश्यक प्रपत्र भेजे जायेंगे। **[धारा 17 (3)]**

कम्पनी लॉ बोर्ड परिवर्तन को स्वीकार कर सकता है, यह कुछ शर्तों को लगा सकता है। **[धारा 17 (5)]**

नया व्यापार प्रारम्भ करना – धारा 17 पार्षद सीमानियम में ऐसा परिवर्तन करने की अनुमति देती है, जिससे कम्पनी का एक ऐसा नया व्यापार करने योग्य बन जाए जो पुराने व्यापार से भिन्न हो। इसके लिए शर्त यह है कि –

(i) नया व्यापार कम्पनी के वर्तमान व्यापार के साथ लाभप्रद ढंग से मिलाया जा सके, (ii) यह कार्य वर्तमान परिस्थितियों में हो, काल्पनिक परिस्थितियों में नहीं। इस सम्बन्ध में निम्न केस लॉ हैं –

मोदी स्पीनिंग व वीविंग कं. लि. – सीमानियम के उद्देश्य ने कम्पनी को कपड़ा बनाने की अनुमति दी थी, किन्तु वास्तव में वह बाजार से सूत खरीदकर नकली रेशम का कपड़ा बनाती थी। अंशधारियों ने एकमत से सूत बनाने के लिए औद्योगिक शराब के उत्पादन का उद्देश्य भी जोड़ा जाता था। न्यायालय ने इस पर कोई आपत्ति नहीं की।

स्ट्रा प्रोडक्ट लि. बनाम रजिस्ट्रार के मामले में निर्णय दिया गया कि नया व्यापार स्थायी व्यापार के लिए परस्पर विरोधी नहीं होना चाहिए।

पंजाब सफाई उद्योग लि. के मामले में उद्देश्य वाक्य में सिनेमा व्यापार को शामिल करने सम्बन्धी परिवर्तन इस आधार पर अस्वीकार किया गया, क्योंकि इस व्यापार का कम्पनी के वर्तमान शराब बनाने के व्यापार से दूर का भी कोई सम्बन्ध नहीं था।

मुटोरिया ब्रदर्स (P) लि. के मामले में उद्देश्य वाक्य में इस आशय का परिवर्तन, जिससे जूट का व्यापार करने वाली कम्पनी रबर का व्यापार भी कर सके, अस्वीकार कर दिया गया।

न्यू एशिमाटिक बीमा कं. बीमे का व्यापार करती थी। उसने उद्देश्य वाक्य में इन्जीनियरी कपास व आयात-निर्यात का काम शामिल करने सम्बन्धी परिवर्तन किया। इसे स्वीकार किया गया।

(3) **उद्देश्य वाक्य में परिवर्तन** – विशेष प्रस्ताव पास करके कम्पनी लॉ बोर्ड की लिखित आज्ञा लेकर निम्न कार्यों हेतु उद्देश्यों में परिवर्तन किया जा सकता है :

(i) **व्यापार में मितव्ययता** – यदि उद्देश्य में परिवर्तन करना व्यापार में मितव्ययता लाने या कार्यक्षमता लाने के लिए आवश्यक हो।

(ii) **एकीकरण** – जब किसी कम्पनी या व्यक्तियों के साथ एकीकरण करना आवश्यक समझा गया हो।

(iii) **व्यवसाय को बेचना** – जब कम्पनी के व्यवसाय का समस्त या कोई भाग बेचना आवश्यक हो तो उद्देश्य वाक्य में यथास्थान परिवर्तन लाया जा सकता है।

(iv) **क्षेत्र बदलना** – यदि व्यापार के क्षेत्र को बढ़ाने अथवा परिवर्तन करने के लिए ऐसा करना आवश्यक हो।

(v) **व्यापार चलने में सहायक** – यदि उद्देश्य में परिवर्तन लाने में किसी ऐसे व्यापार को चलाने में सहायता प्राप्त हो, जिससे कम्पनी को लाभ प्राप्त हो।

(vi) **किसी एक उद्देश्य का परित्याग करना** – जब पार्षद सीमानियम में उल्लिखित उद्देश्यों में से किसी एक या अधिक उद्देश्य का परित्याग या उसे प्रतिबन्धित करना आवश्यक हो।

(vii) **उन्नत साधनों का प्रयोग** – जब कम्पनी को अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए नवीन साधनों द्वारा उन्हें प्रयोग करके प्राप्त करना हो।

उद्देश्य वाक्य में परिवर्तन की विधि (Procedure to change the object Clause) – उद्देश्य वाक्य के परिवर्तन करने की विधि निम्नलिखित हैं –

(i) **सहमति प्राप्त करना** – न्यायालय की सहमति प्राप्त करना आवश्यक है। न्यायालय सहमति देने से पूर्व निम्न बातों के लिए सन्तुष्टि प्राप्त करेगा –

(अ) **ऋणदाता को सूचित करना** – कम्पनी के प्रत्येक ऋणपत्रधारी को कम्पनी के इस परिवर्तन को सूचित कर दिया गया है।

(ब) **ऋणदाता की सन्तुष्टि** – प्रत्येक ऋणदाता को जो इस परिवर्तन का विरोध करता है, उसकी सन्तुष्टि के लिए ऋण का या तो भुगतान कर दिया गया है या उसको कोई प्रत्याभूति दे दी गयी है।

(स) **सूचना रजिस्ट्रार को देना** – न्यायालय द्वारा रजिस्ट्रार को इस परिवर्तन की सूचना देगा तथा अपनी सलाह देने का पर्याप्त अवसर प्रदान करेगा।

(ii) **न्यायालय को आवेदन** – न्यायालय को एक आवेदन-पत्र देकर विशेष प्रस्ताव पर न्यायालय की लिखित अनुमति प्राप्त करना आवश्यक होगा।

(iii) **विशेष प्रस्ताव** – उद्देश्य वाक्य में परिवर्तन लाने के लिए कम्पनी को साधारण सभा में एक विशेष प्रस्ताव पारित करना होगा।

(iv) **हितों को ध्यान में रखना** – न्यायालय अपना निर्णय देने के पूर्व सदस्यों, लेनदारों व अन्य व्यक्तियों के हितों को ध्यान में रखकर ही परिवर्तन पर विचार करेगा।

(v) **आदश दना** – समस्त बातों से सन्तुष्टि प्राप्त हो जाने पर न्यायालय उद्देश्यों में परिवर्तन के लिए अपनी सहमति के आदेश देगा जो पूर्ण अंशतः या शर्तसहित हो सकते हैं। [धारा 17]

धारा 17 (1) के अतिरिक्त अन्य किसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु उद्देश्य वाक्य में परिवर्तन की आज्ञा देना न्यायालय के अधिकार के बाहर है। (रि ज्यूविश कालोनियल ट्रस्ट)। यदि उद्देश्य में परिवर्तन इस ढंग का है कि जो कम्पनी के मूल आधार को ही बदल देगा तो उसे परिवर्तन की आज्ञा नहीं मिलेगी। [रि बोलसम ब्रादर्स]

परिवर्तन के आदेश की प्रतिलिपि 3 माह के अन्दर रजिस्ट्रार कार्यालय को प्रस्तुत होना होना आवश्यक है अन्यथा तट सम्बन्धी परिवर्तन एवं कार्यवाही शून्य एवं अप्रवर्तनीय हो जाएगी। [धारा 19]

(4) **सीमित दायित्व में परिवर्तन** – धारा 323 के अनुसार, सीमित दायित्व वाली कम्पनी के अधिकारियों के दायित्व को विशेष परिस्थितियों के अन्तर्गत असीमित घोषित किया जा सकता है। पार्षद सीमानियम में इस प्रकार परिवर्तन किये जाते हैं कि उससे सीमित दायित्व असीमित दायित्व में परिवर्तित हो जाता है।

पार्षद सीमानियम में परिवर्तन करने से सदस्यों के सीमित दायित्व को असीमित दायित्व में परिवर्तित नहीं कर सकते जब तक कि प्रभावित सदस्यों की लिखित सहमति प्राप्त न कर ली जाये। इस सम्बन्ध में यह अपवाद है कि (i) यदि कम्पनी एक क्लब है और सीमानियम में परिवर्तन करने से सदस्यों के चन्दे की राशि बढ़ जाती है तो यह परिवर्तन अवैध न होगा, भले ही इसके लिए सदस्यों से राय न ली गयी हो। (ii) यदि परिवर्तन के पश्चात् सदस्य अधिक अंश लेने को बाध्य होने की लिखित सहमति प्रदान कर देता है। [धारा 38]

एक असीमित दायित्व वाली कम्पनी अधिनियम की धारा 32 के अन्तर्गत अपने दायित्व को सीमित दायित्व में परिवर्तित करके उसका पंजीयन करा सकती है। इसके लिए रजिस्ट्रार पहले वाली रजिस्ट्री को समाप्त करके नवीन ढंग से उसे पंजीयन करेगा। ऐसा परिवर्तन होने से ऋणों, दायित्वों, अनुबन्धों एवं कर्तव्यों पर कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता।

(5) **पूँजी वाक्य में परिवर्तन** – एक विशेष प्रस्ताव पारित करके अन्तर्नियम में आवश्यक परिवर्तन करके पूँजी में परिवर्तन किया जा सकता है।

परिवर्तन की विधि – एक सीमित अंश पूँजी वाली कम्पनी, अन्तर्नियम द्वारा अधिकृत होने पर निम्न ढंग से अपनी पूँजी में आवश्यक परिवर्तन कर सकती है –

(i) **अंशों को रद्द करना** – कम्पनी अपने उन अंशों को रद्द कर सकती है, जिनका निर्गमन न हुआ हो।

(ii) **नवीन अंशों का निर्गमन** – कम्पनी नवीन अंशों के निर्गमन करके अपनी पूँजी में वृद्धि कर सकती है।

(iii) **स्कन्ध में परिवर्तन** – कम्पनी अपने पूर्ण भुगतान हुए अंशों को स्कन्ध में परिवर्तन कर सकती है।

(iv) **पूँजी को अधिक धन के अंशों में विभाजन** – कम्पनी पार्षद सीमा-नियम द्वारा अपनी अंश पूँजी को अधिक धन के अंशों में विभाजित कर सकती है।

(v) **कम राशि में विभाजन** – कम्पनी अपने अंशों को कम राशि के अंशों में भी विभाजित कर सकती है।

उपर्युक्त समस्त परिवर्तन कम्पनी की साधारण सभा में ही किये जाते हैं और इनके लिए न्यायालय की अनुमति प्राप्त करना आवश्यक नहीं होगा। [धारा 94]

पार्षद सीमानियम को इस प्रकार परिवर्तित नहीं किया जा सकता कि अंशधारी को पहले से अधिक अंश लेने पड़े। ऐसा करने के लिए उनकी अनुमति लेना आवश्यक होगा। [धारा 38]

अंश पूँजी परिवर्तन के रूप – कम्पनी अंश पूँजी में परिवर्तन निम्न रूपों में कर सकती है –

(i) **पूँजी को बढ़ाकर** – यदि अन्तर्नियम द्वारा अधिकार प्राप्त हो तो कम्पनी पूँजी की वृद्धि के लिए साधारण सभा में साधारण प्रस्ताव पारित कर सकती है।

पूँजी की वृद्धि की दशा को छोड़कर अन्य सभी दशाओं में इस परिवर्तन की सूचना रजिस्ट्रार को 30 दिन के अन्दर भेज देनी चाहिये। इस सूचना का लेखा कम्पनी के सीमानियम या अन्तर्नियम में करना होगा। यदि आवश्यक सूचना नहीं दी गयी तो प्रत्येक दोषी व्यक्ति पर 50 रुपये प्रतिदिन के हिसाब से जुर्माना किया जा सकता है। [धारा 95]

यदि कम्पनी ने अपनी पूँजी बढ़ा ली है तो इसकी सूचना रजिस्ट्रार को 30 दिन के अन्दर देनी होगी। रजिस्ट्रार सूचना मिलने पर सीमानियम व अन्तर्नियम में आवश्यक परिवर्तन करेगा। दोषी अफसर पर 50 रुपये प्रतिदिन के हिसाब से जुर्माना लगेगा। [धारा 97]

(ii) **पूँजी को घटाना** – अंश पूँजी द्वारा तथा गारण्टी द्वारा सीमित दायित्व वाली कम्पनी, अपने अन्तर्नियम द्वारा विशेष प्रस्ताव पास करके, न्यायालय की सहमति लेकर अपनी अंश पूँजी को घटा सकती है। [धारा 100]

(iii) **पूँजी का पुनर्संगठन करना** – अंशों के अधिकारों के परिवर्तन को ही पूँजी का पुनर्गठन कहते हैं। सीमानियम में अंशों के अधिकारों में परिवर्तन सम्बन्धी नियम न देने पर भी उनमें परिवर्तन लाया जा सकता है। ऐसा करने हेतु एक प्रस्ताव पास किया जाता है और न्यायालय द्वारा उसकी स्वीकृति प्राप्त की जाती है। यह प्रस्ताव बहुमत से प्राप्त किया हुआ होना चाहिए।

(iv) **विभाजित करना** – कम्पनी अपनी अंश पूँजी को अधिक धन के अंशों में एकीकरण या विभाजित कर सकती है।

(v) **उप-विभाजित करना** – कम्पनी अपने अंशों को कम राशि के अंशों में भी उप-विभाजित कर सकती है।

(vi) **स्कन्ध में परिवर्तन करना** – पूर्ण भुगतान हुए समस्त अंशों को स्कन्धों में तथा स्कन्ध को पूर्ण भुगतान अंशों में परिवर्तित किया जा सकता है।

अंश पूँजी में कमी करने की विधि (Procedure of Reducing Share Capital)

कम्पनी अधिनियम की धारा 100 में अंशपूँजी को कम करने की निम्नलिखित विधि बतायी गई हैं –

(i) **अन्तर्नियमों द्वारा अधिकृत** – अन्तर्नियमों में प्रावधान होने पर ही अंशपूँजी में कमी की जा सकती है।

(ii) **प्रस्ताव की प्रति भेजना** – 15 दिनों के अन्दर पारित प्रस्ताव की प्रमाणित प्रति न्यायालय व रजिस्ट्रार को भेजनी होगी।

(iii) **रजिस्ट्री कराना** – न्यायालय द्वारा पुष्टि होने पर रजिट्रार के कार्यालय में प्रमाण-पत्र प्राप्त करना होगा जो निश्चयात्मक प्रमाण है कि कम्पनी की पूँजी की कमी की औपचारिकताएँ पूर्ण कर ली गयी हैं।

(iv) **पुस्तकों में प्रविष्टि** – पूँजी की कमी की प्रविष्टियाँ कम्पनी की पुस्तकों में की जानी चाहिए।

(v) **नवीन अंश प्रमाण-पत्र** – सदस्यों की सूची बनाकर पूँजी की कमी की सूचना देकर अंश प्रमाण-पत्र चापस मँगवाए जाते हैं तथा बदले में नवीन अंश प्रमाण-पत्र दिए जाते हैं।

(vi) **परिवर्तित प्रलेख देना** – पार्षद सीमानियम व अन्तर्नियम में आवश्यक संशोधन करके उनकी प्रति रजिस्ट्रार कार्यालय में प्रस्तुत की जानी चाहिए।

(vii) **न्यायालय द्वारा पुष्टि** – न्यायालय आवश्यक सन्तुष्टि प्राप्त करने पर पूँजी में कमी की पुष्टि कर सकता है।

(viii) **विशेष प्रस्ताव** – सामान्य सभा में विशेष प्रस्ताव पारित करके कम्पनी की अंशपूँजी में कमी की जा सकती है।

ऋणों को पूँजी में बदलना [धारा 94 (अ)] – 1974 अधिनियम में धारा 94 (अ) नयी जोड़ी गयी है जिसके अनुसार यदि सरकार ने ऋणों को पूँजी में बदलने का आदेश दिया है तो कम्पनी की पूँजी इस राशि से बढ़ जाएगी और पार्षद सीमानियम में भी परिवर्तन कर दिए जाएंगे। एक सार्वजनिक वित्तीय संस्था भी कम्पनी के ऋणों को पूँजी में बदलने के लिए केन्द्रीय सरकार को आवेदन कर सकती है।

यदि न्यायालय के पास अन्याय या कुप्रबन्ध की दशा में कोई प्रार्थना-पत्र धारा 397 या 398 के अन्तर्गत दिया गया है, तो न्यायालय द्वारा सीमानियम में परिवर्तन कर देने पर भी कम्पनी इसमें न्यायालय की आज्ञा बिना परिवर्तन नहीं कर सकती है जो कि अधिनियम का विरोध करती हो। [धारा 404 (1)]

(6) **अंशदान व संघ वाक्य में परिवर्तन** – कम्पनी साधारण प्रस्ताव पास करके अपनी अंश पूँजी की राशि को बढ़ा सकती है, उसे अधिक धन के अंशों में एकीकरण कर सकती है तथा अंश को निर्धारित राशि से कम राशि के अंशों में उप-विभाजित भी कर सकती है। इसी प्रकार निर्गमित न किये गए अंशों को रद्द भी कर सकती है।

(7) **विशेष वाक्य में परिवर्तन** – संचालकों की नियुक्ति या रिटायर होने सम्बन्धी सम्बन्धी व्यवस्था पार्षद सीमानियम में दी जाती है और इनमें परिवर्तन लाने के लिए केन्द्रीय सरकार की अनुमति लेना आवश्यक होता है। इसी प्रकार संचालकों के पारिश्रमिक में परिवर्तन करने की अनुमति भी केन्द्रीय सरकार से ली जाती है।

[धारा 268 एवं 310]

यदि न्यायालय की यह राय हो कि सीमानियम में परिवर्तन करने से कम्पनी का मुख्य उद्देश्य ही समाप्त हो जाएगा तो वह परिवर्तन करने से इन्कार कर सकती हैं। साइकिलिस्ट टूरिंग क्लब (1907), अध्याय 289।

नोट सीमानियमों में परिवर्तन के बाद कोई व्यक्ति सीमानियमों की प्रतिलिपि की माँग करता है तो उसे संशोधित प्रतिलिपि ही उपलब्ध कराई जानी चाहिए। यदि ऐसा नहीं किया जाता है तो कम्पनी के प्रत्येक दोषी अधिकारी पर प्रत्येक जारी की गई प्रतिलिपि के लिए 100 रु. जुर्माना किया जा सकता है। (2000 में संशोधित धारा 40)

प्रश्न
(Questions)

NOTES

1.(अ) एक कम्पनी ने अपना रजिस्टर्ड कार्यालय कलकत्ता से भोपाल बदलने का निश्चिय किया है। इस निर्णय को क्रियान्वित करने की पद्धति का वर्णन कीजिये।

(ब) एक कम्पनी के नाम बदलने की विभिन्न क्रियाओं को संक्षिप्त में लिखिये।

2. पार्षद सीमानियम किसे कहते हैं? पार्षद अन्तर्नियम से उसके क्या सम्बन्ध हैं? पार्षद सीमानियम को किस प्रकार परिवर्तित किया जा सकता है?

3. पार्षद सीमानियम किसे कहते हैं? उसके वाक्यों को संक्षेप में लिखिये। उद्देश्य वाक्य को कब और किस प्रकार परिवर्तित किया जा सकता है?

4. किस प्रकार तथा किस आशय तक एक कम्पनी अपने पार्षद सीमानियम में परिवर्तन कर सकती है?

5. पार्षद सीमानियम से आप क्या समझते हैं? पार्षद सीमानियम की विषय सामग्री का वर्णन कीजिए।

6. "एक कम्पनी पार्षद सीमानियम की शर्तों में परिवर्तन नहीं कर सकती है, सिवाय उस दशा में जबकि अधिनियम में इसके लिये स्पष्ट व्यवस्था की गई हो।" इस कथन को समझाइए।

अपनी प्रगति की जाँच करें
Test your Progress

NOTES

4

पार्षद अन्तर्नियम

(ARTICLES OF ASSOCIATION)

प्रारंभिक – अन्तर्नियम कम्पनी के व्यापार के आन्तरिक प्रबन्ध से सम्बन्धित नियम है। यह पार्षद सीमानियम में दिए गए उद्देश्यों को प्राप्त करने के उद्देश्य से बनाए जाते हैं। कम्पनी का समामेलन कराने हेतु कम्पनी के रजिस्ट्रार के पास भेजे गए प्रलेखों में से यह दूसरा महत्वपूर्ण प्रलेख माना जाता है।

अन्तर्नियम कम्पनी के आन्तरिक प्रबन्ध को नियंत्रित करते हैं तथा इसके अधिकारियों के अधिकारों को परिभाषित करते हैं। यह निर्णय नरेशचन्द सान्याल बनाम कलकत्ता साख एक्सचेंज 1971 सुप्रीम कोर्ट के मामले में दिया गया था।

अन्तर्नियम की परिभाषा (Definition of Article of Association) – कम्पनी अधिनियम, 1965 की धारा 2 (2) के अनुसार, "अन्तर्नियमों से आशय कम्पनी के उन पार्षद अन्तर्नियमों से हैं, जो पिछले कम्पनी अधिनियम अथवा इस अधिनियम के अनुरूप मूल रूप से बनाये अथवा समय-समय पर परिवर्तित किये गए हों।"

अन्तर्नियम पार्षद सीमानियम के सहायक होते हैं और इसी कारण से अन्तर्नियम में पार्षद सीमानियम के प्रावधानों का वर्णन रहता है। इनकी सहायता से कम्पनी एवं संचालक मण्डल के मध्य अधिकार, कर्त्तव्य एवं शक्तियों का वर्णन किया जाता है। कम्पनी की आन्तरिक व्यवस्था के सम्बन्ध में सम्पूर्ण जानकारी अन्तर्नियम में दी जाती है।

आवश्यकता (Necessity) – कम्पनी अधिनियम की धाराएँ 26, 27, 29 व 30 विभिन्न प्रकार की कम्पनियों के लिए पार्षद अन्तर्नियम के निर्माण की आवश्यकता निम्न प्रकार है–

(i) **अंशों द्वारा निजी कम्पनी** – इस कम्पनी के लिए यह आवश्यक है कि वह अपने पार्षद सीमानियम के साथ-साथ पार्षद अन्तर्नियमों का भी पंजीयन करा ले।

(ii) **अंशों द्वारा सीमित कम्पनी** – इसके लिए अन्तर्नियम का पंजीयन कराना आवश्यक नहीं है और ऐसी परिस्थिति में प्रथम अनुसूची की सारणी 'अ' उस पर लागू हुई मानी जाती है। [धारा 26]

(iii) **गारन्टी द्वारा सीमित कम्पनी** – ऐसी कम्पनियों के लिए आवश्यक है कि वे अपने पार्षद सीमानियम के साथ-साथ पार्षद अन्तर्नियमों का भी पंजीयन करावें और उस पर हस्ताक्षर लें। इसमें सदस्यों की संख्या तथा तालिका 'अ' के समस्त नियम लागू होते हैं, जैसे हस्ताक्षरकर्ता के नाम, पते, पेशे साक्षी का वर्णन लेना आदि।

(iv) **असीमित कम्पनी** – एक असीमित कम्पनी के लिए आवश्यक है कि वह अपने पार्षद सीमानियम एवं अन्तर्नियम का साथ-साथ पंजीयन करावे तथा दोनों प्रलेखों पर समान व्यक्तियों के हस्ताक्षर होने चाहिए। इस कम्पनी का प्रारूप अनुसूची 1 की तालिका 'इ' के अनुसार होता है।

अन्तर्नियमों का प्रारूप (Forms of Articles) – प्रत्येक कम्पनी के अन्तर्नियम उसके अपने होने चाहिए, किन्तु अंशों द्वारा सीमित कम्पनी तालिका A अपना सकती है। अंशों द्वारा सीमित निजी, कम्पनी, असीमित कम्पनी या गारन्टी द्वारा सीमित कम्पनी के लिए उसके अपने अन्तर्नियम होने चाहिए तथा सीमानियम के साथ ही इनका पंजीकरण होना चाहिए। (धारा 26)

कम्पनी के अन्तर्नियम (i) मुद्रित, (ii) अनुच्छेदों में विभाजित, एवं (iii) सीमानियम पर हस्ताक्षर करने वाले व्यक्तियों द्वारा हस्ताक्षरित एवं प्रमाणित होना चाहिए। [धारा 30]

असीमित कम्पनी की दशा में अन्तर्नियमों में कम्पनी के सदस्यों की संख्या का विवरण देना होगा तथा अंश पूँजी की दशा में, पूँजी की मात्रा का वर्णन दिया जाना चाहिए। [धारा 27 (1)]

गारण्टी द्वारा सीमित कम्पनी की दशा में सदस्यों की संख्या का विवरण देना होगा। [धारा 27 (2)]

निजी कम्पनी की दशा में, अन्तर्नियम में धारा 3 (i), (iii) की आवश्यक बातों का उल्लेख होना चाहिए, जैसे: (i) अंशों के हस्तांतरण पर प्रतिबन्ध, (ii) सदस्यों की संख्या 50 तक सीमित, (iii) जनता को अंश देने पर प्रतिबन्ध। [धारा 43]

अधिनियम ने विभिन्न प्रकार की कम्पनियों के लिए विभिन्न प्रकार के अन्तर्नियम प्रतिपादित किए गए हैं, जो निम्न प्रकार हैं –

(i) **सारणी 'अ'** – यह अन्तर्नियम अंश पूँजी वाली लोक कम्पनी के लिए लागू होता है।

(ii) **सारणी 'ब'** – इस अन्तर्नियम की धाराएँ गारण्टी द्वारा सीमित कम्पनी, जिसकी अंश पूँजी न हो, पर लागू होती है।

(iii) **सारणी 'द'** – इस अधिनियम की धाराएँ अंश पूँजी वाली गारण्टी द्वारा सीमित कम्पनी की दशा में लागू होती हैं।

(iv) **सारणी 'इ'** – इसकी धाराएँ असीमित कम्पनी पर लागू की जाती हैं।

कम्पनियाँ उपर्युक्त प्रकार के अन्तर्नियमों में से किसी एक का चुनाव कर सकती हैं (धारा 29) प्रायः सीमित दायित्व वाली कम्पनियाँ सारणी 'अ' का ही अधिक प्रयोग करती हैं।

सीमित दायित्व वाली कम्पनी – यह कम्पनी अनुसूची 1 की तालिका में दिए हुए सब नियमों या इनमें से कुछ का प्रयोग कर सकती हैं। धारा 28 (1)। ऐसी कम्पनी जो पंजीकृत हुई है, उस पर भी अनुसूची 1 की तालिका 'अ' के नियम लागू होते हैं। [धारा 28 (2)]

अन्तर्नियम का क्षेत्र (Scope of Articles of Association)

अन्तर्नियम के क्षेत्र को निम्न प्रकार रखा जा सकता है :

(i) **सार्वजनिक नीति व सनियम के विपरीत न होना** – किसी भी कम्पनी के अन्तर्नियम सार्वजनिक नीति एवं सार्वजनिक अधिनियम के विपरीत नहीं होने चाहिए। इस प्रकार के विरोध करने वाले अन्तर्नियम व्यर्थ माने जाते हैं, जैसे पूँजी में से लाभांश का बँटवारा करना, कम्पनी को बट्टे पर अंश जारी करने के अधिकार देना, अन्तर्नियम में परिवर्तन करना, कम्पनी द्वारा अपने ही अंशों को क्रय करना।

(ii) **कम्पनी अधिनियम के अधीन होना** – अन्तर्नियम कम्पनी अधिनियम एवं पार्षद सीमानियम के अधीन होने से इसमें किसी भी ऐसी बात का उल्लेख नहीं होना चाहिए जो कि इनके विरुद्ध हो।

अन्तर्नियमों की विषय-सामग्री
(Contents of Articles of Association)

निम्नलिखित अधिकारों का प्रयोग एक कम्पनी उस समय तक नहीं कर सकती जब तक कि इनका विवरण अन्तर्नियमों में न दिया हो –

(i) सारणी 'अ' का पूर्णतया या अंशतः या निष्कासन। (ii) साधारण मीटिंग, प्रक्रिया, वोट देने एवं काल्पनिक व्यक्ति सम्बन्धी नियम। (iii) अंशों का हस्तान्तरण करना। (iv) प्रारंभिक अनुबन्धों को स्वीकार या अस्वीकार करना। (v) अंश सर्टीफिकेट एवं अंश वारण्ट। (vi) अंशों का आवंटन करना। (vii) याचनाएँ। (viii) अंशों का उप-विभाजन करना। (ix) संचालकों की योग्यता, पारिश्रमिक आदि। (x) मुख्य शब्दों की परिभाषाएँ। (xi) नोटिस। (xii) पंचनिर्णय। (xiii) खाते एवं अंकेक्षण। (xiv) पूँजी वाक्य का वर्णन। (xv) न्यूनतम अंशदान का निर्धारण। (xvi) प्रबन्ध सम्बन्धी व्यवस्था। (xvii) अंशों की जब्ती एवं पूर्वाधिकार। (xviii) पूँजी में वृद्धि एवं कमी करना। (xix) ऋण सम्बन्धी व्यवस्था। (xx) अभिगोपन कमीशन का भुगतान। (xxi) लाभांश, रिजर्व एवं ह्रास कोष की व्यवस्था। (xxii) सामान्य मुद्रा। (xxiii) समापन सम्बन्धी निशेष प्रावधान। (xxiv) कम्पनी द्वारा अन्तर्नियम में दिये होने पर अधिकारों का उपयोग करना, जैसे सार्वजनिक सील को भारत के बाहर प्रयोग करना, शोधनीय पूर्वाधिकार अंशों का निर्गमन, लाभांश का भुगतान करना, अंशपूँजी को कम करना आदि।

निजी कम्पनी का पार्षद अन्तर्नियम – निजी कम्पनी के अन्तर्नियम में अन्य बातों के अतिरिक्त इस बात का विवरण आवश्यक होना चाहिए कि सदस्यों की संख्या 50 तक सीमित है, अंशों के हस्तान्तरण पर प्रतिबन्ध है एवं अंशों को जनता में नहीं बेचा जा सकता।

पार्षद अन्तर्नियम में परिवर्तन
(Alteration in Articles of Association)

कम्पनी के पार्षद अन्तर्नियमों में सरलता से परिवर्तन किया जा सकता है, परन्तु परिवर्तन करते समय धारा 31 के निम्न प्रावधानों का पालन करना पड़ता है –

(i) **स्थिति यथावत** – कम्पनी अधिनियम की व्यवस्थाओं एवं पार्षद सीमानियम की शर्तों के अधीन विशेष प्रस्ताव द्वारा अन्तर्नियम को परिवर्तन किया जा सकता है।

(ii) **स्थिति परिवर्तन पर** – यदि एक लोक कम्पनी अपने अन्तर्नियमों को इस प्रकार बदले कि वह कम्पनी के स्थान पर निजी कम्पनी हो जाए, तो अन्तर्नियमों का ऐसा परिवर्तन उस समय तक प्रभावशाली न होगा, जब तक कि केन्द्रीय सरकार की सहमति प्राप्त न हो जाए।

अन्तर्नियम के परिवर्तन पर प्रतिबन्ध –

(i) **वैधानिक प्रतिबन्ध** (Statutory Restrictions) – अन्तर्नियमों में परिवर्तन करते समय निम्नलिखित वैधानिक प्रतिबन्धों को ध्यान में रखना चाहिए।

(1) **शर्तों के अधीन** – अन्तर्नियम में परिवर्तन पार्षद सीमानियम की शर्तों के अधीन होना चाहिए तथा अन्तर्नियमों की शर्तों का भी उल्लंघन नहीं होना चाहिए।

(2) **संचालकों में परिवर्तन पर केन्द्रीय सरकार की सहमति** – यदि लोक कम्पनी में कोई परिवर्तन प्रबन्ध संचालक या संचालक की नियुक्ति या पुनः नियुक्ति के सम्बन्ध में या एक संचालक के पारिश्रमिक के बढ़ाने के सम्बन्ध में हो तो उसके लिए केन्द्रीय सरकार की सहमति प्राप्त करना आवश्यक होगा। [धारा 268 एवं 310]

(3) **निजी कम्पनी में परिवर्तित होने पर** – अन्तर्नियम के ऐसे परिवर्तन जो लोक कम्पनी को निजी कम्पनी में परिवर्तित कर दें, मान्य नहीं होंगे जब तक कि उसके लिए केन्द्रीय सरकार की अनुमति प्राप्त न कर ली जाए।

(4) **अन्तर्नियम के अन्तर्गत परिवर्तन** – कम्पनी अधिनियम के बाहर किए गये अन्तर्नियम के परिवर्तन व्यर्थ माने जाते हैं। निम्न मामला इस बात को स्पष्ट करता है –

माधव रामचन्द्र बनाम कनारा बैंकिंग नियम – इस केस में एक सदस्य को कम्पनी की सदस्यता से वंचित कर दिया गया और संचालकों को हस्तांतरण विलेख के बिना ही उसके अंशों का पंजीकरण करने का अधिकार दिया गया। न्यायालय ने निर्णय दिया कि कम्पनी अधिनियम के विरुद्ध होने के कारण यह प्रस्ताव अवैध था।

(5) **विशेष प्रस्ताव** – अन्तर्नियम में किये जाने वाले प्रत्येक प्रकार के परिवर्तन के लिए विशेष प्रस्ताव पारित करना आवश्यक होता है [धारा 31 (1)]। यदि परिवर्तन करने के लिए किसी अन्य विधि का उपयोग किया जाता है तो वह अन्तर्नियम को व्यर्थ कर देगा।

(6) **दायित्व बढ़ने पर लिखित सहमित** – यदि अन्तर्नियम में कोई इस प्रकार का परिवर्तन किया जाता है कि उसमें सदस्यों का दायित्व बढ़ जाता है, तो यह परिवर्तन सदस्यों की लिखित सहमति प्राप्त करने पर ही प्रभावशील हो सकेगा।

(7) **न्यायालय की आज्ञा** – यदि न्यायालय को प्रार्थना- पत्र दिया गया है, जिसके आधार पर कम्पनी के अन्तर्नियमों में परिवर्तन कर दिया गया है, तो इस अन्तर्नियम में आगे कोई परिवर्तन न्यायालय की आज्ञा प्राप्त किए बिना, करना संभव न होगा। [धारा 304 (1)]

(ii) **न्यायगत प्रतिबन्ध** (Judicial Restrictions) – कम्पनी के अन्तर्नियम में न्यायगत प्रतिबन्धों में निम्न को सम्मिलित किया जा सकता है :

(1) **तृतीय पक्षों के साथ अनुबन्ध का खण्डन न होना** – कम्पनी के अन्तर्नियम में परिवर्तन इस प्रकार नहीं होना चाहिए कि उस कम्पनी को तृतीय पक्ष के साथ अनुबन्ध खण्डित करने के अधिकार प्राप्त हो सकें। (वैली ब्रिटिश इक्यूटेबिल एसुरेन्स क्र. सं. इसकी पुष्टि की गई।)

(2) **अवैध व्यापार की आज्ञा** – अन्तर्नियम में परिवर्तन इस प्रकार नहीं होना चाहिए कि उसके परिणामस्वरूप कम्पनी को अवैध व्यापार करने की आज्ञा प्राप्त हो जाए। वावमैन बनाम प्रकुलर सोसायटी लि. 1971 में इसकी पुष्टि की गयी।

(3) **न्यायालय परिवर्तन** – अन्तर्नियम में केवल वे ही परिवर्तन मान्य होंगे जो कि न्यायसंगत होंगे। यदि बहुसंख्यक अंशधारी अल्पसंख्यक अंशधारियों के अंशों को क्रय करने सम्बन्धी प्रस्ताव पारित कर लें तो वह न्यायसंगत नहीं माना जायेगा। ब्राउन बनाम ब्रिटिश एब्रेसिव व्हीट कं. में इसकी पुष्टि की गयी। इस मामले में कम्पनी के अन्तर्नियमों ने कम्पनी को उन सभी अंशों पर पूर्वाधिकार दिया जो कि पूर्णदत्त नहीं थे। A के पास कम्पनी के पूर्णदत्त तथा याचना बकाया वाले अंश भी थे। इसी बीच A की मृत्यु हो गयी। उसकी मृत्यु के साथ ही कम्पनी ने अन्तर्नियमों में परिवर्तन करके उसके पूर्णदत्त अंशों पर पूर्वाधिकार प्राप्त कर लिया। न्यायालय की राय में, यह पूर्वाधिकार भूतलक्षी एवं A के लिए हानिकारक होते हुए भी कम्पनी के हित में था और इसलिए पूर्णतया कानूनी माना गया।

(4) **कपटपूर्ण न होना** – यदि अन्तर्नियम में परिवर्तन करने से अल्पसंख्यक अंशधारियों के साथ कपटपूर्ण व्यवहार न होने लगे तो ऐसा परिवर्तन व्यर्थ माना जाएगा। नोरमेण्डी बनाम इण्डियन कोआपरेटिव एण्ड कं. 1918 में इसे माना गया।

(5) **सद्भावनापूर्ण परिवर्तन** – कम्पनी के अन्तर्नियमों में परिवर्तन सद्भावना के साथ किया जाना चाहिए और उससे कभी अंशधारी के साथ अन्याय नहीं होना चाहिए। एलेन बनाम गोल्डरीफ्स ऑफ बेस्ट अफ्रीका लि. 1900 में इसकी पुष्टि की गयी।

(6) **कम्पनी के लाभार्थ परिवर्तन** – अन्तर्नियम में व्यक्ति लाभ के लिए किये गये परिवर्तन सर्वथा व्यर्थ होते हैं। साइडवोटम बनाम केरसो लेसे लि. 1920 में इसकी पुष्टि की गयी।

(7) **अवैधानिक न होना** – कम्पनी के अन्तर्नियम में कोई ऐसा परिवर्तन नहीं होना चाहिए जो कि अधिनियम के अन्तर्गत वैधानिक न हो। [मेनियर बनाम छूपर टेलीग्राफ कम्पनी]

(iii) **अन्य प्रतिबन्ध** (Other Restrictions)

इसमें निम्न को सम्मिलित करते हैं :

(1) **प्रतिलिपि रजिस्ट्रार को भेजना** – अन्तर्नियम में परिवर्तन करने के पश्चात् उसकी प्रमाणित प्रतिलिपि को 15 दिन के अन्दर रजिस्ट्रार के कार्यालय में प्रस्तुत कर देना चाहिए।

(2) **प्रतिलिपि सदस्यों को देना** – परिवर्तित अन्तर्नियम की प्रतिलिपि 7 दिन के अन्दर प्रत्येक ऐसे सदस्य को प्रदान की जाएगी जो प्रार्थना-पत्र के साथ 1 रुपये का शुल्क भी जमा करता है। यदि कम्पनी इस नियम का पालन नहीं करती तो दोषी व्यक्तियों पर 50 रुपये तक जुर्माना किया जा सकता है। [धारा 39]

(3) **परिवर्तन के अनुसार प्रतिलिपि तैयार करना** – जब अन्तर्नियम में परिवर्तन कर दिये जाते हैं, तो उसके बाद तैयार की जाने वाली प्रतिलिपि में समस्त परिवर्तन का समावेश कर लेना चाहिए। यदि ऐसा नहीं किया गया तो दोषी व्यक्ति पर 100 रुपये तक जुर्माना किया जा सकता है। [2000 में संशोधित धारा 40]

अन्तर्नियम का पंजीयन करना
(Registration of Articles)

कम्पनी का रजिस्टर्ड कार्यालय जिस राज्य में हो, उस राज्य के रजिस्ट्रार के कार्यालय में अन्तर्नियम को पंजीयन हेतु प्रस्तुत करना चाहिए। इसके साथ अन्य प्रपत्रों को भी नत्थी करना होगा। यदि समस्त वैधानिक कार्यवाहियाँ पूर्ण कर दी जाएँ और रजिस्ट्रार सन्तुष्ट हो जाये तो वह कम्पनी के अन्तर्नियम का पंजीयन कर देता है। [धारा 33]

कम्पनी में होने वाले प्रस्तावों एवं ठहरावों की प्रतिलिपि को अन्तर्नियम की प्रतिलिपि के साथ नत्थी कर देना चाहिए। [धारा 192 (2)]

यदि अन्तर्नियम का पंजीयन नहीं हुआ है तो किसी भी सदस्य के प्रार्थना करने एवं 1 रुपये की शुल्क देने पर ठहराव की प्रतिलिपि दी जा सकती है। [धारा 192 (3)]

निम्न प्रस्तावों का पंजीयन कराना आवश्यक हो जाता है – (i) कम्पनी द्वारा विशेष प्रस्ताव पारित करने पर, (ii) समस्त सदस्यों द्वारा पास किए गए प्रस्ताव, (iii) प्रबन्ध संचालक समझौता एवं संचालक मण्डल के प्रस्ताव, (iv) सचिव व कोषाध्यक्ष के समझौते, (v) समस्त सदस्यों द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव, (vi) प्रमुख विक्रय एजेण्ट की नियुक्ति का प्रस्ताव, (vii) ऐच्छिक विघटन सम्बन्धी प्रस्ताव।

दोषी पाये गये व्यक्ति पर 20 रुपये प्रतिदिन की दर से दण्ड लगाया जा सकता है।

पार्षद सीमानियम एवं अन्तर्नियम में अन्तर
(Distinction between Memorandum and Articles)

कम्पनी के पार्षद सीमानियम व अन्तर्नियम में प्रमुख अन्तर निम्नलिखित हैं :

(i) **सम्बन्ध का अन्तर** – सीमानियम कम्पनी एवं उससे सम्बन्ध रखने वाले अन्य व्यक्तियों के मध्य एक अनुबन्ध होता है। अन्तर्नियम आन्तरिक विषयों से संबंधित होता है तथा यह अंशधारियों एवं अधिकारियों के मध्य सम्बन्धों को प्रदर्शित करता है।

(ii) **परिवर्तन का अन्तर** – सीमानियम को सरलता से परिवर्तित नहीं किया जा सकता, जबकि अन्तर्नियमों को विशेष प्रस्ताव पास करके सरलता से परिवर्तित किया जा सकता है।

(iii) **मुख्य प्रपत्र** – सीमानियम कम्पनी का मुख्य प्रपत्र होता है और उसे बनाना आवश्यक होता है जबकि अन्तर्नियम कम्पनी का सहायक प्रपत्र है और इसका बनाना अंशों द्वारा सीमित कम्पनी के लिए आवश्यक नहीं होता है। आशवरी रेलवे कं. बनाम रिचे के मामले में न्यायाधीश ने कहा है कि सीमानियम वह क्षेत्र निर्धारित करता है जिसका उल्लंघन कम्पनी का कोई कार्यकर्ता नहीं कर सकता है।

(iv) **बाह्य व्यक्ति** – यदि बाह्य व्यक्ति कम्पनी के साथ कोई ऐसा अनुबन्ध करता है जो सीमानियम के बाहर है तो उसे न्यायालय द्वारा प्रदर्शित नहीं कराया जा सकता, जबकि अन्तर्नियम के बाहर अनुबन्ध होने पर उसे न्यायालय द्वारा प्रवर्तित कराया जा सकता है।

(v) **शासित होना** – सीमानियम, पार्षद, अन्तर्नियम द्वारा शासित नहीं हो सकता, जबकि, अन्तर्नियम पार्षद सीमानियम द्वारा शासित होता है।

(vi) **अधिनियम का अन्तर** – सीमानियम कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत बनाया जाता है और वह अधिनियम के अधीन होता है, जबकि कम्पनी का अन्तर्नियम सीमानियम एवं अधिनियम दोनों के अधीन होता है।

(vii) **स्पष्टीकरण का अन्तर** – पार्षद सीमानियम अन्तर्नियम का स्पष्टीकरण नहीं करता, जबकि अन्तर्नियम सीमानियम का स्पष्टीकरण कर देता है।

(viii) **उद्देश्य का अन्तर** – पार्षद सीमानियम कम्पनी के उद्देश्यों को बताता है। अन्तर्नियम में सीमानियम में दिये गये उद्देश्यों को पूर्ण करने सम्बन्धी नियम बनाये जाते हैं।

पार्षद सीमानियम व अन्तर्नियम का प्रभाव (Effects of Memorandum and Articles of Association)– पार्षद सीमानियम एवं अन्तर्नियमों का प्रभाव धारा 36 में दिया हुआ है। इन प्रावधानों का यह प्रभाव है कि कम्पनी के सीमानियम व अन्तर्नियमों द्वारा कम्पनी तथा उसके प्रत्येक सदस्य के बीच एक अनुबन्ध का निर्माण हो जाता है –

(i) **कम्पनी एवं संचालकों का सम्बन्ध** – कम्पनी का अन्तर्नियम कम्पनी एवं संचालकों के मध्य एक सीमा तक अनुबन्ध का सम्बन्ध स्थापित करता है। एक व्यक्ति के कम्पनी में संचालन की तरह कार्य करने एवं आपके अधिकारों का प्रयोग करने पर कम्पनी व संचालक के मध्य गर्भित अनुबन्ध माना जाता है। संचालकों की नियुक्ति अन्तर्नियमों के आधार पर की जाती है।

(ii) **कम्पनी एवं सदस्यों के मध्य सम्बन्ध** – कम्पनी के पार्षद सीमानियम कम्पनी एवं सदस्यों के मध्य एक अनुबन्ध स्थापित करते हैं। इस आधार पर (अ) प्रत्येक सदस्य अन्तर्नियम में दी गयी सूचनाओं से बद्ध होता है एवं (ब) सदस्य कम्पनी को अधिकारों के बाहर कार्य करने से रोक सकते हैं। वेल्टन बनाम साफरी के मामले में कहा गया कि किसी भी सदस्य को किसी दूसरे सदस्य के विरुद्ध कोई ऐसा अधिकार नहीं होता जो अन्तर्नियम के परे हो।

(iii) **सदस्यों का आपस में सम्बन्ध** – कम्पनी के पार्षद सीमानियम एवं अन्तर्नियमों के द्वारा सदस्यों में आपस में कोई भी प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित नहीं होता। परन्तु एक सदस्य का दूसरे सदस्य से अप्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित हो जाता है, जिसे कम्पनी की समापन की दशा में निस्तारक की सहायता से या साधारण परिस्थितियों में कम्पनी की सहायता से प्रवर्तित करा सकता है। सदस्यों के अन्तर्नियम के बाहर कार्य करने पर एक सदस्य भी अल्पमत की रक्षा हेतु वाद प्रस्तुत कर सकता है।

(iv) **कम्पनी एवं बाह्य व्यक्तियों का सम्बन्ध** – अन्तर्नियम से बाह्य व्यक्तियों को बद्ध नहीं किया जा सकता और न ही वे व्यक्ति किसी कार्य के लिए कम्पनी पर कोई दबाव डाल सकते हैं।

अनधिकृत कार्यों का सम्बन्ध
(Doctrine of Ultra-Vires)

कम्पनी अधिनियम के क्षेत्र के बाहार की गयी समस्त क्रियाएँ अनधिकृत क्रियाएँ मानी जाती हैं। अनधिकृत क्रियाओं को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है –

(i) **पार्षद सीमानियम द्वारा अनधिकृत** – कम्पनी के वे समस्त कार्य जो कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत, परन्तु पार्षद सीमानियम के बाहर किये जाते हैं, उन्हें सीमानियम द्वारा अनधिकृत क्रियाएँ कहते हैं। यदि सीमानियम में उस विधि के अनुरूप ही परिवर्तन कर दिया जाए तो उन क्रियाओं को वैध घोषित किया जा सकता है। यदि कोई कम्पनी अधिनियम के बाहर किया जाये तो समस्त अंशधारियों के स्वीकार करने पर भी वह अनधिकृत ही माना जायेगा।

(ii) **अन्तर्नियम द्वारा अनधिकृत कार्य** – यदि कोई कार्य पार्षद सीमानियम के अन्तर्गत, परन्तु पार्षद अन्तर्नियम के बाहर किया जाये तो वे अन्तर्नियम द्वारा अनधिकृत क्रियायें कहलायेंगी। यदि कम्पनी में विशेष प्रस्ताव पारित करके अन्तर्नियम में आवश्यक परिवर्तन कर दिये जाएँ तो वह कार्य वैधानिक बन जाते हैं। यदि संचालक कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत, परन्तु अपनी शक्ति के बाहर कार्य करता है तो कम्पनी उस कार्य का साधारण सभा द्वारा पुष्टीकरण कर सकती है। इस प्रकार के कार्यों के प्रति कम्पनी जिम्मेदार न होकर, संचालक स्वयं जिम्मेदार होते हैं।

(iii) **कम्पनी अधिनियम द्वारा अनधिकृत कार्य** – जो कार्य कम्पनी अधिनियम में दिये गये अधिकारों के बाहर किये जाते हैं, उन्हें कम्पनी अधिनियम द्वारा अनधिकृत क्रियाएँ कहेंगे। इन क्रियाओं को किसी भी अवस्था में वैध नहीं

कहा जा सकता, चाहे कम्पनी के समस्त सदस्य उसे वैध करने का प्रस्ताव पारित ही क्यों न कर लें। इसमें निम्न को सम्मिलित करते हैं –

(अ) बोनस अंशों का मुफ्त वितरण करना। (ब) पुनर्निर्गमित अंशों के लाभों को सदस्यों में बाँटना। (स) पूँजी में से लाभांश का विवरण करना। (द) अनधिकृत मात्रा में पूँजी का निर्गमन करना। (य) अनधिकृत ढंग से कम्पनी की पूँजी को कम करना। (र) जब्त किये गये अंशों की बिक्री के समस्त या कुछ लाभ को सदस्यों में विभाजित करना।

भारत में इस सिद्धांत का प्रारंभ 1866 में हुआ। लक्ष्मन स्वामी मुदालियर बनाम भारत जीवन बीमा निगम के मामले में संचालकों को यह अधिकार था कि वे किसी भी पुण्यार्थ उद्देश्य हेतु भुगतान कर सकते थे। अंशधारियों के प्रस्ताव के आधार पर संचालकों ने 2 लाख रुपए एक ऐसे प्रन्यास को दिए जो तांत्रिक व व्यापारिक ज्ञान की वृद्धि हेतु बनाया गया था। न्यायालय ने इस भुगतान को अनधिकृत घोषित किया।

अनधिकृत कार्यों के प्रभाव
(Effects of Ultra-Vires Works)

(i) **मुकदमा का हक न होना** – अनधिकृत कार्यों के लिए कम्पनी पर कोई मुकद्दमा नहीं चलाया जा सकता। इसी प्रकार कम्पनी भी अन्य व्यक्तियों पर मुकद्दमा नहीं चला सकती।

(ii) **संचालकों का व्यक्तिगत दायित्व** – कम्पनी के संचालक कम्पनी की पूँजी को जब अनधिकृत कार्यों में लगा दें तो उस हानि के लिए वे कम्पनी के प्रति जिम्मेदार रहते हैं।

(iii) **प्रभावहीन प्रसंविदा** – कोई भी प्रसंविदा या निर्णय जो अनधिकृत कार्यों पर आधारित हो, वह प्रभावपूर्ण नहीं हो सकता। [सेन्ट्रल ट्रान्सपोर्टेशन कं. बनाम पूलमैन कार कं.]।

(iv) **ऋण के लिए दावा** – यदि कम्पनी ने कोई ऋण अनधिकृत ढंग से लिया है, तो ऋणदाता अपने धन को वसूल करने के लिए कम्पनी पर दावा कर सकता है।

(v) **पुष्टीकरण का अभाव** – अनधिकृत कार्यों के लिए पुष्टीकरण का नियम लागू नहीं होता।

(vi) **स्थगन आदेश** – अनधिकृत कार्य किये जाने पर कम्पनी का कोई भी सदस्य उसे रोकने हेतु स्थगत आदेश प्राप्त कर सकता है। आटार्नी जनरल बनाम ग्रेट ईस्टर्न रेलवे कं. में इसकी पुष्टि की गयी।

(vii) **सम्पत्ति पर अधिकार** – यदि अधिकारों के बाहर कोई सम्पत्ति क्रय की जाती है तो भी वह कम्पनी के अधिकार में ही रहेगी। आयर्स बनाम साऊथ आस्ट्रेलिया एण्ड कं. टर्नर बनाम बैंक ऑफ बम्बई में इसकी पुष्टि की गयी।

(viii) **कर्त्तव्य भंग का दायित्व** – बाहरी व्यक्ति को कम्पनी के साथ अधिकारों के बाहर कार्य करने को प्रलोभित करने पर व्यक्ति को होने वाली हानि के लिए संचालक उत्तरदायी होंगे [बीक्स बनाम प्रोपर्ट]।

अधिकृत कार्यों का सिद्धांत
(Doctrine of Intra Vires)

जो कार्य कम्पनी अधिनियम पार्षद सीमानियम एवं पार्षद अन्तर्नियम के अन्दर किए जाते हैं उन्हें अधिकारों के अन्दर कहा जाता है। कम्पनी के अधिकृत कार्यों को तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं –

(i) **पार्षद सीमानियम द्वारा अधिकृत कार्य** – जो कार्य पार्षद सीमानियम के अन्तर्गत किये जाते हैं, उन्हें इस वर्ग में सम्मिलित किया जाता है।

(ii) **पार्षद अन्तर्नियम द्वारा अधिकृत कार्य** – जो कार्य कम्पनी अपने पार्षद अन्तर्नियमों के अन्तर्गत करती है उन कार्यों को अन्तर्नियम द्वारा अधिकृत कार्य माना जाता है।

(iii) **कम्पनी अधिनियम द्वारा अधिकृत कार्य** – कम्पनी के जो कार्य कम्पनी अधिनियम की सीमाओं के अन्तर्गत किये जाते हैं, उन्हें इस वर्ग में सम्मिलित किया जाता है।

सिद्धांत के अपवाद – बाह्य व्यक्तियों को कम्पनी के आन्तरिक प्रबन्ध के कार्यों की जाँच करने का अधिकार नहीं है, परन्तु इसके निम्न अपवाद हैं –

(1) अनियमितता का ज्ञान होने पर यह सिद्धांत लागू नहीं होता है। हावर्ड बनाम पेटेण्ट आइवोरी कं. के मामले में संचालकों को 1000 पौण्ड तक उधार लेने का अधिकार था। संचालकों ने अपने पास से 2500 पौण्ड उधार लिए और इस राशि के लिए ऋण-पत्र ले लिए। यह निर्णय दिया गया कि ऋण-पत्र 1000 पौण्ड तक उचित थे।

(2) कम्पनी से काम में कपटपूर्ण एवं व्यर्थ कार्य करने पर सिद्धांत का लागू न होना।

(3) कम्पनी का सौदा कम्पनी के साधारण व्यापार से सम्बन्धित होने पर यह नियम लागू नहीं होता। क्रेडिट बैंक गेसेल बनाम स्नेहकर लि. 1927 में एक सचिव ने संचालकों के प्रसंविदे का पुष्टीकरण किया जबकि उसे यह अधिकार नहीं था। निर्णय दिया गया कि कम्पनी इस प्रसंविदे से बद्ध नहीं थी, क्योंकि पुष्टीकरण करना सचिव के साधारण कर्त्तव्यों में नहीं आता था।

(4) पार्षद सीमानियम का ज्ञान न होने पर यह नियम लागू नहीं होता। [हैली हचिन्सन बनाम ब्रेहेड लि. 1967]।

(5) अधिकारों के बाहर कार्य होने पर भी बाह्य व्यक्ति सिद्धांत का लाभ नहीं उठा सकता।

प्रारंभिक अनुबन्ध
(Preliminary Contracts)

प्रारंभिक अनुबन्ध कम्पनी की स्थापना से पूर्व किये जाते हैं। जब किसी कम्पनी का निर्माण वर्तमान चालू व्यवसाय को क्रय करने के उद्देश्य से किया जाता है तो साधारणतया व्यवसाय के मालिक एवं प्रवर्तकों के मध्य एक अनुबन्ध स्थापित हो जाता है और यह प्रवर्तक कम्पनी के एजेण्ट के रूप में कार्य करते रहते हैं, जबकि कम्पनी का अभी तक कोई जन्म न हुआ हो। इस प्रकार के समस्त अनुबन्धों को प्रारंभिक अनुबन्ध के अन्तर्गत सम्मिलित किया जाता है।

कठिनाइयाँ – प्रारंभिक अनुबन्ध की प्रमुख कठिनाइयाँ निम्नलिखित हैं –

(i) **वैधानिक कठिनाई** – प्रारंभिक अनुबन्ध मालिक के एजेण्ट द्वारा किये जाते थे, जबकि मालिक का अभी जन्म ही नहीं हुआ था। अतः ऐसे अनुबन्धों के लिए कम्पनी को न तो बाध्य किया जा सकता है और न ही उसे अनुबन्ध की पुष्टि करने के अधिकार प्राप्त होते हैं।

(ii) **अनुबन्ध सम्बन्धी कठिनाई** – केवल उसी व्यक्ति को अनुबन्ध को पूरा करने के लिए बाध्य किया जा सकता है जिसने कि कम्पनी की ओर से ऐसा अनुबन्ध किया है, परन्तु प्रारंभिक अनुबन्ध के समय कम्पनी का जन्म न होने से यह कठिनाई उपस्थित होती है।

(iii) **व्यावहारिक कठिनाइयाँ** – प्रारंभिक अनुबन्ध में अनेक व्यावहारिक कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं जैसे कि अनुबन्ध में किसका नाम दिया जाए, व्ययों को कौन सहन करे मुद्रांक व कागज किस नाम से हो आदि।

इन कठिनाइयों के लिए कम्पनी से अनुबन्ध करके इसे निश्चित अवधि में दूर किया जाता है। इसी प्रकार व्ययों के सम्बन्ध में प्रवर्तक प्रारंभ में उस व्यय को स्वयं सहन करते हैं तथा बाद में अपने पारिश्रमिक के समय उसे वसूल कर लेते हैं।

प्रभाव (Effects)

यदि कोई व्यक्ति कम्पनी के साथ किसी प्रकार का व्यवहार या अनुबन्ध करता है तो यह मान लिया जाता है कि उसने यह जान लिया है कि कम्पनी के अधिकार की सीमा, संचालकों के अधिकार की सीमा तथा अन्तर्नियमों द्वारा उन पर लगाये गये प्रतिबन्धों की सीमा क्या है ? यदि कोई व्यक्ति कम्पनी के साथ कोई ऐसा अनुबन्ध करता है जो इन सार्वजनिक प्रलेखों में दिये गये अधिकारों के बाहर है, तो इसका प्रभाव यह होता है कि वह स्वयं अपने आपको जोखिम में डालता है। ऐसा व्यक्ति कंम्पनी द्वारा उक्त अनुबन्ध का पालन न किये जाने पर कम्पनी के विरुद्ध वाद प्रस्तुत नहीं कर सकता है। उदाहरण के लिए, **कोटला वैंकट स्वामी** बनाम **राममूर्ति** के विवाद में कम्पनी के अन्तर्नियमों में इस बात का उल्लेख था कि सभी अनुबन्धों, विलेख आदि पर प्रबंध संचालक, सचिव तथा एक कार्यशील संचालक–तीनों के संयुक्त रूप में हस्ताक्षर होने चाहिए। कम्पनी द्वारा एक रहन विलेख कम्पनी की ओर से राममूर्ति के पक्ष में निर्गमित किया गया। इस विलेख पर केवल सचिव तथा एक कार्यशील संचालक के हस्ताक्षर थे। न्यायालय द्वारा यह निर्णय दिया गया कि कम्पनी उक्त रहन विलेख के अन्तर्गत भुगतान करने के लिए बाध्य नहीं है क्योंकि उस पर प्रबन्ध संचालक के हस्ताक्षर नहीं थे।

अपवाद (Exception)

रचनात्मक सूचना सिद्धांत का यह अपवाद 'आन्तरिक प्रबन्ध का सिद्धांत' है जिसका प्रतिपादन 1856 में **रायल ब्रिटिश बैंक** बनाम **टरक्वाण्ड** के विवाद में किया गया था।

आन्तरिक प्रबन्ध का सिद्धांत
(Doctrine of Indoor Management)

अर्थ (Meaning)

आन्तरिक प्रबन्ध के सिद्धांत के अनुसार कम्पनी से व्यवहार अथवा अनुबन्ध करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को यह मान लेने का अधिकार है कि जहाँ तक कम्पनी की आन्तरिक कार्यवाहियों का सम्बन्ध है, समस्त कार्य नियमित रूप से

किये गये हैं। बाहरी व्यक्ति का यह कार्य कदापि नहीं है कि वह यह देखे कि कम्पनी की आन्तरिक कार्यवाहियाँ नियमानुसार चल रही हैं, किन्तु उसका यह उत्तरदायित्व अवश्य है कि वह इस बात का पता अवश्य लगाये कि प्रस्तावित व्यवहार अथवा अनुबन्ध कहीं कम्पनी के सार्वजनिक प्रलेखों (पार्षद सीमानियम व पार्षद अन्तर्नियम) के असंगत तो नहीं हैं। यदि किसी कारणवश उन कार्यवाहियों का पालन नहीं हुआ हो तो इसका उत्तरदायित्व कम्पनी पर होगा। उक्त व्यक्ति के अधिकार इससे प्रभावित नहीं होंगे।

केस लॉ (Case Law)

आन्तरिक प्रबन्ध सिद्धांत का प्रतिपादन सन् 1856 में **रायल ब्रिटिश बैंक बनाम टरक्वाण्ड** नामक विवाद में किया गया था। इस विवाद में कम्पनी के अन्तर्नियमों में संचालकों को बॉण्ड निर्गमन करने का अधिकार था बशर्ते कि इसके लिए सदस्यों की सभा में सामान्य प्रस्ताव पारित कर दिया जाए। संचालकों ने टरक्वाण्ड बॉण्ड निर्गमित कर दिये किन्तु उसके लिए कम्पनी के सदस्यों की सभा में निर्धारित प्रस्ताव पारित नहीं कराया। न्यायालय द्वारा यह निर्णय दिया गया कि टरक्वाण्ड को यह मान लेने का अधिकार था कि संचालकों ने जो बॉण्ड निर्गमित किये हैं उनके लिए वे साधारण प्रस्ताव द्वारा अधिकृत हैं। अतएव टरक्वाड उक्त बॉण्डों के आधार पर कम्पनी से रुपया पाने का अधिकारी है। उपर्युक्त विचार का समर्थन **पेरूवियन इण्डस्ट्रियल बैंक लि.** बनाम **कारटून मैन्यूफैक्चरिंग कम्पनी लि.** के विवाद में भी किया गया है।

अपवाद (Exceptions)

आन्तरिक प्रबन्ध सिद्धांत के अनुसार कम्पनी से व्यवहार अथवा अनुबन्ध करने वाले व्यक्ति को यह मान लेने का अधिकार है कि कम्पनी का आन्तरिक प्रबन्ध ठीक तरह से चल रहा है, किन्तु इस सिद्धांत में निम्नलिखित अपवाद हैं :

(1) **जालसाजी की दशा में** (In case of Forgery) – यदि कम्पनी से व्यवहार करने वाला व्यक्ति किसी ऐसे प्रलेख पर निर्भर रहा है जिसमें जालसाजी की गई तो आन्तरिक प्रबन्ध का सिद्धांत लागू नहीं होगा।

केस लॉ (Case Law)

रूबिन बनाम ग्रेट फिंगाल कन्सोलिडेटेड कम्पनी – नामक विवाद में कम्पनी के सचिव ने जाली अंश प्रमाण-पत्र बिना किसी अधिकार के निर्गमित कर दिया। धारक ने इस प्रमाण-पत्र के आधार पर धारित अंशों के सम्बन्ध में रजिस्टर्ड होने का वाद प्रस्तुत किया। न्यायालय ने अंश प्रमाण-पत्र को जाली होने के आधार पर व्यर्थ घोषित कर दिया।

(2) **जाँच-पड़ताल आयोजित करना** (Put on Enquiry) – यदि परिस्थितियाँ ऐसी हैं कि कम्पनी से व्यवहार करने वाले व्यक्ति से उचित पूछताछ की होती तो उक्त अनियमितता का पता सरलता से जग जाता, तो आन्तरिक प्रबन्ध का सिद्धांत लागू नहीं होगा।

(3) **अनियमितता की जानकारी होना** (Knowledge of Irregularity) – यदि कम्पनी से व्यवहार करने वाले बाहरी व्यक्ति को अनियमितता की वास्तविक अथवा रचनात्मक सूचना है एवं इस बात का भी पता है कि अन्तर्नियमों द्वारा निर्धारित कार्यविधि का पालन नहीं किया है, तो आन्तरिक प्रबन्ध का सिद्धांत लागू नहीं होगा। (**हॉवर्ड बनाम पेटेण्ट आइवरी कम्पनी**)

(4) **अनियमितताओं का सन्देह होने पर** (Suspicion of Irregularities) – यदि कम्पनी के साथ व्यवहार करने वाले बाहरी पक्षकार को इस बात का सन्देह हो कि कम्पनी के आन्तरिक प्रबन्ध के सम्बन्ध में अनियमितताएँ हो रही हैं और वह उक्त सन्देह को दूर किये बिना ही कम्पनी के साथ व्यवहार करता है तो आन्तरिक प्रबन्ध का सिद्धांत लागू नहीं होगा।

(5) **कम्पनी के साधारण व्यवहार असंगत होना** (Inconsistent with the General Business of the Company) – यदि कम्पनी के साथ किया जाने वाला कोई व्यवहार कम्पनी के साधारण व्यवसाय से सम्बन्धित नहीं है, तो आन्तरिक प्रबन्ध का सिद्धांत लागू नहीं होगा।

(6) **कपटपूर्ण तथा व्यर्थ कार्य** (Fraudulent and Void Act) – यदि कम्पनी के नाम से किया जाने वाला कार्य कपटपूर्ण एवं व्यर्थ है, तो आन्तरिक प्रबन्ध का सिद्धांत लागू नहीं होगा।

(7) **कार्य जो प्रत्यक्षतः अधिकार सीमा के बाहर हों** (Act Beyond Apparent Authority) – यदि कम्पनी के किसी अधिकारी का कोई कार्य इस प्रकार का है जो प्रत्यक्षतः उसकी अधिकार सीमा के बाहर है तो आन्तरिक प्रबन्ध का सिद्धांत लागू नहीं होगा।

केस लॉ (Case Law)

आनन्द बिहारी लाल बनाम **दिनशा एण्ड कम्पनी** के विवाद में वादी ने कम्पनी के लेखापाल (Accountant) से कम्पनी की सम्पत्ति का हस्तान्तरण स्वीकार किया था। न्यायालय द्वारा इस हस्तांतरण को व्यर्थ घोषित किया गया क्योंकि हस्तान्तरण करने वाला प्रत्यक्षतः उसकी अधिकार सीमा के बाहर था।

(8) **पार्षद अन्तर्नियमों के विषय में अनभिज्ञता** (Ignorance of Articles of Association) – यदि बाहरी व्यक्ति कम्पनी के पार्षद अन्तर्नियम से अनभिज्ञ होने के कारण कम्पनी से कोई ऐसा व्यवहार अथवा अनुबन्ध करता है जो कि इन दोनों के असंगत अथवा प्रतिकूल है, तो आन्तरिक प्रबन्ध का सिद्धांत लागू नहीं होगा। इस सम्बन्ध में **लक्ष्मी रतन लाल कॉटन मिल्स** बनाम **जी.के. जूट मिल्स कम्पनी** का विवाद महत्वपूर्ण है।

अनाधिकृत कार्यों का सिद्धांत तथा आन्तरिक प्रबन्ध के सिद्धांत में अन्तर
(Difference Between Doctrine of Ultra-vires and Doctrine of Indoor Management)

अन्तर का आधार	अनधिकृत कार्यों का सिद्धांत	आन्तरिक प्रबन्ध का सिद्धांत
1. वाद प्रस्तुत किया जाना	अनधिकृत कार्यों के लिए न तो कम्पनी अन्य पक्षकारों पर और न अन्य पक्षकार कम्पनी पर वाद प्रस्तुत कर सकते हैं क्योंकि वे पूर्णतः व्यर्थ एवं निष्प्रभावी होते हैं।	आन्तरिक प्रबन्ध सम्बन्धी कार्यों के लिए कम्पनी अन्य पक्षकारों पर और अन्य पक्षकार कम्पनी पर वाद प्रस्तुत कर सकते हैं क्योंकि वे वैध होते हैं।
2. तृतीय पक्षकारों द्वारा क्षति वहन किया जाना	अनधिकृत कार्यों के सिद्धांत के अन्तर्गत किये गये कार्य व्यर्थ होते हैं, अतएव क्षति तृतीय पक्षकारों द्वारा वहन की जाती है।	आन्तरिक प्रबन्ध के सिद्धांत के अन्तर्गत किये गए कार्य वैध होते हैं, अतएव क्षति तृतीय पक्षकार द्वारा वहन नहीं करनी पड़ती है।
3. प्रभाव	अनधिकृत कार्यों का कम्पनी पर कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता क्योंकि ये व्यर्थ, प्रभावहीन एवं अधिकार सीमा के परे होते हैं।	इनका कम्पनी पर प्रभाव पड़ता है क्योंकि ये वैधानिक एवं अधिकार सीमा के अन्तर्गत होते हैं।
4. कम्पनी का बाध्य होना	अनधिकृत कार्यों के लिए कम्पनी बाध्य नहीं है क्योंकि वे व्यर्थ एवं प्रभावहीन होते हैं।	इसके अन्तर्गत आने वाले कार्यों के लिए कम्पनी बाध्य होती है।
5. कार्यों का सम्बन्ध	इस सिद्धांत का सम्बन्ध कम्पनी के अधिकार क्षेत्र के बाहर के कार्यों से है।	इस सिद्धांत का सम्बन्ध कम्पनी के अधिकारों के अन्तर्गत आने वाले कार्यों से है।
6. हितों की रक्षा	यह सिद्धान्त कम्पनी तथा उसके सदस्यों के हितों की रक्षा करता है।	यह सिद्धांत बाहरी व्यक्तियों के हितों की रक्षा करता है।
7. सिद्धांत का प्रतिपादन	अनधिकृत कार्यों के सिद्धांत का प्रतिपादन सन् 1875 में एशबरी रेलवे कैरिज एण्ड आइरन कम्पनी लि. बनाम रिचे के विवाद में लार्ड केयर्न्स ने किया	आन्तरिक प्रबन्ध के सिद्धांत का प्रतिपादन सन् 1856 में रॉयल ब्रिटिश बैंक बनाम टरक्वाण्ड के विवाद में लॉर्ड हेथरले ने किया।
8. अर्थ	अनधिकृत कार्यों के सिद्धांत से आशय ऐसे कार्य से है जो कम्पनी अधिनियम, पार्षद सीमानियम अथवा पार्षद अन्तर्नियम के क्षेत्र के बाहर हो।	कम्पनी के साथ सद्भावनापूर्वक व्यवहार करने वाले बाहरी व्यक्ति को यह अनुमान लगाने का अधिकार है कि कम्पनी की सभी आन्तरिक कार्यवाहियाँ नियमानुसार पूरी कर ली गई हैं। इसे ही आन्तरिक प्रबन्ध का सिद्धांत कहते हैं।

प्रश्न
(Question)

1. निम्नलिखित में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
   (i) पार्षद सीमानियम तथा पार्षद अन्तर्नियम।
   (ii) अनधिकृत कार्यों के सिद्धांत तथा आन्तरिक प्रबन्ध के सिद्धांत।

NOTES

2. अन्तर्नियमों से आप क्या समझते हैं? उनकी विषय-सामग्री का वर्णन कीजिये। उन्हें किस प्रकार परिवर्तित किया जाता है?
3. 'आन्तरिक प्रबन्ध के सिद्धांत' पर एक विस्तृत टिप्पणी लिखिये
4. "कम्पनी का सीमानियम व अन्तर्नियम सार्वजनिक प्रलेख है।" इस कथन की व्याख्या कीजिए तथा आन्तरिक प्रबन्ध के सिद्धांत की व्याख्या कीजिए।
5. पार्षद सीमानियम और पार्षद अन्तर्नियम के रजिस्ट्रेशन के प्रभाव की विवेचना कीजिये। रचनात्मक सूचना के सिद्धांत को बताइये।
6. "कम्पनी से व्यवहार रखने वाला प्रत्येक व्यक्ति कम्पनी के सीमानियम तथा अन्तर्नियमों की जानकारी रखता हुआ माना जाता है।" इस कथन की व्याख्या कीजिए। क्या इसके कुछ अपवाद हैं?
7. "पार्षद सीमानियम एवं अन्तर्नियम लोक दस्तावेज हैं जिनकी रचनात्मक सूचना कम्पनी से व्यवहार करने वालों को होती हैं।" इस कथन की व्याख्या कीजिए।
8. कम्पनी की शक्ति से परे तथा शक्ति के अन्तर्गत व्यवहारों से आप क्या समझते हो? पार्षद सीमानियम तथा पार्षद अन्तर्नियमों के सम्बन्ध में उदाहरण देते हुए समझाइए।
9. पार्षद अन्तर्नियम क्या है? इसकी पार्षद सीमानियम से क्या मित्रता है?
10. एक सीमित दायित्व वाली कंम्पनी के पार्षद अन्तर्नियम के महत्व, उद्देश्य एवं विषय-सामग्री के बारे में वर्णन कीजिए।
11. क्या अन्तर्नियमों में परिवर्तन किया जा सकता है? यदि हाँ, तो किस प्रतिबन्धों के अन्तर्गत इनमें परिवर्तन किया जा सकता है?
12. पार्षद अन्तर्नियम से आप क्या समझते हैं? यह पार्षद सीमानियम से किस प्रकार भिन्न है? यह बताइए कि अन्तर्नियम में परिवर्तन कैसे किया जा सकता है?
13. पार्षद अन्तर्नियम क्या है? क्या प्रत्येक कम्पनी के लिए खर्च का अन्तर्नियम होना अनिवार्य है? संक्षेप में इसकी विषय-सामग्री लिखिये।
14. पार्षद अन्तर्नियम क्या होते हैं? पार्षद अन्तर्नियम को किस प्रकार परिवर्तित किया जा सकता है।
15. पार्षद अन्तर्नियम किसे कहते हैं? क्या उन्हें परिवर्तित किया जा सकता है? यदि हाँ, तो किस प्रकार तथा किन प्रतिबन्धों के अन्तर्गत?
16. प्रारंभिक अनुबन्ध से क्या आशय है? इनमें आने वाली कठिनाइयों का वर्णन कीजिए।
17. पार्षद अन्तर्नियम की परिभाषा कीजिए। क्या यह आवश्यक है कि प्रत्येक कम्पनी अपनी स्वयं का पार्षद अन्तर्नियम रखे? पार्षद अन्तर्नियम किस प्रकार बदला जा सकता है? [संकेत–अन्तर्नियम की परिभाषा व प्रकार तथा सीमाएँ दीजिए।]
18. कम्पनी की शक्ति से परे (Ultra Vires) एवं शक्ति के अन्दर (Intra-Vires) व्यवहार से क्या तात्पर्य है?
19. अन्तर्नियम की परिभाषा दीजिए तथा इसकी विषय-सामग्री बतलाइये।
20. पार्षद अन्तर्नियम क्या है? पार्षद सीमानियम व पार्षद अन्तर्नियम में अन्तर बताइए। क्या अन्तर्नियम में परिवर्तन किया जा सकता है? यदि हाँ, तो किन प्रतिबन्धों के अन्तर्गत।

[संकेत–अन्तर्नियम की परिभाषा, सीमानियम संभेद व परिवर्तन व उसकी सीमाएँ दीजिए।]

अपनी प्रगति की जाँच करें
Test your Progress

NOTES

5

प्रविवरण
(PROSPECTUS)

प्रविवरण का आशय (Meaning of Prospectus) – लोक कम्पनी का निर्माण प्रविवरण तैयार करके रजिस्ट्रार के पास फाइल करने से प्रारम्भ होकर व्यवसाय प्रारंभ करने का प्रमाण-पत्र प्राप्त होने पर समाप्त हो जाता है। समामेलन प्रमाण- पत्र प्राप्त होने के बाद भी कम्पनी को पूँजी एकत्रित करने की चिन्ता बनी रहती है जो (i) अंशों के द्वारा, (ii) प्रविवरण के द्वारा जनता से प्रत्यक्ष रूप से, अथवा (iii) अप्रत्यक्ष रूप से जनता को अंश बेचकर प्राप्त की जा सकती है। जनता से पूँजी एकत्र करने के लिए एक निमंत्रण पत्र जारी करते हैं, जिसे प्रविवरण कहते हैं। केवल अंशपूँजी वाली कम्पनी प्रविवरण जारी करने का अधिकार रखती है।

प्रविवरण की परिभाषा (Definition of Prospectus) धारा 2 (36) :

"प्रविवरण के आशय ऐसे प्रपत्र से है, जो प्रविवरण की भाँति वर्णित या निर्गमित किया जाता है, ऐसे नोटिस, परिपत्र, विज्ञापन या अन्य प्रपत्रों को सम्मिलित करता है जो एक समामेलित संस्था के अंशों या ऋणपत्रों के क्रय करने हेतु जनता से प्रस्ताव आमंत्रित करता है।"[1]

कम्पनी के समामेलन के तुरन्त बाद एक अलोक कम्पनी अपना व्यापार कर सकती है। लोक कम्पनी को व्यापार प्रारम्भ करने से पूर्व व्यापार प्रारंभ करने का प्रमाण-पत्र प्राप्त करना आवश्यक होगा और इसके लिए प्रविवरण की सहायता से पूँजी को एकत्रित करना होगा। अंशों द्वारा सीमित लोक कम्पनी ने जनता को प्रविवरण निर्गमित किया है तो वह अपना व्यापार उस समय तक प्रारंभ नहीं कर सकती जब तक कि :

(i) न्यूनतम आवंटन न हो गया हो,

(ii) संचालकों ने अपने अंशों पर आवंटन की राशि को भुगतान न कर दिया हो,

(iii) रजिस्ट्रार को इस बात की घोषणा न कर दी गयी हो कि न्यूनतम राशि प्राप्त कर ली गयी है।

यदि सीमित दायित्व वाली लोक कम्पनी ने जनता का प्रविवरण निर्गमित नहीं किया है, तो वह व्यापार उस समय तक प्रारंभ नहीं कर सकती, जब तक कि :

(i) **स्थानापन्न प्रविवरण** – प्रविवरण का स्थानापन्न विवरण रजिस्ट्रार को प्रस्तुत न कर दिया गया हो।

(ii) **संचालकों द्वारा भुगतान** – प्रत्येक संचालक द्वारा अपने अंशों पर आवंटन तक की राशि का भुगतान न कर दिया गया हो।

(iii) **घोषणा** – संचालक या सचिव द्वारा इस बात की घोषणा न कर दी गई हो कि समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति कर दी गई है।

जब कोई प्रपत्र अंशों की बिक्री हेतु जनता में दिया जाता हो उसी को प्रविवरण कहा जाता है।

प्रविवरण की सहायता से अंशों का जनता को प्रस्ताव होना आवश्यक है। यदि कोई कम्पनी अपने प्रविवरण को निर्गमित करते समय उस पर 'केवल निजी व्यापार के लिए' शब्द लिख देता है तो भी यह समझा जाएगा कि वह जनता के लिए ही आमन्त्रित किया गया है (साउंड ऑफ इंग्लैण्ड नेचुरक गैस एण्ड पैट्रोलियम कम्पनी लिमिटेड)। इस केस में प्रविवरण की 3000 प्रतियाँ किसी अन्य गैस कम्पनी के अंशधारियों को निर्गमित किया गया था। यह प्रविवरण जनता के लिए ही निर्गमित किया गया था। न्यायाधीशों ने यह निर्णय दिया कि यह प्रविवरण जनता के लिए ही निर्गमित किया गया था। परन्तु एक अन्य मामले में प्रविवरण पर 'पूर्णतः व्यक्तिगत तथा गोपनीय, प्रकाशन के लिए नहीं' शब्द लिखा था जिसे न्यायाधीश ने जनता को निर्गमित नहीं माना। (शेरर्बल बनाम कम्बाइण्ड इन्केण्डेस्शेन्ट मेन्टस सिण्डीकेट लि.)।

प्रविवरण के उद्देश्य (Objects of Prospectus) – प्रविवरण के मुख्य उद्देश्य निम्न हैं –

(i) **जनता को आमंत्रित करना** – अंशों पर ऋणपत्रों को बेचने के लिए जनता को आमंत्रित करना।

(ii) **शर्तों का लेखा** – उन समस्त शर्तों का लेखा करना जो जनता को ऋणपत्रों एवं अंशों को खरीदने के लिए दी गयी हों।

(iii) **उत्तरदायित्वों को स्वीकृति** – यह घोषणा करना कि संचालकगण कम्पनी के उत्तरदायित्वों को स्वीकार करते हैं।

(iv) **तिथि** – धारा 55 के अनुसार कम्पनी द्वारा निर्गमित प्रविवरण पर तिथि अवश्य पड़ी होनी चाहिए जो निर्गमन की तिथि जानी जाती है।

प्रविवरण का पंजीयन (Registration of Prospectus) – कम्पनी का कोई भी प्रविवरण उस समय तक निर्गमित नहीं किया जा सकता, जब तक कि इसके प्रकाशन की तिथि तक उसकी एक प्रतिलिपि संचालक द्वारा हस्ताक्षरित होकर रजिस्ट्रार के पास नहीं भेज दी गयी हो [धारा 60 (1)] इसके अतिरिक्त प्रविवरण पर अग्र सूचनाओं का उल्लेख होना चाहिए :

(i) **प्रतिलिपि** – प्रविवरण की एक प्रतिलिपि रजिस्ट्रार के पास भेज दी गई है।

(ii) **प्रपत्रों की सूची** – समस्त प्रपत्रों को प्रविवरण की प्रतिलिपि के साथ रजिस्ट्रार को भेज दिया गया है। इन प्रपत्रों में निम्न को सम्मिलित किया जाता है, (अ) महत्वपूर्ण अनुबन्धों की प्रतियाँ, (ब) संचालकों की सहमति, (स) विशेषज्ञों की लिखित सहमति, (द) समायोजन का विवरण एवं (इ) आवेदन- पत्र।

(iii) प्रविवरण की प्रतिलिपि भेजने की तिथि से 90 दिन के अन्दर जनता को प्रविवरण निर्गमित करना होगा। [धारा 60 (4)]

शर्तों का उल्लंघन करने पर प्रत्येक दोषी व्यक्ति पर 50,000 रुपये तक जुर्माना हो सकता है।

[2000 में संशोधित धारा 60 (5)]

प्रविवरण का स्वभाव (Nature of Prospectus)

अंश एवं ऋणपत्र जनता को बेचने हेतु रखा जाने वाला प्रस्ताव ही प्रविवरण कहलाता है। यदि अंशों का निमंत्रण जनता के एक भाग के लिए किया गया है, तो भी उसे प्रविवरण माना जाएगा। जनता के एक सीमित भाग के लिए किया गया प्रस्ताव भी जनता के लिए प्रस्ताव माना जाता है। [धारा 67 (1) (2)]

इसके विपरीत कोई प्रस्ताव अथवा निमंत्रण जनता को किया हुआ नहीं माना जाएगा यदि :

(i) जिन व्यक्तियों को यह निर्गमित किया गया है, उसके अतिरिक्त अन्य कोई व्यक्ति उस कम्पनी के अंश या ऋण-पत्र नहीं खरीद सकेगा।

(ii) यदि वह प्रस्ताव देने वालों एवं पाने वालों का एक घरेलू मामला बन कर रह जाए। [धारा 67 (3)]

(iii) प्रवर्तक द्वारा अपने मित्रों, ग्राहकों आदि को किया गया प्रस्ताव जनता के लिए प्रस्ताव नहीं माना जा सकता।

प्रविवरण प्रायः छोटी पुस्तिका के रूप में विभिन्न रंगों, चित्रों एवं डिजाइनों में प्रकाशित किया जाता है।

प्रविवरण की विषय-सामग्री
(Contents of Prospectus)

प्रविवरण में कम्पनी से सम्बन्धित समस्त बातों का विवरण दिया जाना आवश्यक है। प्रायः विवरण में निम्न बातों का समावेश होता है :

(1) **उद्देश्य एवं हस्ताक्षर** – प्रविवरण में कम्पनी के मुख्य उद्देश्यों के साथ-साथ सीमानियम पर हस्ताक्षर करने वाले व्यक्तियों के नाम व पते भी दिए जाते हैं।

(2) **योग्यता अंश** – संचालन के योग्यता अंशों की संख्या एवं उनके पारिश्रमिक के सम्बन्ध में क्या व्यवस्था रहेगी इसका विवरण प्रविवरण में देना आवश्यक रहता है।

(3) **संचालकों के नाम व पते** संचालक, प्रबन्ध संचालक, प्रबन्ध अभिकर्ता, मैनेजर, सचिव व कोषाध्यक्ष के नाम- पते एवं पारिश्रमिक की राशि।

(4) **न्यूनतम पूँजी** – अंशों को जनता के लिए निर्गमन करने की दिशा में न्यूनतम पूँजी का विवरण।

(5) **राशि का विवरण** – अंश के लिए आवेदन एवं आवंटन की राशि का विवरण।

(6) **गत दो वर्षों की संख्या** – पिछले दो वर्षों में निर्गमित किये गए अंशों व ऋणपत्रों की संख्या एवं उनका विवरण।

(7) **अभिगोपन का विवरण** – यदि अंशों का निर्गमन अभिगोपकों की सहायता से किया गया है तो उनके नाम, पते एवं आर्थिक स्थिति का विवरण।

NOTES

(8) **कमीशन राशि** – गत दो वर्षों में दिये गए कमीशन की राशि का विवरण।

(9) **प्रवर्तक की राशि** – गत दो वर्षों में किसी प्रवर्तक या किसी अन्य अफसर को दी गयी राशि का विवरण।

(10) **अंकेक्षक के नाम व पते** – कम्पनी के अंकेक्षकों के नाम व पूरे पते।

(11) **वोटों का अधिकार** – अंश पूँजी विभिन्न प्रकार के अंशों में बँटी होने पर विभिन्न अंशों पर वोट देने के अधिकारों तथा लाभांशों का विवरण।

(12) **व्यापार की अवधि** – व्यापार का कार्य करने वाली कम्पनी के सम्बन्ध में व्यापार की अवधि का वर्णन देना चाहिए।

(13) **समय व स्थान का विवरण** – एक निश्चित समय व स्थान का विवरण जहाँ चिट्ठे व लाभ-हानि खाते का निरीक्षण संभव हो सकता है।

(14) **लेखापाल की रिपोर्ट** – यदि प्राप्त राशि का कम से कम 50% भाग किसी व्यापार के क्रय कराने में लगाया गया हो तो प्रविवरण में लेखपाल की रिपोर्ट दर्ज करनी चाहिए।

(15) **दो वर्ष के पश्चात् विवरण** – कम्पनी के व्यापार के अधिकार प्राप्ति के दो वर्ष बाद प्रविवरण के निर्गमित करने पर सीमानियम पर हस्ताक्षर करने वालों एवं प्रारंभिक व्ययों का विवरण नहीं दिया जाता।

(16) **पट्टेदार का नाम** – जब कम्पनी में कोई सम्पत्ति पट्टे पर ली गयी हो तो विक्रेता पट्टेदार (lessor) का नाम सम्मिलित किया जाएगा।

(17) **अवधि** – प्रविवरण निर्गमन से पूर्व 5 वर्ष की अवधि को कम किया जा सकता है।

(18) **अंकेक्षण के गुण** – रिपोर्ट उसी लेखपाल द्वारा दी जानी चाहिए, जिसमें अंकेक्षण बनने के गुण हों।

(19) **समायोजनों का विवरण** – कम्पनी के लाभ-हानि, सम्पत्ति व दायित्व की समायोजनाओं का वर्णन करना।

(20) **वार्षिक विवरण** – यदि कम्पनी ने 5 वित्तीय वर्षों से कम काम किया है तो उतने ही वर्षों का विवरण देना होगा।

(21) **अदत्त विक्रेता का वर्णन** – प्रविवरण में अदत्त विक्रेताओं का पूर्णरूपेण वर्णन दिया जाता है।

(22) **अन्तर्विनियोग** – धन का अन्तर्विनियोग करने की दशा में सहायक कम्पनी के लाभ- हानि के बारे में लेखापाल की रिपोर्ट लगानी होगी।

(23) **लाभांश का विवरण** – कम्पनी की सम्पत्ति एवं देनदारियों से सम्बन्धित विवरण गत 7 वर्षों से दिये गए लाभांश का विवरण तथा अंकेक्षक की रिपोर्ट।

(24) **लाभों का पूँजीकरण** – कम्पनी के लाभों का पूँजीकरण करने पर उसका विवरण तथा कम्पनी या सहायक कम्पनी की सम्पत्तियों का पुनर्मूल्यांकन करने पर आधिक्य विवरण देना।

(25) **प्रतिबंध** – कम्पनी के सदस्यों पर या संचालकों पर उनके अधिकारों के सम्बन्ध में लगाए गये प्रतिबन्धों का वर्णन।

(26) **हित सीमा** – प्रविवरण की तारीख से 2 वर्ष पूर्व तक के संचालक एवं प्रवर्तक के हित की सीमा व स्वभाव का विवरण।

(27) **अनुबन्धों की तिथि** – प्रबन्ध संचालक, सचिव, कोषाध्यक्ष, प्रबन्ध अभिकर्ता व मैनेजर की नियुक्ति व पारिश्रमिक के सम्बन्ध में किए गए अनुबन्धों की तिथि व स्वभाव।

(28) **प्रारंभिक व्यय** – प्रारंभिक व्ययों की राशि एवं भुगतान किये गए या किये जाने वाले व्यक्तियों के नाम व पते।

(29) **विक्रेताओं के नाम व पते** – सम्पत्ति क्रय करने पर विक्रेताओं के नाम, पते व पेश तथा सम्पत्ति का विवरण।

(30) **प्रव्याजि की राशि** – दो वर्ष पूर्व अंश पर दी जाने वाली प्रव्याजि की राशि।

(31) **विशेषाधिकारी का वर्णन** – उस प्रसंविदे का विवरण जिसके द्वारा उसे विशेषाधिकार दिये जाते हों।

(32) **सूची खोलने का समय** – प्रार्थित सूची खोलने का समय।

(33) **पूँजी का वितरण** – यदि प्रबन्ध अभिकर्ता कोई कम्पनी है तो उस कम्पनी की पूँजी का विवरण देना।

(34) **घोषणा** – प्रविवरण में यह घोषणा भी करनी पड़ती है कि कम्पनी अधिनियम तथा 'सेवी' के नियमों व प्रावधनों के अधीन बनाये नियमों तथा सरकार व सेवी द्वारा जारी की गई मार्गदर्शका बातों का पालन कर लिया गया है। **[2002 में जोड़ा गया प्रावधान]**

यदि कम्पनी का कोई भी सम्बन्धित व्यक्ति उपर्युक्त व्यवस्थाओं का उल्लंघन करता है तो दोषी व्यक्ति पर 50,000 रुपये तक जुर्माना किया जा सकता है। **[2000 में संशोधन]**

प्रविवरण का निर्गमन कब आवश्यक नहीं – एक कम्पनी को प्रविवरण का निर्गमन करना आवश्यक माना जाता है, परन्तु निम्न दशाओं में प्रविवरण का निर्गमन करना आवश्यक नहीं होता :

(i) यदि अंशों की बिक्री जनता को न करना हो।

(ii) यदि अंशों व ऋण-पत्रों का निर्गमन पूर्व अंशों के समान हो।

(iii) यदि अंशों का निर्गमन अंशों के अभिगोपन के बदले हो।

(iv) यदि अंशों या ऋण-पत्रों का निर्गमन विद्यमान सदस्यों या ऋणपत्रधारियों को हो। [धारा 56]

अखबारों में विज्ञापन की दृष्टि से दिये गये प्रविवरण में सीमानियम सम्बन्धी विषय-सामग्री का वर्णन करना आवश्यक न हो। [धारा 66]

अनुबन्ध सम्बन्धी शर्तों को कम्पनी की साधारण सभा में स्वीकृति के लिए बिना नहीं बदला जा सकता है। [धारा 61]

प्रविवरण एवं स्कन्ध विपणि
(Prospectus and Stock Exchange)

स्कन्ध विपणि सम्बन्धी प्रमुख प्रावधान निम्नलिखित हैं :

(i) **आवंटन व्यर्थ होना** – यदि प्रविवरण में यह लिख दिया गया है कि अंशों में व्यवहार करने के लिए किसी मान्यता प्राप्त स्कन्ध विपणि में आवेदन दिया गया है और प्रविवरण के निर्गमन के 10वें दिन के पहले किसी स्कन्ध विपणि में ऐसा आवेदन नहीं किया जाता या यदि प्रार्थना सूची बन्द होने की तिथि से 4 सप्ताह के अन्दर स्कन्ध विपणि से अनुमति प्राप्त नहीं होती है तो इस आधार पर किये गये समस्त आवंटन व्यर्थ माने जायेंगे। [धारा 73 (1)]

यदि दिनों की गणना करने से कोई सार्वजनिक छुट्टी का दिन आ जाता है तो उसकी गणना नहीं करेंगे और उसके बाद आने वाले प्रथम दिन को गिना जायेगा। [धारा 74]

(ii) **राशि वापस लौटाना** – यदि नियमानुसार स्कन्ध विपणि में आवेदन नहीं किया गया है या आज्ञा प्राप्त नहीं होती है तो इस प्रकार प्राप्त की गयी रागरत धन राशि को 8 दिन के अन्दर वागस करना होगा, अन्यथा 5% वार्षिक की दर से ब्याज भी देना होगा। [धारा 73 (2)]

(iii) **धन बैंक में जमा करना** – आवेदन-पत्र एवं ऋण-पत्रों पर प्राप्त समस्त धन राशि को एक अनुसूचित बैंक में पृथक् खाते में रखना आवश्यक होता है। यदि इस नियम का उल्लंघन किया जाता है तो प्रत्येक दोषी व्यक्ति पर 5,000 रुपया तक जुर्माना किया जा सकता है। [धारा 73 (3)]

विदेशी कम्पनियों का प्रविवरण (Prospectus of Foreign Companies) – विदेशी कम्पनियों को अपना प्रविवरण भारत में निर्गमन करने से पूर्व उस पर तिथि डालकर निम्न बातों का उल्लेख करना होता है :

(i) कम्पनी के समामेलन से सम्बन्धित नियम, (ii) कम्पनी के समामेलन होने की तिथि व देश का नाम, (iii) भारत में व्यापार करने पर स्थित मुख्य कार्यालय का पता, (iv) भारत में उस स्थान का नाम जहाँ कम्पनी के नियमों व प्रलेखों आदि का निरीक्षण किया जा सके, (v) कम्पनी के विधान की व्याख्या करने वाला प्रलेख, (vi) इनके अतिरिक्त वे समस्त बातें भी प्रविवरण में लिखी जायेंगी, जो भारतीय कम्पनी के प्रविवरण में लिखी जाती हैं, (vii) यदि कोई उल्लेख विशेषज्ञ से सम्बन्धित हैं तो उसकी सहमति भी प्रविवरण में होनी चाहिए, (viii) प्रविवरण की एक प्रतिलिपि पंजीयन के लिए रजिस्ट्रार के पास प्रस्तुत कर दी जानी चाहिए, जिसमें निम्न प्रतिलिपियाँ भी होनी चाहिए :

(अ) प्रबन्ध अभिकर्ता, प्रबन्ध संचालक, मैनेजर, सचिव व कोषाध्यक्ष की नियुक्ति एवं पारिश्रमिक से सम्बन्धित अनुबन्ध की प्रतिलिपियाँ, (ब) लेखपाल एवं अंकेक्षक द्वारा अपनी रिपोर्ट में किये जाने वाले समायोजनों का विवरण, (स) कम्पनी अधिनियम की धारा 604 के अन्तर्गत माँगी गयी विशेषज्ञ की सहमति।

नियमों का उल्लंघन करने पर दोषी व्यक्ति पर 5,000 रुपये तक जुर्माना या 6 माह की सजा या दोनों हो सकते हैं। [धारा 606]

इन कम्पनियों के प्रविवरण में मिथ्यावर्णन होने पर धारा 62 की व्यवस्थाएँ लागू की जाती हैं। [धारा 607]

NOTES

(v) उसे असत्य कथन के सच होने में विश्वास करने के उचित कारण उपलब्ध थे।

(vi) **बिना सहमति कार्य करना** – प्रविवरण का निर्गमन बिना उसकी राय व सहमति के किया गया था।

कम्पनी का कोई भी अधिकारी उसी दशा में उत्तरदायी होता है जबकि विशेषज्ञ के रूप में उसका कथन मिथ्या या त्रुटिपूर्ण हो।

विशेषज्ञ के साथ में मिथ्या कथन होने पर विशेषज्ञ का दायित्व – प्रविवरण में दिये असत्य कथन से सम्बन्धित व्यक्तियों के निम्न दो प्रकार के दायित्व उत्पन्न हो जाते हैं :

(i) **नागरिक दायित्व** – जब अंशधारी कम्पनी के विरुद्ध अनुबन्ध को समाप्त करने के अधिकार को खो देता है या हर्जाना प्राप्त करने में कठिनाई अनुभव हो तो वह क्षतिपूर्ति प्राप्त करने के लिए अपने वैधानिक अधिकार का प्रयोग कर सकता है। इस अधिकार का प्रयोग अनुबन्ध को तोड़े बिना भी किया जा सकता है। [धारा 62]

मिथ्या वर्णन के कारण एक ही व्यक्ति को क्षतिपूर्ति का भुगतान करने पर उस राशि को आनुपातिक रूप में अन्य उत्तरदायी व्यक्तियों से वसूल कर सकता है। [धारा 62 (5)]

(ii) **दण्डनीय दायित्व** – प्रत्येक ऐसा व्यक्ति जो प्रविवरण में असत्य कथन के लिए दोषी है, उसे दो वर्ष तक की सजा या 50,000 रुपये तक जुर्माना या दोनों हो सकते हैं। यदि वह व्यक्ति यह सिद्ध करने में सफल हो जाए कि यह कथन महत्वहीन था तो उसे दण्डनीय दायित्व से मुक्त किया जा सकता है। [2000 में संशोधित धारा 63]

यदि कोई व्यक्ति लापरवाही या जानबूझ कर असत्य कथन करे तथा व्यक्तियों को अंश खरीदने, बेचने अथवा अभिगोपन के लिए प्रेरित करता है तो उसे 5 वर्ष तक की सजा अथवा 1,00,000 रुपये तक का जुर्माना या दोनों हो सकते हैं। [2000 में संशोधित धारा 68]

(3) **कम्पनी का संचालकों के प्रति दायित्व** – एक प्रवर्तक कम्पनी को तथ्यों के प्रकट किए बिना कोई लाभ अर्जित नहीं कर सकता तथा कम्पनी उससे ऐसा लाभ वापस ले सकती है। [बैंक ऑफ इंग्लैण्ड बनाम डायरेल 1862]

(4) **प्रवर्तक के प्रति अधिकार** – प्रवर्तक के प्रति कम्पनी को मिथ्या वर्णन के लिए अधिकार प्राप्त होते हैं। [फासफेट सताई कं. बनाम हर्टमाउण्ट 1877] यदि कोई व्यक्ति कम्पनी के अंश प्राप्त करने के उद्देश्य से कृत्रिम नाप से आवेदन करें या कृत्रिम नाप से स्वयं को अंशों के आवंटन करने को कम्पनी को प्रेरित करे तो ऐसे व्यक्ति को 5 वर्ष तक का कारावास घोषित किया जा सकता है।

अंकेक्षण व्यवस्था
(Audit Arrangements)

कम्पनी संशोधन बिल, 1974 ने अंकेक्षक के सम्बन्ध में निम्न व्यवस्था की है :

(i) कोई भी अंकेक्षक निरन्तर 3 वर्ष रहने के बाद उसी कम्पनी में सरकार की आज्ञा के बिना अंकेक्षक नहीं नियुक्त किया जा सकता है।

(ii) यदि किसी कम्पनी की पूँजी का 25% भाग केन्द्र या राज्य सरकार या किसी वित्तीय संस्था द्वारा लिया गया है तो अंकेक्षक की नियुक्ति के लिए केन्द्रीय सरकार की अनुमति प्राप्त करना होगी।

अंशों का आबंटन
(Allotment of Shares)

अंशों के लेने के लिए प्राप्त आवेदन पर संचालकों द्वारा अंशों का बाँटना 'आवंटन' कहलाता है।

आबंटन प्रक्रिया – प्रविवरण के साथ प्रार्थना पत्र संलग्न किया जाता है जिसे भरकर निर्धारित शुल्क के साथ कम्पनी को वापस लौटाना होता है और उसी के आधार पर कम्पनी द्वारा आवंटन का कार्य किया जाता है। आवंटन का कार्य कम्पनी की एक विशेष समिति द्वारा किया जाता है।

कम्पनी जब प्राप्त प्रार्थना-पत्र के प्रस्ताव को स्वीकार करती है तो उससे एक प्रसंविदा उत्पन्न होता है जिसे आवंटन कहते हैं। यह आवंटन शर्त सहित या शर्त रहित हो सकता है।

आवेदक के पास आवंटन की सूचना उचित समय के अन्दर भेजनी चाहिए और यह सिद्ध करने का भार कि सूचना आवेदक के पास पहुँचा दी गयी है, कम्पनी का होगा। [रामलाल साओ बनाम एम.ई.आर. मलक्स (1939)] आवंटन से पूर्व आवेदक कभी भी अपने अंशों के प्रस्ताव को वापस ले सकता है। आवंटन उन्हीं शर्तों के अनुरूप होना चाहिए जो आवेदन पत्र में दी गई थीं। यदि उनमें कोई परिवर्तन कर दिया जाता है तो आवेदन-पत्र को वापस लिया जा सकता है। यह परिवर्तन इस प्रकार है – (i) संचालक अवकाश ग्रहण कर लें, (ii) आवेदकों के हितों को धक्का पहुँचा हो, तथा (iii) आवंटन से पूर्व न्यूनतम प्रार्थित पूँजी की राशि को कम कर दिया गया हो। यदि आवंटन

करने में अनुचित देरी हो जाती है तो अंश खरीदने के प्रस्ताव को समाप्त किया जा सकता है। जब विद्यमान अंशधारियों को ही नवीन अंश निर्गमित किये जाएँ तो यह उसी समय संभव हो सकेगा जब कि अंशधारियों द्वारा उस प्रस्ताव पर स्वीकृति प्रदान कर दी गयी हो।

NOTES

आबंटन सम्बन्धी नियम – (1) आवंटन सम्बन्धी नियम बनाने का कार्य एक विशेष समिति को सौंपा जा सकता है। (2) आवंटन द्वारा प्रसंविदे का निर्माण किया जाता है। (3) आवंटन उसी शर्त के आधार पर किया जाता है जो कि आवेदन-पत्र में लिखी रहती है। (4) प्रविवरण अंश लेने का निमंत्रण है और आवेदन-पत्र अंश लेने का प्रस्ताव है। आवंटन होने पर कम्पनी व अंशधारियों के मध्य एक प्रसंविदा उत्पन्न हो जाता है। (5) आवंटन की सूचना उचित समय के अन्दर दी जानी चाहिए। (6) विद्यमान अंशधारियों द्वारा प्रस्ताव की स्वीकृति देने पर ही प्रसंविदा पूर्ण हो जाता है और आवंटन की आवश्यकता नहीं रहती है।

आबंटन पर वैधानिक प्रतिबन्ध
(Statutory Restrictions on Allotments)

एक अलोक कम्पनी द्वारा अंशों का आवंटन पर कोई प्रतिबन्ध नहीं होता, परन्तु एक लोक कम्पनी की दशा में अंशों का आवंटन निम्न प्रतिबन्धों के अन्तर्गत ही किया जाता है :

(i) **न्यूनतम प्रार्थित पूँजी** – कम्पनी अंश पूँजी का आवंटन उस समय तक नहीं कर सकेगी जब तक कि उन अंशों से सम्बन्धित न्यूनतम, प्रार्थित पूँजी प्राप्त न हो जाए। न्यूनतम पूँजी से आशय उस राशि से है जो निम्न व्ययों को पूर्ण करने में समर्थ हो : (अ) क्रय की जाने वाली सम्पत्ति का मूल्य, (ब) प्रारंभिक व्ययों की राशि, (स) ऋण के भुगतान करने की सुविधा, (द) कार्यशील पूँजी के लिए पर्याप्त धनराशि होना, (इ) अन्य किसी आवश्यक कार्य हेतु व्यय।

(ii) **5% धनराशि** – प्रत्येक अंश के प्रार्थनापत्र पर उसके देय धन का कम से कम 5% भाग नकद में प्राप्त हो जाना चाहिए। [धारा 69 (3)]

(iii) **120 दिन का समय** – आवंटन सम्बन्धी सभी शर्त प्रविवरण के प्रकाशन की तिथि से 120 दिन के अन्दर पूर्ण हो जानी चाहिए। यदि शर्तें पूर्ण नहीं हो पातीं, तो प्रार्थियों से प्राप्त धन ब्याज सहित लौटा देना चाहिए। यदि यह धन 130वें दिन तक वापस नहीं होता तो 130वें दिन से कम्पनी के संचालक उस राशि पर 4% वार्षिक की दर से ब्याज लौटाने को बाध्य होंगे। [धारा 69 (5)]

(iv) **शर्त का व्यर्थ होना** – यदि आवंटन की शर्त प्रार्थी की आवश्यकता की पूर्ति नहीं करे, तो वह व्यर्थ होगी।

(v) **नकद राशि** – न्यूनतम प्रार्थित पूँजी नकद में ही प्राप्त होनी चाहिए और उसमें वह राशि सम्मिलित न होगी जो अन्य रूपों में प्राप्त होती है।

(vi) **बैंक में जमा** – प्रार्थियों से प्राप्त धन किसी अनुसूचित बैंक में जमा कर दिया जाना चाहिए। यह धन उस समय तक जमा रहना चाहिए जब तक कि कम्पनी को व्यापार प्रारम्भ करने का प्रमाणपत्र प्राप्त नहीं हो जाता।

(vii) **जुर्माना** – दोषी व्यक्ति जो कम्पनी अधिनियम की व्यवस्थाओं का पालन नहीं करेगा। उस पर 5,000 रुपये तक का जुर्माना किया जा सकता है।

(viii) **अगले आबंटन में लागू न होना** – यह व्यवस्थाएँ प्रथम आवंटन के पश्चात् किए गए आवंटन के सम्बन्ध में लागू न होंगी। [धारा 69]

(ix) **आबंटन से पूर्व स्थानापन्न प्रविवरण भेजना आवश्यक** – स्थानापन्न प्रविवरण न देने पर अंशों का आवंटन नहीं किया जा सकता जब तक कि 3 दिनों में स्थानापन्न प्रविवरण पत्र रजिस्ट्रार के पास भेज दिया गया हो।

ऐसे विवरण-पत्र पर प्रत्येक संचालक के हस्ताक्षर होना आवश्यक है। यदि कम्पनी नियम के विरुद्ध कार्य करती है तो कम्पनी तथा दोषी संचालकों पर 1,000 रुपये तक जुर्माना हो सकता है।

यदि इस विवरण-पत्र में कोई असत्य कथन है, तो दोषी व्यक्ति को दो वर्ष की सजा या 5,000 रुपये तक जुर्माना या दोनों हो सकता है।

(x) **आबंटन पर अन्य प्रतिबन्ध** – अंशों व ऋणपत्रों के आवंटन पर अन्य प्रतिबन्ध निम्नलिखित हैं :

(अ) **विषय सूची खुलने का समय** – प्रविवरण की तिथि से 5 वें दिन तक अंशों का आवंटन नहीं किया जा सकता है। पाँचवें दिन के प्रारंभ को विक्रय सूची खुलने का समय कहते हैं।

इन व्यवस्थाओं का पालन न करने पर आवंटन की वैधता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा, परन्तु दोषी अधिकारी पर 50,000 रुपये तक जुर्माना हो सकता है। इस सम्बन्ध में यह व्यवस्था की गयी है कि अंशों के लिए आवेदन- पत्र की विक्रय सूची खुलने के समय से 5 वें दिन तक खण्डित नहीं किया जा सकता।

NOTES

(ब) **बैंक में धन जमा करना** – आवेदकों से प्राप्त समस्त धनराशि एक पृथक खाते में एक अनुसूचित बैंक में रखी जाएगी। यदि इसमें त्रुटि की जाती है तो दोषी व्यक्ति पर 50,000 रुपये तक जुर्माना हो सकता है।

[2000 में संशोधित धारा धारा 69(a)]

(स) **धन राशि वापस करना** – यदि स्कन्ध विपणि को आवेदन नहीं किया जाता या स्कन्ध विपणि से आज्ञा प्राप्त नहीं हो पाती तो आवेदन पर प्राप्त समस्त धन तत्काल ही विना ब्याज का वापस करना होगा। यदि यह धन 8 दिन तक वापस नहीं किया जाता तो आठवें दिन बीत जाने के बाद संचालक उस धन को 5% ब्याज सहित लौटाने को बाध्य होगा।

(द) **स्कन्ध विपणि में व्यवहार** – यदि स्कन्ध विपणि में अंशों को क्रय-विक्रय के सम्बन्धों में प्रार्थना-पत्र दिया गया है, तो प्रविवरण के निर्गमन के दिन से 10वें दिन के पूर्व इस आवेदन पत्र को अवश्य भेज देना चाहिए। यदि इस समय में आवेदन-पत्र नहीं दिया जाता और चन्दे की सूची बन्द होने के 4 सप्ताह की अवधि में स्कन्ध विपणि की अनुमति प्राप्त नहीं होती है, तो अंशों का आवंटन व्यर्थ नहीं होगा। जिन स्कन्ध विपणियों को आवेदन किया जाता है, उस सभी की स्वीकृति करना आवश्यक है। [यूनियन ऑफ इण्डिया बनाम अलाइड इण्टरनेशनल प्रोडक्टस लि. (1971)] [धारा 73 (1)]

अनियमित आबंटन का प्रभाव
(Effect of Irregular Allotment)

यदि अंशों का आवंटन कंपनी अधिनियम की व्यवस्थाओं के विरुद्ध किया जाता है तो ऐसे आवंटन अनियमित आवंटन कहलाते हैं। यह अनियमित आवंटन आवंटन की इच्छा पर व्यर्थनीय (Voidable) होता है। पुसराला संन्यासी बनाम गुन्टर कॉटन जूट एण्ड पेपर मिल्स कम्पनी लि. 1915)। एक सम्बन्ध में आवेदक को निम्न उपचार प्राप्त होते हैं:

(i) **कम्पनी के विरुद्ध** – अनियमित आवंटन होने पर वह आवेदक की इच्छा पर व्यर्थनीय होता है और उसे आवेदक द्वारा व्यर्थ घोषित किया जा सकता है, परन्तु इस सम्बन्ध में निम्न शर्तें हैं :

(अ) **दो माह की अवधि** – कम्पनी की वैधानिक सभा होने के दो माह की अवधि में ही उस अधिकार का प्रयोग हो जाना चाहिए। [धारा 71 (1) (अ)]

(ब) **वैधानिक सभा का अभाव** – यदि कम्पनी में वैधानिक सभा नहीं होती, तो आवंटन के 2 माह के अन्दर ही इस अधिकार का प्रयोग हो सकता है। [धारा 71 (1) (ब)]

(स) **विघटन की दशा** – इस अधिकार का प्रयोग कम्पनी के विघटन होने की दशा में भी किया जा सकता है। [धारा 17 (2)]

(ii) **संचालकों के विरुद्ध** – कम्पनी को ऐसा प्रत्येक संचालक जो जान बूझकर अनियमित आवंटन के लिए दोषी है, वह आवेदन व कम्पनी के प्रति हानि पूर्ति के लिए जिम्मेदार होगा, परन्तु इसके लिए यह आवश्यक है कि ऐसी हानि पूर्ति के लिए वैधानिक कार्यवाही आवंटन की तिथि से 2 वर्ष के अन्दर ही होनी चाहिए। [धारा 71 (3)]

(iii) **दावा करने का अधिकार होना** – आवेदकों को कम्पनी पर दावा करने का भी अधिकार प्राप्त है। यह दावा 2 माह के पश्चात् ही किया जा सकता है।

आबंटन का प्रत्याय
(Return of Allotment)

सीमित दायित्व वाली कम्पनी को आवंटन करने के पश्चात् 30 दिन के अन्दर रजिस्ट्रार कार्यालय में एक विवरण- पत्र में अंशों की संख्या, अंशधारियों के नाम, पते व पेशे व देय राशि का वर्णन करना होगा।

[धारा 75 (1) (अ)]

अपनी प्रगति की जाँच करें
Test your Progress

प्रश्न
(Questions)

1. प्रविवरण की परिभाषा दीजिये तथा उसकी विषय सामग्री का वर्णन कीजिये।
2. स्थानापन्न प्रविवरण से आप क्या समझते हैं? स्थानापन्न प्रविवरण में दी जाने वाली मुख्य सामग्री का वर्णन कीजिए।
3. प्रविवरण क्या है? क्या इसका निर्गमन अनिवार्य है? यह कब जनता को निर्गमित किया हुआ माना जाता है?
4. प्रविवरण में असत्य कथनों से आप क्या समझते हैं? असत्य कथन की दशा में संचालकों के दायित्वों का वर्णन कीजिये।

6

कम्पनी की अंश पूँजी एवं सदस्यता
(SHARE CAPITAL AND MEMBERS OF COMPANY)

पूँजी व्यवसाय की जीवन-रक्त मानी जाती है। अंश पूँजी से आशय उस धनराशि से है जिनके द्वारा कम्पनी अपना व्यापार प्रारंभ करती है। अंश पूँजी प्रायः पूर्वाधिकार एवं सामान्य अंशों को बेचकर प्राप्त की जाती है। पूँजी के अन्तर्गत अंश पूँजी व ऋण पूँजी दोनों को ही सम्मिलित किया जाता है और इन दोनों में उचित अनुपात होना आवश्यक है। अंश पूँजी व ऋण पूँजी में अन्तर रहता है। व्यवसाय में अति-पूँजीकरण एवं अल्प-पूँजीकरण दोनों ही हानिकारक होते हैं। व्यवसाय की सफलता उचित पूँजीकरण पर निर्भर करती है। उचित पूँजीकरण व्यवसाय के आकार, पूँजी की मात्रा, विविध प्रतिभूतियों के स्वरूप आदि पर निर्भर करती है।

कम्पनी की पूँजी में परिवर्तन
(Alteration in Capital of Company)

एक कम्पनी निम्न प्रकार से पूँजी में परिवर्तन ला सकती है :

(i) अंश पूँजी में वृद्धि करना, (ii) स्टॉक को अंशों में परिवर्तित करना, (iii) अनिर्गमित अंशों को रद्द करना, (iv) अंश पूँजी का एकीकरण करना, (v) अंशों को कम मूल्य के अंशों में विभाजन करना, (vi) अंश पूँजी में कमी करना।

कम्पनी की पूँजी में परिवर्तन करने के लिए कम्पनी को एक साधारण प्रस्ताव पास करना होगा और 30 दिन के अन्दर उसकी सूचना रजिस्ट्रार को देनी होगी। [धारा 95]

यदि पूँजी की वृद्धि करके नवीन अंशों का निर्गमन किया जाता है तो उसे परिवर्तन की सूचना 30 दिन के अन्दर रजिस्ट्रार को देनी चाहिए। [धारा 97]

(1) **अंश पूँजी में वृद्धि करना** – अतिरिक्त धन की आवश्यकता होने पर जनता से ऋण या नवीन अंशों का निर्गमन करके पूँजी में वृद्धि की जा सकती है।

पूँजी में वृद्धि करने की विधि (Procedure of Increasing Capital) –

(i) **अन्तर्नियम द्वारा अधिकार मिलना** – पूँजी में वृद्धि उसी समय की जा सकती है, जबकि अन्तर्नियमों द्वारा इस प्रकार का अधिकार प्राप्त हो।

(ii) **साधारण प्रस्ताव** – पूँजी में परिवर्तन के लिए कम्पनी की साधारण सभा में साधारण प्रस्ताव पास करना होगा।

(iii) **रजिस्ट्रार को सूचित करना** – पूँजी में परिवर्तन की सूचना रजिस्ट्रार को 30 दिन के अन्दर कर देनी चाहिए।

(iv) **वर्तमान अंशधारियों को निर्गमन** – नवीन अंश कम्पनी के वर्तमान साधारण अंशधारियों को उनके प्रदत्त अंश की संख्या के अनुपात में प्रस्तावित किये जायेंगे और इस प्रस्ताव की सूचना अंशधारी को 15 दिन पूर्व मिल जानी चाहिए।

(2) **स्टॉक को अंशों में परिवर्तित करना** – एक कम्पनी अपने पूर्ण प्रदत्त अंशों को स्कन्ध में परिवर्तित कर सकती है और फिर पुनः स्कन्ध को पूर्ण प्रदत्त अंशों में परिवर्तित कर सकती है। अधिनियम की व्यवस्थाएँ अंशों पर ही लागू होती हैं, स्टॉक के सम्बन्ध में नहीं।

(3) **अनिर्गमित अंशों को रद्द करना** – कम्पनी द्वारा अनिर्गमित अंशों को रद्द करने पर अंश पूँजी में कोई कमी नहीं आती है।

(4) **अंश पूँजी का एकीकरण करना** – कम्पनी विद्यमान अंशों का एकीकरण करके अधिक मूल्यों के अंशों में विभाजित करके उचित व्यवस्था कर सकती है। इस परिवर्तन में पुराने अंश प्रमाण-पत्र को रद्द करके नवीन अंश निर्गमित कर दिये जाते हैं और सदस्य रजिस्टर में भी आवश्यक सुधार कर दिये जाते हैं।

(5) **अंशों का कम मूल्य के अंशों में विभाजन करना** – एक कम्पनी अपने अंशों को कम मूल्य के अंशों में विभाजित कर सकती है और पुराने अंशों के स्थान पर कम मूल्य के अंशों को निर्गमित कर सकती है, परन्तु ऐसा परिवर्तन करने पर अनुपात में कोई परिवर्तन नहीं होना चाहिए।

(6) **अंश पूँजी में कमी करना** (Reduction of Share Capital) – एक सीमित दायित्व वाली कम्पनी अपनी अंश पूँजी को अन्तर्नियमों में अधिकार प्राप्त करके विशेष प्रस्ताव पारित करके न्यायालय से पुष्टि कराने निम्न ढंग से घटा सकती है :

(i) चुकता पूँजी का वह भाग जो नष्ट हो गया हो, उसे रद्द करके पूँजी में कमी की जा सकती है।

(ii) चुकता पूँजी यदि आवश्यकता से अधिक है तो अंशधारियों को उसका भुगतान करके पूँजी में कमी की जा सकती है।

(iii) जो अंश पूर्ण दत्त नहीं है उनके अदत्त भाग की देयता को कम करके अंश पूँजी को कम किया जा सकता है।

(iv) कम्पनी द्वारा न्यायालय की स्वीकृति प्राप्त करके किसी अन्य ढंग से भी अंश पूँजी को घटाया जा सकता है।

परिवर्तन की विधि – अंश पूँजी को कम करने की विधि निम्न है :

(i) **पार्षद सीमानियम एवं अन्तर्नियम में परिवर्तन करना** – अंश पूँजी में परिवर्तन करने के पश्चात् कम्पनी के पार्षद सीमानियम एवं अन्तर्नियम में आवश्यक परिवर्तन कर देने चाहिए।

(ii) **विशेष प्रस्ताव** – अंश पूँजी में कमी लाने के लिए कम्पनी को एक विशेष प्रस्ताव पास करके उसकी सूचना 15 दिन के अन्दर रजिस्ट्रार को प्रस्तुत कर देनी चाहिए। [धारा 100 (1)]

नोट : अंशपूँजी में कमी का प्रस्ताव पारित हो जाने के बाद कम्पनी को इस प्रस्ताव की पुष्टि या अनुमोदन के लिए अधिकरण से याचिका द्वारा आवेदन करना चाहिए। [2002 में संशोधित धारा धारा 100(I)]

(iii) **रजिस्ट्रार को सूचित करना** – न्यायालय की स्वीकृति प्राप्त होने के पश्चात् कम्पनी को चाहिए कि वह न्यायालय के आदेश की प्रमाणित प्रतिलिपि रजिस्ट्रार के पास प्रस्तुत कर दें।

(iv) **न्यायालय की स्वीकृति** – पूँजी को कम करने के लिए न्यायालय की स्वीकृति लेना आवश्यक है। स्वीकृति देने से पूर्व ऋणी को सन्तुष्ट करना आवश्यक होगा।

(v) **सूचना प्रकाशित करना** – यदि न्यायालय निर्देश करे तो इस परिवर्तन की सूचना को जनता के लिए प्रकाशित किया जाना चाहिए।

(vi) **अन्तर्नियम द्वारा अधिकृत** – कम्पनी के अन्तर्नियम में व्यवस्था होने पर ही अंश पूँजी में कमी हो सकती है अन्यथा नहीं।

(vii) **रजिस्ट्रार द्वारा पंजीयन करना** – न्यायालय के आदेश को पंजीयन करने के बाद रजिस्ट्रार उस परिवर्तन सम्बन्धी एक प्रमाण-पत्र देगा और प्रमाण-पत्र प्राप्त होने की तिथि से वह परिवर्तन प्रभावशील माना जायेगा।

(viii) **कम्पनी द्वारा नाम में विशिष्ट शब्दों का प्रयोग करना** – कम्पनी द्वारा अपने नाम के पीछे उन शब्दों का प्रयोग करना चाहिए, जिसका न्यायालय ने आदेश दिया हो।

(ix) **विशेष प्रकार की कम्पनी को ही अधिकार** – अंश पूँजी में कमी करने का अधिकार एक विशेष प्रकार की कम्पनी को ही प्राप्त होता है।

(x) **सदस्यों के दायित्व** – कम्पनी का कोई भी नया या पुराना सदस्य अंश पर भुगतान राशि एवं कमी की जाने वाली राशि के अन्दर से अधिक के लिए उत्तरदायी न होगा।

(xi) **लेनदारों की सहमति प्राप्त करना** – अंश पूँजी को कम करने हेतु लेनदारों की सहमति प्राप्त करना आवश्यक होगा।

यदि कम्पनी का कोई भी अधिकारी जान-बूझकर पूँजी की कमी का विरोध करने वाले किसी भी लेनदार का नाम छिपाता है तो उसे 1 वर्ष का कारावास या जुर्माना या दोनों हो सकते हैं। [धारा 105]

पूँजी में कमी करने के कारण (Causes of Reducing Capital) – एक कम्पनी निम्न कारणों से अपनी अंश पूँजी में कमी करती है :

(i) **सम्पत्तियाँ अधिक मूल्य पर होने से** – जब कम्पनी की स्थायी सम्पत्तियों को अधिक मूल्य पर दिखाया गया हो तो उस राशि से पूँजी को कम करके समायोजित किया जा सकता है।

(ii) **पूँजी अधिक होने पर** – जब व्यापार में पूँजी की मात्रा आवश्यकताओं से अधिक हो तो उसे कम किया जा सकता है।

(iii) **बनावटी सम्पत्ति को अपलिखित करना** – चिट्ठे में बनावटी सम्पत्ति दिखाए जाने पर पूँजी में कमी करके स्थिति को सुधारा जाना आवश्यक है।

(iv) **अधिक व्यापारिक हानि उठाने पर** – जब कम्पनी को अपार व्यापारिक हानि उठानी पड़े तो वार्षिक खातों को ठीक करने के उद्देश्य से पूँजी में कमी की जा सकती है।

अधिकार वाले अंश (Right Shares) – अधिकृत पूँजी का वह भाग जो पहले निर्गमित नहीं किया गया था, यदि अब निर्गमित किया जाएँ, तो इसे लेने का प्रथम अधिकार कम्पनी के विद्यमान अंशधारियों को होने से इसे 'अधिकार वाले अंश' कहा जाता है।

अंश पूँजी के विभिन्न भेद
(Different Forms of Share Capital)

(i) **अधिकृत पूँजी** – जिस पूँजी की मात्रा से कम्पनी का पंजीयन किया जाता है उसे अधिकृत पूँजी कहते हैं। अधिकृत पूँजी का उल्लेख पार्षद सीमानियम में होना आवश्यक है।

(ii) **निर्गमित पूँजी** (Issued Capital) – अधिकृत पूँजी का एक भाग जनता के लिए निर्गमित किया जाता है जिसे निर्गमित पूँजी के नाम से जानते हैं।

(iii) **प्रार्थित पूँजी** (Subscribed Capital) – निर्गमित पूँजी का वह भाग जो जनता द्वारा खरीद लिया जाता है उसे प्रार्थित पूँजी कहते हैं।

(iv) **माँगी हुई पूँजी** (Called-up-Capital) – आवंटित किए गए अंशों पर समस्त राशि एक साथ नहीं माँगी जाती, बल्कि उसे विभिन्न याचनाओं में माँगते हैं। इस प्रकार जो राशि माँगी जाती है, उसे माँगी हुई पूँजी कहते हैं।

(v) **चुकता पूँजी** (Paid-up Capital) – माँगी हुई पूँजी का वह भाग जो अंशधारियों द्वारा चुका दिया जाए उसे चुकता पूँजी कहते हैं। याचनाओं की जो राशि देने से बकाया रह जाती है उसे बकाया राशि (Calls in arrears) कहते हैं।

(vi) **संचित पूँजी** (Reserve Capital) – यदि कम्पनी अपनी पूँजी का एक भाग केवल समापन के समय प्रयोग करने के लिए रख दे तो उसे संचित पूँजी कहेंगे। इसी प्रकार सीमित दायित्व वाली कम्पनी अपने को असीमित दायित्व वाली कम्पनी में परिवर्तन करने पर ऐसी व्यवस्था कर सकती है।

(vii) **कार्यशील पूँजी** (Working Capital) – चल सम्पत्ति का चल दायित्व पर आधिक्य को कार्यशील पूँजी कहते हैं।

(viii) **स्थायी पूँजी** (Fixed Capital) – स्थायी पूँजी से आशय कम्पनी की स्थायी सम्पत्तियों में विनियोजित पूँजी से है, जिनकी सहायता से कम्पनी अपनी आय उपार्जित करती है।

(ix) **चल पूँजी** (Circulating Capital) – चल पूँजी में उस पूँजी को सम्मिलित करते हैं जिसे व्यापार की बिक्री आदि में लगाया जाता है।

अधिक अंश पूँजी का निर्गमन करना
(Further Issue of Share Capital)

इसका आशय अधिकृत पूँजी के उस भाग के निर्गमन से है जो अभी तक निर्गमित न हुआ हो। कम्पनी जब शुरू होती है तो अपनी सभी अधिकृत पूँजी एक साथ निर्गमित नहीं करती। आवश्यकता पड़ने पर शेष भाग को निर्गमित करती है जिसे अधिक पूँजी का निर्गमन कहा जाता है।

धारा 81 के अन्तर्गत ऐसी निर्गमित पूँजी को लेने का वर्तमान अंशधारियों को 'प्रथम अधिकार' रहता है। कम्पनी की प्रार्थित पूँजी को अधिक अंशों के आवंटन द्वारा बढ़ाने का प्रस्ताव किए जाने पर निम्न व्यवस्था लागू होती है :

(1) **वर्तमान अंशधारियों को लेने का अधिकार** – इस प्रकार के अधिक अंश उन व्यक्तियों को पहले दिए जाते हैं, जो उस समय कम्पनी के साधारण अंशों के धारक होते हैं।

(2) **प्रस्ताव नोटिस द्वारा** – प्रस्ताव वर्तमान सदस्यों को 15 दिन का एक नोटिस द्वारा भेजा जाता है। यदि निर्दिष्ट समय में स्वीकृति प्राप्त न हों, तो माना जाएगा कि वर्तमान सदस्य इन्हें नहीं लेना चाहते।

NOTES

(3) **अन्य अंशधारियों के पक्ष में त्याग** – उपर्युक्त प्रस्ताव में यह प्रस्ताव निहित होता है कि यदि वर्तमान अंशधारी इन अंशों को न लेना चाहें तो वे किसी अन्य व्यक्ति के पक्ष में इस अधिकार का त्याग कर सकते हैं।

(4) **संचालक मण्डल के अधिकार** – इन अंशों को लेने की स्वीकृति पहले ही प्राप्त होने पर संचालक मण्डल उन अंशों को उस प्रकार निर्गमित कर सकते हैं, जिसे वे कम्पनी के हित में उचित समझें।

प्रत्येक व्यक्ति को अंशों का दिया जाना – अधिक अंशों का आवंटन किसी भी व्यक्ति को किया जा सकता है : (i) यदि विशेष प्रस्ताव साधारण सभा में पास कर लिया गया हो, (ii) प्रस्ताव के पक्ष में आए वोट विपक्ष के वोटों से अधिक हों और केन्द्रीय सरकार को यह विश्वास हो जाता हो कि प्रस्ताव कम्पनी के लिए अत्यन्त लाभदायक है।

'प्रथम अधिकार' लागू न होना – यह अधिकार (i) एक निजी कम्पनी में या (ii) पब्लिक कम्पनी की प्रार्थिक पूँजी बढ़ाने में जिसमें ऋणों को अंशों में परिवर्तन करने का अधिकार हों, लागू नहीं होंगे।

शेष ऋण-पत्रों के लिए यह शर्त कम्पनी की साधारण सभा में विशेष प्रस्ताव द्वारा ऋण-पत्रों के निर्गमन के पूर्व पास होनी चाहिए।

ऋण-पत्र को पूँजी से परिवर्तित करना – यदि कम्पनी ने केन्द्रीय सरकार को ऋण-पत्र निर्गमित किया है, तो केन्द्रीय सरकार सार्वजनिक हित में उन ऋण-पत्रों को कम्पनी के अंशों में परिवर्तित कर सकती है, परन्तु इस सम्बन्ध में निम्न परिस्थितियों पर उचित ध्यान देना होगा– (i) कम्पनी की आर्थिक दशा, (ii) ऋण-पत्रों के निर्गमन की शर्तें, (iii) ऋण-पत्र के सम्बन्ध की शर्तें, (iv) देय ब्याज की दर, (v) पूँजी व उत्तरदायित्व, संचय लाभ, (vi) अंशों का वर्तमान बाजार मूल्य।

कम्पनी की शर्तें स्वीकार न होने की दशा में सूचना प्राप्ति के 30 दिनों के अन्दर ऐसी शर्तों के सम्बन्ध में अपील न्यायालय में की जा सकती है। न्यायालय का निर्णय ऐसी शर्तों के सम्बन्ध में अपील न्यायालय में की जा सकती है। न्यायालय का निर्णय अन्तिम माना जाएगा।

नयी अंश पूँजी का निर्गमन
(Issue of Fresh Share Capital)

पूँजी निर्गमन (नियंत्रण) अधिनियम 1947 के अन्तर्गत सभी ऐसी कम्पनियों को पूँजी निर्गमन नियंत्रक की स्वीकृति लेनी होती है, जिनका पूँजी निर्गमन 1969 के पूँजी निर्गमन (मुक्ति) आदेश के द्वारा मुक्त नहीं किया गया है।

इस सम्बन्ध में महत्वपूर्ण विवरण निम्न प्रकार हैं :

(1) सभी आवेदन-पत्र निर्धारित फार्म पर निर्धारित फीस के साथ पूँजी निर्गमन नियंत्रक के पास भेजे जाने चाहिए।

(2) औद्योगिक लाइसेन्स की सत्य प्रतिलिपि लगी हो।

(3) मान्यता प्राप्त स्कन्ध विपणि में सूचीयन होना आवश्यक है।

(4) नकदी के अतिरिक्त अन्य प्रकार के अंशों का निर्गमन करना मना है।

(5) प्रोजेन्ट लागत की वित्तीय व्यवस्था में समता ऋण अनुपात 1 : 2 होना चाहिए।

(6) पूर्वाधिकार अंशों पर लाभांश की दर घोषित उच्चतम सीमा के अन्दर ही होनी चाहिए।

(7) नए निर्गमन के सम्बन्ध में अभिगोपकों के साथ सन्तोषजनक समझौता होना चाहिए।

(8) निश्चित आवंटन किसी सार्वजनिक वित्तीय संस्था को किए जाने की दशा में इसका विवरण आवेदन-पत्र में देना चाहिए।

(9) कम्पनी के सचिव, संचालक का प्रमाण-पत्र लगाना चाहिए कि सभी सूचनाएँ पूर्ण व सही हैं।

(10) पूँजी ढाँचे पर प्रभाव डालने वाले प्रतिबन्ध का विवरण आवेदन-पत्र के साथ होना चाहिए।

(11) लिखित अनुमति लिए बिना अनिवासी को अंशों का आवंटन न किया जाता है।

(12) प्रथम निर्गमन करने की दशा में अंशों पर कोई प्रीमियम नहीं लिया जा सकता है।

(13) समता व पूर्वाधिकार अंश पूँजी का अनुपात 3 : 1 होना चाहिए।

(14) MRTP अधिनियम के अन्तर्गत पंजीकृत कम्पनियों को अधिनियम के अन्तर्गत आवश्यक अनुमति ले लेनी चाहिए।

(15) जब प्रथम बार क्षमता अंश पूँजी जनता को निर्गमित की जाती हों वहाँ पर प्रवर्तकों, संचालकों व उनके मित्रों द्वारा प्रार्थित समता पूँजी निम्न प्रकार होगी– (i) 1 करोड़ रु. से अधिक पूँजी न होने पर इसमें भाग 15% से कम

नहीं होगा, (ii) यदि पूंजी 2 लाख रु. से अधिक नहीं है, तो इसका भाग 12.5% से कम नहीं होगा, यदि पूँजी 2 करोड़ रु. से अधिक है, तो इसका भाग 10% से कम नहीं होगा।

(16) प्रोजेक्ट लागत का वास्तविक अनुपात और इसके लिए वित्तीय व्यवस्था की योजना भेजनी होगी।

NOTES

कम्पनी की सदस्यता
(Members of Company)

सदस्य की परिभाषा – कम्पनी को लिखित सहमति प्रदान करने वाला या पार्षद सीमानियम पर हस्ताक्षर करने वाला प्रत्येक व्यक्ति कम्पनी का सदस्य माना जाता है। [धारा 41 (1)]

कम्पनी के सदस्य में धारा 144 के अन्तर्गत कम्पनी के अंश अधिपत्र के वाहक को सम्मिलित नहीं किया जा सकता है। [धारा 22 (7)]

सदस्य बनाने की विधियाँ

कोई भी व्यक्ति निम्न विधियों से कम्पनी का सदस्य बन सकता है :

(i) **सीमानियम पर हस्ताक्षर करके** – कोई भी व्यक्ति पार्षद सीमानियम पर हस्ताक्षर करके कम्पनी का सदस्य बन सकता है। कम्पनी के पंजीयन के बाद उसका नाम कम्पनी के सदस्य रजिस्टर में लिख या दिया जाता है। (लार्ड लूरगेन्स केस 1902)। कोई भी व्यक्ति रजिस्टर में नाम लिखे जाने पर भी सदस्यता प्राप्त कर सकता है। [बाबूलाल बनाम नरायन शुगर और जनरल मिल्स लि. 1958]

(ii) **नाम सदस्य रजिस्टर में रहने पर** – यदि कोई व्यक्ति अपना नाम सदस्य रजिस्टर में रहने दे तो उसका उत्तरदायित्व सदस्य की तरह ही बना रहेगा।

(iii) **अंश-अधिपत्र के समर्पण करने पर** – अंश अधिपत्रधारी अंश प्रमाण-पत्र प्राप्त करके रजिस्टर में नाम लिखकर कम्पनी का सदस्य बन सकता है।

(iv) **अंशों को प्राप्त करने पर** – यदि कम्पनी का कोई सदस्य अपने अंशों को किसी अन्य व्यक्ति को हस्तान्तरण कर देता है तो हस्तान्तरिती का नाम कम्पनी के सदस्य रजिस्टर में लिख दिया जाएगा, और वह कम्पनी का सदस्य माना जाएगा।

(v) **काल्पनिक नाम में अंश खरीदना** – यदि कोई व्यक्ति काल्पनिक नाम में अंश खरीदता है तो उसका दायित्व भी सदस्यों की तरह माना जाता है।

(vi) **विक्रय हेतु अंश खरीदना** – यदि कोई व्यक्ति अंशों को बिक्री करने हेतु अपने पास रखता है तो व्यक्ति को कम्पनी का सदस्य नहीं माना जा सकता।

(vii) **वैधानिक उत्तराधिकारी** – किसी व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात् उसके वैधानिक उत्तराधिकारी कम्पनी के सदस्य बन जाते हैं और उन्हें इन अंशों का हस्तान्तरण करने का अधिकार रहता है।

(viii) **बन्धक पर ऋण देने वाला व्यक्ति** – यदि कोई व्यक्ति कम्पनी को अंशों के बन्धन के आधार पर ऋण देता है तो उसका नाम रजिस्टर्ड कर दिया जाता है और वह कम्पनी का सदस्य बन जाता है।

(ix) **आवंटन के स्वत्व त्याग द्वारा** – यदि कोई व्यक्ति अपने आवंटन का त्याग किसी तृतीय पक्ष में करके अपने स्वत्व का त्याग कर देता है तो वह व्यक्ति कम्पनी का सदस्य बन जाता है।

(x) **प्रार्थना- पत्र देने पर** – जब कोई व्यक्ति कम्पनी में प्रार्थना-पत्र देकर अंश प्राप्त करके अपना नाम सदस्य रजिस्टर में लिखा लेता है तो ऐसे व्यक्ति तथा कम्पनी के मध्य एक ठहराव स्थापित हो जाता है और वह व्यक्ति कम्पनी का सदस्य बन जाता है। (बारमन बनाम एल.एण्ड.एन वेस्टर्न रेलवे 1889)

(xi) **वाहक अंशपत्र को समर्पित करके** – पूर्णदत्त अंशों का धारक अपने अधिपत्र को समर्पित करके कम्पनी का सदस्य बन सकता है।

(xii) **मौन स्वीकृति द्वारा** – यदि किसी व्यक्ति का गलती से सदस्य रजिस्टर में नाम लिख दिया जाए और वह उसकी मौन स्वीकृति प्रदान करता है, तो वह कम्पनी का सदस्य माना जाता है।

सदस्य व अंशधारी में अन्तर
(Difference between Members and Shareholders)

सदस्य व अंशधारी में प्रमुख अन्तर निम्नलिखित हैं :

(i) **न्यायिक धारक** – व्यक्ति अंशों का न्यायिक धारक भी हो सकता है और अंशधारी के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह सदस्य ही हो।

(ii) **लिखित सहमति** – सदस्य बनने के लिए कम्पनी को लिखित सहमति देना आवश्यक होता है। अंशधारी वह व्यक्ति होता है जो अंशों का धारक हो।

(iii) **अंशों का धारक** – एक व्यक्ति मौन द्वारा भी कम्पनी का सदस्य हो सकता है और उसके लिए अंशों का धारक होना आवश्यक नहीं है। अंशधारी के लिए अंशों का धारक होना आवश्यक नहीं है।

(iv) **वैधानिक धारक** – सदस्य अंशों का वैधानिक धारक होता है जबकि अंशधारी कम्पनी का न्यायिक धारक ही माना जाता है।

(v) **अंशपूँजी में अन्तर** – जिन कम्पनियों में अंश-पूँजी नहीं होती है उनमें सदस्य तो हो सकते हैं, परन्तु उन्हें अंशधारी नहीं कहा जा सकता है।

(vi) **मृत्यु होने पर** – अंशधारी की मृत्यु होने पर उत्तराधिकारी अंशधारी तो कहे जा सकते हैं परन्तु सदस्य नहीं।

(vii) **रजिस्टर में नाम** – मृत सदस्य उस समय तक सदस्य बना रहता है जब तक कि उसका नाम सदस्यों के रजिस्टर में रहता है, परन्तु उसे अंशधारी नहीं कहा जा सकता।

(viii) **दिवालिया होना** – यदि सदस्य दिवालिया हो तो सरकारी प्रापक अंशधारी तो हो सकता है, परन्तु सदस्य नहीं होगा।

(ix) **वाहक अंश अधिपत्र** – सदस्य के अंश अधिपत्र के वाहक को सम्मिलित नहीं करते हैं। अतः अंश अधिपत्रधारी अंशधारी तो हो सकता है, परन्तु सामान्यतया सदस्य नहीं। [धारा (2) 20]

कम्पनी का सदस्य कौन बन सकता है?

एक कम्पनी में निम्न व्यक्ति उसके सदस्य बन सकते हैं :

(i) **अवयस्क** – अवयस्क अपने संरक्षण के द्वारा कम्पनी के अंशों को क्रय कर सकता है : अवयस्क के नाम में किया गया आवंटन अवैध माना जाता है। एक अवयस्क अनुबन्ध करने के योग्य नहीं होता अतः उसके द्वारा अंशों को लेने का अनुबन्ध करना व्यर्थ होता है। अवयस्क को अंशधारी नहीं माना जा सकता। वयस्कता प्राप्त होने के 6 माह के अन्दर वह इस प्रसंविदे को समाप्त भी कर सकता है।

(ii) **कम्पनी** – सीमानियम या अन्तर्नियम द्वारा अधिकृत होने पर एक कम्पनी दूसरी कम्पनी की सदस्य बन सकती है, परन्तु कोई भी सीमित दायित्व वाली कम्पनी अपने ही अंशों को क्रय नहीं कर सकती। एक समामेलित संस्था एक ऐसी कम्पनी की सदस्य नहीं बन सकती जो कि उसकी सूत्रधारी कम्पनी हो। यदि ऐसा आवंटन कर दिया गया तो वह व्यर्थ माना जाएगा।

(iii) **ट्रस्ट के रूप में** – यदि एक व्यक्ति कम्पनी के अंशों को ट्रस्ट के रूप में रखता है तो वह ट्रस्टी कम्पनी की सभाओं के समस्य के अधिकारों का प्रयोग नहीं कर सकता।

(iv) **संयुक्त अंशधारी** – सार्वजनिक कम्पनी में प्रत्येक संयुक्त अंशधारी कम्पनी का सदस्य माना जाता है। परन्तु जब तीन या चार व्यक्ति किसी कम्पनी के अंशों के लेने के लिए सहमत हों तो वह एक सदस्य नहीं माने जा सकते। (नारायण दास बनाम इण्डियन मैन्यूफेक्चरिंग कं. 1953)

(v) **समामेलित संस्था का प्रतिनिधि** – यदि कोई समामेलित संस्था एक कम्पनी की सदस्य है तो वह प्रस्ताव पास करके किसी भी व्यक्ति को कम्पनी की सभाओं में प्रतिनिधित्व करने के लिए नियुक्त कर सकती है। यह व्यक्ति कम्पनी के सदस्य के अधिकारों का प्रयोग करेगा।

(vi) **फर्म** – एक फर्म कम्पनी की अंशधारी नहीं बन सकती, परन्तु उसके साझेदार व्यक्तिगत रूप में उस कम्पनी के ग्राहक बन सकते हैं।

(vii) **राष्ट्रपति एवं राज्य के गवर्नर** – राष्ट्रपति या राज्य के गवर्नर यदि किसी कम्पनी के सदस्य हैं तो वे किसी भी व्यक्ति को कम्पनी की सभाओं में भाग लेने के लिए अपना प्रतिनिधि नियुक्त कर सकते हैं। [धारा 187 (अ)]

(viii) **प्रन्यास** – किसी भी प्रन्यास का कोई भी नोटिस सदस्यों के रजिस्टर में नहीं लिखा जा सकता, परन्तु केन्द्रीय सरकार सरकारी गजट में सूचना निकाल कर एक व्यक्ति को प्रन्यासी नियुक्त कर सकती है। [धारा 153]

अंशों को ट्रस्ट के रूप में रखना – यदि व्यक्ति अंश ट्रस्टी के रूप में रखे, तो सभा में ट्रस्टी अधिकारों का प्रयोग नहीं कर सकता। निम्न अधिकार पब्लिक ट्रस्टी द्वारा प्रयोग किए जा सकते हैं –

(i) सरकार के किसी अधिकारी को प्राक्सी के रूप में नियुक्त किया जा सकता है।

(ii) पब्लिक ट्रस्टी, ट्रस्टी का उन अधिकारों के प्रयोग करने से रोक सकता है जो हितों पर बुरे प्रभाव डालते हों।

(iii) यदि अधिकारों का प्रयोग ट्रस्ट के लाभार्थ आवश्यक है तो वह लिखित में अपने विचार पब्लिक ट्रस्टी को दे सकता है।

(iv) ट्रस्टी को अधिकारों का प्रयोग रोकने पर उसके विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं हो सकती है।

(v) पब्लिक ट्रस्टी से सभी पुस्तकें प्रपत्र प्राप्त किए जा सकते हैं।

सदस्यता की समाप्ति
(Cessation of Membership)

एक व्यक्ति की सदस्यता निम्न परिस्थितियों में समाप्त हो जाती है :

(i) **मृत्यु द्वारा** – अंशधारी की मृत्यु के पश्चात् उसके वैधानिक उत्तराधिकारी सदस्य बन जाते हैं और उत्तराधिकारी का नाम सदस्य रजिस्टर में लिखने पर मृत अंशधारी की सदस्यता समाप्त हो जाती है।

(ii) **अंशों का समर्पण** – यदि कोई अंशधारी अंशों का समर्पण कर देता है तो उसकी सदस्यता समाप्त हो जाती है। (ट्रेवर बनाम ब्राइटवर्थ 1887)

(iii) दिवालिया होने पर – अंशधारी के दिवालिया होने पर अंशों का सरकारी प्रापक अधिकारी हो जाता है और पुराने सदस्य की सदस्यता समाप्त हो जाती है।

(iv) **कम्पनी का विघटन** – यदि कम्पनी का समापन किसी भी कारण से हो जाता हो तो उस स्थिति में सदस्यता स्वतः ही समाप्त हुई समझी जाती है।

(v) **प्रविवरण में कपट करने पर** – प्रविवरण में कपट या असत्य विवरण देने पर सदस्य व कम्पनी के मध्य प्रसंविदा समाप्त हो जाता है और अंशधारियों की सदस्यता भी समाप्त हो जाती है।

(vi) **कम्पनी द्वारा अंशों की बिक्री** – कम्पनी द्वारा अंशों की बिक्री करने पर नये क्रेता का नाम रजिस्टर में लिख दिया जाएगा और पुराने अंशधारी की सदस्यता समाप्त हो जायेगी। कोई भी कम्पनी किसी सदस्य को हटा नहीं सकती है। [कम्पनी कार्यों का विभाग 1 नवम्बर, 1975]

(vii) **अंशों का हरण करना** – कम्पनी द्वारा अंशों का हरण करने पर भी अंशधारी की सदस्यता समाप्त हो जाती है।

(viii) **अंशों का हस्तान्तरण** – एक व्यक्ति अपने अंशों को दूसरे व्यक्तियों को हस्तान्तरित करने पर उसकी सदस्यता समाप्त हो जाती है।

सदस्यों का रजिस्टर
(Register of Members)

सदस्यों के रजिस्टर के सम्बन्ध में निम्न व्यवस्था है :

(i) **कम्पनी का कर्तव्य होना** – धारा 150 के अनुसार प्रत्येक कम्पनी का यह कर्तव्य है कि वह अपने यहाँ सदस्यों का एक रजिस्टर रखे, जिसमें निम्न व्यवस्था हो :

(अ) प्रत्येक सदस्य का नाम, पता व पेशे का विवरण। (ब) अंश पूँजी वाली कम्पनी की दशा में प्रत्येक सदस्य के अंशों की संख्या और उन पर भुगतान की गयी राशि का विवरण। (स) प्रत्येक व्यक्ति के सदस्य बनने की तारीख। (इ) प्रत्येक व्यक्ति की सदस्यता समाप्त होने की तिथि।

(ii) **स्कन्ध का विवरण रखना** – अंशों को स्कन्ध में परिवर्तित करने एवं रजिस्ट्रार को सूचित करके अंशों के स्थान पर स्कन्ध को ही दिखाया जाएगा।

यदि नियम का उल्लंघन किया जाता है तो कम्पनी एवं दोषी अफसरों पर 50 रुपये प्रतिदिन के हिसाब से जुर्माना होगा।

सदस्यों के रजिस्टर के न बनने पर आवंटन पुस्तक का उपयोग किया जाता है। जिस तिथि को अंश अधिपत्र कम्पनी को दिया जाता है उस तिथि को ही रजिस्टर में लिख दिया जाता है। [धारा 115]

(iii) **अंश अधिपत्र का विवरण** – यदि कम्पनी द्वारा अंश अधिपत्र का निर्गमन किया जाता है तो सदस्यों के रजिस्टर से अंशधारी का नाम काटकर उसके स्थान पर निम्न सूचनाएँ लिखी जानी चाहिए।

NOTES

(ix) **प्रथम अधिकार** – यदि सदस्यों ने अंशों की पूरी राशि का भुगतान नहीं किया है तो इन अंशों पर कम्पनी का प्रथम अधिकार होगा।

(x) **नकदी के लिए दायित्व** – माँग करने पर सदस्यों को सदैव नकदी में ही भुगतान करना होगा।

सदस्यों के अधिकार
(Rights of Members)

सदस्यों को अधिकार विधान पार्षद सीमानियम तथा अन्तर्नियमों द्वारा व सामान्य सन्नियम द्वारा प्राप्त होते हैं। सदस्यों के अधिकारों को दो भागों में रखा जा सकता है।

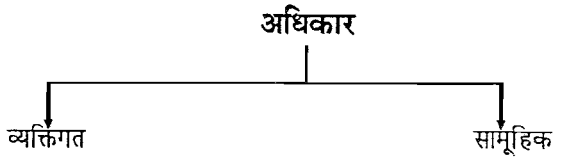

(अ) **व्यक्तिगत अधिकार** – सदस्य के व्यक्तिगत अधिकारों में निम्न को सम्मिलित करते हैं :

(1) **रजिस्टर की प्रतिलिपि** – सदस्य प्रार्थना-पत्र देने के 10 दिन के अन्दर रजिस्टर की प्रतिलिपि प्राप्त करने के अधिकारी हैं।

(2) **अंश हस्तान्तरण** – सदस्यों को अंशों के हस्तान्तरण का अधिकार प्राप्त होता है।

(3) **अंकेक्षण रिपोर्ट व चिट्ठा** – सदस्यों को अंकेक्षण की रिपोर्ट एवं चिट्ठे की प्रतिलिपि पाने का अधिकार है।

(4) **अंश रजिस्टर का निरीक्षण** – सदस्य कम्पनी के अंश रजिस्टर का निरीक्षण कर सकता है।
[धारा 47 (8)]

(5) **अंकेक्षकों का नामांकन** – हटाये गये अंकेक्षकों के स्थान पर नवीन अंकेक्षक की नियुक्ति के लिए सदस्य द्वारा नामांकन किया जा सकता है।

(6) **निस्तारक की नियुक्ति** – कम्पनी के विघटन पर सदस्य निस्तारक की नियुक्ति के लिए प्रार्थना-पत्र दे सकता है। [धारा 155]

(7) **प्रबन्धकों के प्रसंविदे की प्रतिलिपि** – कम्पनी के प्रबन्धकों के साथ किये गये प्रसंविदे की प्रतिलिपि को 21 दिन के अन्दर प्रत्येक सदस्य प्राप्त कर सकता है।

(8) **रजिस्टर में परिवर्तन** – सदस्य रजिस्टर में गलती होने पर सदस्य उसमें परिवर्तन कराने का अधिकारी होता है।

(9) **अंशों को लेने में प्राथमिकता** – कम्पनी द्वारा पूँजी निर्गमित करते समय अंशों के लेने में प्राथमिकता का प्रयोग किया जायेगा।

(10) **प्रन्यास पत्र की प्रतिलिपियाँ** – निर्धारित शुल्क देकर प्रार्थना पत्र देने पर 7 दिन में प्रन्यास पत्र की प्रतिलिपि प्राप्त की जा सकती है।

(11) **प्रमाण- पत्र पाने का अधिकार** – सदस्य अंशों व ऋण पत्रों के बदले प्रमाण-पत्र प्राप्त कर सकते हैं।

(12) **पुस्तकों का निरीक्षण** – सदस्यों को कम्पनी की आवश्यक पुस्तकों को निरीक्षण करने का अधिकार होता है।

(13) **न्यायालय में आवेदन- पत्र** – पर्याप्त सूचनाएँ व प्रपत्र न मिलने पर सदस्यों को न्यायालय में आवेदन-पत्र देने का अधिकार होता है।

(14) **हित वाला रजिस्टर** – सदस्य के हित वाले रजिस्टर को देखने का अधिकार सदस्य का होता है।

(15) **समझौतों की प्रतिलिपियाँ** – सदस्य लेनदार व कम्पनी के साथ हुए समझौतों की प्रतिलिपियाँ प्राप्त कर सकता है।

(16) **वोट देने का अधिकार** – प्रत्येक सदस्य को वोट देने का अधिकार रहता है।

(17) **कम्पनी की सभा** – सदस्य कम्पनी की सभा बुलाने के लिए न्यायालय में आवेदन करता है।

(18) **विवरण पत्र की प्रतिलिपियाँ** – बैंकिंग व बीमा कम्पनी की विवरण पत्र की प्रतिलिपियाँ 7 दिन के अन्दर 50 पैसे देकर प्राप्त की जा सकती हैं।

(19) **वोट का प्रयोग** – एक से अधिक वोट का स्वामी होने पर वह उन्हें अपना इच्छानुसार प्रयोग कर सकता है। अर्थात् वह अपने वोटों का प्रयोग भिन्न-भिन्न ढंग से सरलता से कर सकता है।

(20) **सभा की कार्यवाहियाँ** – कम्पनी की प्रत्येक साधारण सभा की कार्यवाहियों की प्रतिलिपि को प्राप्त किया जा सकता है।

(21) **प्रपत्र पाने का अधिकार** – सदस्य को प्रार्थना करने व 1 रुपया शुल्क देकर कम्पनी की सीमानियम, अन्तर्नियम एवं अन्य प्रपत्रों को 7 दिन के अन्दर प्राप्त करने का अधिकार है।

(ब) सामूहिक अधिकार – सदस्यों के सामूहिक अधिकार निम्न हैं :

(1) **अंकेक्षक की नियुक्ति** – सदस्यों को अंकेक्षक की नियुक्ति करने एवं पारिश्रमिक निश्चित करने का अधिकार है। [धारा 224]

(2) **प्रपत्रों में परिवर्तन करना** – पार्षद सीमानियम एवं अन्तर्नियम में आवश्यक संशोधन एवं परिवर्तन किये जा सकते हैं। [धारा 16, 31]

(3) **संचालकों को हटाना** – धारा 248 के अन्तर्गत संचालकों को कम्पनी से पृथक किया जा सकता है।

(4) **असाधारण सभा बुलाना** – चुकता पूँजी का 1/10 भाग या वोट देने की 1/10 शक्ति होने पर सदस्यगण संचालकों को आसाधारण सभा बुलाने को बाध्य कर सकते हैं। [धारा 169]

(5) **संचालकों की नियुक्ति** – सदस्यों को वार्षिक सभा में संचालकों की नियुक्ति करने का अधिकार होता है। [धारा 255]

(6) **संचालकों के विरुद्ध दावा** – कम्पनी के लिए अहित कार्य करने की दशा में सदस्यगण कम्पनी के नाम से संचालकों के विरुद्ध सामूहिक रूप से दावा कर सकते हैं। [फोस बनाम हरबोटिल]

(7) **कम्पनी का अनुसंधान** – अंश पूँजी वाली कम्पनी में 200 सदस्य या 1/10 वोट रखने वाले सदस्य तथा बिना अंश पूँजी वाली कम्पनी में 1/5 सदस्य केन्द्रीय सरकार को प्रार्थना पत्र देकर कम्पनी के अनुसंधान के लिए निरीक्षकों की नियुक्ति के लिए प्रार्थना कर सकते हैं।

(8) **मतगणना माँगना** – सार्वजनिक कम्पनी में 7 सदस्यों के उपस्थित होने पर 5 सदस्यों को तथा 7 से अधिक की उपस्थिति पर 1/10 वोट शक्ति रखने वाले सदस्यों द्वारा तथा निजी कम्पनी में दो सदस्यों के उपस्थित होने पर 1 सदस्य की मतगणना माँगने का अधिकार प्राप्त होता है। [धारा 179]

(9) **प्रस्ताव को रोकना** – निर्गमित पूँजी का 10% तक भाग रखने वाले असन्तुष्ट सदस्यगण पास किये गए प्रस्ताव को रोकने के लिए न्यायालय में प्रार्थना पत्र दे सकते हैं।

(10) **अंश पूँजी सम्बन्धी** – सदस्यगण कम्पनी अधिनियम एवं अन्तर्नियमों के अन्तर्गत कम्पनी की पूँजी को बढ़ा तथा अंशों को स्कन्ध में परिवर्तित कर सकते हैं। [धारा 94]

प्रश्न
(Questions)

1. अंश पूँजी किसे कहते हैं? अंश पूँजी के विभिन्न प्रकार बताइये।
2. अंश पूँजी में वृद्धि व कमी के द्वारा पूँजी में परिवर्तन की प्रक्रिया बताइये।
3. अंश पूँजी में कमी का क्या आशय है? अंश पूँजी में कमी करने से सम्बन्धित वैधानिक प्रावधानों को बताइये।
4. पूँजी का पुनर्गठन का क्या आशय है? पुनर्गठन की विधि व प्रक्रिया बताइये।
5. अधिकार अंश किसे कहते हैं? अधिकार अंशों के निर्गमन से सम्बन्धित वैधानिक प्रावधानों को बताइये।
6. एक कम्पनी किन परिस्थितियों में अपने अंश पूँजी कम कर सकती है? समझाइये।
7. अधिक अंश पूँजी के निर्गमन से सम्बन्धित प्रावधानों का वर्णन कीजिये।
8. एक कम्पनी अंशपूँजी में कैसे और किन परिस्थितियों में (अ) कमी (ब) वृद्धि और (स) पुनर्गठन कर सकती है?
9. अंश पूँजी में कमी एवं वृद्धि का वर्णन कीजिये।
10. एक कम्पनी की अंश पूँजी को कम करने की रीति का वर्णन कीजिये। क्या अंशपूँजी कम करने के लिए न्यायालय की स्वीकृति प्राप्त करना आवश्यक है?

NOTES

11. अंशों के प्रथम अधिकार से आप क्या समझते हैं? इस सम्बन्ध में कम्पनी अधिनियम की व्यवस्थाओं का उल्लेख कीजिये।
12. बोनस अंश क्या है? इसके निर्गमन के संबंध में 'सेबी' के नवीनतम दिशा निर्देशों को स्पष्ट रूप से समझाइये।
13. अंशों की 'वापस खरीद' से सम्बन्धित कम्पनी अधिनियम के प्रावधानों को बताइये।
14. एक कम्पनी के ऋणपत्रों का अंशपत्रों में परिवर्तन से सम्बन्धित नियमों को बताइये।
15. कम्पनी की सदस्यता से क्या आशय है? कम्पनी का सदस्य कौन बन सकता है?
16. क्या एक अवयस्क कम्पनी का अंशधारी हो सकता है? यदि हाँ तो उसके दायित्वों को बताइये।
17. कम्पनी के सदस्य कौन होते हैं? सदस्य तथा अंशधारी में अंतर बताइये।
18. किसी कम्पनी की सदस्यता किस प्रकार प्राप्त की जा सकती है? किन परिस्थितियों में ऐसी सदस्यता समाप्त हो जाती है?
19. सदस्य तथा अंशधारी में अन्तर बताइये। सदस्यों के अधिकार व दायित्वों को बताइये।
20. सदस्यों के रजिस्टर के सम्बन्ध में वैधानिक प्रावधानों की विवेचना कीजिये।

अपनी प्रगति की जाँच करें
Test your Progress

7

कम्पनी की सभाएँ एवं प्रस्ताव
(MEETING AND RESOLUTIONS OF COMPANY)

NOTES

कम्पनी का प्रबन्ध कम्पनी की सभाओं द्वारा होता है। वैध रूप से व्यवसाय करने के लिए सभाओं का वैध रूप से किया जाना आवश्यक है। अतः कम्पनी सचिव का यह कर्तव्य है कि वह कम्पनी अधिनियम 1956 तथा पार्षद सीमानियम व अन्तर्नियम में सभा से सम्बन्धित प्रावधानों का पूर्ण रूप से पालन करें।

सभाओं की विधि
(Procedure of Meeting)

सभी प्रकार की सभाओं की कार्यविधि के अध्ययन को निम्न प्रकार से रखा जा सकता है :

(1) सभा की सूचना, (2) सभा की कार्यवाहक संख्या, (3) सभा की कार्यावली, (4) सभा का अध्यक्ष, (5) सुझाव व प्रस्ताव, (6) सभा की सम्मति, (7) प्रति पुरुष, (8) सभा का स्थगन, (9) सभा के सूक्ष्य।

सभा की सूचना
(Notice of Meeting)

वैध कार्यवाही के लिए यह आवश्यक है कि उचित अधिकारी द्वारा उचित सूचना देकर सभा का आयोजन किया जाए। सभा में भाग लेने वाले सभी व्यक्तियों को इसकी सूचना दी जाना आवश्यक है। इस सूचना में सभा की तिथि, समय, स्थान व सभा में किए जाने वाले कार्यों का विवरण रहता है।

प्रायः सभा की सूचना भेजने का कार्य संचालक का होता है। संचालक, यह कार्य सचिव को भी सौंप सकते हैं। यदि कम्पनी द्वारा वार्षिक साधारण सभा बुलाने में त्रुटि की जाती है, तो केन्द्रीय सरकार द्वारा ऐसी सभा बुलायी जा सकती है। ऐसी दशा में केन्द्रीय सरकार स्वयं सभा की सूचना देगी या कम्पनी का कोई अधिकारी सरकार के आदेश से सभा की सूचना भेज सकता है।

यदि यथोचित माँग प्रपत्र प्रस्तुत करने के 45 दिन के अन्दर संचालकों द्वारा असाधारण सभा नहीं बुलाई जाती है तो कम्पनी के सदस्यों द्वारा भी सभा की सूचना भेजी जा सकती है। संचालकों द्वारा ऐसी सभा की व्यवस्था न करने की दशा में माँग करने वाले सदस्यगण स्वयं सभा बुला सकते हैं। ऐसी दशा में सभा की सूचना सदस्यों द्वारा भेजी जाती है। कम्पनी विधान मण्डल या विस्तारक द्वारा भी कुछ अवस्थाओं में सभा की सूचना भेजकर कम्पनी की सभा बुलाई जा सकती है।

सूचना की अवधि (Period of Notice) – व्यापक सभा की सूचना कम से कम 21 दिवस पूर्व दिया जाना आवश्यक है, परन्तु निम्न दशाओं में 21 दिन से कम अवधि की सूचना भी दी जा सकती है – (i) उपस्थित होने व मतदान का अधिकार रखने वाले सभी सदस्यों द्वारा सहमति देने पर (वार्षिक व्यापक सभा में), तथा (ii) अन्य किसी व्यापक सभा की अवस्था में, (अ) अंश पूँजी वाली कम्पनी में कुल प्रदत्त पूँजी के कम से कम एक प्रतिशत माँग पर अधिकार रखने वाले सदस्य द्वारा सहमति देने पर या (ब) अंश पूँजी वाली कम्पनी न होने पर कुल मताधिकार का कम से कम 95% मतों पर अधिकार रखने वाले सदस्यों द्वारा सहमति देने पर।

सूचना की विषय-सामग्री (Contents of Notice) – सभा की सूचना में सभा का स्थान, तिथि समय, कार्य आदि का उल्लेख होना चाहिए। यदि वार्षिक व्यापक सभा में कोई विशेष कार्य किया जाना है तो सम्बन्धित तथ्यों का विवरण पत्र सभा की सूचना के साथ भेजा जाना चाहिए। सदस्यों को प्रति पुरुष नियुक्त करने का अधिकार दिए जाने की दशा में, उसका उल्लेख भी सूचना में किया जाना चाहिए।

सूचना प्राप्त करने वाले व्यक्ति – सभा की सूचना निम्नलिखित व्यक्तियों को दी जानी चाहिए – (i) कम्पनी के प्रत्येक सदस्यगण को, (ii) मृत सदस्य के उत्तराधिकारी को, (iii) दिवालिया सदस्य होने पर निस्तारक को, (iv) कम्पनी के अंकेक्षक को। संयुक्त स्वामी की दशा में सूचना उस व्यक्ति को दी जाती है, जिसका नाम सदस्य रजिस्टर में सर्वप्रथम आता हो।

सूचना देने का ढंग (Mode of Service of Notice) – सभा की सूचना सम्बन्धित व्यक्ति को डाक द्वारा या व्यक्तिगत रूप से दी जा सकती है। जब पत्र पर सही पता लिखकर आवश्यक टिकट लगाकर उसे डाक में डाल

दिया जाता है तो ऐसी सूचना को पूर्ण माना जाता है। यदि व्यक्ति में सूचना रजिस्टर्ड डाक से माँगी है और व्यय भी भेज दिया है तो कम्पनी द्वारा उसे रजिस्टर्ड डाक व्यवस्था में 48 घण्टे बाद सूचना सम्बन्धित व्यक्ति को पहुँच गयी मान ली जाती है। पते न होने पर सूचना समाचार-पत्र द्वारा दी जाती है तथा यह माना जाता है कि सूचना सम्बन्धित व्यक्ति को प्राप्त हो गयी है, जिस दिन वह प्रकाशन समाचार-पत्र में दिया जाता है।

संचालक मण्डल की सभा की सूचना – संचालक मण्डल के सभा की सूचना सभी संचालकों को उनके पते पर दी जाना आवश्यक है। यह सूचना समय से पूर्व दी जानी चाहिए। सूचना की अवधि का उल्लेख अन्तर्नियमों में रहता है। सूचना न मिलने के कारण संचालक सभा में उपस्थित नहीं हो पाता तो कार्यवाही अवैध हो जाती है। यदि संचालक मण्डल की सभा की तिथियाँ अन्तर्नियमों द्वारा पहले ही निर्धारित कर ली गयी हों, तो सभा की सूचना देने की आवश्यकता नहीं होती। व्यवहार में संचालक मण्डल की सभी सभाओं की सूचना प्रत्येक संचालक को दी जाती है।

वैधानिक सभा – वैधानिक सभा प्रत्येक पब्लिक कम्पनी के शेयरधारियों की प्रथम साधारण सभा होती है जो कम्पनी के जीवन में केवल एक बार ही होता है। इस सभा के लिए 21 दिन पूर्व सभा की सूचना सचिव द्वारा प्रत्येक सदस्य को दी जाती है। इसी के साथ वैधानिक रिपोर्ट की एक प्रतिलिपि भेजी जाती है।

वार्षिक सामान्य सभा – प्रतिवर्ष होने वाली सामान्य सभा को वार्षिक सामान्य सभा कहते हैं। कम्पनी की वार्षिक सामान्य सभा के न होने पर केन्द्रीय सरकार इसे बुलाने के लिये निर्देश दे सकती है अथवा स्वयं बुला सकती है।

सभा की कार्यवाहक संख्या
(Quorum)

सभा में उपस्थित सदस्यों की वह न्यूनतम संख्या जो सभा की कार्यवाही को वैध बनाने हेतु आवश्यक हो, कार्यवाहक संख्या कहलाती है। कार्यवाहक संख्या के अभाव में संख्या की कार्यवाही प्रारम्भ नहीं की जा सकती है। सामान्यतया सार्वजनिक कम्पनी में उपस्थित 5 सदस्य एवं निजी कम्पनी में उपस्थित 2 सदस्य सभा की कार्यवाहक संख्या होगी, इसमें प्रति पुरुष को सम्मिलित नहीं किया जाता।

यदि व्यापक सभा में निर्धारित समय के आधे घण्टे बाद तक कार्यवाहक संख्या उपस्थित न हो, तो सभा को स्थगित कर दिया जाता है। ऐसी स्थगित सभा अगले सप्ताह उसी दिन व उसी समय पर पुनः बुलायी जायेगी। ऐसी स्थगित सभा के निश्चित समय के आधा घण्टे तक कार्यवाहक संख्या उपस्थित न हो तो उसी संख्या को कार्यवाहक संख्या मान लिया जाता है, जो सभा में उपस्थित हो, भले ही एक ही व्यक्ति हो। यदि सदस्यों के माँग करने पर असाधारण व्यापक सभा बुलाई जाती है तो ऐसी सभा के निश्चित समय के आधे घण्टे बाद तक कार्यवाहक संख्या उपस्थित न होने पर सभा भंग मानी जाती है।

केन्द्रीय सरकार या कम्पनी बोर्ड द्वारा सभा बुलाई जाने की दशा में ऐसे आदेश दिये जा सकते हैं कि यदि एक ही व्यक्ति उपस्थित हो, सदस्य या प्रतिपुरुष तो भी वह सभा वैध मानी जाएगी और एक ही व्यक्ति भी कार्यवाहक संख्या माना जाता है। यदि किसी वर्ग विशेष के अंशधारी, ऋणपत्रधारी एक ही व्यक्ति हो तो ऐसा एक ही व्यक्ति सभा की कार्यवाहक संख्या माना जाएगा।

संचालक मण्डल सभा की कार्यवाहक संख्या – अन्तर्नियम में विपरीत व्यवस्था न होने की दशा में, कुल संचालकों की संख्या का 1/3 भाग या 2 संचालक जो भी अधिक हों, कार्यवाहक संख्या मानी जाती है। कुल संचालकों की गणना करने में रिक्त स्थानों को सम्मिलित नहीं किया जाता है। यदि हित रखने वाले संचालकों की संख्या कुल संचालकों की संख्या का 2/3 या इसमें अधिक हो जाती है, तो उपस्थित शेष संचालक ही सभा की पर्याप्त कार्यवाहक संख्या मानी जाएगी, परन्तु यह संख्या किसी भी परिस्थिति में 2 से कम नहीं होनी चाहिए।

कार्यवाहक संख्या व सचिव के कर्तव्य – अन्तर्नियम में कोई व्यवस्था न दिए रहने पर सार्वजनिक कम्पनी की दशा में उपस्थित 5 सदस्य एवं निजी कम्पनी की दशा में उपस्थित 2 सदस्य कार्यवाहक संख्या होगी। संचालक मण्डल की सभाओं के लिए कार्यवाहक संख्या कुल संचालकों की संख्या का 1/3 या 2 संचालक जो भी अधिक हों, होगी।

(2) सभा में कार्यवाहक संख्या होना आवश्यक है, जिसमें भी स्वयं उपस्थित सदस्यों की ही गणना करते हैं, प्रतिपुरुष की नहीं करते हैं संचालक मण्डल की सभा में केवल वे संचालक कार्यवाहक संख्या में लिए जाते हैं, जिनका सभा में कोई हित नहीं होता। कुल में रिक्त स्थान की गणना नहीं करते हैं। स्थगित संचालक मण्डल की सभा हेतु किसी प्रकार की कार्यवाहक संख्या की आवश्यकता नहीं होती है।

(3) सभा के निर्धारित समय के आधा घण्टे बाद तक कार्यवाहक संख्या उपस्थित न होने की दशा में अध्यक्ष को सभा समाप्त करने तथा स्थगित करने की सलाह देना।

(4) सभा की कार्यवाही के दौरान उपस्थित सदस्यों की संख्या कार्यवाहक संख्या से कम होने पर इस तथ्य की जानकारी अध्यक्ष को दिलाना।

NOTES

सभा की कार्य सूची
(Agenda of the Meeting)

सभा की कार्य सूची से आशय सभा में किये जाने वाले कार्यों से है। ऐसे सभी कार्यों को जिन पर कम्पनी की सभा में विचार-विमर्श करके निर्णय लिए जायें तो उसे कार्यसूची कहेंगे। कार्यसूची की सूचना सभी सदस्यों को सभा के पूर्व ही दे दी जाती है, जिससे उसे यह ज्ञात हो सके कि सभा में कौन से कार्य किये जाने हैं तथा उन पर क्या विचार करना है। कार्यसूची को पहले से ही तैयार कर लिया जाता है। जिससे सभा का कार्य सूचारु रूप में चल सके। कार्य सूचना में दिये गये क्रम से ही सभा में कार्य किये जाते हैं तथा इस क्रम में परिवर्तन सदस्यों की सहमति से किया जा सकता है।

कार्यसूची तैयार करना (Preparation of Agenda) – कार्यसूची तैयार करते समय निम्न सिद्धान्तों को ध्यान में रखा जाना चाहिए :

(1) दैनिक प्रकृति के कार्यों को प्रारम्भ में तथा विशेष प्रकृति के कार्यों को बाद में रखा जाना चाहिए जिससे कम्पनी के दैनिक कार्यों में रुकावट न आ सके।

(2) सभा की सूचना के क्षेत्र में आने वाले सभी कार्यों को कार्यसूची में सम्मिलित किया जाना चाहिए।

(3) समान प्रकृति के कार्यों को कार्यसूची में साथ-साथ रखा जाना चाहिए। इसके कार्यों को शीघ्रता से पूरा किया जा सकता है।

(4) कार्यसूची सदैव स्पष्ट एवं संक्षिप्त होनी चाहिए।

कार्यसूची के रूप (Forms of Agenda)– कार्यसूची के मुख्य रूप निम्न प्रकार हैं :

(1) **संक्षिप्त रूप** – इसमें केवल उन विषयों का संक्षिप्त उल्लेख किया जाता है, जो सभा में किए जाते हैं जैसे (अ) पिछली सभा के सूक्ष्म का अनुमोदन करना, (ब) लाभांश घोषणा का अनुमोदन करना, (स) अन्तिम खाते संचालक व अंकेक्षक प्रतिवेदन प्रस्तुत करना, (द) संचालकों का चुनाव करना, (इ) अध्यक्ष की अनुमति से अन्य कोई कार्य करना।

(2) **विस्तृत रूप** – इसमें कार्यों का विस्तृत विवरण दिया जाता है। जिन पुस्तकों को सभा में प्रस्तुत किया जाता है, उनके प्रारूप भी कार्यसूची में दिखाए जाते हैं।

अध्यक्ष व सचिव हेतु कार्यसूची पृथक् से तैयार की जाती है, जिसमें प्रस्ताव का प्रारूप, प्रस्ताव व अनुमोदक के माप दिए जाते हैं तथा एक ओर टिप्पणी लिखने हेतु रिक्त स्थान छोड़ दिया जाता है।

सभा का अध्यक्ष
(Chairman of the Meeting)

जो व्यक्ति सभा की अध्यक्षता करने व उसका संचालन करने हेतु नियुक्त किया जाए उसे सभा का अध्यक्ष कहा जाता है। सभापति द्वारा सभा की कार्यवाही को सुचारु रूप से चलाया जाता है। सभा की कार्यवाही को वैध बनाने हेतु यह आवश्यक है कि सभा की अध्यक्षता उचित ढंग से नियुक्त किए गए सभापति द्वारा हो। यह आवश्यक है कि सभापति निष्पक्ष, धैर्यवान, निर्भीक व निर्णय लेने की क्षमता रखने वाला होना चाहिए। ऐसा व्यक्ति, सुरक्षित होने के साथ-साथ सभा के सभी कार्यों को संचालन करने की विधि से परिचित होना चाहिए।

सभापति की नियुक्ति – प्राय अन्तर्नियम में यह व्यवस्था रहती है कि संचालक मण्डल का अध्यक्ष ही संचालक सभा के साथ-साथ कम्पनी की व्यापक सभाओं का भी सभापति होगा। सदस्यों द्वारा अन्य व्यक्ति भी सभापति के रूप में चुने जा सकते हैं। सभा में उपस्थित व्यक्ति भी हाथ प्रदर्शन द्वारा सभापति का निर्वाचन कर सकते हैं। यदि इसके बाद भी मतगणना की व्यवस्था की जाती है और अन्य व्यक्ति सभापति निर्वाचित हो जाता है, तो शेष समय के लिए वह सभापति के रूप में कार्य करेगा।

सभापति की नियुक्ति के बारे में तालिका 'अ' में निम्नलिखित नियम दिए गए हैं :

(i) संचालक मण्डल का सभापति कम्पनी की व्यापक सभा का सभापति होगा ।

(ii) यदि सभापति सभा के समय के 15 मिनट के अन्दर उपस्थित नहीं होता है या वह सभापति के रूप में कार्य करने का इच्छुक नहीं है तो उपस्थित संचालकों में से ही किसी को सभापति के रूप में चुना जाता है ।

(iii) यदि संचालक सभापति बनने को इच्छुक न हो या निर्धारित समय के 15 मिनट के अन्दर कोई भी संचालक उपस्थित नहीं होता हो तो उपस्थित सदस्यों में से ही किसी सदस्य को सभापति के रूप में चुना जाएगा।

NOTES

सभापति के अधिकार (Powers of Chairman) – सभापति के मुख्य अधिकार निम्न प्रकार हैं :

(1) **वक्ताओं के क्रम को निश्चित करना** – सभा की कार्यवाही के दौरान जब एक से अधिक सदस्य एक साथ बोलने लगें, तो सभापति वक्ताओं का क्रम निश्चित करेगा।

(2) **अवांछनीय व्यक्तियों को बाहर निकालना** – सभा में रुकावट डालने वाला, अभद्र व्यवहार करने वाले, नियमों का पालन न करने वाले व्यक्तियों को चेतावनी दी जाती है और पालन न करने पर सभा से बाहर निकालने के आदेश दिए जाते हैं। इसके लिए बल प्रयोग भी किया जा सकता है।

(3) **निर्णायक मत देने का अधिकार** – किसी प्रस्ताव के पक्ष व विपक्ष में समान मत प्राप्त होने की दशा में सभापति को दो मत देने का अधिकार होता है : प्रथम सदस्य के रूप में व द्वितीय सभापति के रूप में निर्णायक मत देने का अधिकार।

(4) **मतगणना** – आवश्यकता पड़ने पर मतगणना का आदेश दिया जाकर मतदान की व्यवस्था की जा सकती है।

(5) **सूक्ष्म में अंश को हटाना** – सभापति को यह अधिकार है कि वह सूक्ष्म में से किसी भी अंश को हटा सकता है, यदि उसकी राय में वह अंश, (i) सदस्य को अपमानजनक हो या (ii) आवश्यक हो या (iii) कम्पनी के हितों के विरुद्ध हो।

(6) **व्यवस्था का निर्णय करना** – यदि सभा के दौरान कार्यविधि सम्बन्धी आपत्ति उठायी जाती है, तो सभापति को यह निर्णय करने का अधिकार है कि व्यवस्था कैसे चले। सभापति का निर्णय अन्तिम व सर्वमान्य रहता है।

(7) **आवश्यक विचार- विमर्श समाप्त करना** – यदि किसी विषय पर सभा में पर्याप्त विचार- विमर्श हो चुका हो, तो सभापति विचार- विमर्श को समाप्त करने का आदेश दे सकता है व मतदान भी करा सकता है।

(8) **सभा स्थगन का अधिकार** – कुछ परिस्थितियों में सभापति को सभा को स्थगित करने का भी अधिकार होता है जो कि नियमों के अन्तर्गत ही होना चाहिए।

(9) **परिणाम घोषित करना** – हाथ द्वारा प्रदर्शन या मतदान की व्यवस्था में परिणाम घोषित करने का अधिकार होता है।

(10) **संवीक्षकों की नियुक्ति** – मतगणना करने हेतु दो संवीक्षकों की नियुक्ति की जा सकती है।

सभापति के कर्तव्य (Duties of Chairman) – सभापति के मुख्य कर्तव्य निम्न हैं–

(1) **उचित ढंग से सभा का आयोजन** – सभापति का यह कर्तव्य है कि वह यह देखे कि सभा का आयोजन ठीक ढंग से हुआ है या नहीं। इस सम्बन्ध में सभा में उपस्थित होने का अधिकार रखने वाले व्यक्तियों को उचित ढंग से सूचना देनी होगी।

(2) **कार्यसूची के अनुसार कार्यवाही चलाना** – सभापति को कार्यसूची में दिए गए क्रम के आधार पर ही सभा की कार्यवाही का संचालन करना चाहिए।

(3) **समान अवसर** – सभापति का यह कर्तव्य है कि वह सभा में उपस्थित समस्त सदस्यों को अपने विचार प्रकट करने का समान अवसर प्रदान करें। निर्णय लेने से पूर्व अल्पमत सदस्यों को भी विचार व्यक्त करने का अवसर देना चाहिए।

(4) **सुझाव उचित हो** – सभापति का यह कर्तव्य है कि वह प्रत्येक सुझाव को उचित रूप से प्रस्तावित करके समर्पित करें।

(5) **परिणाम की घोषणा** – सभापति का कर्तव्य है कि वह हस्त प्रदर्शन या मतगणना द्वारा प्राप्त परिणामों की घोषणा करें।

(6) **सूक्ष्म लिखना** – सभापति का यह कर्तव्य है कि वह सूक्ष्म पुस्तिका में सभा की कार्यवाही को सूक्ष्म का सही व उचित ढंग से लिखे व उन पर हस्ताक्षर करें।

(7) **पिछली सभा के सूक्ष्म स्वीकार करना** – सभापति का यह कर्तव्य है कि वह पिछली सभा के सूक्ष्म पर हस्ताक्षर करें तथा उसे सदस्यों को पढ़कर सुना दें। सूक्ष्म को सूक्ष्म पुस्तिका में लिखा जाना चाहिए।

(8) **शान्ति व मर्यादा बनाना** – सभापति का यह कर्तव्य है कि वह सभा की कार्यवाही को सुचारु रूप से चलाने हेतु सभा में शान्ति व मर्यादा बनाए रखें।

(9) **सभा की राय ज्ञात करना** – सभापति का यह कर्तव्य है कि वह किसी भी विषय पर पर्याप्त विचार- विमर्श के बाद सभा की राय ज्ञात करने का प्रयास करे।

68

(10) **निष्पक्षता** – सभापति का कर्तव्य है कि वह निष्पक्षतापूर्वक सामान्य हितों को ध्यान में रखकर सभा की कार्यवाही चलाए।

(11) **कार्यवाही की समाप्ति** – सभी कार्य पूर्ण हो जाने पर उसे सभा की कार्यवाही को समाप्त घोषित कर देना चाहिए।

सुझाव व प्रस्ताव
(Motions and Resolutions)

सभा के सम्मुख विचार करने हेतु प्रस्तुत विषय को सुझाव कहते हैं। ऐसा सुझाव स्वीकृत हो जाने पर प्रस्ताव माना जाता है। सुझाव अनुमोदक के अभाव में विचार हेतु स्वीकार नहीं किया जाता है, तो उसे गिरा हुआ सुझाव कहते हैं, परन्तु सभापति द्वारा प्रस्तुत किए गए सुझाव के लिए अनुमोदन करने की आवश्यकता नहीं होती है।

वैध सुझाव की शर्तें – (i) यह सुझाव सभा के क्षेत्र के अन्तर्गत होना चाहिए। (ii) यह सुझाव स्पष्ट एवं निश्चित होना चाहिए। (iii) औपचारिक रूप से यह सुझाव एक व्यक्ति द्वारा सभा में प्रस्तुत व दूसरे व्यक्ति द्वारा अनुमोदित किया जाना चाहिए। (iv) यह सुझाव लिखित में हो, जिस पर प्रस्तावक के हस्ताक्षर हों। (v) सुझाव सकारात्मक हो, तथा प्रारम्भ 'कि' शब्द से हो जिससे उसे पारित करने के बाद प्रस्ताव का रूप दिया जा सके।

वाद-विवाद के नियम (Rules of Debate) – प्रस्ताव पर वाद-विवाद के मुख्य नियम निम्न हैं :

(i) प्रस्तावक को दो बार बोलने का अधिकार रहता है – एक बार सुझाव प्रस्तुत करते समय व दूसरी बार वाद-विवाद का उत्तर देते समय।

(ii) सभा में बोलने का अधिकार रखने वाला कोई भी व्यक्ति सुझाव के पक्ष या विपक्ष में बोल सकता है।

(iii) प्रस्तावक व अनुमोदक द्वारा सुझाव को वापस लेने की प्रार्थना की जा सकती है।

(iv) प्रस्तावक को बाद में सुझाव में संशोधन करने का अधिकार नहीं होता।

(v) प्रत्येक व्यक्ति प्रत्येक संशोधन पर एक बार बोल सकता है वह एक बार ही अनुमोदित कर सकता है।

वाद-विवाद में रुकावट – सुझाव में होने वाद-विवाद में सदस्यों द्वारा अनेक प्रकार की रुकावटें उत्पन्न की जा सकती हैं, जो निम्न हैं।

(i) **संशोधन प्रस्तुत करके** – सुझाव पर संशोधन का प्रस्ताव कोई भी ऐसा सदस्य प्रस्तुत कर सकता है, जिसने मूल सुझाव न तो प्रस्तुत किया हो और न ही उस पर अपने विचार प्रकट किए हों। संशोधन मूल सुझाव से सम्बन्धित होना चाहिए व स्पष्ट तथा सकारात्मक होना चाहिए।

(ii) **व्यवस्था का प्रश्न उठाकर** – सभा की कार्यवाही के दौरान किसी भी सदस्य द्वारा व्यवस्था का प्रश्न उठाया जा सकता है।

(iii) **औपचारिक सुझाव प्रस्तुत करके** – औपचारिक सुझावों का उद्देश्य सभा की कार्यवाही में रुकावट डालता या उसे जल्दी पूरा करना है।

औपचारिक सुझाव के प्रकार – यह निम्न प्रकार के होते हैं–

(अ) **बन्द सुझाव** – यदि सभा में उपस्थित कोई भी सदस्य यह अनुभव करे कि किसी सुझाव पर पर्याप्त विचार-विमर्श किया जा चुका है, तो वह यह प्रस्तावित कर सकता है कि सुझाव पर विचार बन्द किया जाए। सभापति इसे चाहे तो अस्वीकृत भी कर सकता है यदि ऐसे सुझाव से अल्पमत वाले सदस्यों के मूल सुझाव पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता हो।

(ब) **आगामी कार्य** – इस प्रकार का सुझाव उस समय रखा जाता है जब कोई सदस्य यह अनुभव करे कि विचारार्थ मूल सुझाव कम महत्व का है और अधिक महत्वपूर्ण विषयों पर विचार करना शेष है।

(स) **पूर्व प्रश्न** – इसका उद्देश्य विचारार्थ मूल सुझाव पर मतदान को रोकना है। यदि यह प्रस्तावित कर दिया जाए कि पूर्व प्रश्न पर अभी निर्णय न लिया जाए तो उसे रोका जा सकता है। पूर्व प्रश्न सुझाव व आगामी कार्य सुझाव में यह समानता है कि इनके स्वीकृत होने पर मूल सुझाव पर निर्णय स्थगित हो जाता है। इन दोनों में अन्तर यह है कि (i) पूर्व प्रश्न सुझाव केवल मूल सुझाव के सम्बन्ध में ही प्रस्तुत किया जा सकता है, जबकि आगामी कार्य सुझाव संशोधन के सम्बन्ध में भी प्रस्तुत किया जा सकता है। (ii) पूर्व प्रश्न सुझाव के अस्वीकृत होने पर मूल सुझाव पर विचार- विमर्श बन्द हो जाता है, जबकि आगामी कार्य सुझाव के अस्वीकृत होने पर विचार- विमर्श जारी रहता है।

(द) **स्थगन** – इसका उद्देश्य सभा की सम्पूर्ण कार्यवाही को एक निश्चित समय के लिए स्थगित करना है। स्थगन हेतु कोई सदस्य सुझाव रख सकता है। सभापति निम्न परिस्थितियों में सभा को स्थगित कर सकता है- (i) जब

सभा अव्यवस्थित हो जाए, (ii) जब समयावधि में सभा की कार्यवाही को पूरा करना सम्भव न हो, (iii) जब सदस्यगण सभा के स्थगन की माँग करें, (iv) जब सभा में कार्यवाहक संख्या उपस्थित न हो। स्थगित सभा के लिए सदस्यों को पुनः सूचना देना आवश्यक नहीं है। यदि स्थगन 10 दिन या इससे अधिक काल के लिए किया जाए, तो स्थगित सभा की पुनः सूचना देना आवश्यक है।

सभा की सम्मति
(Sense of the Meeting)

सुझाव पर पर्याप्त विचार- विमर्श होने के बाद अन्तिम निर्णय हेतु सभापति को सभा की सम्मति ज्ञात करना आवश्यक होता है। सभा की सम्मति ज्ञात करने हेतु निम्न विधि का प्रयोग किया जा सकता है : (i) आवाज लगाकर, (ii) हस्त प्रदर्शन द्वारा, (iii) विभाजन द्वारा, (iv) मतपत्र द्वारा, (v) मतगणना द्वारा।

(i) **आवाज लगाकर** – इसमें सभापति द्वारा सदस्यों की आवाज या तालियों का सहारा लेता है। यह विधि सर्वसम्मति हेतु अपनायी जाती है। 'हाँ' तथा 'न' की आवाज सुनकर सभापति द्वारा निर्णय लिया जाता है।

(ii) **हस्त प्रदर्शन द्वारा** – इसमें सभापति द्वारा सुझाव के पक्ष में होने वाले सदस्यों को हाथ खड़ा करने को कहा जाता है और उसे गिना जाता है। इसमें एक सदस्य केवल एक ही मत दे सकता है। प्रति पुरुष भी हस्त प्रदर्शन द्वारा मतदान में भाग ले सकते हैं।

(iii) **विभाजन द्वारा** – इसमें सभापति द्वारा सभा में उपस्थित सदस्यों को दो वर्गों में विभाजित कर दिया जाता है, एक पक्ष में व दूसरे विपक्ष में। दोनों पक्षों के सदस्यों की गणना करके सभापति द्वारा निर्णय दिया जाता है।

(iv) **मतपत्र द्वारा** – इसमें उपस्थित सदस्यों को एक-एक मतपत्र दे दिया जाता है तथा सुझाव पर अपनी सम्पति 'हाँ' या 'नहीं' में लिखकर मत पेटी में डालने को कहा जाता है। मत पेटी को खोलकर पक्ष व विपक्ष के मतों की गणना करके सभा के निर्णय की घोषणा सभापति द्वारा कर दी जाती है।

(v) **मतगणना द्वारा** – इसमें मतदान के अन्तर्गत प्रत्येक सदस्य को उसके द्वारा धारित अंशों की संख्या व मूल्य के आधार पर मत देने का अधिकार होता है। इसमें प्रतिपुरुष को भी मतदान में भाग लेने का अधिकार मिल जाता है।

मतगणना की माँग – मतगणना की आज्ञा सभापति की इच्छा पर निर्भर करती है, परन्तु निम्नलिखित दशाओं में सभापति को मतगणना का आदेश देना आवश्यक हो जाता है :

(i) सार्वजनिक कम्पनी में स्वयं उपस्थित सदस्य द्वारा मतगणना की माँग किए जाने पर।

(ii) कम से कम 1/10 भाग पर अधिकार रखने वाले उपस्थित सदस्यों या प्रतिपुरुष द्वारा मतगणना की माँग करने पर।

(iii) कुल प्रदत्त पूँजी के कम से कम 1/10 भाग पर अधिकार रखने वाले मताधिकार युक्त अंशों के स्वामियों द्वारा माँग करने पर।

(iv) निजी कम्पनी में 7 सदस्यों की संख्या होने पर एक सदस्य द्वारा तथा 7 से अधिक सदस्यों के उपस्थित होने पर 2 सदस्यों के माँग करने पर अध्यक्ष को मतगणना का आदेश देना आवश्यक है।

(v) सभापति स्वयं मतगणना का आदेश दे सकता है यदि संचालक-मण्डल द्वारा कोई प्रस्ताव पारित न हुआ हो तथा सभापति को यह ज्ञात हो कि प्रतिपुरुषों की पर्याप्त संख्या होने से मतगणना कराने पर निर्णय में परिवर्तन हो सकता है।

मतगणना का समय – मतगणना की माँग किये जाने पर सभापति को मतगणना की तुरन्त व्यवस्था करनी होती है जो माँग करने के 48 घण्टे के अन्दर कभी भी हो सकती है।

मताधिकार प्रयोग पर प्रतिबन्ध – कम्पनी अन्तर्नियम में यह व्यवस्था कर सकती है कि किसी भी सदस्य पर याचना राशि बकाया होने पर तथा कम्पनी द्वारा अंशों पर ग्रहणाधिकार होने पर उस सदस्य को ऐसे अंशों पर मत देने का अधिकार नहीं रहेगा।

विभिन्न रूपों में मत प्रयोग – एक सदस्य जिसे एक से अधिक मत देने का अधिकार है, वह अपने मतों को विभिन्न रूपों में प्रयोग कर सकता है।

मतगणना की विधि – मतगणना की माँग करने पर सभापति का यह कर्तव्य है कि वह मतदान की समुचित व्यवस्था करें। मतगणना में दो जाँच- कर्त्ताओं की नियुक्ति की जाती है। जिसमें से एक कम्पनी का सदस्य हो व कर्मचारी या अधिकारी न हो।

NOTES

प्रतिपुरुष
(Proxies)

ऐसा व्यक्ति जिसे किसी सदस्य ने अपनी ओर से सभा में उपस्थित होने एवं मतदान में भाग लेने हेतु नियुक्त किया जाय तो उसे प्रतिपुरुष कहते हैं। इसके अधीन सदस्य अपने अधिकार को अन्य व्यक्ति द्वारा प्रयोग करने को अधिकृत करता है। प्रतिपुरुष का प्रयोग नामांकित व्यक्ति के साथ-साथ प्रलेख के लिए भी किया जाता है। कम्पनी अधिनियम में यह व्यवस्था है कि यदि कोई सदस्य स्वयं उपस्थित होने में असमर्थ हो, तो वह अपने प्रतिनिधि को सभा में उपस्थित होने एवं मतदान में भाग लेने का अधिकार दे सकता है। एक सदस्य को एक प्रतिपुरुष नियुक्त करने का अधिकार होता है।

वैधानिक प्रावधान
(Legal Provisions)

(1) **सदस्यों द्वारा नियुक्ति** – कम्पनी का कोई भी सदस्य किसी भी व्यक्ति को सभा में उपस्थित होने व मतदान के लिए नियुक्त कर सकता है। प्रतिपुरुष को कम्पनी का सदस्य होना आवश्यक नहीं है। प्रतिपुरुष को सभा में बोलने का अधिकार नहीं रहता है। यह प्रावधान निम्न दशाओं में लागू न होंगे। (अ) बिना अंश-पूँजी वाली कम्पनी में प्रतिपुरुष नियुक्त नहीं हो सकते हैं। (ब) निजी कम्पनी का सदस्य एक सभा में एक से अधिक प्रतिपुरुष नियुक्त नहीं कर सकता। (स) प्रतिपुरुष को मतगणना के अतिरिक्त अन्य दशा में मत देने का अधिकार नहीं रहता। [धारा 176 (1)]

(2) **फार्म जमा कराने की अवधि** – यदि सार्वजनिक कम्पनी के अन्तर्नियमों में यह व्यवस्था है कि प्रतिपुरुष फार्म सभा से 48 घण्टे में प्रस्तुत किये जाने चाहिये तो इसका यह प्रभाव होगा, मानो 48 घण्टे की अवधि ही तय की गयी है। [धारा 176 (3)]

(3) **प्रतिपुरुष नियुक्ति का उल्लेख** – बिना अंश पूँजी वाली कम्पनी में प्रति-पुरुष को मतदान का अधिकार दिया गया हो तथा अंशपूँजी वाली कम्पनी में सभा में भाग लेने व मत देने हेतु प्रतिपुरुष नियुक्त करने का अधिकार हो, तो ऐसे प्रतिपुरुष के लिए कम्पनी का सदस्य होना जरूरी नहीं है। त्रुटि करने वाले अधिकारी पर 550 रु. तक जुर्माना किया जा सकता है। [धारा 176 (2)]

(4) **फार्म का लिखित व हस्ताक्षरित होना** – प्रतिपुरुष फार्म का लिखित होना आवश्यक है व इस फार्म पर नियुक्तिकर्त्ता के हस्ताक्षर होना भी आवश्यक है। यदि संस्था है तो प्रतिपुरुष फार्म सील के अधीन निर्गमित किया जाना चाहिए। [धारा 175 (5)]

(5) **फार्म का निरीक्षण** – प्रत्येक सदस्य जिसे सभा में मत देने का अधिकार हो, सभा शुरू होने के 24 घण्टे पूर्व की अवधि से लेकर सभा समाप्ति की अवधि के व्यापारिक घण्टों में प्रतिपुरुष फार्म का निरीक्षण कर सकता है। यह निरीक्षण की सूचना 3 दिन पूर्व देना आवश्यक है। [धारा 176 (7)]

(6) **विशेष व्यक्ति को निमन्त्रण देना दण्डनीय** – कम्पनी की सभा के लिए किसी सदस्य को इस आशय का निमन्त्रण नहीं भेजा जा सकता कि वह किसी व्यक्ति विशेष को अपना प्रतिपुरुष नियुक्त करें। अधिकारी द्वारा जानबूझकर ऐसा निमन्त्रण भेजने पर 100 रु. तक जुर्माना लगाया जा सकता है। यदि इच्छुक प्रतिपुरुष की सूची भेजने पर कम्पनी का अधिकारी दण्डनीय नहीं होगा। ऐसी सूची सभी सदस्यों के लिये उपलब्ध होनी चाहिए। [धारा 176 (4)]

(7) **प्रारूप अनुसूची 11 के अनुरूप** – यदि प्रतिपुरुष फार्म अनुसूची 11 में दिये प्रारूपों में से नहीं है तो इस आधार पर आपत्ति नहीं की जा सकती कि यह निर्दिष्ट प्रारूप के अनुसार नहीं है। [धारा 176 (6)]

(8) **अन्य प्रावधान** – प्रतिपुरुष से सम्बन्धित अन्य प्रावधान निम्नलिखित हैं :

(i) **अंशधारी को प्रथम अधिकार** – यदि किसी सभा में प्रतिपुरुष को नियुक्त करने वाला सदस्य भी उपस्थित हो जाता है तो प्रतिपुरुष का अधिकार समाप्त हो जाता है और सदस्य अपने अधिकार का प्रयोग कर सकता है।

(ii) **मृत्यु व दिवालिया होने पर दिया गया मत** – तालिका (अ) के नियम 63 के अनुसार प्रतिपुरुष द्वारा दिया गया मत वैध माना जाता है, भले ही प्रतिपुरुष की नियुक्ति करने वाला सदस्य पागल हो गया हो या उसकी मृत्यु हो गयी हो बशर्ते कम्पनी को इसकी सूचना लिखित में प्रारम्भ होने से पूर्व नहीं मिल गयी हो।

(iii) **राष्ट्रपति या राज्यपाल द्वारा नियुक्ति** – यदि किसी कम्पनी में राष्ट्रपति या राज्यपाल सदस्य है तो वह किसी भी व्यक्ति को प्रतिपुरुष नियुक्त कर सकता है। ऐसे प्रतिपुरुष को वे सभी अधिकार प्राप्त होंगे, जो कि राष्ट्रपति या राज्यपाल को कम्पनी के सदस्य के रूप में प्राप्त थे। ऐसे व्यक्ति को सभा में बोलने तथा अन्य व्यक्ति को सभा में उपस्थित होने व मतदान में भाग लेने हेतु प्रतिपुरुष नियुक्त करने का अधिकार है। [धारा 187 (अ)]

NOTES

(iv) **एक ही सभा हेतु नियुक्ति** – एक फार्म के द्वारा किसी भी व्यक्ति को एक से अधिक सभाओं के लिए प्रतिपुरुष नियुक्त नहीं किया जा सकता है। इस फार्म पर उचित स्टाम्प लगाना भी आवश्यक है।

(v) **प्रतिपुरुष के अधिकार** – एक कम्पनी का दूसरी कम्पनी में सदस्य होने पर वह कम्पनी में भाग लेने व मत देने हेतु प्रतिपुरुष की नियुक्ति कर सकता है। इसे सभा में बोलने के साथ-साथ सभा में बोलने का भी अधिकार होता है। [धारा 187]

(vi) **सरकारी प्रन्यासी द्वारा प्रतिपुरुष** – ट्रस्ट के पास कम्पनी के अंश ट्रस्ट के रूप में रखे होने पर वह व्यक्ति सदस्य के रूप में अधिकारों का प्रयोग नहीं कर सकेगा। इनका प्रयोग सार्वजनिक प्रन्यासी द्वारा ही किया जा सकेगा जो स्वयं या प्रतिपुरुष को नियुक्त करके अधिकारों का प्रयोग कर सकता है। सार्वजनिक प्रन्यासी को एक सदस्य के सभी अधिकार प्राप्त होते हैं। [धारा 187 (ब)]

सचिवीय कर्तव्य –

(i) व्यापक सभा में इस बात का उल्लेख किया जाना चाहिए कि कम्पनी का सदस्य प्रतिपुरुष की नियुक्ति कर सकता है।

(ii) प्रतिपुरुष फार्म की जाँच करते समय सचिव को यह देखना होगा कि फार्म उचित रूप में है, 48 घण्टे पूर्व प्राप्त हुआ है। तिथि अंकित है तथा सही व्यक्ति के हस्ताक्षर होकर उचित स्टाम्प लगा है।

(iii) जाँच के बाद सही पाए गए प्रतिपुरुष फार्म से सूची तैयार करना।

(iv) प्रवेश पत्र में प्रतिपुरुष के माप की प्रविष्टि की जानी चाहिए।

(v) सभा की सूचना के साथ प्रतिपुरुष फार्म को निर्धारित प्रारूप में संलग्न किया जाना चाहिए।

(vi) अनियमितता के कारण अस्वीकृत किए गए प्रतिपुरुष फार्मों को वापस लौटा देना चाहिए।

(vii) सही पाय गए सभी प्रतिपुरुष फार्म की प्रविष्टि रजिस्टर में की जानी चाहिए।

(viii) समस्त प्रतिपुरुष फार्मों को सदस्यों के निरीक्षण हेतु तैया रखना।

प्रतिपुरुष फार्म का नमूना

प्रथम प्रारूप – **श्याम एण्ड कं. लि.**

प्रतिपुरुष फार्म

मैं/ हम ..... निवासी .....
श्याम एण्ड कं. लि. के सदस्य होने से श्री .....
निवासी ..... को या उनकी अनुपस्थिति में श्री .....
निवासी ..... को अपनी ओर से कम्पनी की दिनांक ..... को होने वाली ..... सभा में मत देने हेतु नियुक्त करता हूँ।

दिनांक ..... हस्ताक्षर ..... स्टाम्प

द्वितीय प्रारूप – **श्याम एण्ड कं. लि.**

प्रतिपुरुष फार्म

मैं ..... निवासी .....
श्याम एण्ड कं. लि. के सदस्य होने से श्री .....
निवासी ..... को या उनकी अनुपस्थिति में श्री .....
निवासी ..... सभा या स्थगित सभा में हमारे मत देने हेतु नियुक्त करता हूँ।

इस फार्म का प्रयोग प्रस्ताव के पक्ष/विपक्ष में किया जाए।

दिनांक ..... हस्ताक्षर ..... स्टाम्प

प्रतिपुरुष सूची

दिनांक ..... को होने वाली ..... सभा हेतु।

क्रम संख्या	जमा की तिथि व समय	प्रतिपुरुष का नाम	सदस्य का नाम	प्रतिपुरुष कम्पनी का सदस्य है	नियुक्त कर ने वाला सदस्य	मतों की संख्या	विशेष विवरण

सभा का स्थगन
(Adjournment of Meeting)

सभा प्रारम्भ होने के बाद सभा की कार्यवाही को स्थगित करना ही स्थगन कहलाता है, जिससे उस सभा को पुनः किसी अन्य समय, स्थान व तिथि पर गठित किया जा सके। स्थगन व विलम्बन में अन्तर है। स्थगन में सभा आयोजित की जाती है तथा बाद में सदस्यों की राय लेकर उसे आगे की किसी तिथि तक हेतु स्थगित किया जाता है, जबकि विलम्बन में सभा का आयोजन आगे की तिथि के लिए टाल दिया जाता है। प्रायः सभा की तिथि को आगे नहीं बढ़ाया जाता है, जब तक कि अन्तर्नियम में ऐसी व्यवस्था न हो। सभा के स्थगन के बारे में निम्नलिखित नियम हैं :

(i) यदि अन्तर्नियम में अधिकार प्राप्त है तो सभापति सभा द्वारा स्थगन प्रस्ताव पारित करने पर सभा को स्थगन करने हेतु बाध्य है। (परशुराम बनाम टाटा औद्योगिक बैंक लि. 1923)।

(ii) निर्धारित समय के $\frac{1}{2}$ घण्टे के अन्दर कार्यवाहक संख्या उपस्थित न हो तो सभा अगले सप्ताह उसी दिन, उसी स्थान व उसी समय तक के लिए स्थगित मानी जाती है। यदि ऐसा दिन सार्वजनिक अवकाश का है तो सभा उसके अगले दिन के लिए स्थगित हो जाती है।

(iii) मतगणना करने हेतु सभापति द्वारा सभा को कुछ समय के लिए स्थगित किया जा सकता है।

(iv) सभा में अव्यवस्था होने तथा बार-बार चेतावनी देने पर भी प्रभाव न पड़ने पर सभा की कार्यवाही को कुछ समय के लिए स्थगित किया जा सकता है। यदि बिना किसी विशेष कारण के सभा को निश्चित समय के पूर्व स्थगित किया जाता है तो सदस्य किसी अन्य व्यक्ति को सभापति नियुक्त करके सभा की कार्यवाही को जारी रख सकते हैं।

(v) स्थगित सभा में कार्यवाहक संख्या न होने पर ऐसी सभा को पुनः स्थगित नहीं किया जाएगा और उपस्थित सदस्य संख्या ही कार्यवाहक संख्या मानी जाएगी।

(vi) निर्धारित समय में सभा की सम्पूर्ण कार्यवाही पूर्ण न होने की दशा में प्रस्ताव पारित करके सभा को स्थगित किया जा सकता है।

तालिका 'अ' के स्थगन सम्बन्धी नियम – अन्तर्नियमों में स्थगन सम्बन्धी नियम न दिए होने पर तालिका 'अ' के स्थगन सम्बन्धी निम्न नियम लागू होते हैं :

(i) सभा की सहमति से सभापति द्वारा सभा को स्थगित किया जा सकता है।

(ii) मूल सभा में पूरे न होने वाले कार्यों को स्थगित सभा में पूरा किया जाता है।

(iii) स्थगित सभा हेतु सदस्यों को सूचना देना आवश्यक नहीं होता।

(iv) यदि स्थगन 30 दिन या अधिक के लिए हो तो ऐसी स्थगित सभा की सूचना सदस्यों को मूल सभा की तरह ही दी जाएगी।

सभा के सूक्ष्म
(Minutes of Meetings)

सभा की कार्यवाही के संक्षिप्त लिखित विवरण को उस सभा का सूक्ष्म कहा जाता है। सूक्ष्म में सभा में लिए गए निर्णयों एवं पारित किए गए प्रस्तावों का विवरण लिखा रहता है। कम्पनी को सभी प्रकार की सभाओं के सूक्ष्म रखने पड़ते हैं, जिसे पृथक से सूक्ष्म पुस्तिका में लिखा जाता है। अंशधारी को सभा व संचालक मण्डल की सभाओं हेतु पृथक-पृथक सूक्ष्म पुस्तिकाएँ रखी जाती हैं।

NOTES

सूक्ष्म सभा की कार्यवाही का शब्द चित्र होता है। सभा के सूक्ष्म पूर्ण सावधानी के साथ लिखे जाने चाहिए तथा द्विअर्थीय शब्दों के प्रयोग से बचना चाहिए तथा अनावश्यक बातों को छोड़कर सभी महत्वपूर्ण बातों को सम्मिलित किया जाना चाहिए।

वैधानिक प्रावधान – कम्पनी अधिनियम की धारा 193 में व्यापक सभा एवं संचालक मण्डल की सभा के सूक्ष्म के सम्बन्ध में निम्न प्रावधान हैं :

(1) **सूक्ष्म लिखना आवश्यक** – प्रत्येक कम्पनी के लिए अंशधारियों की सभा संचालक मण्डल की सभा एवं संचालक मण्डल की समितियों की सभाओं के सूक्ष्म लिखना आवश्यक होता है। यह सूक्ष्म सभा के 30 दिन के अन्दर लिखा जाना आवश्यक है। सूक्ष्म पुस्तिका में पृष्ठ संख्या क्रम से अंकित होनी चाहिए।

(2) **सूक्ष्म के चिपकाना निषेध** – किसी भी दशा में सभा की कार्यवाही के सूक्ष्म को सूक्ष्म पुस्तिका में चिपकाना नहीं चाहिए।

(3) **अधिकारियों की नियुक्ति** – किसी भी सभा में अधिकारियों की नियुक्ति का उल्लेख उस सभा की कार्यवाही के सूक्ष्म में अवश्य किया जाना चाहिए।

(4) **अनुचित विवरण को सम्मिलित न करना** – अपमानजनक विवरण को सूक्ष्म में सम्मिलित करने से सभापति इन्कार कर सकता है। सभापति विवरण को सूक्ष्म में सम्मिलित करने या न करने की आज्ञा देने के लिए पूर्ण रूप से स्वतंत्र होता है।

(5) **अधिकृत प्रमाण** – धारा 193 के अन्तर्गत रखे गए सूक्ष्म एक अधिकृत प्रमाण माने जाते हैं तथा यह माना जाएगा कि सभा उचित प्रकार से बुलाई गयी व आयोजित की गयी थी और कार्यवाही वास्तव में हुई थी।
[धारा 194 व 195]

(6) **व्यापक सभा कार्यवाही रिपोर्ट का प्रकाशन** – धारा 193 के अनुसार व्यापक सभा की कार्यवाही की रिपोर्ट का वितरण कम्पनी व्यय पर तब तक नहीं हो सकता, जब तक कि इसे सूक्ष्म पुस्तिका में लिखकर प्रमाणित न कर लिया गया हो। व्यवस्था का उल्लंघन करने पर प्रत्येक दोषी अधिकारी पर 500 रुपये तक अर्थदण्ड लगाया जा सकता है। [धारा 197]

(7) **सूक्ष्म पर हस्ताक्षर** – सूक्ष्म पुस्तिका के प्रत्येक पृष्ठ पर हस्ताक्षर तथा अन्तिम पृष्ठ पर तिथि सहित हस्ताक्षर होना चाहिए। संचालक मण्डल की सभा के सूक्ष्म पर सभा के सभापति द्वारा हस्ताक्षर तथा बाद की सभा के लिए हस्ताक्षर सभा के सभापति द्वारा होने चाहिए। व्यापक सभा की सूक्ष्म पर हस्ताक्षर उसी सभा के अध्यक्ष द्वारा सभा समाप्ति के 30 दिन के अन्दर होना चाहिए। सभा के अध्यक्ष की मृत्यु की दशा में हस्ताक्षर संचालक मण्डल द्वारा किए जाने चाहिए।

(8) **सही सारांश** – सूक्ष्म सभा की कार्यवाही का उचित व सही सारांश लिखा जाना चाहिए।

(9) **संचालक समिति की सभा के सूक्ष्म** – संचालक मण्डल की समिति की सभा के सूक्ष्म में (i) सभा में उपस्थित संचालकों के नाम एवं (ii) पारित प्रस्ताव पर असहमत संचालकों के नाम दिए जाने चाहिए।

(10) **दण्ड** – सूक्ष्म से सम्बन्धित व्यवस्थाओं का पालन न करने पर कम्पनी के दोषी अधिकारी पर 50 रुपये तक का आर्थिक दण्ड लगाया जा सकता है।

(11) **व्यापक सभा सूक्ष्म पुस्तिका का निरीक्षण** – व्यापक सभा की सूक्ष्म पुस्तिका के बारे में निम्न नियम हैं :

(i) सूक्ष्म पुस्तिका कम्पनी के पंजीकृत कार्यालय में रखी जानी चाहिए।

(ii) आवेदन करके कोई भी सदस्य सूक्ष्म पुस्तिका के किसी भी विवरण की प्रतिलिपि प्राप्त कर सकता है जो 7 दिन के अन्दर प्रति 100 शब्द के 37 पैसे के हिसाब से वसूल किया जाएगा। [धारा 196 (2)]

(iii) कम्पनी किसी भी सदस्य को सूक्ष्म पुस्तिका का निरीक्षण करने से रोकने व प्रतिलिपि न देने पर न्यायालय को तुरन्त निरीक्षण की व्यवस्था करने के लिए बाध्य कर सकता है। [धारा 197 (द)]

(iv) सूक्ष्म पुस्तिका प्रतिदिन कम से कम 2 घण्टे के लिए सदस्यों को निःशुल्क निरीक्षण हेतु खुली रहेगी। [धारा 196 (1)]

(v) यदि सदस्य को सूक्ष्म पुस्तिका का निरीक्षण करने से रोका जाता है तो दोषी अधिकारी पर 300 रुपए तक आर्थिक दण्ड किया जा सकता है। [धारा 196 (3)]

सूक्ष्म के प्रकार (Kinds of Minutes) – सूक्ष्म दो प्रकार से लिखे जा सकते हैं :

1. **प्रस्तावों के सूक्ष्म** – इसमें सभा में पारित प्रस्तावों का ही संक्षिप्त उल्लेख लिखा जाता है व प्रस्ताव के निर्णय ही लिखे जाते हैं। यह सूक्ष्म अपेक्षाकृत संक्षिप्त होते हैं।

2. **विवरण का सूक्ष्म** – इसमें सभा की सम्पूर्ण कार्यवाही का वर्णन लिखा जाता है व प्रस्ताव पर हुए विचार-विमर्श व मतदान का भी उल्लेख किया जाता है। पारित न होने वाले प्रस्तावों का भी विवरण दिया जाता है।

सूक्ष्म की विषय-सामग्री (Contents of the Minutes) – सभा की कार्यवाही के सूक्ष्म में निम्न को सम्मिलित करते हैं :

1. सभा का प्रकार, तिथि, समय व स्थान का वर्णन सूक्ष्म में होता है।
2. सभा में पारित किए गए सभी प्रस्ताव।
3. सभा की कार्यसूची के क्रम से सभा में लिए गए निर्णय।
4. प्रस्तावों पर उठायी गयी आपत्तियों का विवरण एवं अध्यक्ष का उस सम्बन्ध में निर्णय।
5. विरोध के रूप में सभा को छोड़कर जाने वाले सदस्यों के नाम।
6. नियुक्त किए गए कर्मचारियों व अधिकारियों के नाम।
7. सचिव व संचालकों द्वारा सभा को दिए गए सभी निर्देश।
8. सभापति, उपस्थित संचालकों, अंकेक्षक, सचिव व व्यापक सभा में उपस्थित सदस्यों के नाम।
9. संचालक मण्डल की सभा में प्रस्ताव के विपक्ष में मत देने वाले संचालकों के नाम।
10. पारित न होने वाले प्रस्तावों का विवरण।
11. सभा की कार्यवाही में आने वाली बाधाओं का विवरण।
12. सभा से बाहर निकाले गए सदस्यों के नाम।
13. विशेष प्रस्ताव के पक्ष एवं विपक्ष में प्राप्त मतों की संख्या।
14. सभापति के हस्ताक्षर मय तिथि के।
15. समयाभाव के कारण सभा में विचार- विमर्श न होने वाले विषयों का उल्लेख भी सूक्ष्म में किया जाना चाहिए।

सचिव के कर्तव्य (Duties of Secretary) – सूक्ष्म लिखने का कार्य सचिव द्वारा किया जाता है। इस सम्बन्ध में सचिव के कर्तव्य निम्नलिखित हैं :

1. व्यापक सभा व संचालक मण्डल की सभा हेतु पृथक-पृथक सूक्ष्म पुस्तिका रखी जानी चाहिए।
2. सूक्ष्म पुस्तिका के किसी भी पृष्ठ को फाड़ा नहीं जाना चाहिए।
3. सभा की कार्यवाही के दौरान सभी मुख्य बातों को कागज पर नोट कर लेना चाहिए व उसी आधार पर बाद में सूक्ष्म पुस्तिका में सूक्ष्म लिखना चाहिए।
4. सूक्ष्म पर सभापति के हस्ताक्षर कराए जाने चाहिए।
5. सूक्ष्म पूर्ण व स्पष्ट होने चाहिए जिसमें बल के आवश्यक बातों को ही लिखा जाना चाहिए।
6. सूक्ष्म पुस्तिका को सुरक्षित रखना सचिव का कर्तव्य होता है।
7. निश्चित दर से शुल्क देने व आवेदन करने पर निर्धारित समयावधि में सम्बन्धित सूक्ष्म की प्रतिनिधि देना होगा।
8. सूक्ष्म पुस्तिका के प्रत्येक पृष्ठ पर पृष्ठ संख्या अंकित होनी चाहिए।
9. प्रत्येक पृष्ठ पर हस्ताक्षर किया जाना चाहिए।
10. सभा समाप्ति के 30 दिन के अन्दर सभा की कार्यवाही के सूक्ष्म को सूक्ष्म पुस्तिका में लिखा जाना चाहिए।
11. सूक्ष्म की पृथक से लिखकर सूक्ष्म पुस्तिका में चिपकाया नहीं जाना चाहिए।
12. सूक्ष्म पुस्तिका से अनुक्रमणिका तैयार की जानी चाहिए, जिससे सम्बन्धित सूक्ष्म को सरलता से ढूँढ़ा जा सके।

NOTES

13. व्यापक सभा की सूक्ष्म पुस्तिका को निरीक्षण हेतु प्रतिदिन 2 घण्टे के लिए पंजीकृत कार्यालय में तैयार रखनी चाहिए।

14. सूक्ष्म लिखते समय सचिव को द्विअर्थीय शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

प्रश्न
(Questions)

1. कम्पनी की विभिन्न सभाओं के प्रकार बताइये और प्रत्येक प्रकार का संक्षिप्त वैधानिक विवरण दीजिये।
2. कम्पनी की वैध सभाओं के आयोजन के सम्बन्ध में वैधानिक प्रावधान कौन-कौन से हैं?
3. सभा का सभापति कौन होता है? सभापति के अधिकारों और कर्तव्यों को बताइये।
4. प्रस्ताव का आशय एवं उसके भेद लिखिये। किन विषयों के लिये विशेष प्रस्ताव की आवश्यकता होती है?
5. सुझाव एव प्रस्ताव में अन्तर बताइये। एक साधारण प्रस्ताव द्वारा किये जाने वाले कार्यों को बताइये।
6. कम्पनी के विभिन्न सभाओं को संक्षेप में लिखिये।
7. कम्पनी की सभाओं में मतदान करने की विभिन्न विधियों को बताइये।
8. सूक्ष्म से सम्बन्धित वैधानिक प्रावधानों का उल्लेख कीजिये तथा इस सम्बन्ध में कम्पनी सचिव के कर्तव्य लिखिये।
9. एक कम्पनी में सभी कितने प्रकार की होती है? वैध सभा के आवश्यक तत्व बताइये।
10. निम्न को समझाइये-
    (Explain the following):
    - (i) सुझाव एवं प्रस्ताव (Motion and Resolution)
    - (ii) संशोधन (Amentments)
    - (iii) पूर्व प्रश्न एवं आगामी कार्य (Previous question and Next Business)
    - (iv) सभा का स्थगन (Adjournment of Meeting)
    - (v) साधारण एवं विशेष प्रस्ताव (Ordinary and special Resolution)
    - (vi) सभा की सूचना (Notice of the Meeting)
    - (vii) सूक्ष्म (Minutes)
    - (viii) प्रतिपुरुष (Proxy)
    - (ix) कार्यवाहक संख्या (Quorum)
    - (x) कार्यसूची (Agenda)।
    - (xi) निम्न में अन्तर बताइये- (Distinguish between)
        - (अ) साधारण एवं विशेष प्रस्ताव (Ordinary and special Resolution)
        - (ब) सुझाव एवं प्रस्ताव (Motion and Resolution)।

अपनी प्रगति की जाँच करें
Test your Progress

13. सभा की सूचना को निम्न शीर्षकों में समझाइये-
    - (i) सूचना की अवधि (Period of Notice)
    - (ii) सूचना कौन बुला सकता है? (Who can call a meeting ?)
    - (iii) सूचना की विषय सामग्री (Contain of Notice)
    - (iv) सूचना की विधि (Mode of Notice)

8

कम्पनी का प्रबन्ध : संचालक एवं पारिश्रमिक
(MANAGEMENT OF COMPANY : DIRECTOR AND REMUNERATION)

NOTES

प्रारंभिक – एकांकी एवं साझेदारी व्यापार में स्वामित्व एवं संचालन एक ही व्यक्ति में निहित होता है, जबकि कम्पनी में स्वामित्व एवं संचालक पृथक-पृथक व्यक्तियों में रहता है।

प्रबन्ध व स्वामित्व के पृथक होने के कारण
(Reasons of Separation of Management and Ownership)

एक कम्पनी का संचालक उसके स्वामित्व से सदैव पृथक रखा जाता है। ऐसा करने के प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं :

(i) **अधिक सदस्य संख्या होना** – सदस्यों की संख्या अधिक होने के कारण यह सम्भव नहीं होता कि समस्त संचालन व्यवस्था स्वयं करें।

(ii) **अन्तर्राष्ट्रीय सदस्यता** – अन्तर्राष्ट्रीय सदस्यता होने के कारण यह संभव नहीं हो पाता कि सदस्य संचालन कार्य में कठिनाइयाँ आती हैं।

(iii) **अंशों का स्वतंत्रतापूर्वक हस्तान्तरण** – अंशों के हस्तान्तरण के कारण सदस्यता बदलती रहती है जिससे संचालक कार्य में कठिनाइयाँ आती हैं।

(iv) **जटिल प्रबन्ध ज्ञान का अभाव** – वर्तमान समय में कम्पनी का प्रबन्ध योग्य व कुशल संचालन व्यवस्था के अन्तर्गत ही होना आवश्यक है और यह ज्ञान प्रायः अंशधारियों में न होने से संचालन को स्वामित्व से पृथक ही किया जाना चाहिए।

कम्पनी का अंशधारी प्रायः कम्पनी के प्रबन्ध में भाग नहीं ले पाता है।

संचालक
(Director)

कम्पनी अधिनियम की **धारा 2 (13)** के अनुसार, संचालक शब्द में उन व्यक्तियों को सम्मिलित किया जाता है जो संचालक का स्थान ग्रहण किए हुए हों, चाहे उन्हें किसी भी नाम से पुकारा जाता हो। "बेवस्तर शब्द कोष के अनुसार" धारा 307 (10) अ के अनुसार, 'ऐसा प्रत्येक व्यक्ति, जिसके आदेशों के अनुसार कम्पनी का संचालक मण्डल कार्य करने का आदी है, कम्पनी का संचालक माना जाएगा।' 'संचालक से आशय ऐसे व्यक्तियों से लगाया जाता है जो कि कम्पनी का प्रबन्ध करने हेतु नियुक्त किए जाते हैं।' यह व्यक्ति प्रायः विद्वान, प्रभावशाली एवं व्यापारिक कार्यों में कुशल माने जाते हैं।

संचालक मण्डल का आशय (Meaning of Board of Directors) – धारा 252 (3) के अनुसार, कम्पनी के समस्त संचालकों को संयुक्त रूप से संचालक मण्डल के नाम से जानते हैं।

आवश्यकता – कम्पनी में संचालकों की आवश्यकता निम्न कारणों से उदय हो जाती है :

(i) कम्पनी के व्यवसाय को चलाने के लिए। (ii) कम्पनी की सम्पत्तियों एवं अचल सम्पत्ति की देखभाल करने के लिए। (iii) कम्पनी की तरफ से अनुबन्ध करने के लिए।

संचालकों की स्थिति
(Position of Directors)

संचालकों की स्थिति सम्बन्धी निम्न व्यवस्था है :

(1) **प्रबन्ध करने वाले साझीदार की भाँति** – संचालकों की नियुक्ति कम्पनी के प्रबन्ध हेतु की जाती है (कोजेन्स-हार्डी एल.टी.)। संचालकों की स्थिति प्रबन्ध करने वाले साझेदार की भाँति होती है (आटोमेटिक सेल्फ क्लीनिंग फिल्टर सिण्डीकेट कं. लि. बनाम कनिंग लेना 1806)।

(2) **अभिकर्ता की भाँति** – संचालक कम्पनी का अभिकर्ता नहीं होता और न ही उनकी नियुक्ति अभिकर्ता की भाँति की जाती है, फिर भी कुछ मामलों में उसकी स्थिति अभिकर्ता के समान हो जाती है। कम्पनी के कार्य संचालकों द्वारा ही चलाये जाते हैं (फरगुसन बनाम विल्सन, 1866) के मामले में न्यायाधीश ने कहा "संचालक कम्पनी के एजेन्ट मात्र हैं व उनकी स्थिति प्रधान व एजेन्ट जैसी है। कम्पनी की ओर से किए गए अनुबन्धों के लिए संचालक व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी नहीं होता। एलकिंग्टन बनाम हर्टर का मामला इसी को स्पष्ट करता है।"

E ने एक को माल उधार बेचा जिसका भुगतान 600 पौण्ड में ऋण पत्र जारी करके करना था। H कं. के संचालक मण्डल का सभापति था। ऋण पत्र जारी करने के पूर्व कम्पनी का समापन हो गया। न्यायालय की राय में H का कोई व्यक्तिगत दायित्व नहीं था।

(3) **प्रन्यासियों की भाँति** – संचालक कम्पनी के प्रन्यासी नहीं होते, परन्तु वे उन समस्त सम्पत्ति के लिए प्रन्यासी माने जाते हैं जो उनके अधिकार में कम्पनी की ओर से आती है (फोरेस्ट ऑफ डीन कोल कं. 1979, लेण्ड्स अटोलमेण्ट कं. 1894)। यदि संचालक कम्पनी की सम्पत्ति का दुरुपयोग करते हैं तो वे प्रन्यासी की भाँति उत्तरदायी ठहराये जायेंगे। संचालक कम्पनी के निम्न अधिकारों के लिए प्रन्यासी माने जाते हैं :

(अ) लाभांश को साधारण सभा में घोषित करने का अधिकार। (ब) अंशों के आवंटन करने का अधिकार। (स) अंशों के हस्तान्तरण को स्वीकार करने का अधिकार। (द) अंशों के समर्पण को स्वीकार करने का अधिकार। (इ) कम्पनी के धन को कम्पनी के हित में प्रयोग करने का अधिकार। (फ) कम्पनी की सम्पत्ति को व्यापार में प्रयोग करने का अधिकार।

संचालक निम्न स्थिति में प्रन्यासी नहीं माने जाते हैं :

(i) **अंशधारियों के लिए प्रन्यासी न होना** – संचालक कम्पनी के लिए तो प्रन्यासी होते हैं परन्तु वे अंशधारी के लिए नहीं होते हैं। (परसीबल बनाम क्राइट) परन्तु यदि संचालक अंशधारियों के हितों का प्रतिनिधित्व करते हों तो वे प्रन्यासी माने जाते हैं। (एलेन बनाम हयात)।

(ii) **कानून की दृष्टि में प्रन्यासी न होना** – संचालक कम्पनी का वैतनिक कर्मचारी होने से वह स्वयं अपने नाम से न तो मुकदमा चला सकता है और न ही प्रसंविदा कर सकता है। (स्मिथ बनाम एण्डरसन)

(iii) **बाह्य व्यक्तियों के लिए प्रन्यासी न होना** – संचालक बाहरी व्यक्तियों के लिए भी प्रन्यासी माने जाते हैं। (वाथ बनाम स्टैण्डर्ड लैण्ड कं., 1911)

(iv) **संचालक, कर्मचारी के रूप में** – संचालक कम्पनी के एजेण्ट होते हैं, परन्तु उसे कम्पनी से एक विशेष सेवा-अनुबन्ध करके कर्मचारी बनने से कोई नही रोक सकता। [के. आर. कोथनडरमन बनाम आई. टी. कामरेड A.I.R (1967) मद्रास 143]

(v) **संचालक, अधिकारी के रूप में** – कुछ विशेष मामलों में, संचालक कम्पनी के अधिकारी समझे जाते हैं। अतः यदि अधिनियम के प्रावधानों का कड़ाई से पालन नहीं किया जाता, तो वे दण्डित किए जा सकते हैं।

संचालकों की संख्या
(Number of Directors)

कम्पनी संचालकों की संख्या के सम्बन्ध में निम्न प्रावधान प्रमुख हैं : –

(1) प्रत्येक सार्वजनिक कम्पनी में न्यूनतम **तीन** संचालक होने चाहिए किन्तु –

(अ) जिस सार्वजनिक कम्पनी में 5 करोड़ रु. या अधिक की प्रदत्त पूँजी हो,

(ब) एक हजार या अधिक लघु अंशधारी हों, उस कम्पनी में लघु अंशधारियों का एक संचालक हो सकता है। ऐसा संचालक निर्धारित की गई विधि से चुना जायेगा। [2000 में संशोधित धारा 20]

(2) अन्य किसी भी कम्पनी में कम से कम **दो** संचालक होने आवश्यक हैं। यदि अन्तर्नियमों में निर्धारित संचालकों की संख्या में वृद्धि की जाती है और इसके परिणामस्वरूप **संचालकों की संख्या 12 से अधिक हो जाती है तो केन्द्रीय सकरार से अनुमति प्राप्त करना अनिवार्य होता है।**

संचालकों की नियुक्ति
(Appointment of Directors)

संचालकों की नियुक्ति निम्न ढंग से की जा सकती है :

(1) **संचालक मण्डल द्वारा** – संचालक मण्डल द्वारा निम्न दशाओं में संचालक की नियुक्ति की जाती है।

(अ) **अतिरिक्त संचालक की नियुक्ति** – अन्तर्नियमों द्वारा अधिकृत होने पर संचालक मण्डल अतिरिक्त संचालक की नियुक्ति कर सकता है।

समाप्ति के पूर्व ही आकस्मिक रूप से रिक्त हो जाय तो उस स्थान की पूर्ति संचालक मण्डल द्वारा साधारण सभा में की जा सकती है। [धारा 362 (1) व (2)]

NOTES

(स) **पारी से नियुक्ति** – पारी से एक संचालक के हटने पर दूसरे संचालक की नियुक्ति की जा सकती है। [धारा 313 (1) व (2)]

(2) **पार्षद सीमा नियम द्वारा** – पार्षद सीमानियम पर हस्ताक्षर करने वाला कोई भी अधिकृत व्यक्ति संचालकों की नियुक्ति कर सकता है। [धारा 254]

(3) **अन्य पक्षों द्वारा नियुक्ति** – अन्तर्नियम द्वारा अधिकृत होने पर निम्न पक्ष भी संचालकों की नियुक्ति कर सकते हैं :

(अ) **बैंकिंग संस्थाएँ** – जब बैंक ऋण देती है तो उसके लिए उचित प्रयोग पर नियन्त्रण रखने के उद्देश्य से बैंक द्वारा एक संचालक नियुक्त किया जा सकता है। (ब) **ऋणपत्रधारी** – ऋण देने वालों को भी संचालक नियुक्त करने का अधिकार दिया जा सकता है। (स) **व्यापार विक्रेता** – व्यापार विक्रेता को भी संचालक की नियुक्ति का अधिकार दिया जा सकता है। (द) **ऋण देने वाला व्यक्ति** – कम्पनी को बड़ा ऋण देने वाला व्यक्ति कम्पनी में संचालक की नियुक्ति की शर्तों को लगा सकता है।

इस प्रकार नियुक्त संचालक एवं प्रबन्ध अभिकर्ताओं द्वारा नियुक्त संचालकों की संख्या कुल संचालकों की संख्या के 1/3 से अधिक नहीं होनी चाहिए।

(4) **केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्ति** – केन्द्रीय सरकार द्वारा संचालकों की नियुक्ति करने सम्बन्धी निम्न व्यवस्था है :

(अ) **दो संचालकों की नियुक्ति** – कम्पनी के कम से कम 100 सदस्यों या 1/10 वोट शक्ति रखने वाले व्यक्तियों द्वारा न्यायालय में आवेदन- पत्र देने पर केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त कराया जा सकता है। [धारा 408 (1)] (ब) **अतिरिक्त संचालक** – अतिरिक्त संचालक की अवधि समाप्त न होने तक संचालक की नियुक्ति न की जाए। [धारा 408 (2)]। (स) **पद से हटाना** – केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त संचालकों को हटाया नहीं जा सकेगा। [धारा 408 (4)]। (द) **परिवर्तन न करना** – सरकार द्वारा संचालकों की नियुक्ति के बाद सरकार की अनुमति बिना संचालक मण्डल में परिवर्तन करना सम्भव नहीं होगा। यदि कोई परिवर्तन कर दिया जाता है तो व्यर्थ माना जायेगा। [धारा 408 (5)] 1972 संशोधन के अनुसार केन्द्रीय सरकार को किसी भी कम्पनी में कितनी भी संख्या में संचालकों को नियुक्त करने का अधिकार प्राप्त हो गया है जिससे उस कम्पनी की प्रबन्ध व्यवस्था सुचारु ढंग से चल सके। [धारा 408]

(इ) **कम्पनी को हानि होना** – यदि संचालक मण्डल में होने वाले परिवर्तन से कम्पनी को हानि होने की संभावना हो तो कम्पनी के अधिकारी द्वारा शिकायत करने पर केन्द्रीय सरकार यह आदेश दे सकती है कि कोई भी परिवर्तन उस समय तक व्यर्थ होगा जब तक कि केन्द्रीय सरकार अपनी स्वीकृति प्रदान न कर दे। [धारा 409]। (फ) **आनुपातिक प्रतिनिधित्व** – केन्द्रीय सरकार यह आदेश दे सकती है कि संचालकों की नियुक्ति आनुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर की जाये तथा अन्तर्नियमों में आवश्यक परिवर्तन कर लिये जायें। [धारा 408 (1) Prov.]

(5) **आनुपातिक प्रतिनिधित्व आधार पर नियुक्ति** – धारा 265 के अनुसार, संचालकों की नियुक्ति आनुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर की जा सकती है। अन्तर्नियम में इस प्रकार की व्यवस्था हो सकती है कि कम से कम 2/3 संचालक आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के आधार पर नियुक्त होंगे। ऐसे संचालकों की नियुक्ति 3 वर्ष में एक बार होती है।

(6) **कम्पनी द्वारा नियुक्ति** – कम्पनी द्वारा संचालकों की नियुक्ति निम्न प्रकार हो सकती है :

(अ) **साधारण सभा में नियुक्ति** – साधारण सभा में 1/3 संचालकों की नियुक्ति की जा सकती है।

(ब) **अवकाश ग्रहण करने पर नियुक्ति** – इसमें सर्वप्रथम वह व्यक्ति सम्मिलित किये जाते हैं जो अधिक समय तक कार्य कर चुके हों।

(स) **नियुक्ति के लिए नोटिस देना** – अवकाश ग्रहण नहीं करने वाला संचालक किसी भी साधारण सभा में संचालक नियुक्त हो सकता है और इस सम्बन्ध में 14 दिन पूर्व कम्पनी को नोटिस देना आवश्यक होगा।

(द) **सहमति देना** – प्रत्येक व्यक्ति जिसके लिए प्रस्ताव रखा गया है कम्पनी को अपनी लिखित सहमति देगा।

(य) **रजिस्ट्रार को सूचित करना** – अपनी नियुक्ति के 30 दिन की अवधि में प्रत्येक संचालक को अपनी सहमति रजिस्ट्रार को भेजनी होगी।

NOTES

(ए) **एक प्रस्ताव का अपर्याप्त होना** कम्पनी की साधारण सभा में एक ही प्रस्ताव द्वारा दो या दो से अधिक संचालकों की नियुक्ति का विचार प्रकट नहीं किया जा सकता।

(ल) **लाभ प्राप्त न करने वाली संस्था** – जो संस्थाएँ लाभ अर्जित न करने की दृष्टि से चलायी जाती हैं, वहाँ संचालकों की नियुक्ति कम्पनी को वार्षिक साधारण सभा में बैलट (Ballot) द्वारा चुनाव करके करनी होगी।

(व) **लाटरी द्वारा निर्णय** – जिन संचालकों की नियुक्ति एक ही दिन हुई हो तो लाटरी डालकर यह तय किया जायेगा कि किन संचालकों को प्रतिवर्ष बारी-बारी से अवकाश ग्रहण करना है। [धारा 256 (2)]

(श) **निजी कम्पनी पर लागू न होना** – यह नियम निजी कम्पनी पर लागू न होंगे। [धारा 257 (2)]

संचालकों की नियुक्ति पर प्रतिबन्ध – (धारा 266) कोई भी व्यक्ति अन्तर्नियमों द्वारा कम्पनी का संचालक नियुक्त नहीं किया जा सकता। प्रविवरण में संचालक के रूप में उसका नाम नहीं दिया जा सकता। परन्तु अन्तर्नियम के पंजीकरण या प्रविवरण के प्रकाशन के पूर्व वह संचालक के रूप में कार्य करने को सहमत हो गया हो, तो निम्न शर्तें पूर्ण होने पर वह संचालक बन सकता है :

(i) उसने सीमानियम पर योग्यता अंशों के बारे में हस्ताक्षर कर दिए हैं।

(ii) उसने योग्यता अंश ले लिए हैं तथा उसकी कीमत चुका दी है।

(iii) उसने योग्यता अंश लेने हेतु पंजीयक के समक्ष एक लिखित आश्वासन फाइल कर दिया है।

(iv) उसने पंजीयक के समक्ष एक शपथ-पत्र फाइल किया है कि योग्यता अंश उसी के नाम में पजीकृत हैं।

संचालकों की योग्यताएँ
(Qualifications of Directors)

संचालकों के लिए निम्न योग्यताओं का होना आवश्यक है :

(i) **योग्यता अंश लेना** – प्रत्येक संचालक को कम से कम एक या न्यूनतम योग्यता अंशों को लेना आवश्यक होता है।

(ii) **अंशों को हस्तान्तरण द्वारा लेना** – योग्यता अंशों को बाजार से भी क्रय किया जा सकता है।

(iii) **अंशों का मूल्य रु. 500 से अधिक न होना** – संचालक के योग्यता अंशों का मूल्य 5,000 रु. से अधिक न होना चाहिए। यदि एक अंश की कीमत ही 5,000 से अधिक है तो एक अंश ही योग्यता अंश माना जायेगा। [धारा 270 (3)]

(iv) **अवधि तक अंश रखना** – यदि संचालक अपनी नियुक्ति के 2 माह के अन्दर योग्यता अंश नहीं लेता या उन्हें अपने कार्यकाल में स्वामित्व अपने पास नहीं रखता, तो उसका पद रिक्त समझा जाएगा। इसमें वृद्धि करने पर अधिक अंशों को न लेने में पद रिक्त नहीं हो सकता (मोलीनेक्स बनाम लन्दन बर्मिंघम मेनेचेस्टर बीमा कं. 1902)। [धारा 283 (1) (अ)]

(v) **अंश दो माह में लेना** – संचालकों को चाहिए कि वे अपने योग्यता अंशों को दो माह के अन्दर प्राप्त कर लें।

(vi) **आर्थिक जुर्माना** – यदि संचालक निर्धारित समयावधि में अपने योग्यता अंश प्राप्त नहीं कर सकता है तो उस पर 50 रुपये प्रतिदिन के हिसाब से जुर्माना लगेगा। [धारा 272]

(vii) **अंश के अतिरिक्त योग्यताएँ निर्धारित करना** – अन्तर्नियमों द्वारा अंशों के अतिरिक्त संचालकों के लिए एक अतिरिक्त योग्यता भी निर्धारित की जा सकती है, जिन्हें पूर्ण करना आवश्यक होगा। (सरस्वती आदि निधि लि. बनाम डेरासिगमोनी 1951)।

(viii) **अंश-अधिपत्र** – संचालकों द्वारा अंश-अधिपत्र का रखना योग्यता अंश में सम्मिलित नहीं होगा। [धारा 270 (4)]

(ix) **निजी कम्पनी के संचालक** – निजी कम्पनी पर संचालकों के अंश योग्यता वाले नियम लागू न होंगे। [धारा 273]

(x) **भेंट के रूप में अंश लेना** – एक संचालक अपने योग्यता अंशों को प्रबन्धक से भेंट के रूप में स्वीकार नहीं करता।

(Disqualifications of Directors)

NOTES

संचालकों की अयोग्यता में निम्न को सम्मिलित किया जाता है :

(1) केवल व्यक्ति ही संचालक होना – केवल व्यक्ति ही कम्पनी में संचालक नियुक्त हो सकते हैं और किसी फर्म, संघ या समामेलित संस्था को कम्पनी में संचालक की भाँति नियुक्त नहीं किया जा सकता है। [धारा 253]

(2) अविवर्जित दिवालिया, सजा पाया हुआ व्यक्ति, दोषी व्यक्ति, निजी कम्पनी, याचना का भुगतान करने वाला व्यक्ति, पागल व्यक्ति एवं अन्य अयोग्यता वाला व्यक्ति संचालक पद के लिए अयोग्य माने जाते हैं।

(3) 20 से अधिक कम्पनियों का संचालन – कोई भी व्यक्ति 20 कम्पनियों से अधिक का संचालक नियुक्त नहीं हो सकता है। [धारा 275]

(4) उसने याचना अदायगी की अन्तिम तिथि से 6 माह बीतने पर भी भुगतान नहीं किया है।

(5) न्यायालय ने संचालक पद हेतु उसे अयोग्य घोषित कर दिया है।

(6) न्यायालय ने उसे नैतिक नीचता का अपराधी पाया है और उसे कम से कम 6 माह की सजा हो गयी हो तथा सजा समाप्ति से 5 वर्ष न बीते हों।

संचालक मण्डल के अधिकार
(Powers of Board of Directors)

अधिनियम में संचालकों को कोई अधिकार नहीं है, जो भी अधिकार संचालक प्रयोग करते हैं, वे संचालक मण्डल के अधिकार हैं।संचालकों के अधिकारों का निम्न दो भागों में अध्ययन किया जा सकता है:

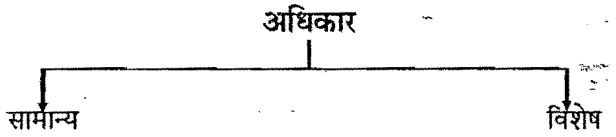

अधिकार

सामान्य | विशेष

(अ) सामान्य अधिकार – इसमें निम्न को सम्मिलित किया जाता है :

(i) **अंशधारियों को बाधा न डालना** – यदि अंशधारी संचालकों के कार्य से असन्तुष्ट हैं तो वह अन्तर्नियम के नियमों के अनुसार उन्हें निकाल सकते हैं। (ग्रामोफोन एण्ड टाइप राइटर लि. बनाम स्टेनले, 1808)।

(ii) **वैध कार्य** – संचालक की हैसियत से किये गए समस्त कार्य वैध कार्य होते हैं। यदि उनकी नियुक्ति समाप्त हो जाती है तो उनके कार्य भी अवैध हो जाते हैं। [धारा 290]

(iii) **पुस्तकें निरीक्षण करना** – संचालक व्यावसायिक अवधि में पुस्तकों एवं अन्य प्रपत्रों की सरलता से निरीक्षण कर सकते हैं। [धारा 209 (4) (अ)]

(iv) **सभा का नोटिस पाना** – संचालक को प्रत्येक सभा का नोटिस पाने का अधिकार प्राप्त होता है, यह नोटिस लिखित में दिया जाना चाहिए। [धारा 286]

(v) **अफसरों पर नियन्त्रण** – कम्पनी के संचालकों को कम्पनी के अफसरों पर नियंत्रण करने का पूर्ण अधिकार होता है। कम्पनी के अफसर संचालकों के नियन्त्रण के अन्तर्गत ही अपने अधिकारों का प्रयोग कर सकेंगे।

(vi) **कम्पनी के सभी अधिकार होना** – संचालक मण्डल सीमानियम एवं अन्तर्नियमों में दिये गये प्रतिबन्ध को ध्यान में रखकर ही अधिकारों का प्रयोग कम्पनी की साधारण सभा में कर सकते हैं। [धारा 291 (1)]

(ब) विशेष अधिकार – संचालकों के विशेष अधिकार निम्न होते हैं :

(i) **रिक्त स्थान की पूर्ति** – यदि आकस्मिक रूप से कोई स्थान रिक्त होता है तो उसकी पूर्ति नये संचालक की नियुक्ति करके की जा सकती है।

(ii) **सुरक्षा कोष में अंशदान** – संचालक राष्ट्रीय सुरक्षा कोष में अंशदान दे सकते हैं और इसका लेखा लाभ-हानि खाते में कर सकते हैं। [धारा 293 बी]

(iii) **विनियोग करने का अधिकार** – संचालक उसी समूह की संस्था में प्रार्थित पूँजी के 10% तक विनियोग कर सकता है।

(iv) **मैनेजर नियुक्त करने का अधिकार** – संचालक किसी भी व्यक्ति को मैनेजर नियुक्त कर सकते हैं। [धारा 386 (2)]

NOTES

(v) **व्यापार चलाने का अधिकार** – प्रबन्ध-अभिकर्ता व सचिव आदि के रिक्त स्थान होने पर संचालकों को व्यापार चलाने का अधिकार प्राप्त होता है।

(vi) **प्रबन्ध-संचालक नियुक्त करना** – संचालक किसी ऐसे व्यक्ति को कम्पनी में प्रबन्ध-संचालक नियुक्त कर सकते हैं जो पहले से ही किसी कम्पनी में प्रबन्ध संचालक है। [धारा 316]

(vii) **प्रसंविदा करना** – संचालकों को कम्पनी के साथ क्रय-विक्रय, सामान की पूर्ति, अंशों का अभिगोपन आदि करने का अधिकार प्राप्त होता है।

(viii) **अंश व ऋणपत्र सम्बन्धी अधिकार** – संचालकों को योजनाएँ माँगने, ऋणपत्र निर्गमित करने, कम्पनी के धन को विनियोग करने एवं ऋण लेने आदि के अधिकार प्राप्त होते हैं। [धारा 292 (1)]

(ix) **अभिगोपन करने का अधिकार** – संचालकों को कम्पनी के अंशों तथा ऋणपत्रों के अभिगोपन करने का अधिकार भी प्राप्त होता है। [धारा 287 (1)]

अधिकारों पर प्रतिबन्ध
(Restrictions on Powers)

संचालकों के अधिकारों पर निम्न प्रतिबन्ध लगाये जाते हैं :

(i) **निस्तारक की नियुक्ति पर अधिकारों की समाप्ति** – ऐच्छिक समापन पर निस्तारक की नियुक्ति पर संचालक-मण्डल के समस्त अधिकार समाप्त हो जाते हैं। [धारा 505]

(ii) **साधारण सभा की अनुमति** – एक सार्वजनिक कम्पनी का संचालक साधारण सभा की बिना अनुमति के न तो संचालकों को ऋण दे सकता है और न ही कम्पनी के व्यवसाय की बिक्री कर सकता है। [धारा 293 (1)]

(iii) **सुरक्षा कोष में अंशदान पर प्रतिबन्ध न होना** – कम्पनी के संचालक सीमानियम व अन्तर्नियम में व्यवस्था न होने पर भी सुरक्षा कोष में कितनी भी राशि दे सकते हैं, परन्तु उसका लेखा उस वर्ष के लाभ-हानि खाते में अवश्य हो जाना चाहिए। [धारा 293 (ब)]

(iv) **राजनीतिक कार्यों में दान** – संचालक मण्डल द्वारा किसी भी राजनीतिक दल को कोई दान नहीं दिया जा सकता। यदि इसका उल्लंघन किया जाता है तो कम्पनी पर 5,000 रुपये व दोषी व्यक्ति पर 3 साल तक कैद तथा आर्थिक दण्ड हो सकता है। [धारा 293 (अ) (1)]

(v) **पद समाप्ति पर क्षतिपूर्ति** – यदि एकाकी एजेण्ट का पद समाप्त किया जाता है तो क्षतिपूर्ति की राशि किसी भी दशा में (i) शेष अवधि के समय में मिलने वाली राशि, या (ii) तीन वर्ष में मिलने वाली राशि, से अधिक नहीं होनी चाहिए। [धारा 294 (अ)]

(vi) **एकाकी विक्रय एजेण्ट की नियुक्ति पर प्रतिबन्ध** – इस सम्बन्ध में संचालकों के अधिकारों पर निम्न प्रतिबन्ध लगाये जाते हैं :

(1) **केन्द्रीय सरकार को जाँच का अधिकार** – केन्द्रीय सरकार एकाकी एजेण्ट के सम्बन्ध में कम्पनी से सूचना माँगती है और मना करने पर अनुसन्धान कर सकती है तथा कम्पनी के अहित में होने पर शर्तों में आवश्यक परिवर्तन कर सकती है। [धारा 294 (4)]

(2) **अनेक एजेण्टों से नियुक्ति** – सरकार कम्पनी की ओर से नियुक्त किये अनेक एजेण्टों में से किसी एक को एकाकी एजेण्ट नियुक्त कर सकती है। [धारा 294 (6)]

(3) **नियुक्ति कम्पनी स्वीकृति से होना** – साधारण सभा की स्वीकृति से ही एकाकी एजेण्ट की नियुक्ति सम्भव हो सकती है। [धारा 294 (2)]

(4) **कम्पनी द्वारा अस्वीकृति** – यदि एजेण्ट की नियुक्ति कम्पनी द्वारा अस्वीकृति कर दी गयी है तो यह नियुक्ति व्यर्थ मानी जायेगी। [धारा 294 (2)]

(5) **जुर्माना** – यदि नियमों का उल्लंघन किया जाता है तो कम्पनी एवं प्रत्येक दोषी अफसर पर 5,000 रुपये तक जुर्माना हो सकता है। [धारा 294 (8)]

(6) **नियुक्ति की अवधि** – कोई भी कम्पनी एकाकी एजेण्ट की नियुक्ति या पुनर्नियुक्ति 5 वर्ष से अधिक के लिए नहीं कर सकती। [धारा 294 (1)]

(7) **अधिनियम से पूर्व नियुक्ति** – यदि इस अधिनियम के प्रारम्भ होने के पूर्व किसी एजेण्ट की नियुक्ति 5 वर्ष या अधिक के लिए की गयी है तो अधिनियम के प्रारम्भ होने के 3 माह के अन्दर इस नियुक्ति को साधारण सभा में रखना आवश्यक होगा।

82

कर्तव्य है कि उस अन्वेषक को आवश्यक सूचनाए प्रदान करें। [धारा 294 (7)]

(9) **प्रबन्ध अभिकर्ता को एकाकी एजेण्ट पर प्रतिबन्ध** – यदि प्रबन्ध अभिकर्ता की अवधि समाप्त होने से उसे एकाकी एजेण्ट के रूप में नियुक्त कर दिया है तो यह नियुक्ति व्यर्थ होगी। [धारा 294 (4)]

NOTES

संचालकों के कर्तव्य
(Duties of Directors)

संचालकों के प्रमुख कर्तव्य निम्न रूपों में रखे जा सकते हैं :

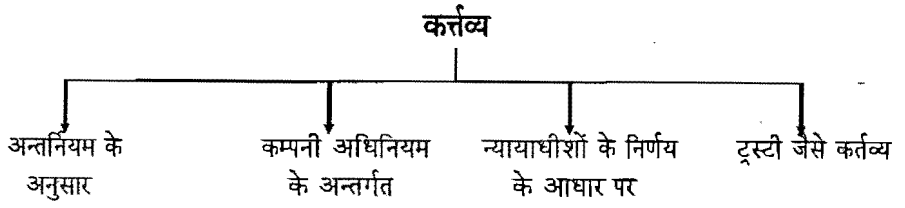

(i) **अन्तर्नियम के अनुसार कर्तव्य** – संचालकों के जो कर्तव्य अन्तर्नियम में उल्लिखित कर दिये जाते हैं उनका पालन करना आवश्यक हो जाता है।

(ii) **कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत कर्तव्य** – इसके अन्तर्गत संचालक के मुख्य कर्तव्य निम्न हैं :

(1) **प्रलेख प्रमाणित करना** – संचालकों को कम्पनी के लाभ-हानि खाते एवं चिट्ठे को प्रमाणित करना आवश्यक होगा। [धारा 215]

(2) **प्रविवरण पर हस्ताक्षर** – संचालकों को कम्पनी के प्रविवरण पर हस्ताक्षर करने आवश्यक हैं।

(3) **लाभांश की घोषणा** – संचालकों को लाभांश की घोषणा एवं उसका भुगतान करना आवश्यक होता है।

(4) **वार्षिक प्रत्याय पर हस्ताक्षर** – एक संचालक को कम्पनी द्वारा भेजे जाने वाले वार्षिक प्रत्याय पर हस्ताक्षर करने होंगे। [धारा 161]

(5) **वार्षिक साधारण सभा** – संचालकों को साधारण सभा बुलाने सम्बन्धी कानूनी व्यवस्था करना होगी। [धारा 166]

(6) **केन्द्रीय सरकार को सहायता** – किसी व्यक्ति पर अभियोग चलाने पर संचालकों को केन्द्रीय सरकार की मदद करनी चाहिए। [धारा 242 (1)]

(7) **रजिस्ट्रार को प्रतिलिपियाँ भेजना** – कम्पनी के लाभ-हानि व चिट्ठे की तीन प्रतिलिपियाँ संचालकों द्वारा रजिस्ट्रार को प्रस्तुत करनी होती हैं।

(8) **अंशों की सूचना देना** – संचालकों द्वारा किए गए अंशों की सूचना कम्पनी को कराना आवश्यक है, जिससे उसे रजिस्टर में दर्ज किया जा सके। [धारा 308]

(9) **सभा करना** – प्रत्येक तीन माह में कम से कम एक बार संचालकों की सभा का आयोजन करना आवश्यक होगा। [धारा 285]

(10) **स्थिति विवरण बनाना** – कम्पनी के विघटन के आदेश होने पर संचालकों को कम्पनी का स्थिति विवरण बनाकर निस्तारक को देना होगा। [धारा 454]

(11) **विवरण देना** – अपनी नियुक्ति के 20 दिन के अन्दर संचालकों को अपने बारे में पूर्ण विवरण कम्पनी को देना होगा। [धारा 305]

(12) **अधिनियम का पालन** – संचालकों का यह कर्तव्य है कि वे कम्पनी अधिनियम की व्यवस्थाओं का पूर्ण रूप से पालन करें।

(13) **स्वार्थ बताना** – यदि प्रसंविदे में कोई स्वार्थ है तो संचालकों को उसे प्रकट कर देना चाहिए। [धारा 299]

(14) **योग्यता अंश लेना** – अपनी नियुक्ति के दो माह के अन्दर प्रत्येक संचालक को योग्यता अंश लेने होंगे। [धारा 270]

(15) **प्रपत्रों को देना** – निरीक्षक के प्रमुख संचालक को समस्त प्रपत्रों को प्रस्तुत करना होगा। [धारा 240 (1)]

NOTES

(16) **संचालन रिपोर्ट देना** – कम्पनी के वार्षिक खातों के साथ संचालन रिपोर्ट देना आवश्यक होता है। [धारा 217

(17) **खाते पेश करना** – वार्षिक साधारण सभा में खाते बनाकर पेश करना आवश्यक होता है। इसमें कम्पनी के लाभ-हानि खाता तथा चिट्ठा सम्मिलित किया जाता है। [धारा 210

(18) **असाधारण सभा बुलाना** – एक निश्चित तिथि के बाद संचालकों को असाधारण सभा बुलाना आवश्यक होगी। [धारा 169]

(19) **वैधानिक रिपोर्ट** – निश्चित समयावधि में कम्पनी की वैधानिक सभा बुलाने एवं रिपोर्ट तैयार करने का संचालक का कर्तव्य माना जाता है।

(20) **आवंटन की राशि देना** – प्रत्येक संचालक को आवंटन की राशि का भुगतान करना होगा तथा वैधानिक कार्यवाही पूर्ण करने की घोषणा करनी होगी। [धारा 149

(21) **प्रविवरण की सत्यता** – संचालक को प्रविवरण की सत्यता को जाँचना होगा तथा गलत विवरण के लिए वे जिम्मेदार होंगे।

(iii) **न्यायाधीशों के निर्णय के आधार पर कर्तव्य** – इसके संचालकों के मुख्य कर्तव्य निम्न हैं :

(1) **कौशल व परिश्रम** – संचालक को उसी कौशल एवं परिश्रम से कार्य करना चाहिए जैसा कि अपने कार्य में एक सामान्य बुद्धि वाला आदमी करता है, (सिटी इक्यूटेबिल फायर इन्शुरेन्स कं.)

(2) **कम्पनी का हित** – संचालक को प्रत्येक कार्य अपने हित में न करके कम्पनी के हित में करना चाहिए।

(3) **चैक की जाँच करना** – किसी भी चैक पर हस्ताक्षर करने से पूर्व संचालक का यह कर्तव्य है कि वह उसकी वैधता की भली-भाँति जाँच कर ले।

(4) **हानि पहुँचाकर लाभ न उठाना** – संचालक को अपनी स्थिति के कारण अन्य अंशधारियों को हानि पहुँचाकर लाभ नहीं उठाना चाहिए।

(5) **विश्वास** – संचालक को प्रत्येक अफसर के कार्यों पर विश्वास करके कार्य करना होगा।

(6) **परिश्रम व सच्चाई** – संचालक को कम्पनी के प्रति परिश्रम एवं सच्चाई से कार्य करना चाहिए।

(7) **ईमानदारी** – संचालक को ईमानदारी एवं लगन से कार्य करना चाहिए।

(8) **याचना स्थगित न करना** – अंशों पर देय याचना की राशि को संचालक स्थगित नहीं कर सकता।

(9) **सामयिक स्वभाव** – संचालक को कम्पनी की मुख्य-मुख्य सभाओं में उपस्थित होकर भाग लेना आवश्यक है।

कम्पनी के प्रति संचालकों के तीन प्रकार के कर्तव्य हैं– (i) उन्हें आज्ञाकारी होना चाहिए, (ii) उन्हें परिश्रमी होना चाहिए तथा (iii) उन्हें सच्चाई का व्यवहार करना चाहिए।

(iv) **ट्रस्टी जैसे कर्तव्य** – संचालकों को ट्रस्टी से काम करने चाहिए। उसे अपने अधिकारों का प्रयोग सत्यनिष्ठा से तथा कम्पनी व अंशधारियों के हित में करना चाहिए। उसके ट्रस्टी जैसे कर्तव्य कम्पनी के प्रति होते हैं, प्रत्येक अंशधारी के प्रति नहीं।

पर्सीवल बनाम राइट का मामला – इस केस में संचालकों ने A से कुछ अंश खरीदे और A को यह नहीं बताया कि अंशों को अधिक कीमत पर बेचने की सौदेबाजी चल रही है। A ने विक्रय अनुबन्ध समाप्त करने हेतु दावा किया। न्यायालय की राय में, संचालकों पर सौदेबाजी सम्बन्धी तथ्य प्रकट करने का कोई दायित्व नहीं था, अतः विक्रय अनुबन्ध पूर्णतया कानूनी था।

संचालक के दायित्व
(Liabilities of Directors)

संचालकों के मुख्य दायित्व निम्न प्रकार हैं :

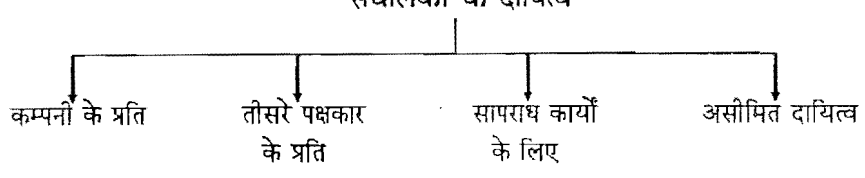

(i) **कम्पनी के प्रति दायित्व** – इसमें निम्न सम्मिलित हैं :

(1) **लापरवाही पर दायित्व** – यदि संचालक की लापरवाही के कारण कम्पनी को हानि होती है तो संचालक उत्तरदायी होगा। [धारा 201]

(2) **कपट के लिए दायित्व** – यदि संचालक जान-बूझकर कोई त्रुटि करता है तो वह जिम्मेदार होगा। [धारा 542]

(3) **कर्तव्य भंग पर** – यदि संचालक अपने कर्तव्यों का पालन नहीं करता और कम्पनी को कोई क्षति होती है तो उसके लिए वह जिम्मेदार माना जाएगा। संचालक जान-बूझकर किसी अवयस्क को अंशों का आवंटन करते हैं तो वे कर्तव्य भंग के लिए उत्तरदायी होंगे। (विल्सन के मामले में इसकी पुष्टि की गयी)।

(4) **प्रन्यास तोड़ने पर** – संचालक प्रन्यास की भाँति होताहै, यदि वह प्रन्यास के नियमों का पालन नहीं करता हो तो हानि के लिए उत्तरदायी होगा।

(5) **अधिकारों के बाहर कार्य करने पर** – यदि संचालक अपने अधिकारों के बाहर कार्य करता है तो कम्पनी को क्षतिपूर्ति करनी होगी।

(ii) **तीसरे पक्षकार के प्रति दायित्व** – इसमें निम्न सम्मिलित हैं :

(1) **प्रविवरण में मिथ्या वर्णन** – प्रविवरण में मिथ्या वर्णन होने पर अंशधारियों की हानि के लिए संचालक जिम्मेदार होंगे।

(2) **अपने नाम में अनुबन्ध करने पर** – कम्पनी के स्थान पर अपने नाम में अनुबन्ध करने पर संचालक उत्तरदायी माने जाते हैं।

(3) **आवंटन के नियमों में उल्लंघन करने पर** – जान-बूझकर आवंटन के नियमों का पालन न करने पर संचालकगण अंशधारियों के प्रति उत्तरदायी माने जायेंगे। [धारा 71 (3)]

(4) **आवंटन न होने पर धन वापस करना** – यदि प्रविवरण के निर्गमन होने के 120 दिन के अन्दर आवंटन नहीं किया गया है तो प्राप्त धनराशि वापस करनी होगी और 130वें दिन के बाद धन लौटाने पर 6% वार्षिक की दर से ब्याज देनी होगी। [धारा 69 (5)]

(5) **स्कन्ध विपणि में आवेदन न देने पर** – यदि प्रविवरण में उल्लेख करने पर स्कन्ध विपणि में 10 दिन के अन्दर प्रार्थना-पत्र नहीं दिया जाता हो तो अंशधारियों को समस्त राशि वापस करनी होगी और 8 दिन के अन्दर धन वापस न करने पर संचालक पृथक् व संयुक्त रूप से 5% वार्षिक ब्याज लौटाने के लिए उत्तरदायी होंगे।

(6) **अधिकारों के बाहर कार्य करने पर** – यदि संचालक अधिकारों के बाहर कार्य करते हैं तो तृतीय पक्ष को होने वाली हानियों के प्रति उत्तरदायी माने जायेंगे। (वीक्स बनाम प्रोपर्ट)।

(7) **अभिकर्ता के रूप में** – अभिकर्ता के रूप में कार्य करने पर संचालक तृतीय पक्ष के प्रति उत्तरदायी माने जायेंगे।

(iii) **सापराध कार्यों के लिए दायित्व** – सापराध कार्यों के लिए संचालक निम्न प्रकार उत्तरदायी माना जाता है :

(1) **बैंक में राशि जमा करना** – आवेदन राशि को बैंक में जमा न करने पर संचालक पर 5,000 रुपये तक जुर्माना हो सकता है। [धारा 69 (4)]

(2) **स्वार्थ न प्रकट करना** – यदि संचालक कम्पनी के साथ किये गये प्रसंविदा में अपना हित प्रकट न करे तो उस पर 5,000 रुपये तक जुर्माना हो सकता है। [धारा 299 (4)]

(3) **लाभांश सम्बन्धी** – यदि कम्पनी लाभांश घोषित होने के 42 दिनों में लाभांश का वितरण न करे तो दोषी संचालकों पर 7 दिन के कारावास एवं आर्थिक जुर्माने की व्यवस्था की गयी है। [धारा 207]

(4) **संचालक रिपोर्ट सम्बन्धी** – यदि चिट्ठे के साथ संचालकों की रिपोर्ट नत्थी नहीं की जाए तो संचालक पर 2,000 रुपये तक जुर्माना व 5 माह की सजा हो सकती है। [धारा 217 (5)]

(5) **असीमित दायित्व का नोटिस** – संचालकों का दायित्व असीमित होने पर उसकी सूचना देना आवश्यक होगा, अन्यथा 1,000 रु. तक जुर्माना हो सकता है। [धारा 322]

(6) **20 कम्पनी से अधिक का संचालक** – यदि कोई व्यक्ति 20 से अधिक कम्पनियों का संचालक बनता है तो प्रत्येक अतिरिक्त कम्पनी के लिए उस पर 5,000 रु. तक जुर्माना हो सकता है। [धारा 279]

(7) **अन्य कम्पनियों में स्थिति** – संचालक को अपनी नियुक्ति के 20 दिन के अन्दर अन्य कम्पनियों में स्थिति को प्रकट कर देना चाहिए। ऐसा न करने पर उस पर 500 रुपये तक जुर्माना हो सकता है। [धारा 305 (1)]

NOTES

(8) **उम्र की सूचना न देने पर** – प्रत्येक संचालक को अपनी आयु की ही सूचना देना आवश्यक होता है। यदि संचालक अपनी उम्र की सूचना नहीं देता तो उस पर 50 रुपये तक प्रतिदिन जुर्माना हो सकता है।

[धारा 282 (2)]

(9) **प्रविवरण निर्गमित न करना** – प्रविवरण या स्थानापन्न प्रविवरण निर्गमन न करने तथा उसकी प्रतिलिपि रजिस्ट्रार के यहाँ प्रस्तुत न करने पर प्रत्येक संचालक पर 1,000 रुपये तक जुर्माना हो सकता है। [धारा 70 (4)]

(10) **स्वार्थ वाले प्रसंविदा में भाग लेना** – यदि संचालक स्वार्थ वाले प्रसंविदा में भाग लेता है तो उसे पर 5,000 रुपये तक जुर्माना हो सकता है। [धारा 300 (4)]

(11) **प्रविवरण में मिथ्या वर्णन** – यदि प्रविवरण में मिथ्या वर्णन दिया जाता तो संचालक पर दो वर्ष की सजा या 5,000 रुपये जुर्माना या दोनों हो सकते हैं। [धारा 63]

(12) **क्षतिपूर्ति के बारे में** – यदि कोई संचालक अपने पद से हटने पर क्षतिपूर्ति के सम्बन्ध में गलती करता है तो उस पर 250 रुपये तक जुर्माना हो सकता है।

(13) **योग्यता अंश घोषणा में भूल** – यदि संचालक अपनी नियुक्ति के 2 माह के अन्दर योग्यता अंशों की घोषणा नहीं करता तो उस पर 50 रुपये प्रतिदित जुर्माना हो सकता है। [धारा 272]

(14) **प्रलेख साधारण सभा में पेश न करने पर** – साधारण सभा में चिट्ठा एवं लाभ-हानि खाता प्रस्तुत न होने पर दोषी संचालक को 6 माह की सजा या 1,000 रुपये जुर्माना या दोनों हो सकते हैं। [धारा 210 (5)]

(iv) **असीमित दायित्व होना** – संचालकों के असीमित दायित्व सम्बन्धी प्रमुख व्यवस्था निम्न हैं :

(1) **सीमित दायित्व को असीमित में बदलना** – अन्तर्नियम में व्यवस्था होने पर एक सीमित दायित्व वाली कम्पनी एक विशेष प्रस्ताव पारित करके सीमानियम में आवश्यक परिवर्तन करके संचालकों के दायित्व को असीमित घोषित कर सकती है। [धारा 323 (1)]

(2) **पार्षद सीमानियम में व्यवस्था** – यदि कम्पनी के पार्षद सीमानियम में व्यवस्था हो तो एक सीमित दायित्व वाली कम्पनी के संचालकों का दायित्व असीमित हो सकता है।

(3) **व्यवस्था का प्रभावशाली होना** – यदि असीमित दायित्व की व्यवस्था की गयी है तो वह उसी प्रकार प्रभावशाली होंगे जैसे सीमानियम में दिये हुए हों।

न्यायालय द्वारा संचालक को क्षमा करने का अधिकार – संचालक द्वारा ईमानदारी एवं लगन से कार्य करने पर भी लापरवाही का दोषी हो तो न्यायालय द्वारा उसे क्षमा किया जा सकता है।

न्यायाधीशों के निर्णय –

(i) यदि संचालक को ज्ञान न हो, तो वह अपने सह-संचालक के कार्यों के लिए उत्तरदायी नहीं होगा। [कारगिल बनाम बोवर]

(ii) चिट्ठा गलत होने पर संचालकों को दोषी नहीं ठहराया जा सकता है। [डाबरी बनाम कोरी]

(iii) पूँजी में से लाभांश देने हेतु संचालकों को उत्तरदायी ठहराया जाता है। [फिल्टक्राफ्ट का मामला]

(iv) सह-संचालक, संचालकों के नौकर नहीं होने से उन पर कोई दायित्व नहीं डाला जा सकता। [कुलेरेने बनाम लन्दन सबअरन आदि बिल्डिंग सोसाइटी]

(v) संचालकों के अनुमान सम्बन्धी त्रुटि को ही लापरवाही माना जा सकता है, जो व्यक्ति यह कहता है उसे उसकी लापरवाही सिद्ध करनी होगी। [मारजेटी का मामला]

(vi) यदि गबन का रुपया किसी एक संचालक के लिए प्रयोग किया गया है तो उसके लिए अन्य संचालकों को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। [बाल्श बनाम बर्डसले]

संचालकों का पारिश्रमिक
(Remuneration of Directors)

संचालकों के पारिश्रमिक के सम्बन्ध में निम्न व्यवस्था है :

(1) **पारिश्रमिक का निर्धारण करना** – संचालकों को दिया जाने वाला पारिश्रमिक एक प्रस्ताव द्वारा कम्पनी की साधारण सभा में निश्चित किया जाता है। विशेष प्रस्ताव की अवधि 5 वर्ष से अधिक नहीं हो सकती है।

(2) **कमीशन प्राप्त न करना** – यदि संचालक या प्रबन्धक संचालक कम्पनी से कोई कमीशन प्राप्त करता है तो वह कम्पनी से पारिश्रमिक लेने का अधिकारी न होगा।

(3) **निजी कम्पनी पर लागू न होना** – संचालकों के पारिश्रमिक सम्बन्धी व्यवस्था एक निजी कम्पनी पर लागू नहीं होती है। [धारा 309 (9)]

(4) **शुद्ध लाभ को निकालना** – एक सार्वजनिक कम्पनी से संचालक, प्रबन्धक संचालक, सचिव एवं कोषाध्यक्ष व मैनेजर आदि को किसी भी वर्ष में कम्पनी के शुद्ध लाभ के 11% से अधिक नहीं होगा। इस प्रकार शुद्ध लाभ की गणना अधिनियम की व्यवस्था के अनुसार की जायेगी।

(5) **पारिश्रमिक बढ़ाने पर केन्द्रीय सरकार की अनुमति** – यदि कम्पनी संचालक के पारिश्रमिक को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से बढ़ाती है तो इसकी स्वीकृति केन्द्रीय सरकार से प्राप्त करनी होगी। [धारा 310]

(6) **अधिक राशि वापस करना** – यदि संचालकों ने निर्धारित राशि से अधिक राशि प्राप्त कर ली है तो आधिक्य राशि को वापस करना होगा।

(7) **भुगतान** – संचालकों के पारिश्रमिक का भुगतान दो वर्ष तक मासिक आधार पर, प्रत्येक मीटिंग की फीस के रूप में दिया जा सकता है। संचालक को शुद्ध लाभ का 1% दिया जाता है। यह भुगतान एक संचालक होने की दशा में शुद्ध लाभ का 5% तथा एक संचालक से अधिक होने पर शुद्ध लाभ 1% तक किया जा सकता है।

संचालकों को ऋण
(Loan to Directors)

संचालकों को ऋण देने सम्बन्धी निम्न व्यवस्थां है :

(1) **केन्द्रीय सरकार की अनुमति लेना** – केन्द्रीय सरकार की अनुमति के बिना संचालकों को ऋण प्रदान नहीं किया जा सकता। [धारा 295 (1)]

(2) **अधिनियम से पूर्व के ऋण** – यदि इस अधिनियम के लागू होने से पूर्व कोई ऋण कम्पनी द्वारा दिया गया था तो अधिनियम लागू होने के 6 माह में इसकी अनुमति केन्द्रीय सरकार से लेनी होगी। [धारा 295 (3)]

(3) **जमानत पर ऋण लेना** – यदि जमानत पर ऋण लिया गया है और ऋण का भुगतान न करने से कम्पनी को उसका भुगतान करना पड़ा हो, तो संचालक व्यक्तिगत व संयुक्त रूप से कम्पनी के प्रति उत्तरदायी होंगे। [धारा 295 (5)]

(4) **आर्थिक दण्ड** – नियमों का उल्लंघन करने वाले दोषी संचालक पर 5,000 रुपये तक जुर्माना या 6 माह की सजा दी जा सकती है। [धारा 295 (4)]

संचालकों के अनुबन्ध
(Contracts of Directors)

संचालक के अनुबन्ध के सम्बन्ध में निम्न व्यवस्था है :

(1) **प्रभावहीन व्यवस्था** – 5,000 रु. तक हित रखने वाला अनुबन्ध संचालक द्वारा करने पर अधिनियम की व्यवस्था लागू नहीं होगी।

(2) **अनुमति लेना** – कम्पनी का संचालक कम्पनी से ऐसा अनुबन्ध नहीं कर सकता जिसमें उसका हित हो। [धारा 297 (1)]

(3) **व्यर्थनीय अनुबन्ध** – यदि मण्डल की स्वीकृति के बिना अनुबन्ध किया गया है तो वह मण्डल की इच्छा पर व्यर्थनीय होगा। [धारा 297 (5)]

(4) **5,000 रुपये तक के अनुबन्ध करना** – संचालक आवश्यकता पड़ने पर कम्पनी के साथ संचालक-मण्डल की अनुमति के बिना प्रतिवर्ष 5,000 रु. मूल्य तक के अनुबन्ध कर सकते हैं। [धारा 297 (3)]

(5) **प्रस्ताव पास करना** – संचालक-मण्डल की अनुमति केवल प्रस्ताव द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है और इस सम्बन्ध में कोई अन्य व्यवस्था नहीं है। [धारा 297 (4)]

संचालकों के हित
(Directors' Interest)

संचालकों का हित होने पर निम्न नियम लागू होते हैं :

(1) **हित प्रकट करना** – हित रखने वाले संचालक को चाहिए कि वह अपने हित को कम्पनी के सम्मुख प्रकट कर दे। [धारा 299 (1)]

(2) **सदस्यों को सूचित करना** – यदि मैनेजर की नियुक्ति का अनुबन्ध किया गया है तो 21 दिन के अन्दर अनुबन्ध की शर्तों का विवरण सदस्यों को देना होगा। [धारा 302]

NOTES

(3) **2% से कम भाग** – चुकता पूँजी का 2% से भी कम भाग संचालकों द्वारा रखने पर हित सम्बन्धी व्यवस्था संचालकों पर लागू नहीं होगी। [धारा 299 (6)]

(4) **मण्डल को सामान्य सूचना देना** – हित रखने वाले संचालक द्वारा मण्डल को यह सूचित करना ही पर्याप्त होगा कि वह किसी संस्था में हित रखता है। [धारा 299 (3) (अ)]

(5) **प्रभावशाली होना** – मूल नोटिस उसी समय प्रभावशाली माना जाता है जबकि इसके दिये जाने के बाद होने वाली पहली संचालक सभा में उसे रखा जाये। [धारा 299 (3) (स)]

(6) **केन्द्रीय सरकार द्वारा छूट** – यदि व्यवस्था की उन्नति के लिए नियम लागू करना जनता के हित में न हो तो केन्द्रीय सरकार द्वारा छूट दी जा सकती है। [धारा 300 (3)]

(7) **रजिस्टर रखना** – प्रत्येक कम्पनी को एक रजिस्टर रखना होता है जिसमें संचालकों के हित वाले अनुबन्धों का विवरण लिखा जाता है।

(8) **सभा में भाग न लेना** – हित रखने वाला संचालक कम्पनी की सभा में न ही भाग लेगा और न ही वोट देगा। [धारा 300 (1)]

(9) **वर्ष के अन्त में समाप्त होना** – हित रखने वाले अनुबन्ध के नोटिस वर्ष के अन्त में समाप्त हो जाते हैं, परन्तु उन्हें 1 वर्ष के लिए नवीनीकरण किया जा सकता है। [धारा 299 (3) (ब)]

(10) **सभा में हित प्रकट करना** – संचालक को अपना हित कम्पनी की सभा में प्रकट करना चाहिए जो हित रखने वाले समय के बाद होने वाली प्रथम संचालक-मण्डल की सभा में प्रकट किया जायेगा। [धारा 299 (2)]

(11) **आर्थिक दण्ड** – नियमों का उल्लंघन करने पर 5,000 रुपये तक जुर्माना हो सकता है।

संचालकों द्वारा लाभ के पद ग्रहण करना (Directors Holding Office of Profit) – जब संचालक अपने पारिश्रमिक के अतिरिक्त अन्य पारिश्रमिक कम्पनी से प्राप्त करता है तो उसे लाभ का पद ग्रहण करना कहते हैं।

इस सम्बन्ध में निम्न व्यवस्था है : [धारा 314 (3)]

(i) **लाभ का स्थान ग्रहण करना** – कम्पनी की सहमति के बिना कोई भी संचालक कम्पनी में लाभ का पद ग्रहण नहीं कर सकता है।

(ii) **500 रु. से कम के स्थान का ग्रहण** – संचालकगण 500 रुपये से कम के स्थान को कम्पनी की अनुमति के बिना भी ग्रहण कर सकता है। इसी प्रकार संचालक का सम्बन्धी भी 500 रुपये से अधिक का पद ग्रहण नहीं कर सकता।

(iii) **संचालक के सम्बन्धी की बिना ज्ञान के नियुक्ति** – सम्बन्धी नियुक्ति हो जाने पर 3 माह में कम्पनी से उसकी अनुमति प्राप्त की जानी चाहिए।

(iv) **आर्थिक दण्ड** – यदि कोई व्यक्ति नियम के विरुद्ध कार्य करता है, तब उसे प्राप्त समस्त पारिश्रमिक वापस करना होगा।

संचालकों का स्थान रिक्त होना
(Vacation of Office of Directors)

संचालक का स्थान निम्न अवस्थाओं में रिक्त माना जाता है :

(1) **पागल होने पर** – यदि न्यायालय द्वारा कोई व्यक्ति पागल घोषित कर दिया जाता है तो उसे स्थान रिक्त करना होगा।

(2) **अयोग्य होने पर** – न्यायालय द्वारा यदि कोई संचालक अयोग्य घोषित कर दिया गया हो। [धारा 203]

(3) **दिवालिया का आवेदन-पत्र** – यदि संचालक ने न्यायालय में दिवालिया होने का आवेदन-पत्र दे दिया हो।

(4) **कम्पनी से ऋण** – सरकार की आज्ञा लिये बिना संचालक द्वारा कम्पनी या कम्पनी द्वारा हित रखने वाली किसी भी संस्था से ऋण प्राप्त करने पर उसे संचालक पद छोड़ना होगा।

(5) **कारावास** – यदि संचालक को नैतिक अपराध के कारण कम से कम 6 माह के लिए कारावास का दण्ड दिया गया हो। ऐसी सजा के 30 दिन के बाद संचालक का पद रिक्त माना जाएगा।

(6) **याचनाओं का भुगतान करने पर** – यदि संचालक 6 माह में अपने अंशों पर याचनाओं का भुगतान न करे तो उसे अयोग्य घोषित कर दिया जाता है।

88
90

(7) **तीन लगातार सभाओं में अनुपस्थित होने पर** – संचालक के तीन लगातार सभाओं में उपस्थित न होने पर उसका स्थान रिक्त माना जाता है।

(8) **पद समाप्ति पर** – यदि उस पद की समाप्ति कर दी जाये जिस पर वह संचालक नियुक्त किया गया है तो उसका स्थान रिक्त हो जायेगा।

(9) **स्वार्थ प्रकट न करने पर** – यदि संचालक अपना स्वार्थ प्रकट न करे तो उसका स्थान रिक्त हो जायेगा।

(10) **प्रबन्ध-अभिकर्ता द्वारा नियुक्ति होने पर** – यदि प्रबन्ध-अभिकर्ता ने 5 संचालकों से कम होने पर एक से अधिक संचालक नियुक्त कर दिये हैं तो आधिक्य पदों को रिक्त मानकर संचालकों की नियुक्ति व्यर्थ होगी। 3 अप्रैल, 1970 के बाद यह व्यवस्था समाप्त कर दी गई है।

(11) **पद से हटाने पर** – यदि कम्पनी की वार्षिक सभा द्वारा संचालक को हटा दिया गया हो।

(12) **योग्यता अंश न लेने पर** – यदि अन्तर्नियम द्वारा निर्धारित योग्यता अंश 2 माह के अन्दर प्राप्त नहीं करता तो वह अयोग्य माना जायेगा।

(13) **दिवालिया होने पर** – यदि वह दिवालिया हो जाये।

(14) **लाभ का स्थान लेने पर** – जब एक संचालक कम्पनी की सहमति के बिना कम्पनी या उसकी सहायक कम्पनी में लाभ का स्थान ग्रहण कर लेता हो तो उसका स्थान रिक्त हो जायेगा। [धारा 314 (3)]

(15) **अतिरिक्त संचालक** – कम्पनी के अतिरिक्त संचालक को अगली साधारण सभा तक अपना स्थान रिक्त करना होगा।

(16) **पारी वाले संचालक** – जब मूल संचालक उस राज्य में वापस आ जाये तो पारी वाले संचालक का स्थान रिक्त समझा जायेगा। [धारा 313 (2)]

(17) **विवशता** – यदि बीमारी या अन्य किसी विवशता के कारण कोई संचालक सभाओं से अनुपस्थित रहता है तो उसका स्थान रिक्त नहीं माना जाना चाहिए। (मेक्लो दावा) परन्तु एक डॉक्टर की सलाह से संचालक द्वारा स्वास्थ्य सुधार हेतु विदेश जाने पर उसका स्थान रिक्त माना गया। (एम.सा. कोनेल का दावा) संचालक मण्डल को किसी भी संचालक के बारे में अयोग्यता को समाप्त करके उसे संचालक बने रहने का अधिकार नहीं है। (बोडिगा कं. का मामला)।

संचालक को हटाना
(Removal of Director)

किसी विशेष घटना के घटित होने पर कम्पनी किसी भी संचालक को अवधि समाप्त होने से पूर्व हटा सकती है, परन्तु इसके लिए उस संचालक को सफाई देने का पूरा अवसर दिया जायगा। निम्नलिखित द्वारा संचालकों को हटाया जा सकता है :

(i)	अंशधारी	(धारा 284)
(ii)	केन्द्रीय सरकार	(धाराएँ 388 बी से 388 E)
(iii)	न्यायालय	(धारा 397, 398 एवं 402)

यह नियम निम्न संचालकों पर लागू होंगे :

(i) निजी कम्पनी का आजीवन-काल का संचालक। (ii) सरकारी संचालक। (iii) आनुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर नियुक्त किया गया संचालक।

पद-हानि के लिए मुआवजा (धारा 318)

यदि एक प्रबन्ध संचालक या ऐसा संचालक जो मैनेजर के पद पर कार्य कर रहा हो या पूरे समय के संचालक को हटाने पर उसके पद हानि के लिए कम्पनी क्षतिपूर्ति कर सकती है, परन्तु यह राशि उस पारिश्रमिक से अधिक नहीं होगी जो उसने उपार्जित की होती या वह इस पद पर 3 वर्ष तक रहा होता। कम्पनी का समापन संचालक को हटाने के 12 माह के अन्दर प्रारम्भ हो गया हो, तो संचालक को क्षतिपूर्ति का भुगतान नहीं होगा। [धारा 318 (1)]

परन्तु निम्न दशाओं में संचालकों को कोई भी भुगतान नहीं किया जायेगा :

(i) **त्याग-पत्र** – संचालकों द्वारा अपने पद से त्याग-पत्र देने पर उन्हें कोई भुगतान नहीं किया जा सकता।

(ii) **लापरवाही** – यदि संचालक की लापरवाही के कारण कम्पनी का समापन हो रहा हो।

(iii) **कपट का दोषी** – यदि संचालक कम्पनी से प्रबन्ध के कपट या प्रन्यास भंग का दोषी हो।

(iv) **हस्तान्तरण** – कम्पनी की सम्पत्ति के हस्तान्तरण पर संचालक अपने पद की हानि के लिए कम्पनी का कोई भी भुगतान प्राप्त नहीं करेगा। वह हस्तान्तरिणी कम्पनी से क्षतिपूर्ति प्राप्त कर सकता है।

(v) **उकसाना** – यदि संचालक ने अपने पद को समाप्त करने के लिए उकसाया हो।

(vi) **पुनर्निर्माण के कारण इस्तीफा** – यदि संचालक कम्पनी के एकीकरण या पुनर्निर्माण के कारण इस्तीफा दे देता हो।

(vii) **अंशों के हस्तान्तरण पर हानि** – यदि कम्पनी के अंशों को हस्तान्तरित कर दिया जाता है तो कम्पनी का कोई भी संचालक पद हानि के लिए क्षतिपूर्ति प्राप्त नहीं कर सकता है।

यदि कोई संचालक व्यवस्था के विरुद्ध राशि स्वीकार करता है तो उसके द्वारा प्राप्त राशि कम्पनी के प्रन्यासी की भाँति हुई मानी जायेगी। [धारा 319]

संचालकों को अपने पद की हानि पर अपने अंशों के लिए मिली हुई राशि उस राशि से अधिक है जो उस समय उसी प्रकार के अंश रखने वाले अंशधारियों द्वारा प्राप्त की जा सकती थी, तो यह आधिक्य राशि पद हानि के लिए क्षतिपूर्ति की राशि मानी जाती है। [धारा 321]

संचालकों की सभाएँ
(Meetings of Directors)

कम्पनी अधिनियम में संचालक मण्डल की सभाओं के बारे में निम्न प्रावधान हैं :

(1) तीन माह में कम से कम एक बार, वर्ष में कम से कम 4 बार सभा होनी चाहिए। [धारा 285]

(2) प्रत्येक संचालक को प्रत्येक सभा की लिखित सूचना दी जानी चाहिए।

(3) सभा के कोरम, मण्डल की कुल संख्या के 1/3 या दो संचालक (जो भी अधिक हो) होंगे।

(4) यदि कोरम के अभाव में कोई सभा न हो पाए, तो वह अपने आप अगले सप्ताह के लिए उसी दिन तक के लिए स्थगित हो जाती है।

प्रबन्ध संचालक
(Managing Director)

प्रबन्ध संचालक से आशय ऐसे संचालक से है, जिसे (i) कम्पनी के साथ ठहराव के द्वारा, या (ii) साधारण सभा में पारित प्रस्ताव के द्वारा, या (iii) संचालक मण्डल द्वारा, या (iv) पार्षद सीमानियम या अन्तर्नियम द्वारा पर्याप्त अधिकार दिये गये हों।

निम्न व्यक्तियों को प्रबन्ध संचालक नियुक्त नहीं किया जा सकता :

(i) घोषित किया गया दिवालिया, (ii) लेनदारों को भुगतान न करने वाला व्यक्ति, (iii) न्यायालय द्वारा नैतिक दोष के कारण सजा पाया हुआ कोई भी व्यक्ति। [धारा 267]

कोई भी परिवर्तन केन्द्रीय सरकार की अनुमति के बिना संभव नहीं हो सकता है। [धारा 269]

कोई भी व्यक्ति एक से अधिक कम्पनी में प्रबन्ध संचालक नियुक्त नहीं किया जा सकता, परन्तु केन्द्रीय सरकार किसी भी व्यक्ति को दो से अधिक कम्पनियों का प्रबन्ध संचालक नियुक्त कर सकती है बशर्ते कि वह अच्छी प्रकार से कार्य कर सके। [धारा 316]

किसी भी व्यक्ति को एक समय में 5 वर्ष से अधिक के लिए प्रबन्ध संचालक नियुक्त नहीं किया जा सकता। इसकी पुनर्नियुक्ति भी अगले 5 वर्षों के लिए की जा सकती है, परन्तु इसे प्रभावशाली होने की तिथि से दो वर्ष पूर्व पास करा लेना चाहिए।

यह व्यवस्थाएँ निजी कम्पनी पर लागू नहीं होती हैं। [धारा 317]

प्रबन्ध संचालक एवं कम्पनियों की संख्या

(1) साधारणतया प्रबन्ध संचालक किसी एक ही कम्पनी में नियुक्त किया जा सकता है। [धारा 316 (1)]

(2) संचालक मण्डल की सहमति से दो से अधिक कम्पनियों में भी प्रबन्ध संचालक बनाया जा सकता है।

(3) कोई भी व्यक्ति केन्द्रीय सरकार की अनुमति लेकर दो से अधिक कम्पनियों का प्रबन्ध संचालक बना रह सकता है।

केन्द्रीय सरकार को यह अधिकार है कि वह कपट, लापरवाही एवं कर्तव्य भंग होने पर किसी भी प्रबन्ध संचालक को उसके पद से हटा सकती है।

प्रबन्ध संचालक का पारिश्रमिक प्रत्येक व्यक्ति की दशा में शुद्ध लाभ के 5% तथा एक से अधिक व्यक्ति की दशा में कुल पारिश्रमिक शुद्ध लाभ के 10% से अधिक नहीं हो सकता है।

कम्पनी संशोधित अधिनियम में धारा 388 (C), (D), (E) के अनुसार केन्द्रीय सरकार को यह अधिकार प्राप्त है कि वह कपट, कर्तव्य भंग, लापरवाही आदि के मामलों को उच्च-न्यायालय को सौंप दें और उसके निर्णय के आधार पर किसी भी प्रबन्ध संचालक को उसके पद से हटाया जा सकता है। हटाया हुआ व्यक्ति 5 वर्ष तक इस पद को ग्रहण नहीं कर सकता।

प्रबन्ध अभिकर्ता
(Managing Agents)

धारा 204 (अ) में यह प्रतिबन्ध लगाया गया है कि पहले वाले प्रबन्ध अभिकर्ता, सचिव तथा कोषाध्यक्ष कम्पनी के अन्तर्गत कोई भी पद स्वीकार नहीं कर सकते। जो व्यक्ति 15 अगस्त, 1960 के बाद बन्धक अभिकर्ता, सचिव एवं कोषाध्यक्ष पद पर था, वह कम्पनी में सलाहकार या सचिव नियुक्त हो सकता है।

3 अप्रैल, 1970 से प्रबन्ध अभिकर्ता प्रणाली को समाप्त कर दिया गया है। अधिनियम में प्रबन्ध अभिकर्ता की परिभाषा को बढ़ाया गया है। इसके अनुसार प्रबन्ध अभिकर्ता से आशय ऐसे व्यक्ति, फर्म या समामेलित संस्था से है जो कि 3 अप्रैल, 1970 के पूर्व किसी भी कम्पनी के प्रबन्ध अभिकर्ता थे।

सचिव एवं कोषाध्यक्ष की परिभाषा के सम्बन्ध में भी यह व्यवस्था लागू रहेगी।

सचिव व कोषाध्यक्ष
(Secretary and Treasurer)

3 अप्रैल, 2003 से सचिव व कोषाध्यक्ष का पद समाप्त कर दिया गया है। कम्पनी अधिनियम 1974 में धारा 384 (4) जोड़ी गयी है जो निम्न प्रकार है –

(1) प्रत्येक कम्पनी जिसकी चुकता पूँजी 25 लाख रुपये या अधिक है वहाँ एक पूरे समय का सचिव तथा दो संचालक होंगे।

(2) इस अधिनियम के लागू होने पर यदि कोई फर्म या संस्था एक से अधिक कम्पनी में सचिव के पद पर है तो वह एक को रखकर शेष सभी कम्पनियों को छोड़ देगी।

मैनेजर
(Manager)

कम्पनी अधिनियम की धारा 2 (24) के अनुसार, "मैनेजर से आशय एक ऐसे व्यक्ति से है (जो प्रबन्ध अभिकर्ता नहीं है) जो कि संचालक मण्डल के निरीक्षण, नियन्त्रण एवं निर्देशन के अन्तर्गत, कम्पनी के समस्त अथवा लगभग सभी कार्यों का प्रबन्ध करता है और इनमें एक संचालक या मैनेजर की स्थिति को प्राप्त करने वाला व्यक्ति भी सम्मिलित किया जाता है, भले ही उसे किसी भी नाम से पुकारा जाता हो और उससे कोई अनुबन्ध हुआ हो अथवा नहीं।"

इस प्रकार एक व्यक्ति ही मैनेजर हो सकता है, फर्म या संस्था कम्पनी का मैनेजर नहीं हो सकती।

धारा 2 (30) के अनुसार 'अफसर' की परिभाषा में मैनेजर को भी सम्मिलित करते हैं।

मैनेजर एवं प्रबन्धक संचालकों में अन्तर
(Difference between Manager and Managing Director)

मैनेजर एवं प्रबन्ध संचालक दोनों ही कम्पनी के मुख्य अफसर माने जाते हैं, परन्तु दोनों में मुख्य अन्तर निम्न प्रकार हैं :

(1) मैनेजर के अधिकार अधिक विस्तृत होते हैं, जबकि प्रबन्ध संचालक के अधिकार इतने विस्तृत नहीं होते हैं।

(2) मैनेजर बनने के लिए कम्पनी का संचालक होना आवश्यक नहीं है, जबकि प्रबन्ध संचालक बनने के लिए कम्पनी का संचालक होना आवश्यक है।

(3) मैनेजर की सेवाओं के लिए अनुबन्ध करना आवश्यक नहीं है, जबकि प्रबन्ध संचालक में अनुबन्ध करना आवश्यक है।

(4) कम्पनी में मैनेजर या प्रबन्ध संचालक में से किसी एक को ही एक बार में नियुक्ति दी जा सकती है।

मैनेजर सम्बन्धी व्यवस्था – कम्पनी अधिनियम की मैनेजर से सम्बन्धित प्रमुख व्यवस्थाएँ निम्न हैं :

(1) **मैनेजर की नियुक्ति** – मैनेजर की नियुक्ति के सम्बन्ध में निम्न व्यवस्था है :

NOTES

(i) **केवल व्यक्ति ही मैनेजर होना** – कोई भी कम्पनी मैनेजर के पद पर फर्म या संस्था को नियुक्त नहीं कर सकती। केवल व्यक्ति ही इस पद पर नियुक्त किये जा सकते हैं। [धारा 384]

(ii) **केन्द्रीय सरकार का अधिकार** – केन्द्रीय सरकार गजट में सूचना देकर किसी भी व्यक्ति को अयोग्यता से मुक्त कर सकती है। [धारा 385]

(iii) **पद के लिए अयोग्य व्यक्ति** – कोई भी कम्पनी निम्न को मैनेजर के लिए नियुक्त नहीं कर सकती है : (अ) जो गत 5 वर्षों में दिवालिया घोषित किया गया हो, (ब) गत 3 वर्षों में नैतिक अपराध का दोषी हो, एवं (स) गत 5 वर्षों में किसी भी समय भुगतान को रोका हो।

(2) **मैनेजर की नियुक्ति पर प्रतिबन्ध** – इस सम्बन्ध में निम्न प्रतिबन्ध हैं :

(i) **अन्य कम्पनी का मैनेजर** – यदि कोई व्यक्ति किसी अन्य कम्पनी का मैनेजर हो तो वह ऐसे व्यक्ति को मैनेजर पद पर नियुक्त नहीं कर सकती।

(ii) **दो से अधिक कम्पनियों का मैनेजर** – दो से अधिक कम्पनियों का मैनेजर रहने पर उसे सूचना केंद्रीय सरकार को देनी होगी। [धारा 386 (3)]

(iii) **दो से अधिक कम्पनियों का मैनेजर रहना** – केन्द्रीय सरकार किसी भी व्यक्ति को दो से अधिक कम्पनियों में मैनेजर रहने की आज्ञा प्रदान कर सकती है। [धारा 386 (4)]

(iv) **संचालक मण्डल की स्वीकृति** – यदि कोई व्यक्ति एक ही कम्पनी का मैनेजर है तो उसकी नियुक्ति की सहमति संचालक सभा में उपस्थित संचालकों की सहमति से स्वीकृत होनी चाहिए तथा सभी संचालकों को सूचित करना भी आवश्यक होता है। [धारा 386 (2)]

यह व्यवस्थाएँ एक निजी कम्पनी पर लागू नहीं होती हैं जब तक कि वह किसी सार्वजनिक कम्पनी की सहायक कम्पनी न हों।

(3) **मैनेजर के सम्बन्ध में कानूनी व्यवस्था** – कम्पनी अधिनियम की मैनेजर सम्बन्धी व्यवस्थाएँ निम्न हैं :

(i) **पारिश्रमिक बढ़ाना** – पारिश्रमिक बढ़ाने में केन्द्रीय सरकार की अनुमति लेनी होगी। [धारा 310]

(ii) **पद हस्तान्तरण पर रोक** – संचालक द्वारा पद के हस्तान्तरण पर रोक लगायी जाती है। [धारा 312]

(iii) **5 वर्ष की अवधि** – किसी भी मैनेजर को 5 साल से अधिक के लिए नियुक्त नहीं किया जा सकता। [धारा 317]

(iv) **केन्द्रीय सरकार की अनुमति** – मैनेजर की नियुक्ति पर पारिश्रमिक बढ़ाने पर केन्द्रीय सरकार की अनुमति लेनी होगी। [धारा 311]

(v) **नियुक्ति सम्बन्धी अनुमति** – मैनेजर की नियुक्ति या पुनर्नियुक्ति के लिए केन्द्रीय सरकार की अनुमति लेना। [धारा 269]

(vi) **निजी कम्पनी पर छूट** – यह व्यवस्थाएँ निजी कम्पनी पर लागू नहीं होती हैं। [धारा 388 (अ)]

(4) **मैनेजर का दायित्व** – मैनेजर का दायित्व असीमित होने पर उसका विवरण नियुक्ति की शर्तों में करना आवश्यक होगा। [धारा 322]

एक कम्पनी विशेष प्रस्ताव द्वारा मैनेजर के दायित्व को असीमित घोषित कर सकती है, परन्तु उसके लिए मैनेजर की स्वीकृति लेना आवश्यक है। [धारा 223]

(5) **पद का हस्तान्तरण** – कम्पनी का मैनेजर अपने पद का हस्तान्तरण नहीं कर सकता और ऐसा हस्तान्तरण अवैध माना जाता है। [धारा 312 व 388]

(6) **मैनेजर को हटाना** – सरकार को अधिकार प्राप्त है कि वह मैनेजर के विरुद्ध मामलों को कम्पनी ट्रिब्यूनल को सौंप दे तथा उसकी खोजों के आधार पर उसे पद से हटा सकती है।

(7) **मैनेजर का अधिकार** – मैनेजर को वे समस्त अधिकार प्राप्त होते हैं जो नियुक्ति के समय उसे प्रदान किये जाते हैं।

(8) **मैनेजर की क्षतिपूर्ति** – मैनेजर की लापरवाही के कारण उत्पन्न होने वाले दायित्वों की क्षतिपूर्ति के लिए कम्पनी बाध्य नहीं होगी। [धारा 201]

(9) **रजिस्टर का निरीक्षण** – कम्पनी का कोई भी सदस्य बिना फीस दिये तथा अन्य व्यक्ति 1 रुपये फीस देकर व्यापारिक घण्टों की अवधि में मैनेजर के रजिस्टर का निरीक्षण कर सकता है। [धारा 304]

92
94

(10) **मैनेजर का पारिश्रमिक** – इस सम्बन्ध में निम्न व्यवस्था है :

(i) **5 प्रतिशत से अधिक न होना** – एक कम्पनी के मैनेजर को पारिश्रमिक के रूप में कम्पनी के शुद्ध लाभ का एक निश्चित प्रतिशत ही दिया जा सकता है जो कि लाभ के 5% से अधिक नहीं होना चाहिए। [धारा 387]

(ii) **पारिश्रमिक बढ़ने पर अनुमति लेना** – यदि मैनेजर की नियुक्ति के बाद उसका पारिश्रमिक बढ़ जाता है तो उसकी स्वीकृति केन्द्रीय सरकार से लेनी होगी। [धारा 310, 311 व 388]

(iii) **करमुक्त पारिश्रमिक** – एक कम्पनी के मैनेजर को करमुक्त पारिश्रमिक नहीं दिया जा सकता। [धारा 200]

एक कम्पनी के मैनेजर द्वारा अपने पद का हस्तान्तरण अवैध माना जाता है। [धारा 311 व 388]

(11) **मैनेजर का रजिस्टर** – प्रत्येक कम्पनी को मैनेजर के लिए एक रजिस्टर रखना होता है, जिसमें निम्न बातों का विवरण दिया जाता है : (i) मैनेजर का नाम, (ii) पिता का नाम, (iii) निवास का पता, (iv) राष्ट्रीयता, (v) व्यवसाय, (vi) अन्य कम्पनी में पद धारण करने पर उसका विस्तृत विवरण, (vii) उसकी जन्मतिथि। यह सूचना उस कम्पनी में नहीं दी जाती है जो एक सार्वजनिक कम्पनी की सहायक कम्पनी नहीं होती है। [धारा 303 (1) (अ)]

प्रबन्ध पारिश्रमिक
(Managing Remuneration)

समस्त प्रबन्धकों को दिये जाने वाले पारिश्रमिक के योग को प्रबन्ध पारिश्रमिक के नाम से जानते हैं।

प्रबन्ध पारिश्रमिक के सम्बन्ध में प्रमुख व्यवस्था निम्न है :

(i) **11% तक सीमित** – कम्पनी के संचालकों, प्रबन्ध-संचालकों, सचिव एवं कोषाध्यक्ष या मैनेजर को दिया जाने वाला कुल पारिश्रमिक एक वर्ष में कम्पनी के शुद्ध लाभ के 11% से अधिक नहीं हो सकता है।

(ii) **मासिक पारिश्रमिक** – एक कम्पनी अपने प्रबन्ध अभिकर्ता या संचालक या मैनेजर को कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत मासिक पारिश्रमिक दे सकती है। [धारा 198 (3)]

(iii) **कमीशन की गणना** – कमीशन की गणना अधिनियम के लागू होने के 1 वर्ष तक ही लागू रहेगी और उसके बाद निश्चित रीति से कमीशन निर्धारित किया जायेगा। [धारा 199]

(iv) **दायित्वों से मुक्त करने वाली व्यवस्था** – कम्पनी के अन्तर्नियमों में यदि ऐसी व्यवस्था है कि मैनेजर द्वारा कर्तव्य भंग होने की दशा में कम्पनी को होने वाले दायित्वों से मुक्त किया जा सकता है, तो ऐसी व्यवस्था व्यर्थ होगी।

(v) **करमुक्त भुगतान पर प्रतिबन्ध** – कोई भी कम्पनी अपनी मैनेजर को करमुक्त पारिश्रमिक नहीं देगी, यदि कोई कम्पनी किसी मैनेजर को करमुक्त पारिश्रमिक घोषित करती है तो वह कानूनी व्यवस्था के अन्तर्गत अवैधानिक होगी।

(vi) **न्यूनतम पारिश्रमिक 50 हजार रुपये** – कम्पनी में लाभ न होने पर भी प्रबन्धकों को 50,000 रुपये तक पारिश्रमिक दिया जा सकता है।

(vii) **फीस को सम्मिलित न करना** – ऐसा प्रतिशत निर्धारित करने में मैनेजर व अन्य प्रबन्धकों को, कमेटी आदि में उपस्थित होने हेतु दी जाने वाली फीस को सम्मिलित नहीं किया जाता है।

संचालकों का पारिश्रमिक – संचालकों को दिया जाने वाला पारिश्रमिक– (i) साधारण सभा में प्रस्ताव द्वारा, (ii) अन्तर्नियम द्वारा या विशेष प्रस्ताव द्वारा निर्धारित किया जा सकता है।

जो संचालक पूरे समय के लिए रखा गया है वह कमीशन भी प्राप्त कर सकता है। यदि एक संचालक है तो यह कमीशन शुद्ध लाभ का 5% और एक से अधिक संचालक होने पर 10% तक दिया जा सकता है।

यदि संचालक पूरे समय के लिए नहीं है तो वह कमीशन शुद्ध लाभ का 10% तक तथा अन्य दशा में 3% से अधिक न होगा।

इस पारिश्रमिक में वृद्धि करने से पूर्व केन्द्रीय सरकार की अनुमति प्राप्त करना आवश्यक है। यह व्यवस्थाएँ अलोक कम्पनी पर लागू न होंगी।

प्रश्न
(Questions)

1. कम्पनी के संचालकों की संख्या एवं नियुक्ति के सम्बन्ध में वैधानिक प्रावधानों की विवेचना कीजिये।
2. कम्पनी के संचालकों की वैधानिक स्थिति क्या होती है? क्या वे अपने कार्यों के लिये तीसरे पक्षकारों के प्रति दायी है?
3.

NOTES

"कम्पनी के संचालक केवल एजेण्ट ही नही वरन् वे कुछ दृष्टि से तथा कुछ सीमा तक विश्वासाश्रित व्यक्ति भी है या प्रन्यासियों की स्थिति में है।" इस कथन की व्याख्या कीजिये।

4. कौन व्यक्ति संचालक के रूप में कार्य नहीं कर सकते? क्या अधिनियम के अधीन संचालक के अवकाश ग्रहण की कोई आयु निश्चित की गई है।
5. संचालकों की नियुक्ति किस प्रकार की जाती है? समझाइये।
6. एक सार्वजनिक कम्पनी में संचालकों की नियुक्ति पर क्या प्रतिबन्ध लगे हैं? नियुक्ति के सम्बन्ध में उनकी योग्यताएँ व अयोग्यताएँ बताइये।
7. संचालकों द्वारा पद का परित्याग तथा उनको पद से हटाने के सम्बन्ध में व्यवस्थाओं का उल्लेख कीजिये।
8. एक कम्पनी में संचालकों की स्थिति की विवेचना कीजिये।
9. संचालकों की नियुक्ति कैसे होती है? भारतीय कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत संचालकों की नियुक्ति पर क्या प्रतिबन्ध लगाये गये हैं?
10. संचालकों की नियुक्ति कैसे होती है? संचालक का आकस्मिक रूप से रिक्त हुआ पद कैसे भरा जाता है?
11. प्रबन्धकीय पारिश्रमिक से क्या आशय है? प्रबन्धकीय पारिश्रमिक के भुगतान सम्बन्धी प्रावधानों को बताइये।
12. संचालकों के पारिश्रमिक के सम्बन्ध में कम्पनी अधिनियम के प्रावधानों का उल्लेख कीजिये।
13. प्रबन्ध संचालकों के पारिश्रमिक के सम्बन्ध में कम्पनी अधिनियम की अनुसूची XIII में उल्लेखित सीमाओं को स्पष्ट कीजिये।
14. भारत में कम्पनी संचालकों के अधिकारों की वर्णन कीजिये।
15. एक कम्पनी के अधिकार एवं कर्तव्यों का वर्णन कीजिये।
16. एक कम्पनी के संचालकों के कर्तव्य और अधिकारों का वर्णन कीजिये। उन परिस्थितियों को बताइये जिनके अन्तर्गत एक व्यक्ति संचालक के लिये अयोग्य हो जाता है।

अपनी प्रगति की जाँच करें
Test your Progress

9

कम्पनी का समापन एवं विघटन
(WINDING UP AND DISSOLUTION OF COMPANY)

NOTES

समापन से आशय
(Meaning of Winding up)

सामान्य शब्दों में कम्पनी के समापन से तात्पर्य उस प्रक्रिया से है जिसके द्वारा कम्पनी के वैधानिक अस्तित्व को क्रमशः समाप्त किया जाता है। इस प्रक्रिया में कम्पनी की सम्पत्तियों का मूल्य प्राप्त करके ऋणदाताओं को उनके ऋणों का भुगतान किया जाता है तथा शेष बचे धन तथा सम्पत्तियों को अंशधारियों में बाँट दिया जाता है।

गोवर (Gower) के अनुसार, "कम्पनी का समापन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा किसी कम्पनी का जीवन समाप्त किया जाता है तथा उसकी सम्पत्ति उसके ऋणदाताओं तथा सदस्यों के लाभ के लिए प्रयुक्त की जाती है। इसमें एक प्रशासक, जिसे निस्तारक (Liquidator) कहा जाता है, की नियुक्ति की जाती है जो कम्पनी को अपने नियन्त्रण में ले सकता है। वह कम्पनी की सम्पत्तियों को एकत्रित करता है, ऋणों का भुगतान करता है और अन्त में यदि कोई आधिक्य (Surplus) बचता है तो उसे सदस्यों में उनके अधिकारों के अनुसार वितरित कर देता है।"

पैन्नीगटन (Pennigton) के अनुसार, "समापन वह प्रक्रिया है जिसके अनुसार कम्पनी का प्रबन्ध उसके संचालकों के हाथों से छीन लिया जाता है, निस्तारक द्वारा कम्पनी की सम्पत्तियों से धन वसूल किया जाता है तथा इस धन में से ऋणों का भुगतान किया जाता है; शेष बची राशि सदस्यों अथवा अंशधारियों को वापस कर दी जाती है।"

विशेषताएँ
(Characteristics)

1. समापन की प्रक्रिया के प्रारम्भ होते ही कम्पनी का विघटन या अन्त (Dissolution) नहीं हो जाता है। दूसरे शब्दों में, कम्पनी के समापन एवं विघटन में अन्तर होता है।

2. कम्पनी के समापन का तात्पर्य उसके दिवालियेपन से नहीं है। किसी कम्पनी का अच्छी स्थिति में भी समापन किया जा सकता है।

3. ऋणों के भुगतान के बाद बचे आधिक्य को कम्पनी के सदस्यों में उनके अधिकारों के अनुपात में बाँट दिया जाता है।

4. इस प्रक्रिया में सम्पत्तियों का मूल्य वसूल करके ऋणदाताओं का भुगतान किया जाता है।

5. समापन एक प्रक्रिया है।

कम्पनी का विघटन
(Dissolution of Company)

न्यायालय कम्पनी के विघटन का आदेश निम्नलिखित दशाओं में ही देता है :

1. यदि कम्पनी के समापन की कार्यवाही पूरी हो गई है, अथवा

2. यदि न्यायालय की राय में सम्पत्तियों एवं कोषों (Assets and Funds) के अभाव में समापन की कार्यवाही जारी नहीं रखी जा सकती हो, अथवा

3. किसी भी अन्य कारण से।

इसके अतिरिक्त, न्यायालय किसी भी कम्पनी के विघटन का आदेश तभी दे सकता है जबकि विद्यमान परिस्थितियों में ऐसा करना उचित एवं न्यायसंगत हो। [धारा 481 (2)]

कम्पनी का विघटन उसी तिथि से हुआ माना जाता है जिस तिथि को विघटन का आदेश जारी किया जाता है।

निस्तारक को कम्पनी के विघटन के आदेश की एक प्रतिलिपि 30 दिनों के भीतर रजिस्ट्रार के पास प्रस्तुत कर देनी चाहिए। [2000 में संशोधित धारा 481 (3)]

कम्पनी के समापन तथा विघटन में अन्तर
(Distinction between Winding Up and Dissolution of Company)

कम्पनी के समापन तथा विघटन में प्रमुख अन्तर को निम्न तालिका में स्पष्ट किया गया :

95
97

अन्तर का आधार 1	समापन 2	विघटन 3
1. ऋण भार उत्पन्न	समापन की कार्यवाही के दौरान कोई भी व्यक्ति कम्पनी के विरुद्ध अपने ऋण को प्रमाणित कर सकता है।	विघटन के बाद कोई भी व्यक्ति कम्पनी को ऋणों का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी नहीं ठहरा सकता है।
2. निस्तारक का पद	समापन के प्रारम्भ होने के साथ ही कम्पनी के निस्तारक की भी नियुक्ति कर दी जाती है। वही कम्पनी का नियन्त्रण तथा संचालन करता है।	विघटन के साथ ही निस्तारक हट जाता है।
3. व्यवसाय का संचालन	समापन की कार्यवाही के दौरान व्यवसाय का संचालन किया जा सकता है, यदि ऐसा करना कम्पनी के हित में हो।	विघटन के बाद कम्पनी के अस्तित्व का अन्त हो जाने के कारण व्यवसाय का संचालन नहीं किया जा सकता है।
4. सम्पत्तियों की वसूली तथा ऋणों का भुगतान	समापन की प्रक्रिया में सम्पत्तियों से धन वसूल किया जाता है, ऋणों का भुगतान किया जाता है।	विघटन तभी होता है जबकि ये सभी कार्य पूरे हो जाते हैं।
5. अस्तित्व	जब तक कम्पनी के समापन की कार्यवाही चलती रहती है तब तक कम्पनी का अस्तित्व बना रहता है।	विघटन होते ही कम्पनी का अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है।
6. आशय	समापन एक प्रक्रिया है जिससे कम्पनी को विघटन की स्थिति में लाया जाता है।	विघटन समापन प्रक्रिया का परिणाम है।

समापन की विधियाँ
(Modes of Winding up)

कम्पनी के समापन की तीन प्रमुख विधियाँ हैं जो निम्नानुसार हैं :

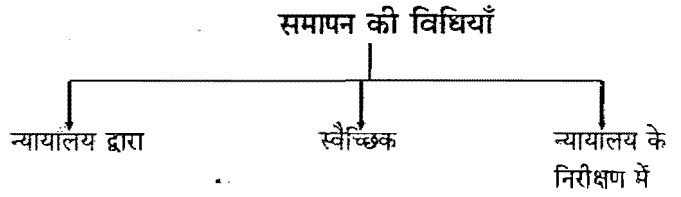

I. न्यायालय द्वारा समापन।

II. स्वैच्छिक समापन – यह दो प्रकार का हो सकता है :

(a) सदस्यों द्वारा ऐच्छिक समापन, तथा

(b) ऋणदाताओं द्वारा ऐच्छिक समापन।

III. न्यायालय के निरीक्षण में समापन। [धारा 425]

अब हम क्रमशः प्रत्येक विधि का विस्तार से अध्ययन करते हैं।

I. न्यायालय द्वारा समापन या अनिवार्य समापन
(Winding Up by Court or Compulsory Winding Up)

जब कम्पनी के सदस्य एक विशेष प्रस्ताव पारित करके न्यायालय के आदेश से कम्पनी का समापन करवाने की प्रार्थना करें अथवा न्यायालय कम्पनी की विभिन्न परिस्थितियों को देखते हुए उसका समापन करना उचित समझे तो न्यायालय कम्पनी के समापन का आदेश दे सकता है। न्यायालय द्वारा अनिवार्य समापन अनेक परिस्थितियों में किया जा सकता है, जो निम्नानुसार हैं :

96
96

1. **ऋणों का भुगतान करने में असमर्थ रहने पर** – यदि कोई कम्पनी ऋणों का भुगतान करने में असमर्थ है तो न्यायालय उस कम्पनी के समापन का आदेश दे सकता है। [धारा 433 (e)] निम्नलिखित दशाओं में किसी कम्पनी को अपने ऋणों का भुगतान करने में असमर्थ मानता है :

(i) यदि 500 रुपये या इससे अधिक राशि के किसी ऋणदाता ने कम्पनी से अपने ऋण का भुगतान करने की माँग की हो तथा कम्पनी ने इस माँग के तीन सप्ताह के भीतर भी भुगतान न किया हो और न उस ऋणदाता को अन्य प्रकार से निपटारा करके या जमानत देकर सन्तुष्ट किया हो तो कम्पनी को भुगतान करने में असमर्थ माना जाता है। [धारा 433 (1) (a)]

(ii) यदि किसी ऋणदाता ने किसी न्यायालय से कम्पनी के विरुद्ध कोई डिक्री (Decree) प्राप्त की है और कम्पनी उसके आंशिक या पूर्ण ऋण के भुगतान में असमर्थ रहती है तो कम्पनी को ऋण भुगतान में असमर्थ माना जाता है। [धारा 433 (1) (b)]

(iii) यदि न्यायालय इस बात से सन्तुष्ट हो जाये कि कम्पनी अपने ऋणों का भुगतान करने में असमर्थ है। ऐसा निर्णय करने से पूर्व न्यायालय कम्पनी के भावी तथा सम्भाव्य दायित्वों को भी ध्यान में रखेगा। [धारा 433 (1) (c)]

कम्पनी के भुगतान करने की असमर्थता को न्यायालय व्यापारिक दृष्टिकोण से देखता है। यदि कम्पनी अपनी चालू या तरल सम्पत्तियों (Current assets) से चालू दायित्वों का भुगतान करने में असमर्थ रहती है, तो न्यायालय अनिवार्य समापन का आदेश दे सकता है।

2. **न्यूनतम सदस्य संख्या में कमी होने पर** – यदि किसी सार्वजनिक कम्पनी की सदस्य संख्या घटकर सात से कम हो जाती है तथा किसी निजी कम्पनी की सदस्य संख्या घटकर दो से कम हो जाती है तो न्यायालय ऐसी कम्पनी के समापन का आदेश दे सकता है। [धारा 433 (d)]

3. **व्यवसाय प्रारम्भ न करने पर** – यदि कोई कम्पनी अपने समामेलन के एक वर्ष के भीतर अपना व्यवसाय प्रारम्भ नहीं करती है अथवा अपने व्यवसाय को एक पूरे वर्ष तक बन्द या निलम्बित (Suspends) रखती है, तो न्यायालय कम्पनी के समापन का आदेश दे सकता है। [धारा 433 (c)]

निम्न दशाओं में यह आदेश नहीं दिया जा सकता है :–

(i) यदि न्यायालय इस बात से सन्तुष्ट है कि कम्पनी का व्यवसाय कुछ कठिनाई के कारण प्रारम्भ नहीं किया जा सकता है।

(ii) यदि न्यायालय को कोई ऐसा प्रमाण नहीं मिलता है कि कम्पनी का व्यवसाय चालू करने का इरादा नहीं है।

4. **वैधानिक सभा बुलाने में त्रुटि करने पर** – यदि कोई कम्पनी वैधानिक सभा बुलाने में त्रुटि करती है तो भी न्यायालय कम्पनी के अनिवार्य समापन का आदेश दे सकता है। [धारा 433 (b)]

5. **वैधानिक रिपोर्ट प्रस्तुत करने में त्रुटि करने पर** – यदि कोई कम्पनी अपनी वैधानिक रिपोर्ट रजिस्ट्रार के समक्ष प्रस्तुत करने में त्रुटि करती है तो भी न्यायालय कम्पनी के अनिवार्य समापन का आदेश दे सकता है। [धारा 433 (b)]

6. **विशेष प्रस्ताव पारित होने पर** – कोई भी कम्पनी अपनी सभा में विशेष प्रस्ताव पारित करके न्यायालय से कम्पनी के अनिवार्य समापन की प्रार्थना कर सकती है। [धारा 433 (a)] न्यायालय कम्पनी की प्रार्थना पर विचार करता है तथा समापन की औचित्यता का पता लगाता है। यदि न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि कम्पनी का समापन करना लोकहित एवं कम्पनी के हितों के विरुद्ध होगा तो वह कम्पनी के समापन का आदेश देने से इनकार कर देता है।

7. **उचित एवं न्यायसंगत होने पर** – यदि न्यायालय किन्हीं परिस्थितियों के अन्तर्गत कम्पनी का समापन करना उचित एवं न्यायसंगत समझता है तो समापन का आदेश जारी कर सकता है। (धारा 433 f)

विशेष परिस्थितियाँ –

(i) यदि कम्पनी के प्रबन्ध के प्रति सदस्यों में अविश्वास उत्पन्न हो गया हो तो भी न्यायालय कम्पनी के अनिवार्य समापन का आदेश दे सकता है।

(ii) यदि कम्पनी की सम्पूर्ण पूँजी नष्ट हो गई हो तथा उसे पुनः प्राप्त करने की कोई सम्भावना नहीं हो तो भी न्यायालय कम्पनी के समापन के आदेश जारी कर सकता है।

(iii) यदि **कम्पनी केवल दिखावा मात्र** है अथवा कम्पनी केवल कागजों में ही विद्यमान है अथवा पानी के एक बुलबुले के समान ही है तो न्यायालय कम्पनी के समापन का आदेश जारी करती है।

(iv) यदि अन्तर्नियमों में उल्लिखित कोई निर्दिष्ट घटना घटित हो गई हो तो भी न्यायालय समापन का आदेश दे देता है।

(v) यदि कम्पनी में **कुप्रबन्ध तथा धन का दुरुपयोग** हो रहा है तो भी न्यायालय समापन का आदेश दे सकता है।

(vi) यदि कम्पनी के **अल्पमत वाले अंशधारियों के साथ अन्याय** (Oppression) हो रहा है तो भी न्यायालय कम्पनी के अनिवार्य समापन का आदेश दे सकता है। [Ripon Press Ltd. V. Gopal Chetti (1956) 61 MLJ 783 (PC)]

(vii) यदि **प्रबन्ध में गतिरोध** (Deadlock in Management) उत्पन्न हो जाता है तो कम्पनी का भली प्रकार संचालन करना भी कठिन हो जाता है। ऐसी दशा में न्यायालय कम्पनी के अनिवार्य समापन का आदेश दे सकता है।

(viii) यदि कम्पनी का उद्देश्य कपटपूर्ण अथवा अवैधानिक हो तो भी कम्पनी के समापन का आदेश दिया जा सकता है।

(ix) यदि कम्पनी का व्यापार निरन्तर हानि पर चल रहा हो तथा भविष्य में भी लाभ पर चलने की कोई सम्भावना न हो तो न्यायालय कम्पनी के समापन का आदेश दे सकता है। [Bachhraj Factories V. Hirjee Mills, AIR (1955) Bom.355]

(x) यदि कम्पनी की **विषय वस्तु समाप्त** हो जाती है। उदाहरण के लिए एक कम्पनी का निर्माण किसी दूसरे व्यक्ति के जहाजों को खरीदने के लिए किया जाता है। वह व्यक्ति बाद में हवाई जहाज बेचने का अनुबन्ध पूरा नहीं करता है। न्यायालय इस कम्पनी का समापन कर सकता है। [Re Bleriot Aircraft Co.(1936) 32 TLR 253]

(xi) यदि कम्पनी के **समामेलन का उद्देश्य पूरा करना असम्भव** हो जाता है। कम्पनी के मूल उद्देश्य को पूरा करना ही असम्भव हो गया है। अतः न्यायालय कम्पनी के समापन के आदेश दे सकता है। [Re German Date Coffee Co. (1982) 20 Ch. D. 169]

समापन के लिए आवेदन- पत्र कौन दे सकता है?
(Who may Apply for Winding Up)

कम्पनी का न्यायालय द्वारा अनिवार्य समापन के लिए न्यायालय को निम्नलिखित में से कोई भी व्यक्ति आवेदन-पत्र दे सकता है :

1. **अंशदाताओं द्वारा** (By Contributories) – अंशदाताओं से तात्पर्य प्रत्येक उन व्यक्तियों से है जो कम्पनी के समापन की दशा में कम्पनी को धन देने के लिए उत्तरदायी होते हैं। इसमें पूर्णदत्त अंशों के धारक भी सम्मिलित किये जाते हैं। [धारा 428]

सभी अंशदाताओं को कम्पनी के अनिवार्य समापन के लिए न्यायालय को प्रार्थना करने का अधिकार होता है। [धारा 439 (3)]

एक अंशदाता निम्नलिखित दशाओं में ही **कम्पनी के समापन** के लिए न्यायालय को आवेदन दे सकता है :

(i) यदि कम्पनी ने **वैधानिक सभा** नहीं बुलाई हो। [धारा 439 (1)]

(ii) यदि उसे ये अंश किसी भूतपूर्व अंशधारी की मृत्यु होने पर उत्तराधिकार के अन्तर्गत प्राप्त हुए हैं। [धारा 439 (4)]

(iii) यदि वह समापन के आवेदन की तिथि से पूर्व के 18 महीनों में से कम से कम 6 महीनों तक अंशों का धारक रहा हो; अथवा

(iv) यदि वह कम्पनी के अंशों का **मूल आवण्टी** (Original allottee) हो अथवा

(v) यदि कम्पनी में सदस्यों की संख्या न्यूनतम संख्या (7 तथा 2) से कम हो।

2. **ऋणदाताओं द्वारा** (By the creditors) – कम्पनी का कोई एक या अधिक ऋणदाता भी कम्पनी के अनिवार्य समापन के लिए न्यायालय से प्रार्थना कर सकते हैं। ऋणदाता में वर्तमान, भावी तथा सांयोगिक ऋणदाता भी सम्मिलित हैं। [धारा 419 (i) (b)]

98/100

3. स्वयं कम्पनी द्वारा (By the company itself) – कोई भी कम्पनी अपनी सभा में एक विशेष प्रस्ताव पारित करके न्यायालय से कम्पनी के अनिवार्य समापन की प्रार्थना कर सकती है। [धारा 439 (1) (a)]

4. **रजिस्ट्रार द्वारा (By the Registrar)** – रजिस्ट्रार केन्द्रीय सरकार की पूर्वानुमति निम्नलिखित दशाओं में कम्पनी के अनिवार्य समापन के लिए न्यायालय को प्रार्थना-पत्र दे सकता है :

(i) यदि कम्पनी अपने ऋणों का भुगतान करने में असमर्थ हो।

(ii) यदि कम्पनी के सदस्यों की संख्या घटकर न्यूनतम आवश्यक सदस्य संख्या (सार्वजनिक कम्पनी की दशा में 7 तथा निजी कम्पनी दशा में 2) से कम हो गई हो।

(iii) यदि कम्पनी ने अपने समामेलन के एक वर्ष के भीतर अपना व्यवसाय प्रारम्भ नहीं किया हो।

(iv) यदि कम्पनी ने अपनी वैधानिक सभा यथासमय नहीं बुलाई हो।

(v) यदि कम्पनी ने उसको (रजिस्ट्रार को) वैधानिक रिपोर्ट प्रस्तुत करने में त्रुटि की हो।

(vi) अन्य किसी आधार पर जो कि न्यायालय की दृष्टि में उचित एवं न्यायसंगत हो। [धारा 439 (5)]

(vii) यदि केन्द्रीय सरकार अपने अधिकारों के अन्तर्गत [धारा 243 के अनुसार] (रजिस्ट्रार को) आवेदन देने के लिए अधिकृत करती है।

5. **केन्द्रीय सरकार द्वारा (By the Central Government)** – केन्द्रीय सरकार कम्पनी के अनिवार्य समापन के लिए न्यायालय को आवेदन दे सकती है। [धारा 243]

6. **निस्तारक द्वारा (By Liquidator)** – यदि कम्पनी का स्वैच्छिक या न्यायालय के निरीक्षण में समापन हो रहा है। [धारा 440]

न्यायालय द्वारा अनिवार्य समापन की विधि

कम्पनी के अनिवार्य समापन के लिए निम्नलिखित विधि अपनाई जाती है :

1. **समापन आदेश रोकने के लिए प्रार्थना- पत्र देना** – यदि कोई कम्पनी अथवा उसका ऋणदाता अथवा अंशदाता कम्पनी से समापन का आदेश जारी होने से रुकवाना चाहता है तो वह ऐसा कर सकता है।

2. **याचिका की सुनवाई का विज्ञापन** – जिस दिन याचिका की सुनवाई की जाती है उससे कम से कम 14 दिन पूर्व एक विज्ञापन द्वारा याचिका की सुनवाई की तिथि की घोषणा करनी पड़ती है।

3. **राजपत्र में सुनवाई का विज्ञापन** – तत्पश्चात् न्यायालय इस आवेदन- पत्र या याचिका (Petition) को राज-पत्र (Official Gazette) में प्रकाशित करवाता है। इसमें याचिका की सुनवाई की तिथि भी दी जाती है।

4. **न्यायालय द्वारा आवेदन- पत्र का अध्ययन करना** – जब न्यायालय किसी कम्पनी के समापन हेतु प्रार्थना-पत्र प्राप्त करता है तो वह इसका अध्ययन करता है।

5. **आवेदन करना** – सर्वप्रथम सम्बन्धित पक्षकारों को न्यायालय के समक्ष कम्पनी के समापन के लिए आवेदन-पत्र प्रस्तुत करना पड़ता है।

6. **न्यायालय का आदेश** – न्यायालय जब याचिका से सम्बन्धित सभी पक्षकारों की सुनवाई कर लेता है तो न्यायालय निम्नलिखित में किसी प्रकार का आदेश दे सकता है :

(i) वह याचिका को बिना खर्च तथा खर्च सहित अस्वीकार कर सकता है।

(ii) वह सुनवाई को सशर्त या बिना किसी शर्त के स्थगित कर सकता है।

(iii) वह उचित समझे तो अन्तरिम आदेश दे सकता है।

(iv) वह उचित समझे तो खर्च सहित अथवा खर्च रहित अनिवार्य समापन का आदेश दे सकता है। [धारा 443 (1)]

7. **विघटन की सूचना रजिस्ट्रार को भेजना** – कम्पनी के निस्तारक को कम्पनी से विघटन के आदेश की प्रतिलिपि 30 दिनों के भीतर रजिस्ट्रार के समक्ष प्रस्तुत कर देनी चाहिए। यदि वह इसमें त्रुटि करता है तो उस पर पाँच सौ रु. प्रतिदिन तक का जुर्माना तब तक किया जा सकता है जब तक कि ऐसी त्रुटि जारी रहती है। [2000 में संशोधित धारा 481]

8. **कम्पनी के विघटन की घोषणा** – जब निस्तारक सभी सम्पत्तियों का दायित्व के भुगतान में उपयोग कर लेता है और जब न्यायालय यह उचित समझता है कि निस्तारक सम्पत्तियों अथवा कोषों के अभाव में समापन की कार्यवाही

आगे जारी नहीं रख सकता है तो वह (न्यायालय) एक आदेश जारी करके कम्पनी के विघटन (Dissolution) की घोषणा कर देता है। [धारा 481]

9. **निस्तारक द्वारा प्रारम्भिक रिपोर्ट**– समापन के आदेश के छः माह के भीतर निस्तारक को एक प्रारम्भिक रिपोर्ट न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करनी पड़ती है। इस रिपोर्ट में कम्पनी की पूँजी, सम्पत्तियाँ, बकाया ऋणों का विवरण होता है। [धारा 455]

10. **स्थिति विवरण प्रस्तुत करना** – जब कम्पनी के समापन का आदेश जारी कर दिया जाता है और निस्तारक की नियुक्ति हो जाती है तो कम्पनी के संचालक तथा सचिव आदि कम्पनी का स्थिति विवरण तैयार करते हैं। यह स्थिति विवरण निस्तारक को दे दिया जाता है। [धारा 445 (1)]

11. **समापन की प्रतिलिपि रजिस्ट्रार को प्रस्तुत करना** – कम्पनी के समापन की तिथि के 30 दिनों के भीतर कम्पनी को तथा समापन के लिए आवेदन करने वाले व्यक्ति (Petitioner) को समापन के आदेश की प्रतिलिपि रजिस्ट्रार के सम्मुख प्रस्तुत कर देनी चाहिए। [धारा 445]

12. **समापन की दशा में निस्तारक की नियुक्ति करना** – यदि न्यायालय कम्पनी के समापन का आदेश दे देता है तो वह कम्पनी के लिए निस्तारक नियुक्त कर देता है। [धारा 444]

13. **वैधानिक सभा बुलाने के लिए आदेश देना** – यदि कम्पनी के समापन की याचिका इस आधार पर दी गई है कि कम्पनी ने यथासमय अपनी वैधानिक सभा नहीं बुलवायी है अथवा वैधानिक रिपोर्ट प्रस्तुत नहीं की है तो न्यायालय कम्पनी की वैधानिक सभा बुलाने तथा रिपोर्ट प्रस्तुत करने का आदेश दे सकता है। [धारा 443 (3)]

14. **समापन का आदेश नहीं देना** – जब न्यायालय को कम्पनी के समापन की याचना उचित एवं न्यायसंगत कारण के आधार पर नहीं की जाती है तो भी न्यायालय उस कारण के आधार पर समापन का आदेश देने से इनकार कर सकता है। [धारा 443 (2)]

समापन आदेश के परिणाम

न्यायालय द्वारा समापन का आदेश देने के निम्नलिखित परिणाम होते हैं :

1. **समापन आदेश के पूर्व के अन्तरण** – यदि किसी कम्पनी ने अपने समापन के आदेश के पूर्व की 6 माह की अवधि में किसी सम्पत्ति का अन्तरण या विक्रय किया है तो वह कपटपूर्ण प्राथमिकता (fraudulent preferences) के आधार पर व्यर्थ घोषित किया जा सकता है।

2. **समापन आदेश के बाद सम्पत्तियों का विक्रय तथा हस्तांतरण व्यर्थ** – यदि कोई कम्पनी अपने समापन आदेश जारी होने के बाद सम्पत्तियों का विक्रय तथा हस्तांतरण करती है तो यह व्यर्थ माना जायेगा।

3. **सरकारी निस्तारक कम्पनी का निस्तारक होना** – जब कम्पनी के समापन का आदेश जारी कर दिया जाता है तो सरकारी निस्तारक ही कम्पनी का निस्तारक माना जाता है। [धारा 449]

4. **समापन का आदेश सभी पर लागू होना** – कम्पनी के समापन का आदेश सभी पर लागू होता है। यह आदेश सभी ऋणदाताओं तथा अंशदाताओं के प्रति उसी प्रकार लागू होता है माना कि सभी ने मिलकर समापन का आवेदन किया हो। [धारा 447]

5. **अन्य न्यायालय की कार्यवाही समापन करने वाले न्यायालय में अन्तरित करना** – यदि कम्पनी द्वारा अथवा कम्पनी के विरुद्ध कोई मुकदमा या कार्यवाही किसी अन्य न्यायालय में चल रही है तो उस मुकदमे तथा कार्यवाही को उस न्यायालय में अन्तरित कर दिया जाता है जहाँ पर समापन की कार्यवाही चल रही है। [धारा 446 (3)]

6. **न्यायालय को कुछ मामले निपटाने का अधिकार** – कम्पनी के समापन का आदेश देने वाले न्यायालय को निम्नलिखित मामलों पर विचार करने तथा निपटारा करने का अधिकार है :

(i) कम्पनी द्वारा अथवा उसके विरुद्ध चलाया जाने वाला कोई मुकदमा (suit) या वैधानिक कार्यवाही;

(ii) कम्पनी द्वारा अथवा उसके विरुद्ध किया गया दावा (claim);

(iii) कम्पनी के ऋणदाताओं तथा सदस्यों से [धारा 391 के अन्तर्गत] समझौता करने सम्बन्धी कोई आवेदन :

(iv) कम्पनी के समापन के दौरान उत्पन्न होने वाले किसी प्राथमिकता के प्रश्न (Questions of Priority) एवं कानूनी तथ्य सम्बन्धी प्रश्न।

7. **वैधानिक कार्यवाही पर रोक** – समापन का आदेश जारी कर दिये जाने के बाद उस कम्पनी पर न्यायालय की अनुमति के बिना किसी भी प्रकार की वैधानिक कार्यवाही प्रारम्भ नहीं की जा सकती है।

8. **समापन आदेश कर्मचारियों तथा अधिकारियों द्वारा नोटिस के रूप में मानना** – कम्पनी के समापन के आदेश को कम्पनी के कर्मचारियों की सेवा-समाप्ति के नोटिस के समान माना जाता है।

9. **रजिस्ट्रार द्वारा समापन विवरण दर्ज करना तथा गजट में प्रकाशित करवाना** – जब रजिस्ट्रार कम्पनी के समापन के आदेश की प्रमाणित प्रतिलिपि प्राप्त हो जाती है तो वह उस आदेश के अनुसार ही कम्पनियों के रजिस्टर में आवश्यक विवरण दर्ज कर लेता है, तत्पश्चात् वह उस आदेश को राज-पत्र में प्रकाशित करवाने की व्यवस्था करता है।

[धारा 445 (2)]

10. **आदेश की प्रतिलिपि रजिस्ट्रार के सम्मुख प्रस्तुत करना** – समापन हेतु न्यायालय में याचिका प्रस्तुत करने वाले व्यक्ति तथा कम्पनी दोनों का ही यह कर्त्तव्य होता है कि वे समापन आदेश की प्रतिलिपि प्रस्तुत करने में त्रुटि करते हैं तो याचिका प्रस्तुत करने वाले तथा कम्पनी एवं कम्पनी के प्रत्येक दोषी अधिकारी पर एक हजार रु. प्रतिदिन तक का जुर्माना तब तक किया जा सकता है जब तक ऐसी त्रुटि जारी रहती है। [धारा 445 (1)]

11. **सरकारी निस्तारक तथा रजिस्ट्रार को सूचना देना** – न्यायालय द्वारा समापन का आदेश देने के साथ ही उसे सरकारी निस्तारक (Official liquidator) तथा रजिस्ट्रार को कम्पनी के समापन की सूचना देनी चाहिए।

[धारा 444]

समापन आदेश के बाद न्यायालय के अधिकार
(Powers of Court)

न्यायालय किसी कम्पनी के समापन के आदेश के बाद समापन की कार्यवाही के सम्बन्ध में निम्नलिखित अधिकारों का उपयोग कर सकता है :

1. **कम्पनी के विघटन का आदेश देना** – न्यायालय निस्तारक की रिपोर्ट के आधार पर कम्पनी के विघटन का आदेश दे सकता है। [धारा 481]

2. **लापता अंशदाता को गिरफ्तार करवाना** – यदि न्यायालय को ऐसी सम्भावना हो कि कोई अंशदाता भारत छोड़कर जाने वाला है अथवा अन्य प्रकार से लापता होने वाला है अथवा अपनी सम्पत्तियों को छिपा सकता है। [धारा 479]

3. **प्रवर्तकों, संचालकों आदि की सार्वजनिक जाँच करवाना** – सरकारी निस्तारक की रिपोर्ट एवं प्रार्थना पर न्यायालय कम्पनी के निर्माण, प्रवर्तन तथा प्रबन्ध के लिए दोषी प्रवर्तकों, संचालकों तथा अधिकारियों की सार्वजनिक जाँच भी करवा सकता है। [धारा 478]

4. **कम्पनी की सम्पत्ति रखने का संदेह होने पर बुलाना** – यदि न्यायालय को कम्पनी के किसी अधिकारी अथवा अन्य व्यक्ति पर यह संदेह हो कि उसके पास कम्पनी की सम्पत्ति है तो वह उस अधिकारी अथवा व्यक्ति को बुला सकता है। [धारा 477]

5. **समापन के खर्चों में भुगतान का आदेश** – जब कम्पनी की सम्पत्तियाँ कम्पनी के दायित्वों के भुगतान में भी अपर्याप्त रहती हैं तो वह समापन के खर्चों के भुगतान का क्रम तय करके उनके भुगतान का आदेश दे सकती है। [धारा 476]

6. **ऋण प्रमाणित न करने पर ऋणदाता सूची से अलग करना** – न्यायालय ऋणदाताओं के लिए समय सीमा निर्धारित कर सकता है जिसमें सभी ऋणदाता कम्पनी पर अपने-अपने ऋणों को सिद्ध कर सकते हैं। [धारा 474]

यह उल्लेखनीय है कि यद्यपि निर्धारित समय के बाद किन्तु, कम्पनी के विघटन (Dissolution) से पूर्व भी अपने ऋण को सिद्ध कर सकता है।

7. **देनदारों (Debtors) से धन माँगना** – यदि कम्पनी का किसी व्यक्ति में धन बकाया है तो न्यायालय उस व्यक्ति को बकाया धन के भुगतान का आदेश दे सकता है। [धारा 471]

8. **याचनाएँ करने का अधिकार** – यदि कम्पनी के अंशों के सम्बन्ध में कुछ याचनाएँ (calls) बाकी हैं तो न्यायालय याचनाएँ कर सकता है और अंशदाताओं से याचना राशि वसूल कर सकता है। [धारा 470]

9. **अंशदाताओं को भुगतान का आदेश** – न्यायालय कम्पनी के अंशदाताओं को उन पर बकाया राशि के भुगतान का आदेश दे सकता है। [धारा 469]

10. **निस्तारक को सम्पत्ति दिलवाना** – न्यायालय किसी भी अंशदाता, प्रन्यासी, बैंकर, एजेन्ट अथवा कम्पनी के अधिकारी को आदेश देकर कम्पनी की सम्पत्तियाँ (जो भी उसके पास हैं), को सरकारी निस्तारक को हस्तांतरित करवा सकता है। [धारा 468]

11. **कम्पनी की सम्पत्तियों को एकत्रित करवाना तथा उनका उपयोग करना** – न्यायालय कम्पनी की सम्पत्तियों को एकत्रित करवा सकता है तथा उन्हें कम्पनी के दायित्वों के भुगतान के लिए आदेश दे सकता है। [धारा 467]

12. **अंशदाताओं की सूची निर्धारित करना** – न्यायालय कम्पनी के अंशदाताओं की सूची निर्धारित कर सकता है। [धारा 467]

13. **समापन की कार्यवाही रोकना** – सरकारी निस्तारक, अंशदाता अथवा किसी ऋणदाता की प्रार्थना पर न्यायालय कम्पनी के अनिवार्य समापन की कार्यवाही रोक सकता है। [धारा 446]

सरकारी निस्तारक
(Official Liquidator)

सामान्य शब्दों में निस्तारक से तात्पर्य किसी ऐसे व्यक्ति से है जो कम्पनी के समापन की कार्यवाही करता है। यह कम्पनी की सम्पत्तियों से धन वसूल (Realise) करता है तथा उसमें ऋणों का भुगतान करता है एवं शेष बचे धन को कम्पनी के सदस्यों में विभाजित कर देता है।

निस्तारक की नियुक्ति (Appointment of Liquidator) – केन्द्रीय सरकार प्रत्येक उच्च न्यायालय में एक सरकारी निस्तारक की नियुक्ति करती है। निस्तारक सामान्यतः पूर्णकालिक (Full-time) होता है। [धारा 448]

जब कभी कोई कम्पनी अपना समापन करने हेतु प्रार्थना-पत्र देती है तो न्यायालय अपने पास नियुक्त सरकारी निस्तारक को ही कम्पनी के समापन की कार्यवाही देखने के लिए आदेश देता है।

अस्थायी निस्तारक (Provisional Liquidator) – न्यायालय द्वारा समापन हेतु याचिका प्राप्त करने के बाद तथा समापन का आदेश देने से पूर्व वह सरकारी निस्तारक को कम्पनी का अस्थायी निस्तारक नियुक्त कर सकता है।

जब अस्थायी निस्तारक की नियुक्ति न्यायालय द्वारा की जाती है तो न्यायालय उसकी नियुक्ति के आदेश में उसके अधिकारों की सीमा तथा प्रतिबन्ध भी लगा सकता है। [धारा 450]

सरकारी निस्तारक के कर्त्तव्य (Duties) : सरकारी निस्तारक को जब किसी कम्पनी के निस्तारक के रूप में नियुक्त कर दिया जाता है तो उसके निम्नलिखित कर्तव्य होते हैं :

1. **प्राप्त धन रिजर्व बैंक में जमा करवाना** – निस्तारक को कम्पनी के सम्बन्ध में प्राप्त होने वाली सभी धन राशि को रिजर्व बैंक में जमा करवानी चाहिए। यह राशि 'Public Account of India' में जमा होती है।

2. **एक वर्ष से अधिक की अवधि तक समापन की दशा में प्रतिवर्ष विवरण प्रस्तुत करना** – यदि किसी कम्पनी के समापन की कार्यवाही एक वर्ष से भी अधिक अवधि के लिए चलती है तो समापन प्रारम्भ होने के प्रत्येक वर्ष की समाप्ति के दो महीने में कम्पनी के सम्बन्ध में एक विवरण न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करना पड़ता है। [धारा 551]

यह विवरण रजिस्ट्रार के समक्ष भी प्रस्तुत करना आवश्यक है।

3. **निरीक्षण समिति गठित करने की कार्यवाही करना** – निस्तारक का एक कर्तव्य यह भी है कि वह निरीक्षण समिति के गठन की कार्यवाही करता है। इस हेतु वह समापन के आदेश के दो माह के भीतर ऋणदाताओं की सभा बुलाता है। [धारा 464]

4. **खातों को छपवाना तथा अंशदाताओं एवं ऋणदाताओं को प्रतिलिपि भेजना** – जब प्राप्ति एवं भुगतान खाते का न्यायालय द्वारा अंकेक्षण करवा लिया जाता है तो निस्तारक को उस खाते को अथवा उसके सारांश को छपवाना पड़ता है। [धारा 462 (5)]

5. **अंकेक्षण हेतु पुस्तकें तथा बिल प्रस्तुत करना** – यह उल्लेखनीय है कि न्यायालय इस प्राप्ति एवं भुगतान खाते के अंकेक्षण की स्वयं व्यवस्था करता है। [धारा 462 (3)]

6. **प्राप्ति एवं भुगतान खाता प्रस्तुत करना** – निस्तारक को कम्पनी का प्राप्ति एवं भुगतान खाता भी न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करना पड़ता है। उसे यह खाता न्यायालय द्वारा निर्धारित अवधि में प्रस्तुत करना पड़ता है।

7. **उचित पुस्तकें रखना** – निस्तारक को निर्धारित रीति से सभी उचित पुस्तकें रखनी चाहिए। इन पुस्तकों में सभी आवश्यक प्रविष्टियों तथा सभाओं की आवश्यक कार्यवाहियों का विवरण लिखना चाहिए। [धारा 461]

8. **न्यायालय से निर्देश प्राप्त करना** – सरकारी निस्तारक को समापन के सम्बन्ध में उत्पन्न होने वाले किसी विशेष मामले के सम्बन्ध में आवश्यक निर्देश न्यायालय से प्राप्त करने चाहिए। [धारा 460 (4)]

9. **ऋणदाताओं तथा अंशदाताओं की सभाएँ बुलाना** – निस्तारक को ऋणदाताओं तथा अंशदाताओं के सम्पत्तियों के वितरण के सम्बन्ध में विचार जानने के लिए उनकी सभाएँ बुलानी चाहिए। [धारा 460 (3)]

10. **निदेशों के अभाव में अपने विवेक के अनुसार सम्पत्तियों का वितरण करना** – यदि ऋणदाता तथा अंशदाता अथवा निरीक्षण समिति कम्पनी की सम्पत्तियों की व्यवस्था करने तथा उनके वितरण करने सम्बन्धी कोई निर्देश नहीं देती है तो निस्तारक को अपने विवेक के अनुसार ही सम्पत्तियों का वितरण करना चाहिए। [धारा 460 (5)]

11. **कम्पनी की सम्पत्ति की निर्देशों के अनुसार व्यवस्था करना** – निस्तारक को कम्पनी की सम्पत्तियों की व्यवस्था करने तथा उनका वितरण करने में ऋणदाताओं तथा अंशदाताओं अथवा निरीक्षक समिति द्वारा दिये गये निर्देशों का पालन करना चाहिए। [धारा 460 (1)]

12. **कम्पनी की सम्पत्ति की रक्षा करना** – निस्तारक का यह भी कर्त्तव्य है कि वह समापन की कार्यवाही प्रारम्भ होने के बाद कम्पनी की सम्पत्ति की रक्षा करे। [धारा 456]

13. **प्रारम्भिक रिपोर्ट प्रस्तुत करना** – समापन के आदेश के 6 माह के भीतर कम्पनी के निस्तारक को एक प्रारम्भिक रिपोर्ट तैयार करके न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत कर देनी चाहिए। [धारा 455]

14. **समापन की कार्यवाही करना** – प्रत्येक सरकारी निस्तारक का यह कर्तव्य है कि वह समापन की कार्यवाही का न्यायालय के आदेशानुसार संचालन करे। [धारा 451]

निस्तारक के अधिकार
(Rights of Liquidator)

सरकारी निस्तारक के अधिकारों को हम निम्नलिखित दो भागों में बाँटकर अध्ययन कर सकते हैं :

(A) न्यायालय की अनुमति से प्रयुक्त किये जाने वाले अधिकार।

(B) न्यायालय की अनुमति के बिना प्रयुक्त किये जाने वाले अधिकार।

(A) न्यायालय की अनुमति से प्रयुक्त किये जाने वाले अधिकार (Rights to be exercised with the sanction of the Court) :

सरकारी निस्तारक निम्नलिखित कार्यों के सम्बन्ध में अपने अधिकारों का उपयोग न्यायालय की अनुमति से ही कर सकता है :

1. असुविधाजनक एवं अलाभकारी अनुबन्धों के सम्बन्ध में अधिकारों का परित्याग करना।

2. कम्पनी के देनदारों के ऋणों तथा अंशदाताओं की बकाया याचनाओं (Calls) के सम्बन्ध में समझौता करना अथवा उचित जमानत स्वीकार करना।

3. कम्पनी के ऋणदाताओं के भुगतान के सम्बन्ध में आवश्यक समझौता (Compromise) अथवा व्यवस्था (Arrangement) करना।

4. कम्पनी के समापन की कार्यवाही का संचालन करना तथा शेष सम्पत्तियों का बँटवारा करना।

5. कम्पनी की सम्पत्ति की जमानत पर ऋण प्राप्त करना।

6. कम्पनी की चल अथवा अचल सम्पत्ति को किसी व्यक्ति को निजी अनुबन्ध के अन्तर्गत बेचना।

7. कम्पनी की चल तथा अचल सम्पत्ति को सार्वजनिक नीलाम द्वारा बेचना।

8. अपने कर्तव्यों की पूर्ति में सहायता देने के लिए किसी वकील या कानूनी सलाहकार की नियुक्ति करना।

9. कम्पनी के कारोबार को चलाना, यदि ऐसा करना कम्पनी के लाभकारी समापन के लिए आवश्यक है।

10. कम्पनी की ओर से अथवा उसके नाम में कोई दीवानी या फौजदारी वाद प्रस्तुत करना या अन्य वैधानिक कार्यवाही करना।

(B) न्यायालय की अनुमति के बिना प्रयुक्त किये जाने वाले अधिकार (Powers exercisable without the sanction of the Court) :

एक सरकारी निस्तारक निम्नलिखित अधिकारों का उपयोग न्यायालय की अनुमति के बिना भी कर सकता है:

1. ऋणदाता तथा अंशदाताओं की सभा बुलाना तथा समापन की कार्यवाही के सम्बन्ध में उनके विचार जानना।

2. नीलामी में कम्पनी का माल खरीदने वाले को मूल्य के भुगतान की अवधि बढ़ाना।

3. रजिस्ट्रार के पास कम्पनी की फाइलों का निःशुल्क निरीक्षण करना।

4. कम्पनी के अभिलेखों तथा विवरणियों (records and returns) को देखना।

5. किसी ऐसे कार्य को करने के लिए एजेण्ट नियुक्त करना जिसे करने में वह (निस्तारक) असमर्थ है।

12. **न्यायालय को निरीक्षण समिति के गठन के लिए निवेदन करना** – यदि कम्पनी के अंशदाता ऋणदाताओं द्वारा निर्धारित समिति के सदस्यों की सूची को स्वीकार नहीं करते हैं तो निस्तारक न्यायालय को उसके निर्देशों के लिए आवेदन करता है।

13. **अंशदाताओं की सभा में उक्त नामों पर विचार करना** –निस्तारक को ऋणदाताओं की सभा में 14 दिनों के भीतर अंशदाताओं की सभा बुलानी पड़ती है।

14. **न्यायालय के निर्देशों के दो माह में सदस्यों को तय करना** – सरकारी निस्तारक को न्यायालय के निर्देशों के दो महीनों के भीतर ऋणदाताओं की सभा बुलानी पड़ती है और उस सभा में इस समिति के सदस्यों के नाम तय करने पड़ते हैं।

15. **न्यायालय के निर्देश पर नियुक्ति** – निस्तारक को निरीक्षण समिति की नियुक्ति न्यायालय के निर्देशानुसार ही करनी पड़ती है।

II. कम्पनी का स्वैच्छिक समापन
(Voluntary Winding Up of Company)

कम्पनी का स्वैच्छिक समापन दो प्रकार का हो सकता है –

(A)सदस्यों द्वारा स्वैच्छिक समापन; तथा (B)ऋणदाताओं द्वारा स्वैच्छिक समापन।

(A) सदस्यों द्वारा स्वैच्छिक समापन
(Members' Voluntary Winding Up)

जब कम्पनी के सदस्य स्वेच्छा से कम्पनी का समापन करना चाहते हैं तो उसे सदस्यों द्वारा कम्पनी का स्वैच्छिक समापन कहते हैं। सदस्यों द्वारा स्वैच्छिक समापन के सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रमुख **वैधानिक व्यवस्थाएँ** हैं :

1. **विघटन का आदेश देना** – सरकारी निस्तारक की रिपोर्ट पर न्यायालय कम्पनी के विघटन (Dissolution) का आदेश दे सकता है। न्यायालय इसी आदेश में विघटन की तिथि का उल्लेख भी कर देता है। [धारा 509 (6-B)]

2. **सरकारी निस्तारक द्वारा जाँच-पड़ताल करना** – ऊपर लिखा जा चुका है कि कम्पनी का निस्तारक सरकारी निस्तारक को भी समापन की कार्यवाही का विवरण तथा अन्तिम सभा की रिपोर्ट भेजता है। इस विवरण तथा रिपोर्ट के प्राप्त होने के बाद सरकारी निस्तारक कम्पनी की जाँच-पड़ताल करता है कि कहीं कम्पनी के व्यवसाय का संचालन कम्पनी के सदस्यों के हितों अथवा जन-हित के विरुद्ध तो नहीं किया गया था।

इस हेतु न्यायालय सरकारी निस्तारक को सभी आवश्यक अधिकार प्रदान कर देता है। [धारा 509 (6-A)]

3. **रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्री करना** – जब रजिस्ट्रार को समापन कार्यवाही की रिपोर्ट तथा अन्तिम सभा की रिपोर्ट प्राप्त हो जाती है तो वह उनकी रजिस्ट्री कर लेता है। [धारा 509 (5)]

4. **रजिस्ट्रार तथा सरकारी निस्तारक को समापन का विवरण प्रस्तुत करना** – अन्तिम सामान्य सभा के होने के एक सप्ताह के भीतर कम्पनी का निस्तारक रजिस्ट्रार तथा सरकारी निस्तारक (Official Liquidator) को कम्पनी के समापन की कार्यवाही का विवरण तथा अन्तिम सभा की रिपोर्ट भेजता है। [2000 में संशोधित धारा 509 (3)]

5. **अन्तिम सभा बुलाना** – कम्पनी के समापन की कार्यवाही पूरी हो जाने पर निस्तारक को समापन की कार्यवाही का पूर्ण विवरण तैयार करना चाहिए। इस विवरण में यह स्पष्ट रूप से दर्शाया जाना चाहिए कि समापन की कार्यवाही किस प्रकार की गई है तथा कम्पनी की सम्पत्ति का किस प्रकार उपयोग या वितरण किया गया है।

6. **प्रत्येक वर्ष के अन्त में साधारण सभा बुलाना** – यदि कम्पनी के समापन की कार्यवाही एक वर्ष से अधिक की अवधि के लिए चलती है तो निस्तारक को **समापन कार्यवाही** प्रारम्भ होने की तिथि से एक वर्ष समाप्त होने पर तथा उसके बाद प्रत्येक वर्ष के समाप्त होने पर कम्पनी की साधारण सभा बुलानी चाहिए। [धारा 496]

7. **दिवाले की दशा में ऋणदाताओं की सभा बुलाना** – यदि शोधन क्षमता की घोषणा में निर्धारित अवधि के भीतर कम्पनी के ऋणों का भुगतान नहीं किया जाता है अथवा निस्तारक यह अनुभव करता है कि कम्पनी अपने समस्त ऋणों के भुगतान करने में असमर्थ है तो उसे (निस्तारक को) तत्काल ऋणदाताओं की एक सभा बुलानी चाहिए। [धारा 495]

8. **प्रतिफल में अंश स्वीकार करना** – निस्तारक कम्पनी के समापन के दौरान सम्पत्तियों के बेचने के प्रतिफल के रूप में अंश भी स्वीकार करने का अधिकार रखता है। [धारा 494]

9. **निस्तारक की नियुक्ति की रजिस्ट्रार को सूचना देना** – कम्पनी को निस्तारक की नियुक्ति करने अथवा रिक्त पद भरने की सूचना कम्पनी के रजिस्ट्रार को भेजनी चाहिए। [धारा 493]

10. **निस्तारक के रिक्त पद को भरना** – यदि कम्पनी द्वारा नियुक्त निस्तारक की मृत्यु हो जाती है, अथवा वह पद त्याग कर देता है अथवा अन्य किसी कारण से उसका स्थान रिक्त हो जाता है तो उस रिक्त पद को कम्पनी की साधारण सभा में पुनः भरा जा सकता है। [धारा 492]

11. **संचालक मण्डल के अधिकारों की समाप्ति** – कम्पनी द्वारा साधारण सभा में निस्तारक की नियुक्ति कर देने के बाद संचालक मण्डल, पूर्णकालिक संचालक, प्रबन्ध संचालक अथवा प्रबन्धक का पद समाप्त हो जाता है। [धारा 491]

12. **निस्तारक की नियुक्ति** – सदस्यों द्वारा स्वैच्छिक समापन की दशा में कम्पनी अपनी सामान्य सभा में निस्तारक या निस्तारकों की नियुक्ति कर सकती है। [धारा 490]

13. **प्रस्ताव का प्रकाशन** – कम्पनी के समापन का प्रस्ताव पारित होने के बाद इसकी सूचना देने के लिए इसका राजकीय गजट में प्रकाशन भी करवाना पड़ता है। [2000 में संशोधित धारा 485].

14. **स्वैच्छिक समापन प्रस्ताव पारित करना** – कोई भी कम्पनी निम्नलिखित दशाओं में अपनी साधारण सभा में एक साधारण प्रस्ताव (Ordinary resolution) पारित करके अपना स्वैच्छिक समापन कर सकती है –

(i) जब कम्पनी के अन्तर्नियमों में निर्दिष्ट अवधि समाप्त हो गई हो, तथा

(ii) कम्पनी के अन्तर्नियमों में निर्दिष्ट घटना घटित हो गई हो। [धारा 484]

कोई भी कम्पनी एक विशेष प्रस्ताव पारित करके किसी भी समय अपना स्वैच्छिक समापन कर सकती है। [धारा 484]

15. **घोषणा रजिस्ट्रार को प्रस्तुत करना** – जब संचालक कम्पनी की शोधन क्षमता की घोसणा करते हैं तो उन्हें इस घोषणा को रजिस्ट्रार के समक्ष प्रस्तुत करना पड़ता है। यह घोषणा कम्पनी के समापन का प्रस्ताव पारित करने से पूर्व के पाँच सप्ताहों के भीतर ही रजिस्ट्रार के समक्ष प्रस्तुत की जानी चाहिए।

16. **शोधन क्षमता की घोषणा करना** – यदि कम्पनी के सदस्य कम्पनी का स्वैच्छिक समापन करना चाहते हैं तो कम्पनी के दो संचालकों अथवा संचालकों के बहुमत को एक घोषणा करनी पड़ती है जिसे शोधन क्षमता की घोषणा (Declaration of Solvency) के नाम से पुकारा जाता है। [धारा 488 (1)]

शोधन क्षमता की घोषणा तभी प्रभावशाली होती है जबकि यह निम्नलिखित शर्तों को ध्यान में रखकर की जाती है :

(i) ऐसी घोषणा कम्पनी के समापन का प्रस्ताव पारित होने के तत्काल पहले के पाँच सप्ताहों में हुई होनी चाहिए।

(ii) अन्तिम तिथि तक के लाभ-हानि खाते तथा उस अन्तिम तिथि के चिट्ठे के सम्बन्ध में अंकेक्षकों की रिपोर्ट संलग्न करनी चाहिए।

(iii) शोधन क्षमता की घोषणा के साथ ही कम्पनी की सम्पत्तियों तथा दायित्वों का एक नवीनतम विवरण (Latest Statement) भी संलग्न होना चाहिए।

यदि कोई संचालक बिना किसी उचित आधार के शोधन क्षमता की घोषणा कर देता है तो उसे 6 माह तक का कारावास अथवा पचास हजार रु. तक का अर्थदण्ड अथवा दोनों ही दण्ड दिये जा सकते हैं। [2000 में संशोधित धारा 488 (3)]

(B) ऋणदाताओं द्वारा स्वैच्छिक समापन
(Creditors' Voluntary Winding Up)

ऋणदाताओं द्वारा स्वैच्छिक समापन के सम्बन्ध में अधिनियम की 500 से 509 तक की धाराएँ लागू होती हैं। (धारा 499) दूसरे शब्दों में ऋणदाताओं द्वारा स्वैच्छिक समापन के सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रावधान हैं :

1. **विघटन का आदेश देना** – सरकारी निस्तारक की रिपोर्ट पर न्यायालय कम्पनी के विघटन (Dissolution) का आदेश दे सकता है। न्यायालय इसी आदेश में विघटन की तिथि का उल्लेख भी कर देता है। [धारा 509 (6-B)]

2. **सरकारी निस्तारक द्वारा जाँच-पड़ताल करना** – ऊपर लिखा जा चुका है कि कम्पनी का निस्तारक सरकारी निस्तारक को भी समापन की कार्यवाही का विवरण तथा अन्तिम सभा की रिपोर्ट भेजता है। विवरण तथा रिपोर्ट के प्राप्त होने के बाद सरकारी निस्तारक कम्पनी की जाँच-पड़ताल करता है। [धारा 509 (6-A)]

3. **रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्री करना** – जब रजिस्ट्रार को समापन कार्यवाही की रिपोर्ट तथवा अन्तिम सभा की रिपोर्ट प्राप्त हो जाती है तो वह उनकी रजिस्ट्री कर लेता है। [धारा 509 (5)]

4. **रजिस्ट्रार तथा सरकारी निस्तारक को समापन का विवरण प्रस्तुत करना** – अन्तिम सामान्य सभा के होने के एक सप्ताह के भीतर कम्पनी का निस्तारक रजिस्ट्रार तथा सरकारी निस्तारक (Official Liquidator) को कम्पनी के समापन की कार्यवाही का विवरण तथा अन्तिम सभा की रिपोर्ट भेजता है। [धारा 509 (3)]

5. **अन्तिम सभा बुलाना** – कम्पनी के समापन की कार्यवाही पूरी हो जाने पर निस्तारक कम्पनी के समापन की कार्यवाही का विवरण तैयार करता है। वह इस विवरण में कम्पनी की सम्पत्तियों के उपयोग अथवा वितरण के सम्बन्ध में भी आवश्यक बातों का उल्लेख करता है।

6. **कम्पनी तथा ऋणदाताओं की प्रतिवर्ष सभा बुलाना** – जब समापन की कार्यवाही एक वर्ष से अधिक की अवधि के लिए चालू रहती है तो निस्तारक को समापन प्रारम्भ होने की तिथि के एक वर्ष बाद तथा इसके बाद प्रत्येक वर्ष की समाप्ति पर कम्पनी के सदस्यों तथा ऋणदाताओं की सभा बुलानी पड़ती है। [2000 में संशोधित धारा 508]

7. **निस्तारक का रिक्त पद भरना** – यदि निस्तारक की मृत्यु, पद त्याग अथवा अन्य किसी कारण से उसका पद रिक्त हो जाता है तो ऋणदाता अपनी साधारण सभा में इस रिक्त पद को भर सकते हैं। [धारा 506]

8. **संचालक मण्डल के अधिकारों की समाप्ति** – निस्तारक की नियुक्ति के बाद संचालक मण्डल के अधिकार समाप्त हो जाते हैं, किन्तु निरीक्षण समिति (यदि हो तो) अथवा ऋणदाता चाहें तो संचालक मण्डल के अधिकारों को चालू रख सकते हैं। [धारा 505]

9. **निस्तारक का पारिश्रमिक** – निस्तारक का पारिश्रमिक निरीक्षण समिति द्वारा निर्धारित किया जाता है। यदि ऐसी समिति की नियुक्ति नहीं की जाती है तो ऋणदाता स्वयं निस्तारक के पारिश्रमिक को निर्धारित करते हैं। [धारा 504]

10. **निरीक्षण समिति की नियुक्ति** – ऋणदाता चाहें तो समापन की कार्यवाही की देखरेख के लिए एक निरीक्षण समिति नियुक्त कर सकते हैं। इस समिति में वे अधिक से अधिक पाँच सदस्य रख सकते हैं। [धारा 503 (1)]

11. **निस्तारक की नियुक्ति** – कम्पनी तथा ऋणदाता अपनी-अपनी सभा में निस्तारक मनोनीत (Nominate) कर सकते। किन्तु यदि ऋणदाता तथा कम्पनी द्वारा मनोनीत व्यक्ति भिन्न-भिन्न हों तो ऋणदाताओं द्वारा मनोनीत व्यक्ति ही कम्पनी का निस्तारक माना जाता है। [धारा 502]

12. **सभा के प्रस्तावों की सूचना रजिस्ट्रार को देना** – ऋणदाताओं की सभा में पारित किये गये प्रस्तावों की सूचना रजिस्ट्रार को दी जानी आवश्यक है। यह सूचना प्रस्ताव पारित होने के दस दिनों के भीतर दी जानी आवश्यक है। [धारा 501]

13. **कम्पनी की सभा स्थगित होने का प्रभाव** – यदि कम्पनी समापन का प्रस्ताव पारित करने के लिए अपने सदस्यों की सभा बुलाती है और वह समापन प्रस्ताव पारित किये बिना ही स्थगित हो जाती है और वह प्रस्ताव स्थगित सभा में पारित किया जाता है तो भी ऋणदाताओं की सभा में पारित प्रस्ताव का वही प्रभाव होता है जैसे कि वह प्रस्ताव कम्पनी की सभा में समापन का प्रस्ताव पारित होने के तुरन्त बाद पारित किया गया हो। [धारा 500 (5)]

14. **सभा में स्थिति विवरण प्रस्तुत करना** – ऋणदाताओं की इस सभा में कम्पनी का संचालक मण्डल कम्पनी की सम्पूर्ण स्थिति का विवरण प्रस्तुत करता है। इसके साथ ही ऋणदाताओं की सूची तथा उनके दावों (Claims) की अनुमानित राशि का विवरण भी प्रस्तुत किया जाना चाहिए [धारा 500 (3)]

15. **सूचना का विज्ञापन** – कम्पनी सभा की सूचना का विज्ञापन देगी। यह विज्ञापन कम से कम एक बार राजकीय गजट में प्रकाशित करवाना आवश्यक है। [धारा 500 (2)]

16. **ऋणदाताओं की सभा बुलाना** – साधारण सभा में कम्पनी के स्वैच्छिक समापन का प्रस्ताव पारित करने के बाद कम्पनी के ऋणदाताओं की साधारण सभा बुलाने के दिन अथवा उसके अगले दिन बुलाई जा सकती है। [धारा 500 (4)]

17. **कम्पनी की सभा में समापन का प्रस्ताव पारित करना** – ऋणदाताओं द्वारा स्वैच्छिक समापन की दशा में भी सर्वप्रथम कम्पनी की एक साधारण सभा बुलाई जाती है। इस सभा में कम्पनी के सदस्य कम्पनी के समापन का साधारण अथवा विशेष प्रस्ताव (जैसा भी आवश्यक हो) पारित करते हैं। [धारा 484]

सदस्यों तथा ऋणदाताओं द्वारा स्वैच्छिक समापन में अन्तर
(Distinction between Members' and Creditors' Voluntary Winding Up)

सदस्यों द्वारा स्वैच्छिक समापन तथा ऋणदाताओं द्वारा स्वैच्छिक समापन में प्रमुख अन्तर अग्रानुसार हैं –

NOTES

अन्तर का आधार 1	सदस्यों द्वारा स्वैच्छिक समापन 2	ऋणदाताओं द्वारा स्वैच्छिक समापन 3
1. अन्तिम सभा	समापन की कार्यवाही के पूरा होने पर सदस्यों की एक अन्तिम सभा बुलवाई जाती है।	जबकि इस प्रकार के समापन की दशा में सदस्यों तथा ऋणदाताओं दोनों की ही अन्तिम सभा बुलानी पड़ती है।
2. वार्षिक सभा	यदि समापन की कार्यवाही एक वर्ष से अधिक की अवधि के लिए चलती है तो निस्तारक को प्रतिवर्ष सदस्यों की सभा बुलानी पड़ती है।	इस प्रकार के समापन की दशा में निस्तारक को सदस्यों तथा ऋणदाताओं अर्थात् दोनों की सभाएँ बुलानी पड़ती हैं।
3. संचालक मण्डल के अधिकार	सामान्यतः दोनों ही प्रकार के समापनों में संचालक मण्डल के अधिकार समाप्त हो जाते हैं।	इस प्रकार के समापन में निरीक्षण समिति, यदि हो तो, अथवा ऋणदाता संचालक मण्डल के अधिकारों को जारी रख सकते हैं।
4. निस्तारक के रिक्त स्थान की पूर्ति	निस्तारक के रिक्त स्थान की पूर्ति कम्पनी की साधारण सभा द्वारा की जा सकती है।	इस प्रकार के समापन में निस्तारक के रिक्त स्थान की पूर्ति ऋणदाताओं की साधारण सभा द्वारा की जा सकती है।
5. निस्तारक के विशेष अधिकार	इस प्रकार के समापन में निस्तारक कुछ विशेष प्रकार के अधिकारों का उपयोग सदस्यों के विशेष प्रस्ताव के आधार पर कर सकता है।	इस प्रकार के समापन में निस्तारक निरीक्षण समिति द्वारा अधिकार देने, न्यायालय द्वारा अधिकृत करने अथवा ऋणदाताओं द्वारा विशेष प्रस्ताव पारित करने पर कुछ विशेष प्रकार के अधिकारों का उपयोग कर सकता है।
6. निरीक्षण समिति	सदस्यों द्वारा स्वैच्छिक समापन की दशा में निरीक्षण समिति की नियुक्ति नहीं की जाती है।	ऋणदाताओं द्वारा स्वैच्छिक समापन की दशा में ऋणदाता चाहे तो निरीक्षण समिति नियुक्त कर सकते हैं।
7. निस्तारक का पारिश्रमिक	इनमें निस्तारक का पारिश्रमिक भी कम्पनी की साधारण सभा में ही निर्धारित किया जाता है।	इस प्रकार के समापन की दशा में निस्तारक का पारिश्रमिक निरीक्षण समिति, यदि कोई है, तो उसके द्वारा निर्धारित किया जाता है। इसके न होने पर ऋणदाताओं द्वारा निस्तारक की नियुक्ति की जाती है।
8. निस्तारकों की संख्या	इस प्रकार के समापन में एक या एक से अधिक निस्तारकों की नियुक्ति की जा सकती है।	इसमें एक ही निस्तारक की नियुक्ति का प्रावधान है।
9. निस्तारक की नियुक्ति	सदस्यों द्वारा स्वैच्छिक समापन की दशा में निस्तारक की नियुक्ति कम्पनी की साधारण सभा में की जाती है।	ऋणदाताओं द्वारा स्वैच्छिक समापन की दशा में निस्तारक की नियुक्ति सदस्यों तथा ऋणदाताओं दोनों द्वारा की जाती है। यदि सदस्यों तथा ऋणदाताओं द्वारा नियुक्त व्यक्ति भिन्न-भिन्न हों तो ऋणदाताओं द्वारा नियुक्त व्यक्ति ही निस्तारक माना जाता है।
10. समापन प्रस्ताव	इस प्रकार के समापन में केवल सदस्यों की सभा में ही सामान्य अथवा विशेष प्रस्ताव जो भी आवश्यक हो, पारित करना पड़ता है।	इस प्रकार के समापन में सदस्यों तथा ऋणदाताओं दोनों की ही सभाओं में समापन प्रस्ताव पारित करना पड़ता है।

11. **समापन की सभाएँ**	सदस्यों द्वारा स्वैच्छिक समापन करने के लिए केवल कम्पनी के सदस्यों की ही सभा बुलवाई जाती है।	ऋणदाताओं द्वारा समापन करने के लिए सदस्यों तथा ऋणदाताओं दोनों की सभाएँ बुलाना आवश्यक होता है।
12. **नियन्त्रण**	इस प्रकार के समापन में सदस्यों का पूर्ण नियन्त्रण बना रहता है।	ऋणदाताओं द्वारा स्वैच्छिक समापन की दशा में लेनदारों का नियन्त्रण अधिक होता है।
13. **शोधन क्षमता की घोषणा**	सदस्यों द्वारा स्वैच्छिक समापन की दशा में शोधन क्षमता की घोषणा करना आवश्यक है।	इस प्रकार के समापन के लिए शोधन क्षमता की घोषणा नहीं जाती है।

III. न्यायालय के निरीक्षण में समापन
(Winding Up under the Supervision of Court)

यह समापन की अन्तिम विधि है। जब कम्पनी के स्वैच्छिक समापन (चाहे वह ऋणदाताओं द्वारा स्वैच्छिक समापन हो या सदस्यों द्वारा स्वैच्छिक समापन) की कार्यवाही चल रही हो तो न्यायालय को प्रार्थना करने पर न्यायालय एक आदेश जारी करके यह घोषणा कर सकता है कि कम्पनी का न्यायालय के निरीक्षण में समापन होगा। न्यायालय के इस आदेश स्वैच्छिक समापन की कार्यवाही पर कोई प्रभाव नहीं होता है। इसके प्रमुख प्रावधान अग्रानुसार हैं –

1. **न्यायालय के निरीक्षण में समापन को अनिवार्य समापन में बदलना** – यदि न्यायालय उचित समझता है तो न्यायालय अपने निरीक्षण में समापन को अनिवार्य समापन में बदल सकता है।

2. **आदेश का प्रभाव** – न्यायालय द्वारा अपने निरीक्षण में समापन का आदेश देने के निम्नलिखित प्रभाव उत्पन्न होते हैं :

(i) कम्पनी के विरुद्ध अन्य न्यायालय में चलाये जा रहे सभी **विवादों एवं वैधानिक कार्यवाहियों** पर रोक लग जाती है।

(ii) सामान्यतः स्वैच्छिक समापन के समय नियुक्त निस्तारक कार्य करता रहता है, किन्तु रजिस्ट्रार द्वारा प्रार्थना करने पर न्यायालय उसे हटा भी सकता है। [धारा 524]

(iii) ऐसे निस्तारक के साथ अतिरिक्त निस्तारक (Additional liquidator) या निस्तारकों की नियुक्ति भी कर सकता है। [धारा 524]

(iv) निस्तारक का पद रिक्त होने पर न्यायालय स्वयं निस्तारक नियुक्त कर सकता है। [धारा 524]

(v) निस्तारक उन सभी अधिकारों का उपयोग कर सकते हैं जो कि स्वैच्छिक समापन की दशा में निस्तारकों को प्राप्त होते हैं। [धारा 526]

(vi) न्यायालय निस्तारकों के अधिकारों का उपयोग कर सकता है जो वह न्यायालय द्वारा अनिवार्य समापन की दशा में करता है। [धारा 526]

3. **आदेश में शर्त** – न्यायालय अपने निरीक्षण में समापन का आदेश देते समय उसमें समापन की शर्तें भी निर्धारित कर सकता है।

4. **न्यायालय द्वारा आदेश** – न्यायालय जब यह अनुभव करता है कि कम्पनी का स्वयं के निरीक्षण में समापन करवाना आवश्यक है तथा ऋणदाताओं तथा अंशधारियों के हित में है तब न्यायालय अपने स्वयं के निरीक्षण में कम्पनी के समापन का आदेश देता है। [Re- Varietiers Ltd. 2 Ch.235]

5. **आवेदन का आधार** – कम्पनी के अंशदाता, ऋणदाता अथवा निस्तारक निम्नलिखित में से किसी भी आधार पर न्यायालय से अपने निरीक्षण में समापन करने का आवेदन (याचिका) कर सकते हैं :

(i) यदि निस्तारक पक्षपातपूर्ण कार्यवाही कर रहा हो; अथवा

(ii) यदि निस्तारक सम्पत्तियों के निपटारे में लापरवाही बरत रहा हो; अथवा

(iii) यदि कम्पनी के समापन का प्रस्ताव कपटपूर्ण तरीके से पारित करवाया गया हो; अथवा

(iv) यदि बहुमत वाले अंशधारियों द्वारा अल्पमत वाले अंशधारियों के साथ कपट किया जा रहा हो।

6. **न्यायालय को आवेदन** – न्यायालय के निरीक्षण में समापन के लिए न्यायालय को आवेदन, अंशदाता, ऋणदाता अथवा निस्तारक द्वारा किया जा सकता है। [धारा 522]

7. स्वैच्छिक समापन की कार्यवाही का जारी रहना – जब कम्पनी ने अपने स्वैच्छिक समापन का प्रस्ताव पारित कर लिया हो तो उसके बाद न्यायालय यह आदेश दे सकता है कि कम्पनी का स्वैच्छिक समापन न्यायालय के निरीक्षण के अधीन चलता रहेगा। [धारा 522]

NOTES

न्यायालय के निरीक्षण में समापन के लाभ
(Advantages)

1. न्यायालय द्वारा अनिवार्य समापन सम्बन्धी अधिकारों का उपयोग – न्यायालय उचित समझे तो कम्पनी के समापन में अनिवार्य समापन के सम्बन्ध में प्राप्त अपने अधिकारों का उपयोग भी कर सकता है।

2. ऋणदाताओं तथा अंशदाताओं के हितों की सुरक्षा – न्यायालय के निरीक्षण में समापन की दशा में स्वैच्छिक समापन की तुलना में अंशदाताओं तथा ऋणदाताओं के हितों की सुरक्षा अधिक रहती है।

3. निस्तारकों को स्वैच्छिक समापन के लिए नियुक्त निस्तारकों के अधिकार – निस्तारकों को उन सभी अधिकारों का उपयोग करने का अधिकार मिल जाता है जो वे स्वैच्छिक समापन के समय कर सकते हैं। हाँ, इतना अवश्य है कि कुछेक अधिकारों पर न्यायालय प्रतिबन्ध अवश्य लगा सकता है।

4. निस्तारकों की नियुक्ति का अधिकार – न्यायालय निस्तारकों, अतिरिक्त निस्तारकों की नियुक्ति कर सकता है। उन पर न्यायालय का पूर्ण नियंत्रण बना रहता है।

5. जब्ती की कार्यवाही व्यर्थ – यदि कम्पनी की सम्पत्ति के विरुद्ध कोई जब्ती आदेश (Seize Order) हो तो उसका भी प्रभाव समाप्त हो जाता है।

6. दावे तथा मुकदमे स्थगित – कम्पनी के विरुद्ध जितने भी दावे, मुकदमे तथा वैधानिक कार्यवाहियाँ चल रही होती हैं वे सभी स्थगित कर दिये जाते हैं।

प्रश्न
(Questions)

1. कम्पनी के समापन से आप क्या समझते हैं? समापन की विभिन्न विधियों का संक्षेप में वर्णन कीजिये।
2. न्यायालय द्वारा एक कम्पनी के अनिवार्य समापन की परिस्थितियों का विवेचन कीजिये। उक्त प्रकार के समापन आदेश के क्या प्रभाव होते हैं?
3. कम्पनी के समापन की विभिन्न विधियाँ बताइये। एक सार्वजनिक कम्पनी के अनिवार्य समापन के सम्बन्ध में कम्पनी अधिनियम 1956 की व्यवस्थाओं को समझाइये।
4. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिये
   (i) वैधानिक निस्तारक (ii) निरीक्षण समिति
   (iii) कम्पनी का अनिवार्य समापन
5. एक कम्पनी के समापन की कौन-कौन सी रीतियाँ हैं? वे कौन-कौन सी परिस्थितियाँ हैं जिसमें न्यायालय कम्पनी के अनिवार्य समापन का आदेश दे सकता है?
6. न्यायालय द्वारा समापन की दशा में निस्तारक के अधिकार एवं कर्तव्यों का वर्णन कीजिये।
7. एक कम्पनी के समापन से क्या आशय है? कम्पनी के समापन एवं समाप्ति में अन्तर बताइये।
8. निरीक्षण समिति एवं निस्तारक पर एक लेख लिखिये, जिसमें वैधानिक प्रावधान शामिल हो।
9. न्यायालय के निरीक्षण समापन में वैधानिक प्रावधानों की विवेचना कीजिये।
10. किन परिस्थितियों में एक कम्पनी का ऐच्छिक समापन किया जा सकता है? सदस्यों का ऐच्छिक समापन तथा लेनदारों का ऐच्छिक समापन में अन्तर स्पष्ट कीजिये।
11. सदस्यों द्वारा ऐच्छिक समापन एवं ऋणदाताओं द्वारा ऐच्छिक समापन में अन्तर स्पष्ट कीजिये। ऋणदाताओं द्वारा ऐच्छिक समापन के सम्बन्ध में वैधानिक प्रावधानों का उल्लेख कीजिये।
12. क्या न्यायालय बहुमत अंशधारियों की इच्छा से कम्पनी के समापन का आदेश दे सकता है? न्यायालय के आदेश के अन्तर्गत कम्पनी के समापन की विधि की सविस्तार व्याख्या कीजिये।
13. किसी कम्पनी में सदस्यों द्वारा ऐच्छिक समापन से क्या तात्पर्य है? सदस्यों द्वारा ऐच्छिक समापन की विधि बताइये।

अपनी प्रगति की जाँच करें
Test your Progress

NOTES

10

विनिमय साध्य अभिलेख अधिनियम 1881

[NEGOTIABLE INSTRUMENTS ACT 1881]

प्रारम्भिक अध्ययन

शिवाराम बनाम जयराम (Shivaram *Vs.* Jayaram) (1966) के विवाद में यह महत्वपूर्ण निर्णय दिया गया था कि व्यापारिक विश्व के कुछ स्वतन्त्र लेकिन परम्परागत नियम और कानून होते हैं, जिन्हें सभी देशों में समान रूप से अपनाया जाता है। इसी प्रकार विनिमय साध्य विपत्र चाहे जिस रूप में विभिन्न देशों में अपनाए जाएँ, परन्तु सांसारिक सिद्धान्त रीति-रिवाज और नियम प्रायः समान होते हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि विनिमय साध्य लेख-पत्रों का नियम एक देश या राष्ट्र का नियम नहीं है, बल्कि एक सांसारिक नियम है, क्योंकि इस नियम में सभ्य संसार के विभिन्न सिद्धान्त और रीति-रिवाज सम्मिलित हैं। अतः व्यापारिक कार्यों का ठीक प्रकार से चलाने के लिए इस विनिमय साध्य लेख पत्रों के नियमों की व्यवस्था की जाती है।

इंग्लैण्ड के कॉमन लॉ पर आधारित मार्च, 1881 का विनिमय साध्य लेख पत्र अधिनियम (Law of Merchant) अभी भी अपने संशोधित रूप में भारत में लागू होता है। लगभग 100 वर्ष की अवधि में इस अधिनियम में 12 संशोधन हो चुके हैं और इस समय संशोधित रूप में इसमें 133 धाराएँ हैं। इस अधिनियम के अन्तर्गत हम विनिमय विपत्र, प्रतिज्ञा पत्र, चैक आदि उनके व्यवहारों का अध्ययन करते हैं।

इस अध्याय में हम प्रारम्भिक अध्ययन के रूप में विभिन्न प्रकार के विनिमय साध्य विपत्रों का अध्ययन करेंगे।

विनिमय साध्य लेख-पत्र का आशय

विनिमय साध लेख पत्र का साधारणतः आशय यह है कि विनिमय साध्य विलेख एक कागज का टुकड़ा है जो एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को हस्तांतरित होने से दूसरे को धन प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। यह हस्तान्तरण सुपुर्दगी या पृष्ठांकन द्वारा होता है जिसे यह हस्तान्तरित किया जाता है वह धन प्राप्त करने एवं उसे आगे हस्तांतरित करने का अधिकार प्राप्त कर लेता है।

विनिमय साध्य लेख-पत्र की अत्यन्त ही संक्षिप्त परिभाषा अधिनियम की धारा 13(1) में दी गई है–

"विनिमय साध्य लेख-पत्र का अभिप्राय किसी प्रतिज्ञा पत्र, विनिमय विपत्र या चैक से है जो आदेशित व्यक्ति या वाहक को देय होते हैं।" **[धारा 13]**

उपर्युक्त परिभाषा में '**अभिप्राय**' शब्द होने से इस परिभाषा का क्षेत्र अत्यन्त ही संकुचित हो जाता है, इसके स्थान पर यदि 'सम्मिलित होते हैं' शब्द लिखे जाते तो अधिक अच्छा समझा जाता। संकुचित परिभाषा में लेख-पत्रों के स्वभाव और विशिष्ट बातों का अध्ययन नहीं होता है।

प्रसिद्ध न्यायाधीश लॉर्ड विल्स ने विनिमय साध्य लेख-पत्रों की निम्न महत्वपूर्ण परिभाषा दी है–

"विनिमय साध्य लेख पत्र उन प्रलेखों को कहते हैं, जिनका स्वामित्व किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा प्राप्त किया जाता है, जो उसे सद्भावना और मूल्य के बदले प्राप्त करता है, चाहे उसके देने वाले का अधिकार दोषपूर्ण हो।"

थामस के शब्दों में - विनिमय साध्य लेख पत्र वह है जो व्यापार प्रथा अथवा कानून के अनुसार विनिमय साध्य लेख पत्र माना जाता है, जिसका हस्तान्तरण अथवा बेचान सुपुर्दगी से किया जाता है जिसके फलस्वरुप इसका धारक (अ) अपने नाम से वाद प्रस्तुत कर सकता है और (ब) इसकी सम्पत्ति वास्तविक हस्तान्तरिती को हस्तान्तरित हो जाती है चाहे हस्तान्तरण कर्त्ता का अधिकार दोषपूर्ण क्यों न हो।

उपर्युक्त परिभाषाओं के विश्लेषण से हम सामान्य रूप से विनिमय साध्य विपत्रों का विस्तृत अध्ययन कर सकते हैं–

विनिमय साध्य लेख-पत्रों की विशेषताएँ

एक विनिमय साध्य लेख पत्र में निम्नांकित प्रमुख लक्षण पाये जाते हैं–

1. **इलाखत प्रलख** – कानूना रूप म एक विनिमय साध्य पत्र लिखित रूप में होना चाहिए, जिसमें ऋणी के हस्ताक्षर अवश्य हों। इस प्रकार के मौलिक शब्दों का विनिमय साध्य पत्र अधिनियम के अनुसार कोई स्थान नहीं होता है।

2. **हस्तांतरण** – एक विनिमय साध्य पत्र का हस्तान्तरण भी किया जा सकता है। यदि प्रपत्र वाहक है तो मात्र सुपुर्दगी से इसका हस्तान्तरण पूर्ण मान लिया जाता है, परन्तु आदेशित (order) होने की दशा में इसका हस्तांतरण उचित पृष्ठांकन के आधार पर ही सम्भव है कुछ विनिमय विपत्रों का हस्तान्तरण प्रतिबन्धित भी किया जाता है जैसे एकाउन्ट पेशी चैक का हस्तान्तरण नहीं किया जा सकता है।

3. **कानूनी अधिकार** – विनिमय साध्य पत्र को कानूनी रूप से प्राप्त करने वाला व्यक्ति अपने नाम से ऋणी या अन्य पृष्ठांकों पर वाद प्रस्तुत कर सकता है, चाहे विपत्र को तैयार करने के सम्बन्ध में उनका आपस में कोई भी प्रत्यक्ष या स्पष्ट समझौता न हुआ हो।

4. **सद्विश्वास** – विनिमय साध्य पत्रों के धारक और पृष्ठांककों के मध्य सद्विश्वास का व्यवहार होना आवश्यक है। यदि बाद में तथ्यों के आधार पर यह सिद्ध हो जाता है कि किसी पृष्ठांकन में कपटपूर्ण उद्देश्य था और इसकी जानकारी प्रपत्र प्राप्त करने वाले को थी, तो सद्विश्वास के अभाव में प्रपत्र को प्राप्त करने वाला पक्षकार समान रूप से दोषी माना जाता है।

5. **मूल ऋणी को सूचना** – विनिमय साध्य पत्रों के लेन-देन और व्यवहारों में यदि हस्तान्तरण या पृष्ठांकन किया जाता है, तो प्रपत्र को प्राप्त करने वाले का यह दायित्व नहीं है कि वह मूल ऋणी को सूचित करे, परन्तु भुगतान लेने के लिए प्रपत्र के धारक को मूल ऋणी के पास अवश्य जाना पड़ेगा।

6. **मूल्यवान प्रतिफल** – विनिमय साध्य पत्रों की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यही है कि प्रत्येक प्रलेख में यह ऋणी को यह स्पष्ट रूप से स्वीकार करना पड़ता है कि उसे मूल्यवान प्रतिफल प्राप्त हो चुका है।

7. **विनिमय का माध्यम** – मुद्रा के कार्यों में साख-पत्रों या विनिमय साध्य पत्रों का अधिक महत्वपूर्ण स्थान होता है। विनिमय साध्य पत्र मूल्यों के भुगतानों में मुद्रा के स्थान पर काम में लाये जाते हैं, कुछ अर्थशास्त्रियों ने तो इन्हें साख-मुद्रा का भी नाम दिया है। अतः विनिमय साध्य पत्रों को मुद्रा के कार्य के रूप में भी स्वीकार किया जाता है।

8. **स्वामित्व अधिकार सम्बन्धी दोष** – विनिमय साध्य विपत्र के धारक या यथाविधि धारक के अधिकारों पर दोषी हस्तान्तरण करने वाले के दूषित अधिकारों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। बशर्ते हस्तान्तरिणी या धारक (यथाविधि धारक) ने वह विनिमय साध्य पत्र पूर्ण सद्विश्वास एवं पूर्ण प्रतिफल के बदले में प्रपत्र को प्राप्त किया है।

इस प्रकार उपर्युक्त लक्षण और विशेषताएँ सामान्य व्यापारिक जगत में सभी देशों के विनिमय विपत्रों में पाई जाती हैं।

मर्यादाएँ और मान्यताएँ (Presumptions)

पक्षकारों के मध्य किसी विपरीत अनुबन्ध के अभाव में एक विनिमय साध्य पत्र के सम्बन्ध में **धारा 118** के अनुसार कुछ बातों को मान्यता के रूप में मान लिया जाता है, ये मान्यताएँ संक्षिप्त रूप में निम्न हैं–

1. **प्रतिफल सम्बन्धी** – किसी विनिमय को ऋणी द्वारा स्वीकार करते समय, हस्तान्तरण करते समय, पृष्ठांकन की दशा में, यही माना जाता है कि इसे पूर्ण प्रतिफल के दिया जा रहा है, आवश्यकतानुसार विनिमय साध्य पत्र और प्रतिज्ञा पत्र में 'प्रतिफल प्राप्त' शब्दों को स्पष्ट रूप से लिख दिया जाता है।

2. **प्रपत्र की तिथि** – जो भी तारीख विनिमय साध्य पत्र पर लिखी गई है, उसे ही विनिमय साध्य पत्र की तिथि मानी जायेगी। उदाहरणस्वरूप यदि कोई व्यापारी ने 10 अप्रैल को एक चैक जारी किया, परन्तु उस पर तारीख 20 अप्रैल लिखी है तो चैक जारी करने की तिथि 20 अप्रैल मानी जायेगी इस बीच यदि 20 अप्रैल के पूर्व चैक पर हस्ताक्षर करने वाले व्यक्ति की मृत्यु (अथवा पागल या दिवालिया) हो जाती है तो बैंक उस चैक का भुगतान 20 अप्रैल को या उसके बाद भी नहीं करेगा।

3. **स्वीकृति का समय** – कोई भी विनिमय साध्य पत्र उचित समय के अन्दर स्वीकृत होना चाहिए अर्थात् लिखी हुई तिथि के पश्चात् और भुगतान की तिथि के पूर्व विनिमय विपत्र अवश्य स्वीकार किया जाना चाहिए।

4. **हस्तान्तरण या पृष्ठांकन का समय** – विनिमय साध्य लेख-पत्र की स्वीकृति के अनुरूप ही विपत्रों का हस्तान्तरण या पृष्ठांकन का समय भी परिपक्वता या भुगतान की तिथि के पूर्व ही होना चाहिए।

NOTES

5. **बेचान या पृष्ठांकन का क्रम** – विनिमय साध्य लेख-पत्रों पर बेचान का क्रम भी उसी क्रम में होना चाहिए, जिस क्रम से उस पर लिखा गया है।

6. **उचित मुद्रांकन** – किसी भी खोये, फटे या खराब हो जाने वाले विनिमय विपत्र के सम्बन्ध में यह आवश्यक है कि उस पर उचित रूप से मूल्यानुसार स्टाम्प या रसीदी टिकिट लगे होने चाहिए।

7. **धारक या यथाविधि धारक** – विनिमय साध्य पत्र के सम्बन्ध में यह आवश्यक है कि इसका कोई भी धारक या यथा विधि धारक भी होना चाहिए।

विनिमय साध्य लेख पत्रों के प्रकार

उपर्युक्त परिभाषा और आवश्यक लक्षणों के आधार पर भारत में प्रचलित विभिन्न प्रकार के प्रमुख विनिमय साध्य पत्र निम्न प्रकार हैं; **(हम यहाँ पर उन्हीं विनिमय साध्य पत्रों का अध्ययन करेंगे, जिन्हें कानूनी रूप से मान्यता प्राप्त है।)**

प्रतिज्ञा पत्र (Promissory Note)

विनिमय साध्य लेख-पत्र अधिनियम की धारा 4 के अनुसार,

"प्रतिज्ञा-पत्र एक लिखित पत्र है जो कि न तो बैंक नोट है और न करेंसी नोट है जिसमें एक शर्त रहित प्रतिज्ञा होती है, जिस पर प्रतिज्ञा करने वाले के हस्ताक्षर होते हैं।

प्रतिज्ञा-पत्र में प्रतिज्ञा किसी एक निश्चित रकम किसी व्यक्ति को या उसके आदेशानुसार किसी दूसरे व्यक्ति या पत्र के वाहक को देने की होती है।"

अधिनियम में प्रतिज्ञा-पत्र की बहुत ही स्पष्ट एवं विस्तृत परिभाषा दी गई है और कुछ ऐसे प्रलेखों को भी अलग कर दिया गया है, जिन्हें कानूनी रूप से प्रतिज्ञा-पत्र की परिभाषा में शामिल करना आवश्यक नहीं था फिर भी यह पक्षकारों की इच्छा के आधार ही निश्चित हो सकता है कि एक प्रलेख प्रतिज्ञा-पत्र है अथवा नहीं, इसका प्रारूप इसे निर्धारित करने के लिए आवश्यक नहीं है।

प्रतिज्ञा-पत्र के आवश्यक लक्षण

परिभाषा के विश्लेषण से हम एक प्रतिज्ञा-पत्र के निम्न महत्वपूर्ण लक्षणों का अध्ययन कर सकते हैं–

1. **लिखित** – केवल मौखिक वचन या बातचीत को इस अधिनियम के अनुसार प्रतिज्ञा-पत्र नहीं माना जा सकता है, बल्कि वह लिखित में ऋणी की ओर से निश्चित भुगतान करने की प्रतिज्ञा होनी चाहिए। प्रतिज्ञा-पत्र स्याही से, पेन्सिल से, छपा हुआ, अथवा किसी अन्य रूप में लिखित अवश्य होना चाहिए। ब्रुक्स बनाम एल्किन (Brooks *Vs.* Elkins) (1836) एवं गिरी बनाम फिजिक (Geary *Vs.* Physic) (1826) के विवादों में यही निर्णय दिया गया था कि प्रतिज्ञा-पत्र इस रूप में लिखित होना चाहिए जिससे कि अधिनियम के धारा 4 के प्रावधानों की पूर्ति कर सके।

2. **भुगतान करने की स्पष्ट प्रतिज्ञा** – ऋणी को ऋण का भुगतान करना है, इतना ही प्रतिज्ञा पर्याप्त नहीं होती है, बल्कि ऋण के भुगतान करने की स्पष्ट स्वीकारोक्ति होना आवश्यक है। राम चन्द्र बनाम मिर्जा (Ram Chandra *Vs.* Mirza) (1938) के विवाद में यह निर्णय दिया गया था कि किसी प्रपत्र में **प्रतिज्ञा** शब्द का ही लिखा जाना पर्याप्त नहीं होता है, बल्कि अन्य वैकल्पिक शब्दों या वाक्यों के माध्यम से वही आशय प्रगट किया जा सकता है। किसी भुगतान प्राप्ति की रसीद में ही यदि रुपया वापस करने का आश्वासन दे दिया जाता है तो इसे विनिमय साध्य पत्र नहीं माना जा सकता है। बालमुकन्द बनाम मुन्नालाल रामजीलाल (Bal Mukund *Vs.* Munna Lal Ramji Lal) (1970) के विवाद में ऋणी के निम्न आशय के वाक्य एक प्रपत्र में लिखे थे –

"मैं__(नाम), अपनी पूर्ण स्वेच्छा से ऋणदाता से मिला था और उसने 100 रु. ब्याज पर उधार माँगे थे। मैं इस प्रतिज्ञा-पत्र के माध्यम से इस बात की पुष्टि करता हूँ, जिससे कि वक्त जरूरत पर यह गवाही के रूप में काम आवे।"

उपर्युक्त प्रलेख में यद्यपि प्रतिज्ञा शब्द तो प्रयुक्त हुआ है, फिर भी ऋणी ने रुपया भुगतान करने का आश्वासन या प्रतिज्ञा नहीं की है, अतः न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि इसे प्रतिज्ञा-पत्र नहीं माना जा सकता है, जब तक कि इस प्रलेख में भुगतान करने का स्पष्ट आश्वासन नहीं है।

रिजर्व बैंक द्वारा जारी किये नोट (करेंसी नोट) एवं वाणिज्यिक बैंकों द्वारा जारी किये नोटों को विनिमय साध्य पत्रों की परिभाषा में ही शामिल नहीं किया गया है, यद्यपि उनमें बैंक के उचित अधिकारी की ओर से स्पष्ट प्रतिज्ञा की जाती है कि माँगने पर लिखी रकम का भुगतान वाहक को कर दिया जायेगा। इन्हें देश में मुद्रा के रूप में प्रचलित मुद्रा माना जाता है। रिजर्व बैंक अधिनियम की धारा 31 के अनुसार अब वाणिज्यिक बैंक अपने ग्राहकों को 'वाहक को देय' बैंक नोट जारी नहीं कर सकती है, विशिष्ट व्यक्ति को देय माँग पत्र (Demand draft) का अवश्य जारी किया

जा सकता है। इस प्रकार देश में बैंक नोट प्रतिज्ञा पत्र के रूप में वाहक को देय मात्र रिजर्व बैंक द्वारा ही जारी किये जा सकते हैं।

3. **प्रतिज्ञा शर्त रहित होनी चाहिए** – प्रतिज्ञा पत्र में भुगतान करने की प्रतिज्ञा शर्त रहित होनी चाहिए, परन्तु यदि शर्त ऐसी है, जिसका घटना निश्चित है, अर्थात् निश्चित समय के बाद, निश्चित स्थान पर भुगतान करना शर्त रहित माना जा सकता है। नाथूभा बनाम हिम्मतलाल (Nathoobha *Vs.* Himmatlal) (1921) के विवाद में ऋणी ने यह वायदा/प्रतिज्ञा की थी, कि जब भी वह भुगतान के समर्थ हो जायेगा एक निश्चित राशि का भुगतान कर देगा। न्यायालय ने इसे शर्त रहित प्रतिज्ञा माना। इसी प्रकार राबर्ट बनाम पीक (Robert *Vs.* Peake) (1757) के विवाद में ऋणी ने यह प्रतिज्ञा की थी एक निश्चित व्यक्ति की मृत्यु होने पर यदि उसे पर्याप्त धन मिल सका तो वह एक निश्चित राशि का भुगतान ऋणदाता को करेगा न्यायालय ने इसे शर्त रहित प्रतिज्ञा पत्र माना था।

4. **ऋणी द्वारा हस्ताक्षरित** – प्रतिज्ञा पत्र में यह प्रतिज्ञा ऋणी द्वारा की जाती है और यह आवश्यक नहीं है कि प्रलेख की भाषा भी ऋणी द्वारा लिखी जाये, यह प्रपत्र ऋणदाता या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा तैयार किया जा सकता है, परन्तु स्वीकृति के रूप में जिसकी ओर से प्रतिज्ञा की जा रही है, उसी व्यक्ति के हस्ताक्षर होना चाहिए। उसकी ओर से अन्य व्यक्ति या प्रतिनिधि द्वारा किये हस्ताक्षर मान्य नहीं होंगे। यदि एजेण्ट द्वारा हस्ताक्षरित ही है तो एजेण्ट को यह स्पष्ट रूप से लिखना चाहिए कि वह किसकी ओर से हस्ताक्षर कर रहा है, अन्यथा एजेण्ट स्वयं उत्तरदायी माना जायेगा। यदि ऋणी पढ़ा-लिखा नहीं है तो वह अँगूठा भी लगा सकता है। मूलतः इस प्रावधान को शामिल करने का उद्देश्य यही है कि **ऋणी द्वारा हस्ताक्षर करने का उद्देश्य अपने आप को उत्तरदायी स्वीकार करना है।**

5. **पक्षकारों का निश्चित होना** – प्रतिज्ञा पत्र में भुगतान प्राप्त करने वाला और भुगतान करने वाले पक्षकार निश्चित होने चाहिए। यह पत्र वाहक को देय नहीं होता है, अतः प्रतिज्ञा किसी निश्चित व्यक्ति द्वारा, किसी अन्य निश्चित व्यक्ति को भुगतान करने की जानी चाहिए। यह नाम पद भी हो सकता है, जैसे बैंक के मैनेजर को देय।

6. **निश्चित धनराशि** – प्रतिज्ञा पत्र में लिखी गई धनराशि निश्चित होनी चाहिए और यह देश की कानूनी मुद्रा में ही देय होनी चाहिए। कोई आकस्मिक परिवर्तनों की इस धनराशि में सम्भावना नहीं होनी चाहिए। यद्यपि ब्याज की राशि अवश्य अनिश्चित हो सकती है परन्तु इससे मूल राशि का भुगतान अनिश्चित नहीं हो जाता है। मुट्टू चेट्टी बनाम मुटन चेट्टी (Muttu Chetti *Vs.* Muttan Chetti) के विवाद में यही निर्णय दिया गया कि धन की निश्चित मात्रा अथवा निश्चित रकम जैसी प्रतिज्ञा को निश्चित धन की प्रतिज्ञा नहीं माना जा सकता है। स्मिथ बनाम नाइटएंगिल (Smith *Vs.* Nightingle) (1818) के विवाद में ऋणी ने प्रतिज्ञा पत्र में 'पाँच सौ रुपये एवं अन्य सभी धनराशि' जो देय होंगे लिखा था, न्यायालय ने इसे उचित प्रतिज्ञा पत्र नहीं माना। इसी प्रकार बारवो बनाम ब्रोडहर्स्ट (Barbow *Vs.* Broadhurst) (1826) के विवाद में भी ऋणी ने प्रतिज्ञा पत्र में लिखा था कि "पाँच सौ रुपये में से अपनी रकम घटा लेने के बाद भुगतान करूँगा", अतः न्यायालय ने रकम निश्चित न होने के कारण इसे उचित प्रतिज्ञा पत्र नहीं माना।

अपवादस्वरूप अधिनियम की धारा 5 के तृतीय पैराग्राफ के निम्न आदेश ध्यान देने योग्य हैं, जिनमें निम्न अनिश्चितताएँ होने पर भी राशि निश्चित मानी जाती है –

(अ) निश्चित दर से ब्याज का भुगतान, इसकी गणना भुगतान तिथि तक की जायेगी।

(ब) निश्चित की गई विनिमय दर या प्रचलित विनिमय दर या प्रचलित विनिमय दर के अनुसार निश्चित रकम का भुगतान किया जायेगा।

(ब) रकम का किश्तों (निश्चित) में भुगतान किया जायेगा, परन्तु यदि ऋणी किसी किश्त का भुगतान करने में असफल होता है तो ऋण की समस्त रकम देय हो सकती है।

7. **स्थान, तिथि, आदि आवश्यक नहीं** – सामान्य रूप से प्रतिज्ञा पत्र में ऋणी और ऋणदाता के नाम और पूरे पते लिखे जाते हैं और हस्ताक्षर के साथ तिथि भी लिखी जाती है, परन्तु कानूनी रूप से यह आवश्यक नहीं है। यदि प्रपत्र में भुगतान किसी निश्चित तिथि को किया जाना है तो हस्ताक्षर करने की तिथि लिखे या न लिखे जाने पर प्रलेख व्यर्थ नहीं हो जाता है।

उपर्युक्त सभी विशेषताओं के बावजूद यदि प्रतिज्ञा पत्र स्टांप्स एक्ट के अनुसार उचित मूल्य के टिकिट नहीं लगाये गये हैं तो इसकी वैधानिकता अवश्य नष्ट हो सकती है, अतः प्रतिज्ञापत्र पर टिकिट लगे होने चाहिए, जिन पर ऋणी के हस्ताक्षर भी हों।

निश्चित अवधि के पश्चात् देय प्रतिज्ञा-पत्र का नमूना

रकम रु. 1200 केवल

3/3, सिविल लाइन्स,
इन्दौर
15 अप्रैल, 2003

मैं, कैलाशसिंह, यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि धनराशि 1200 रु. (एक हजार दो सौ रुपये) श्रीमती कमला ठाकुर भोपाल या उनके आदेशानुसार 12% ब्याज सहित तीन माह में भुगतान करूँगा, जिसका मूल्य प्राप्त है।

हस्ता. कैलाशसिंह

मुद्रांक
1 रु.

इस प्रतिज्ञा पत्र में ऋणी अर्थात् भुगतान करने वाला कैलाशसिंह और पाने वाली श्रीमती कमला ठाकुर हैं।

माँग पर देय प्रतिज्ञा-पत्र का नमूना

रकम रु. 1200 केवल

3/3, सिविल लाइन्स,
इन्दौर
15 अप्रैल, 2003

मैं, कैलाश सिंह, यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि माँगने पर 1200 रु. (एक हजार दो सौ केवल) श्रीमती कमला ठाकुर भोपाल या उनके आदेशानुसार 12% ब्याज सहित भुगतान करूँगा जिसका मूल्य प्राप्त है।

हस्ता. कैलाश सिंह

मुद्रांक
1 रु.

'मूल्य प्राप्त है' शब्दों का लिखना प्रतिज्ञा पत्र और विनिमय विपत्रों में लिखना कानूनी अनिवार्यता नहीं है, परन्तु सामान्य व्यापारिक व्यवहारों में इसे अवश्य लिखा जाता है। न लिखने पर यदि प्रतिफल का प्रश्न उदय होता है तो वह दायित्व ऋणदाता का होगा कि वह सिद्ध करने प्रतिज्ञा-पत्र लिखने वाले को प्रतिफल अवश्य प्राप्त हो गया था।

मुद्रांक प्रत्येक प्रतिज्ञा पत्र में अवश्य लगे होने चाहिए और एक हस्ताक्षर मुद्रांक पर भी कर देने उचित समझे जाते हैं, अथवा मुद्रांक को लिखकर रद्द किया जाना चाहिए।

विनिमय विपत्र (Bills of Exchange)

विनिमय साध्य लेखपत्र अधिनियम की धारा 5 के अनुसार,

"विनिमय पत्र या विपत्र एक ऐसा लेख है, जिसमें लिखने वाले के हस्ताक्षर के अन्तर्गत एक शर्त रहित आदेश होता है, जिसमें एक निश्चित व्यक्ति, एक निश्चित रकम आदेशानुसार या लिखने वाले को देने का वचन देता है।"

इस प्रकार एक ऋण की स्वीकृति ऋणी द्वारा ऋणदाता के आदेशानुसार लिखित रूप में दी जाती है। सामान्य रूप से एक विनिमय विपत्र में तीन पक्षकार हो सकते हैं –

(i) बिल लिखने वाला अर्थात् ऋणदाता।

(ii) बिल स्वीकृत करने वाला या समय पर भुगतान करने का वचन देने वाला अर्थात् ऋणी।

(iii) रुपया प्राप्त करने वाला – यह अन्य व्यक्ति भी हो सकता है अथवा ऋणदाता स्वयं भी।

बिल को लिखने वाला प्रपत्र ऋणी के समक्ष स्वीकृति के लिए प्रस्तुत करता है और उचित मुद्रांक पर स्वीकृति के बाद ही यह प्रपत्र विनिमय विपत्र या बिल बनवाता है। देय तिथि पर भी यह बिल ऋणी या भुगतान करने वाले के समक्ष प्रस्तुत किया जाना चाहिए। ऋणी का स्वयं दायित्व नहीं है कि वह बिल का भुगतान करने स्वयं जाये।

विनिमय विपत्र की विशेषताएँ

अधिनियम द्वारा दी गई परिभाषा के विश्लेषण से हमें एक विनिमय विपत्र में निम्न महत्वपूर्ण विशेषताएँ मिल सकती हैं –

1. **लिखित** – विनिमय विपत्र स्याही से लिखित या टाइप किया हुआ अथवा छपा हुआ हो सकता है।

2. **धनराशि चुकाने का आदेश** – विनिमय विपत्र में यदि निवेदन या प्रार्थना की गई है और उसे स्वीकार कर लिया गया है तो इसे वैधानिक रूप नहीं दिया जा सकता है, इसमें आदेश होना चाहिए। उदाहरणार्थ, कैलाश ने कमला को कहा कि "कृपा करके मुझे या मेरे आदेशानुसार 400 रु. दे दीजिए और इसे मेरे खाते में लिख लें, मैं आपकी इस दया का बहुत आभारी रहूँगा।

आपका विनीत सेवक

हस्ता. कैलाश"

इसे विनियम विपत्र नहीं माना जा सकता है क्योंकि इसमें भुगतान करने **का आदेश** नहीं है।

3. **शर्तरहित आदेश** – विनिमय विपत्र में भुगतान का आदेश शर्त रहित होना चाहिए, परन्तु निम्न शब्दों के साथ विनिमय विपत्र शर्त रहित ही माना जायेगा–

(i) किसी निश्चित घटना घटित होने के पश्चात्।

(ii) लिखित या स्वीकृत तिथि के निश्चित दिन पश्चात्।

(iii) देखते ही या माँगने पर।

(iv) देखने के या माँगने के निश्चित् दिन पश्चात्।

यदि कुछ ऐसी बात शर्त के रूप में शामिल कर दी जाती है, जिसका पूरा होना या न होना परिस्थितियों पर निर्भर करता है तो इसे शर्त सहित आदेश माना जायेगा और ऐसा बिल व्यर्थ होगा। जैसे जहाज के आने पर, फसल तैयार होने पर, शादी/बच्चे हो जाने पर।

(4) **लिखने वाले के हस्ताक्षर** – विनिमय विपत्र के लेखक द्वारा हस्ताक्षर अवश्य होने चाहिए। फोस्टर बनाम मैकिनन (Foster *Vs.* Mackinnon) (1869) के विवाद में यह निर्णय दिया गया था कि विनिमय विपत्र पर हस्ताक्षर के अभाव में विपत्र अधूरा और व्यर्थ माना जायेगा। लेखक यदि पढ़ा लिखा नहीं है तो अँगूठा-निशानी भी लगा सकता है। हस्ताक्षर एजेण्ट के द्वारा भी किये जा सकते हैं।

(5) **ऋणी निश्चित हो** – बिल को स्वीकार करने वाला निश्चित व्यक्ति हो, इस प्रकार का सन्दर्भ या विवरण लेखक द्वारा ही दिया जाना चाहिए। स्वीकृति देने वाले एक से अधिक व्यक्ति हो सकते हैं, परन्तु वे एक-दूसरे का विकल्प (alternative) नहीं बन सकते हैं, वे संयुक्त रूप से ही उत्तरदायी होते हैं।

(6) **धनराशि प्राप्तकर्ता** – विनिमय विपत्र में धनराशि प्राप्त करने वाला ऋणदाता स्वयं या उसका आदेशित व्यक्ति हो सकता है, परन्तु सामान्य रूप से बिल को वाहक को देय नहीं बनाया जा सकता है।

(7) **निश्चित रकम** – विनिमय विपत्र में देय तिथि या माँगने पर चुकाने वाली रकम निश्चित होनी चाहिए, परन्तु ब्याज की रकम की गणना समय के अनुसार की जा सकती है, ब्याज चुकाये जाने की दशा में ब्याज की दर स्पष्ट रूप से दी जानी चाहिए।

(8) **प्रचलित मुद्रा में भुगतान** – विनिमय विपत्र में भुगतान की प्रतिज्ञा देश की चालू मुद्रा में ही की जानी चाहिए। यदि कोई पक्षकार वस्तु की किसी मात्रा देने की प्रतिज्ञा करता है तो इसे विनिमय विपत्र नहीं माना जायेगा।

(9) **आवश्यक मुद्रांक** – भारतीय स्टांप्स एक्ट के अनुसार किसी भी विनिमय विपत्र पर प्रचलित दर से आवश्यक मूल्य के रेवेन्यू स्टाम्प अवश्य लगे होने चाहिए। जहाँ तक सम्भव हो ऋणी के हस्ताक्षर भी इन पर किये जाये अथवा इन्हें चिपका कर रद्द भी किया जा सकता है।

(10) **ऋणी की स्वीकृति** – ऋणदाता या बिल को लेखक विनिमय विपत्र में ऋणी को निश्चित भुगतान करने का आदेश देता है, परन्तु इसे ड्राफ्ट (या पत्र ही माना जायेगा, इस ड्राफ्ट) पर जब ऋणी अपनी स्वीकृति देकर अपने हस्ताक्षर कर देता है या मात्र हस्ताक्षर कर देता है, तब ही इसे विनिमय विपत्र के रूप में वैधानिकता प्राप्त होती है।

(11) व्यावहारिक प्रचलन के अनुसार विनिमय विपत्र पर तिथि और दोनों पक्षकारों के पते भी लिखे जाते हैं। यद्यपि कानूनी रूप से मात्र भुगतान की तिथि (अथवा माँगने पर देय) और भुगतान का स्थान लिखना आवश्यक समझा जाता है।

(12) व्यापारिक प्रचलन के अन्तर्गत 'मूल्य प्राप्त' शब्दों को भी लिखा जाना चाहिए, परन्तु कानूनी रूप से यह आवश्यक नहीं है।

माँग पर देय विनिमय विपत्र का नमूना

रकम 1200 रु. केवल

313, हेमामालिनी मार्ग,
बम्बई-90
15 मई, 2003

सेठ कैलाश सिंह धूरिया,
35, वेला रोड़,
भोपाल,

माँगने पर 1200 रु. (एक हजार दो सौ रु. केवल) मुझे या मेरे आदेशानुसार भुगतान करो, जिसका मूल्य प्राप्त है।

स्वीकार है। हस्ताक्षर–कमला ठाकुर

मुद्रांक
1 रु.

हस्ताक्षर–कैलाशसिंह धूरिया

तिथि पर देय विनिमय विपत्र का नमूना

रकम 1200 रु. केवल

313, हेमामालिनी मार्ग,
बम्बई-90
15 अप्रैल, 2003

सेठ कैलाश सिंह धूरिया,
35, वेला रोड़,
भोपाल

आज से तीन माह पश्चात् मुझे या मेरे आदेशानुसार 1200 रु. (एक हजार दो सौ रु. केवल) भुगतान करो, जिसका मूल्य प्राप्त है।

स्वीकार है। हस्ताक्षर–कमला ठाकुर

मुद्रांक
1 रु.

हस्ताक्षर–कैलाशसिंह धूरिया

प्रतिज्ञा-पत्र और विनिमय विपत्र में अन्तर

यद्यपि वैधानिक परिभाषाओं के आधार पर प्रतिज्ञा-पत्र और विनिमय विपत्र में अन्तर किया गया है, परन्तु निम्न आधारों पर इनके अन्तर को स्पष्ट समझा जा सकता है –

1. **पक्षकारों की संख्या** – प्रतिज्ञा-पत्र में दो पक्षकार होते हैं, जब कि विनिमय विपत्र में तीन पक्षकार भी होते हैं।

2. **लेखक की स्थिति** – प्रतिज्ञा-पत्र में सामान्य रूप से लेखक ही ऋणी होता है, परन्तु विनिमय विपत्र में लेखक ऋणदाता होता है और ऋणी को भुगतान करने का आदेश देता है।

3. **स्वीकृति** – प्रतिज्ञा पत्र में चूँकि ऋणी स्वयं ही प्रतिज्ञा करता है अतः स्वीकृति की आवश्यकता नहीं रहती है, लेकिन विनिमय विपत्र में बिल का लेखक ऋणदाता होता है, अतः ऋणी की स्वीकृति आवश्यक होती है।

4. **लेखक का दायित्व** – प्रतिज्ञा-पत्र में लेखक स्वयं ऋणी होता है और भुगतान की प्रतिज्ञा करता है अतः उसका दायित्व प्रधान और पूर्ण होता है, जब कि विनिमय विपत्र में लेखक ने भुगतान किसी तीसरे पक्ष को करने को कहा है तो उसका दायित्व शर्तरहित और गौण होता है। अर्थात् यदि विनिमय विपत्र का भुगतान ऋणी नहीं करता है, तब ही विनिमय विपत्र के लेखक का दायित्व उदय होता है।

5. **अनादरण की सूचना** – प्रतिज्ञा-पत्र के अनादरण होने पर इसकी सूचना ऋणदाता (देनदार) एवं बेचान कर्त्ताओं को देना आवश्यक नहीं होता है, लेकिन विनिमय विपत्र के अनादर परविपत्र के धारी को इसकी सूचना बिल के लेखक एवं वेचनाकर्त्ता को देना आवश्यक होता है।

6. **वचन एवं आदेश** – प्रतिज्ञा-पत्र में ऋणी (लेखक) शर्तरहित प्रतिज्ञा करता है, जब कि विनिमय विपत्र की दशा में लेखक (ऋणदाता) भुगतान करने का आदेश देता है।

7. **भुगतान प्राप्तकर्त्ता** – विनिमय विपत्र में लेखक स्वयं भुगतान प्राप्तकर्त्ता हो सकता है, जबकि प्रतिज्ञा-पत्र में भुगतान कर्त्ता लेखक के अतिरिक्त ही कोई अन्य व्यक्ति होता है।

उपर्युक्त असमानताओं के अतिरिक्त विदेशी विनिमय विपत्रों में सैट बनाए जाते हैं और अनादरण पर लिखने के स्थान पर ही इनका नोटिंग और प्रोटेस्टिंग कराना उचित माना जाता है। इस प्रकार की बातें प्रतिज्ञा-पत्रों के साथ लागू नहीं होती हैं। (इस प्रकार की अन्य बातों का विस्तृत अध्ययन अगले अध्यायों में किया गया है)

विनिमय विपत्रों के प्रकार

वैधानिक रूप से विनिमय विपत्र दो प्रकार के हो सकते हैं– देशी विनिमय विपत्र और विदेशी विनिमय विपत्र। देशी विनिमय विपत्र का अर्थ और महत्वपूर्ण विशेषताएँ ऊपर दी जा चुकी हैं।

विदेशी विनिमय विपत्र – वैधानिक रूप से विदेशी विनिमय विपत्रों की कोई अलग परिभाषा नहीं दी गई है, परन्तु इनके लिखने और प्रतियों के आधार पर ही इन्हें अलग रूप से समझा जा सकता है। विदेशी विनिमय विपत्र की साधारणतया तीन प्रतियाँ बनाई जाती हैं इन्हें वैकल्पिक रूप में तैयार किया जाता है अर्थात् तीन में से कोई एक ही प्रति वैध होती है, तीनों को अलग-अलग भेजा जाता है, जिससे कि यदि एक प्रति रास्ते में खो जाती है तो दूसरी या तीसरी प्रति काम में आ सकती है। स्वीकृति के समय इनमें से किसी एक बिल पर ही टिकिट लगाया जाता है और शेष दोनों भाग व्यर्थ हो जाते हैं।

अधिनियम की धारा 132 एवं 133 में विदेशी बिलों के नियमन से सम्बन्धित निम्न प्रावधान लागू होते हैं –

(i) विदेशी विनिमय विपत्र भागों में तैयार होता है और इन भागों को ही सामूहिक रूप से बिल माना जाता है। ऋणी को इनमें से किसी एक ही बिल का भुगतान करना पड़ता है और शेष व्यर्थ माने जाते हैं।

(ii) लेखक बिल को तीन भागों में तैयार करके भेजता है, परन्तु स्वीकृति एक ही भाग की मानी जाती है, परन्तु यदि स्वीकृति तीनों बिलों पर अलग-अलग व्यक्तियों के पक्ष में दे दी जाती है तो इन्हें तीन अलग बिल माना जायेगा और भुगतान कर्त्ता इन तीनों बिलों को चुकाने के लिए दायी हो सकता है।

(iii) बिल के धारक अथवा यथाविधि धारकों के मध्य सम्बन्धों का नियमन धारा 133 में दिया गया है, जिसके अन्तर्गत किसी भाग के प्रथम प्राप्ति कर्त्ता को ही उचित वैधानिक अधिकार उपलब्ध होते हैं, अन्य यथाविधिधारियों को नहीं।

सामान्य रूप से विदेशी बिलों का नियमन दोनों अलग देशों की सरकारों के कानून के अनुसार अपने-अपने देशों में अलग-अलग होता है।

विदेशी विनिमय विपत्र का नमूना

(चूँकि यह विदेश के व्यापारी के साथ व्यवहार में लाया जाता है अतः श्रेष्ठ यही समझा जाता है कि इसे अंग्रेजी में ही लिखा जाये)

Rs. 10,000/-	54, Ganga Ram Marg,
Or	REWA (M.P.) INDIA
$ 1,000=00	18th April, 2003

Sixty five days after the sight of first of Exchange **(Second and Third of the same tenor and date unpaid)** pay to the order of M/s Kennedy Inc., New York, the sum of Rs. 10,000 or $ 1000 (Rupees Ten Thousand or Dollars One Thousand only) for value received.

Sd. Sita Ram Bajaj

To

M/s. Kennedy Inc.
3/79-A, Kenning Sq.
New York (USA)

भारत का मुद्रांक

विदेश का मुद्रांक

उपर्युक्त के अनुसार ही दूसरा और तीसरा बिल लिखकर अलग भेजा जाता है अन्तर केवल प्रथम, द्वितीय और तृतीय को रद्द करने में किया जाता है।

देशी और विदेशी बिलों में अन्तर

देशी बिल भारत में ही इसी देश के किसी अन्य निवासी पर लिखे जाते हैं, जिनका भुगतान भारत में किया जाना है, परन्तु विदेशी बिलों की स्थिति में इस दृष्टि से कुछ अन्तर पाया जाता है। देशी और विदेशी बिलों में अन्तर निम्न आधारों पर किया जा सकता है –

1. **प्रतिलिपि** – देशी बिल की केवल एक ही प्रति बनाई जाती है, जबकि विदेशी बिलों की तीन प्रतियाँ बनानी पड़ती हैं।

2. **मुद्रांक** – विदेशी बिलों में मुद्रांक पहले लेखक द्वारा लगाया जाता है और बाद में स्वीकर्त्ता द्वारा अपने देश का मुद्रांक लगाया जाता है, अतः विदेशी बिलों में दो बार मुद्रांक लगाने की आवश्यकता रहती है, जबकि देशी विनिमय विपत्र में एक बार ही स्वीकृति देने वाले व्यक्ति द्वारा स्टाम्प लगाया जाता है।

विदेशी बिलों की भुगतान अवधि (USANCE)

जब किसी बिल को लिखा एक देश में जाता है और भुगतान अन्य देश में किया जाता है तो व्यापारिक परम्पराओं के अनुसार उसकी कोई निश्चित भुगतान अवधि या तिथि मानी जाती है। विदेशी बिलों के सम्बन्ध में दोनों पक्षकारों को अवधि का निर्धारण करते समय अपने देशों के कानून का अध्ययन अवश्य कर लेना चाहिए, अन्यथा ऋणों के निपटारे की कठिन समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं।

विनिमय विपत्रों के अन्य स्वरूप

1. **पारस्परिक सहायता या अनुग्रह विपत्र** (Accommodation Bills) – प्रायः व्यापारियों को आपस में अति अल्प काल की वित्तीय आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के लिए अन्य व्यापारियों से या बैंकों से रुपया उधार माँगना पड़ता है। इसके लिए बैंक में कोई प्रतिभूति जमा करने के स्थान पर व्यापारी एक-दूसरे पर विनिमय विपत्र लिखकर स्वीकार कर लेते हैं और इन विपत्रों को बैंक से भुना लेते हैं, बैंक से प्राप्त राशि को दो-तीन महीने प्रयोग कर लिया जाता है और देय तिथि को बैंक को बिल की राशि का भुगतान कर दिया जाता है। इन विनिमय विपत्रों में भुनाने या बट्टे की राशि धन के अनुपात में बाँटी जाती है। व्यावहारिक रूप में कोई प्रतिफल नहीं दिया जाता है परन्तु विपत्र में 'मूल्य प्राप्त है' शब्दों को अवश्य लिखा जाता है।

2. अपूर्ण या कोरा विपत्र (Incmoate Bill) – जब ऋणी बिल के लेखक का बिल पर मुद्राक लगा कर और स्वीकार करके दे दे या कुछ आवश्यक बातों को बिना लिखे हस्ताक्षर करके दे देता है जिससे कि बिल का धारक उन बातों को बाद में भर ले तो इसे अपूर्ण बिल कहते हैं। यद्यपि यह अपूर्ण या कोरा विनिमय विपत्र कहलाता है फिर भी इसे स्वीकार करने वाला व्यक्ति इस विपत्र के भुगतान के लिए दायी होता है। इस प्रकार के विपत्र का हस्तान्तरण यह प्रमाण होता है कि ऋणी ने बिल के धारक को सम्पूर्ण अधिकार दे दिये हैं। (धारा 20)

3. **तिथि रहित विपत्र** (Undated Bill) – अधिनियम की धारा 18 में यह व्यवस्था की गई है कि यदि किसी बिल में लिखने की तिथि गलत हो जाये या लिखने से रह जाये तो इस प्रकार के तिथि रहित बिल को वैध माना जायेगा।

4. **संदिग्ध या अस्पष्ट बिल** (Ambiguous Bill) – धारा 17 के अनुसार, यदि कोई बिल इस प्रकार गलत ढंग से लिखा गया है कि उसे प्रतिज्ञा पत्र, या विनिमय पत्र कुछ भी समझा जा सकता है, तो इस प्रकार के विनिमय विपत्र को अस्पष्ट या संदिग्ध विनिमय विपत्र कहा जाता है। इसके अतिरिक्त लेखक और ऋणी एक ही व्यक्ति हो या ऋणी कोई ऐसा व्यक्ति हो जिसमें अनुबन्ध करने की योग्यता नहीं है अथवा कोई काल्पनिक व्यक्ति हो तो बिल का लेखक ही भुगतान के लिए दायी हो सकता है एवं बिल का धारक ऐसे पत्र को विनिमय विपत्र या प्रतिज्ञा पत्र मान सकता है।

5. **कल्पित या झूठा विपत्र** (Fictitious Bill) – जब किसी बिल के लिखने वाला या उसे स्वीकार करने वाला व्यक्ति कल्पित है तो अंग्रेजी नियम के अनुसार ऐसे विपत्र वाहक को देय विपत्र माना जाता है, बिल के दोनों पक्षकारों में से किसी भी एक को भुगतान के लिए दायी समझा जा सकता है।

6. **प्रलेखीय या सशर्त विपत्र** (Documentary Bill) – जिन विनिमय विपत्रों को स्वीकार करने के लिए जहाजी (बिल ऑफ लोडिंग) बिल्टी, बीमा पालिसी एवं बीजक आदि की प्राप्ति पर स्वीकार किया जाता है तो इन्हें प्रलेखीय विनिमय विपत्र माना जाता है। इनकी स्वीकृति या भुगतान प्रायः बैंक के माध्यम से ही किये जाते हैं।

7. **बैंक विपत्र** – जब बैंक की एक शाखा किसी दूसरी शाखा पर किसी निश्चित भुगतान करने का आदेश देती है तो इसे बैंक विपत्र (Bank Draft) कहा जाता है।

उपर्युक्त विभिन्न प्रारूपों के अतिरिक्त समय पर देय या माँगने पर देय विनिमय विपत्र हो सकते हैं।

चैक (Cheque)

धारा 6 के अनुसार, एक निश्चित बैंक पर लिखा जाने वाला विपत्र चैक कहलाता है, जिसका भुगतान माँगने पर किया जाता है। केवल चैक ही माँग पर देय विपत्र होता है, जिसमें बैंक को भुगतान करने का लिखित आदेश होता है, परन्तु इस पर बैंक की स्वीकृति होना आवश्यक नहीं है, क्योंकि यह चैक बैंक द्वारा प्रदान किये विशेष रूप से छपे हुए कागजों पर लिखा होता है। लेखक द्वारा हस्ताक्षरित इस फार्म में पाने वाले का नाम और भुगतान की राशि लिखी जाती है, यह राशि बैंक द्वारा माँगने पर देय होती है। अतः हम कह सकते हैं कि सभी चैक विपत्र तो होते हैं परन्तु सभी विपत्र चैक नहीं हो सकते हैं।

चैक के आवश्यक लक्षण

अधिनियम द्वारा दी गई परिभाषा और व्यावहारिक प्रचलनों के आधार पर चैक में निम्नांकित प्रमुख विशेषताओं या आवश्यक लक्षणों का होना आवश्यक है–

(i) चैक, किसी निश्चित बैंक पर एक लिखित एवं शर्त रहित आदेश होता है।

(ii) चैक निश्चित बैंक की शाखा विशेष पर ही लिखा जाता है।

(iii) चैक पर लेखक के हस्ताक्षर होना आवश्यक है।

(iv) चैक पर लिखी रकम निश्चित होनी चाहिए।

(v) चैक का भुगतान बैंक द्वारा माँग पर देय होता है।

(vi) भुगतान प्राप्ति के लिए चैक बैंक में प्रस्तुत किया जाना चाहिए।

(vii) चैक उस व्यक्ति को देय होता है, जिसका नाम उस चैक पर लिखा हुआ है, परन्तु यह आदेशानुसार अथवा वाहक को देय भी हो सकता है।

NOTES

चैक का नमूना

No. EDP/J 14/089754	No. EDP/J 14/089754
	Dated : 15.05.2003
Dated 15th May, 2003	PUNJAB NATIONAL BANK
Pay to Mr. Kailash	Civil Lines, Gwalior
Agarwal	
Amount Rs. 500/-	
whether crossed.....yes	Pay to Mr. Kailash Agarwal or bearer or order a sum of Rs. Five hundred only.
Sd. Kamla	
Signatures of Drawer	
	Rs. 500/- Sd. Kamla
COUNTER FOIL	A/c. No. 16921

चैक और विनिमय विपत्र में अन्तर

जैसा कि हमने पढ़ा है कि सभी चैक विपत्र होते हैं, परन्तु सभी विपत्र चैक नहीं होते हैं अतः हम चैक और विनिमय में अन्तर निम्न आधारों पर कर सकते हैं–

(1) चैक हमेशा किसी बैंक की निश्चित शाखा पर ही लिखा जाता है, जबकि विनिमय विपत्र किसी व्यक्ति, संस्था या बैंक पर भी लिखा जा सकता है।

(2) चैक हमेशा माँग पर ही देय होता है, परन्तु विनिमय विपत्र माँग पर देय अथवा तिथि पर देय भी हो सकता है।

(3) चैक में किसी प्रकार की स्वीकृति की आवश्यकता नहीं होती है, परन्तु विनिमय विपत्र केवल स्वीकृति के पश्चात् ही वैधानिक रूप ग्रहण कर सकता है।

(4) विनिमय विपत्र में भुगतान की तिथि के बाद तीन अतिरिक्त दिनों का समय दिया जाता है जबकि चैक प्रस्तुत करने पर ही माँग पर देय होता है।

(5) चैक के अनादृत होने की सूचना देना आवश्यक नहीं है, परन्तु विनिमय विपत्र के अनावरण पर सभी बेचानकर्त्ता और बिल के लेखक को सूचना देना आवश्यक होता है।

(6) चैक जारी करने वाले की मृत्यु, पागलपन या दिवालिया होने की दशा में बैंक चैक का भुगतान करने से इंकार कर सकता है, जबकि विनिमय विपत्र में लेखक की मृत्यु का विनिमय विपत्र के भुगतान पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

(7) चैक का रेखांकन किया जा सकता है, परन्तु विनिमय पत्र का रेखांकन नहीं किया जा सकता है।

चैक का अनादरण – चैक बैंक को माँग पर भुगतान करने का आदेश होता है, फिर भी कुछ ऐसी परिस्थितियाँ हो जाती हैं, जिनमें बैंक चैक का भुगतान करने में असमर्थ होता है, ऐसी कुछ परिस्थितियों का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है–

(1) ग्राहक (लेखक) द्वारा ही चैक का भुगतान न करने की सलाह पर।

(2) चैक के लेखक की मृत्यु की सूचना बैंक को प्राप्त हो जाने पर बैंक उस ग्राहक के खाते के चैक का भुगतान नहीं करता है।

(3) ग्राहक के पागल हो जाने पर, जब बैंक को इसकी उचित सूचना मिल जाती है तो बैंक चैक का भुगतान नहीं करता है।

(4) ग्राहक को जब न्यायालय द्वारा दिवालिया घोषित कर दिया जाता है तो बैंक उचित सूचना मिलने पर उस ग्राहक के चैकों का भुगतान नहीं करता है।

(5) जब न्यायालय द्वारा बैंक को आदेश दे दिया जाता है कि किसी अमुक ग्राहक के खातों के भुगतानों को रोक दिया जाये तो न्यायालय की सूचना के पश्चात् बैंक उस ग्राहक के चैकों का भुगतान नहीं करता है।

(6) खाते के बदलने की सूचना प्राप्त होने पर अर्थात् जब ग्राहक ने अपने सभी अधिकारों का हस्तांकन (बैंक के खाते के संचालन सहित) किसी अन्य व्यक्ति को कर दिया है तो इस खाते में पुराने चैक का भी भुगतान बैंक को रोक सकता है।

(7) चैक प्रस्तुत करने वाले अर्थात् भुगतान माँगने वाले व्यक्ति के सम्बन्ध में जब बैंक को किसी त्रुटि की सम्भावना लगे तो बैंक को उसका भुगतान नहीं करना चाहिए।

(8) ग्राहक द्वारा जब बैंक को सूचना दी जाती है कि उन्होंने संस्था का हिसाब बन्द कर दिया है, तो उनके इस आदेश के अनुसार बैंक ग्राहक के चैकों का भुगतान नहीं करता है।

उपर्युक्त के अतिरिक्त निम्न कुछ ऐसी परिस्थितियाँ हैं, जिनमें बैंक को कानूनी व्यवहार की सुरक्षा की दृष्टि से चैक का भुगतान नहीं करना चाहिए।

(9) चैक पुराना हो गया हो अर्थात् चैक पर यदि 6 माह से अधिक पुरानी तारीख पड़ी होती है, तो बैंक उस चैक का भुगतान करने से इंकार कर सकता है।

(10) चैक पर भविष्य की तारीख पड़ी होने पर भी बैंक चैक का उस तिथि के पूर्व भुगतान नहीं करेगा।

(11) ग्राहक के खाते में पर्याप्त धनराशि जमा न होने पर ग्राहक की जमा राशि से अधिक के चैकों का भुगतान बैंक नहीं करता है।

(12) चैक में किसी भी प्रकार के परिवर्तन के लिए उस पर ग्राहक के हस्ताक्षर होने चाहिए ऐसा न होने पर बैंक भुगतान नहीं करता है।

(13) चैक बैंक की उसी शाखा में प्रस्तुत किया जाना चाहिए, जिसमें ग्राहक का खाता हो, अन्य किसी बैंक या किसी अन्य शाखा में प्रस्तुत होने पर बैंक मात्र प्रस्तुत करने वाले की ओर भुगतान मँगाने की व्यवस्था तो कर सकता है, परन्तु तत्काल नकद भुगतान नहीं किया जा सकता है।

(14) संयुक्त खाते की दशा में जब संयुक्त हस्ताक्षर किये जाते हैं और किसी कारणवश दूसरे व्यक्ति के हस्ताक्षर न होने पर बैंक चैक का भुगतान नहीं करता है।

(15) चैक कटा-फटा हो।

(16) चैक के लेखक के हस्ताक्षर, बैंक में दिये गये नमूने के हस्ताक्षर से भिन्न हों।

(17) चैक पर किये गये बेचान नियमानुसार न हों।

उपर्युक्त के अतिरिक्त अन्य अनेक तकनीकी कठिनाइयाँ हो सकती हैं जिनमें बैंक ग्राहक के चैक का भुगतान नहीं कर पाते हैं।

प्रश्न

अपनी प्रगति की जाँच करें
Test your Progress

1. 'परक्राम्य विलेख' की परिभाषा दीजिये और उन मूलभूत विशेषताओं का वर्णन कीजिये जो एक परक्राम्य विलेख को साधारण माल से अलग करती है?
2. 'धारक एवं यथाविधिधारक' में क्या अन्तर है? भारतीय परक्राम्य संलेख अधिनियम में दिये हुए यथाविधिधारक के विशेष अधिकारों की पूर्ण व्याख्या कीजिये।
3. विनिमय-साध्य लेख-पत्र की परिभाषा दीजिये तथा एक विनिमय-साध्य लेख-पत्र की वैधानिक मान्यताओं (Presumptions) की विवेचना कीजिये।
4. एक विनियम-साध्य लेख-पत्र के यथाविधिधारी के क्या अधिकार हैं?
5. (अ) धारी और यथाविधिधारी का अन्तर स्पष्ट कीजिये।

   (ब) यथाविधि भुगतान का क्या अर्थ है? इसके लक्षण लिखिए।
6. पृष्ठांकन की परिभाषा दीजिए। विभिन्न प्रकार के पृष्ठांकन को उदाहरण सहित समझाइये।
7. विनिमय-साध्य लेख-पत्र की परिभाषा दीजिए तथा इसके आवश्यक लक्षणों का वर्णन कीजिए।

NOTES

11

विनिमय साध्य अभिलेख 1881 के धारक तथा यथा विधि धारक

[HOLDER AND HOLDER IN THE DUE COURSE UNDER - NEGOTIABLE INSTRUMENTS ACT 1881]

विनिमय साध्य लेखपत्रों के अन्तर्गत मुख्य रूप से ऋणी और ऋणदाता के ही सम्बन्ध पाए जाते हैं, परन्तु इनकी ओर से इनके एजेन्ट या अन्य कानूनी प्रतिनिधि भी विनिमय साध्य पत्रों के पक्षकार बन सकते हैं। अतः सामान्य जानकारी के रूप में हमें यह अवश्य जान लेना चाहिए कि विनिमय साध्य पत्रों के पक्षकारों की क्षमता या कानूनी स्थिति से सम्बन्धित क्या व्यवस्थाएँ हैं ?

कोई भी व्यक्ति जो अनुबन्ध अधिनियम की धारा 11 के आधीन वयस्क है, स्वस्थ मस्तिष्क का है और अन्य रूप में अधिनियम द्वारा अनुबन्ध करने के लिए अयोग्य घोषित नहीं किया गया है, वह विनिमय साध्य लेखपत्रों का भी पक्षकार बन सकता है। इसका दायित्व विनिमय विपत्र, चैक या प्रतिज्ञा-पत्र के सम्बन्ध में अन्य पक्षकारों के साथ होता है। यदि कोई व्यक्ति जिसने किसी विनिमय साध्य पत्र को स्वीकार किया है, लिखा है, हस्तांतरित किया है, बेचान किया है, पृष्ठांकन किया है और अन्यथा वह सामान्य अनुबन्धों के लिए अयोग्य है तो विनिमय साध्य पत्रों के सम्बन्ध में भी इसके प्रति सम्बन्धित प्रलेख को व्यर्थ माना जायेगा।

नाबालिग एवं अस्वस्थ मस्तिष्क के व्यक्तियों के साथ विनिमय साध्य पत्रों के व्यवहार व्यर्थ माने जाते हैं, परन्तु यदि किसी अन्य पक्षकार ने इनके पक्ष में कोई दायित्व स्वीकार कर लिया है तो नाबालिग या अस्वस्थ मस्तिष्क वाले व्यक्ति की ओर से दूसरे पक्ष के विरुद्ध अधिकारों का प्रयोग कराया जा सकता है। साधारण शब्दों में कहा जा सकता है कि नाबालिग अधिकार तो प्राप्त कर सकता है, परन्तु दायित्व स्वीकार नहीं कर सकता है।

प्रमण्डल या कम्पनियों की दशा में दायित्व के घटने-बढ़ने की स्थिति भिन्न होती है, अर्थात् प्रमण्डल की दशा में इसके संचालकों के अधिकार सीमानियम और अन्तर्नियमों के आधीन नियमित होते हैं। यदि किसी भी विनिमय साध्य पत्र को नियमों के विरुद्ध स्वीकार किया गया है तो बाद में चाहें तो इसके सभी सदस्य भी स्वीकृति नहीं दे सकते हैं और प्रलेख को व्यर्थ माना जायेगा। इस प्रकार के प्रलेख के यथाविधिधारी को भी प्रमण्डल के विरुद्ध उचित अधिकार प्राप्त नहीं होते हैं।

प्रतिनिधि, अभिकर्त्ता या एजेन्ट् अपने नियोक्ता की ओर से विनिमय साध्य पत्र स्वीकार कर सकता है, लिख सकता है, बेचान कर सकता है, परन्तु उसे इन सभी परिस्थितियों में अपनी एजेन्ट की स्थिति को अवश्य स्पष्ट कर देना चाहिए। वह अपने नाम की जगह नियोक्ता का नाम (हस्ताक्षर) लिख सकता है, बशर्ते नियोक्ता ने उसे ऐसा करने के लिए अधिकृत किया है, अथवा प्रदत्त अधिकारों के अन्तर्गत नियोक्ता की ओर से दायित्व स्वीकार कर सकता है।

एक एजेन्ट व्यक्तिगत रूप से दायी उसी दशा में माना जाएगा, जबकि उसने नियोक्ता का विवरण नहीं दिया है और मात्र अपने हस्ताक्षर कर दिए हैं; परन्तु यदि दूसरे पक्ष ने उस एजेन्ट को मात्र हस्ताक्षर करने के लिए इस आधार पर प्रोत्साहित किया कि उसके हस्ताक्षर के फलस्वरूप मात्र नियोक्ता ही दायी होगा। इसी प्रकार यदि किसी एजेन्ट ने अपने अधिकारों से अधिक विनिमय साध्य पत्रों के लिए व्यवहार किया हो तो एजेन्ट व्यक्तिगत रूप से दायी होगा।

साझेदार आधारभूत रूप में अपनी फर्म के एजेन्ट माने जाते हैं और फर्म के नाम से किया गया व्यवहार उन्हें व्यक्तिगत रूप से दायी नहीं बनाता है, इस प्रकार गर्भित अधिकारों के अन्तर्गत कोई भी साझेदार फर्म की ओर से फर्म के एजेन्ट के रूप में विनिमय साध्य पत्रों को स्वीकार कर सकता है, बेचान कर सकता है एवं प्राप्त कर सकता है, यह अधिकार व्यापारिक फर्म के साझेदारों को ही उपलब्ध हैं, परन्तु अव्यापारिक साझेदारी फर्म के साझेदार इस प्रकार के गर्भित अधिकार का प्रयोग नहीं कर सकते हैं।

संयुक्त हिन्दू परिवार के व्यवसाय में कर्त्ता या मुखिया ही फर्म की ओर से प्रतिनिधि के रूप में कार्य करता है और परिवार की फर्म के रूप में किए कार्यों से वह स्वयं दायी नहीं होता है। फर्म या पारिवारिक व्यवसाय के लिए वह विनिमय साध्य पत्रों को लिख सकता है, स्वीकार कर सकता है अथवा बेचान करके परिवार के अन्य सदस्यों को दायी बना सकता है। परिवार के नाबालिग सदस्य भी कर्त्ता के कार्य के लिए अपने अंश तक दायी होते हैं, परन्तु वे व्यक्तिगत रूप से दायी नहीं होते हैं।

वैधानिक प्रतिनिधि की नियुक्ति किसी विनिमय साध्य पत्र के धारक की मृत्यु, पागलपन या दिवालिया होने के पश्चात् की जाती है। वह धारक के सभी अधिकारों को प्राप्त कर लेता है। उसे किसी भी विनिमय साध्य पत्र का दायित्व स्वीकार नहीं करना चाहिए, किसी ऐसी आवश्यक दशा में हस्ताक्षर करते समय उसे अपनी स्थिति स्पष्ट करके यह भी लिख देना चाहिए कि उसकी ओर से भुगतान का दायित्व, सम्बन्धित व्यक्ति की सम्पत्ति की वसूली तक सीमित है।

उपर्युक्त विभिन्न पक्षकारों की कानूनी स्थिति के विवरण से स्पष्ट है कि अलग प्रकार के विनिमय साध्य पत्रों के लिए विभिन्न पक्षकार पाए जाते हैं :-

विनिमय विपत्र के पक्षकार – विनिमय विपत्र से सम्बन्धित व्यवहारों के लिए अग्रांकित प्रमुख पक्षकार होते हैं:-

(1) लेखक या ऋणदाता।

(2) ऋणी या स्वीकार करने वाला।

(3) धारक अर्थात् जिसके पक्ष में प्रपत्र लिखा गया है।

(4) पृष्ठांकक या बेचनाकर्त्ता।

(5) अन्य पक्षकार जिन्होंने पृष्ठांकित विपत्र स्वीकार किया है।

चैक के सम्बन्ध में निम्न पक्षकार हो सकते हैं :-

(1) लेखक या ऋणी।

(2) प्राप्तकर्त्ता या ऋणदाता।

(3) भुगतानकर्त्ता, हमेशा बैंक ही होता है।

(4) धारक, जिसके नाम में चैक लिखा गया है।

(5) पृष्ठांकक या बेचानकर्त्ता।

(6) पृष्ठांकित चैक को स्वीकार करने वाला।

प्रतिज्ञा-पत्र के पक्षकार निम्न होते हैं :-

(1) लेखक या ऋणी।

(2) प्राप्तकर्त्ता या ऋणदाता।

(3) धारक, जिसके नाम में प्रतिज्ञा पत्र लिखा गया है।

(4) पृष्ठांकक या बेचानकर्त्ता।

(5) पृष्ठांकित प्रतिज्ञा पत्र को प्राप्त करने वाला।

उपर्युक्त विभिन्न पक्षकारों में से कुछ प्रमुख पक्षों की वैधानिक स्थिति का अध्ययन हम निम्न आधारों पर करेंगे:-

भुगतान प्राप्त करने वाला – विनिमय साध्य पत्रों में जिस विशिष्ट व्यक्ति को भुगतान करने की स्वीकृति दी जाती है, उसे भुगतान प्राप्त करने वाला कहा जाता है। ग्लुटोन बनाम एटेनबोरो (Glutton *Vs.* Attenborough) (1897) के विवाद में यह निश्चित किया गया था कि यदि किसी प्रपत्र में भुगतान प्राप्त करने वाला कोई गुमनाम व्यक्ति है तो उस प्रलेख को वाहक को देय पत्र माना जायेगा।

आवश्यकता के समय देनदार – जब बिल स्वीकार करते समय ऋणी के अतिरिक्त कोई अन्य पक्षकार भी आवश्यकता के समय देनदार बनने को तैयार हो जाता है, तो ऐसे बिल का अनादरण यदि मूल ऋणी द्वारा किया जाता है, तब भी उसे अनादरण नहीं माना जाता है, क्योंकि मूल ऋणी द्वारा भुगतान न करने की दशा में वह बिल अन्य व्यक्ति के समक्ष प्रस्तुत किया जायेगा और जब उस व्यक्ति द्वारा भी बिल का भुगतान करने से इन्कार कर दिया जाता है, तब ही उसे बिल का अनादरण माना जाता है।

विनिमय साध्य पत्र के धारक

अधिनियम की धारा 8 के अनुसार, प्रतिज्ञा-पत्र, विनिमय विपत्र या चैक के धारक से अभिप्राय किसी ऐसे व्यक्ति से है, जो उसे अपने नाम में रखने तथा सम्बन्धित पक्षकारों से देय धन प्राप्त करने का अधिकारी है। जब प्रतिज्ञा पत्र या विनिमय पत्र या चैक खो जाता है अथवा नष्ट हो जाता है तो उसका धारक वही व्यक्ति होता है, जो ऐसी हानि अथवा खो जाने के समय इसका अधिकारी था। इस प्रकार हम देखते हैं कि विनिमय साध्य पत्र के धारक में निम्न प्रमुख विशेषताओं का होना आवश्यक है :-

(1) कोई व्यक्ति जो अपने नाम से लिखे प्रलेख को अपने पास रखने का अधिकारी होता है। यह अधिकार उसे भुगतान प्राप्त करने वाले के रूप में पृष्ठांकन के आधार पर भी प्राप्त हो सकता है, परन्तु चोरी से यदि किसी व्यक्ति ने कोई प्रलेख प्राप्त कर लिया है तो उसके आधार पर वह व्यक्ति उसका धारक नहीं कहला सकता है।

(2) किसी विनिमय साध्य लेख पत्र का धारक होने के लिए यह आवश्यक है कि लेख पत्र पर अधिकार रखने वाले व्यक्ति सम्बन्धित पक्षकारों से विपत्र की रकम भी प्राप्त कर सके। अनजानिहा बनाम नगप्पा (Anjanaiah *Vs.* Nagappa) (1967) के विवाद में यही निर्णय दिया गया था कि धारक को उस पत्र का रुपया वसूल करने का भी अधिकार अवश्य होना चाहिए। अतएव ऐसा व्यक्ति जो किसी लेखपत्र को अपने अधिकार में रखते हुए भी उसमें लिखित राशि प्राप्त करने का अधिकारी नहीं हो सकता है, अतः उसे धारक नहीं माना जायेगा। अर्थात् किसी चोर को, या खोए हुए सामान पाने वाले व्यक्ति को उस लेख पत्र का रुपया कानूनी रूप से प्राप्त करने का अधिकार नहीं होता है।

विनिमय साध्य लेखपत्र का यथाविधि-धारक

धारा 9 के अनुसार, ऐसा व्यक्ति जो प्रतिफल के बदले में लेख-पत्र में लिखित धन के देय होने के पूर्व, बिना किसी दोष की जानकारी के, किसी विनिमय विपत्र, चैक या माँग पत्र का अधिकारी हो जाता है, उसे यथाविधि धारक कहा जाता है। यह लेख पत्र वाहक को देय या आदेशित भी हो सकता है। आदेशित होने की दशा में वह विपत्र पृष्ठांकित होकर आ सकता है। यथाविधि धारक होने के लिए निम्न प्रमुख शर्तों का पालन करना पड़ता है –

(1) **धारक या धारी की स्थिति अवश्य** होनी चाहिए अर्थात् वाहक को देय पत्र की दशा में विपत्र उसके अधिकार में होना चाहिए और आदेशित प्रपत्र की दशा में पृष्ठांकन के आधार पर ही स्वामित्व प्रतिफल के बदले में प्राप्त होना चाहिए।

(2) **देयतिथि के पूर्व ही प्रलेख धारक** के पास अवश्य आ जाना चाहिए, इसके पश्चात् प्राप्त होने की दशा में यथाविधि धारी के अधिकार प्राप्त नहीं किए जा सकते हैं।

(3) **प्रतिफल के लिए** ही उसे धारक होना चाहिए, बिना प्रतिफल के बदले में यदि उसने कोई लेखपत्र प्राप्त कर लिया है तो वह मात्र धारक की स्थिति में ही रहता है, अर्थात् भुगतान तिथि को यदि भुगतान नहीं किया जाता है तो धारक उस राशि को कानूनी रूप से वसूल नहीं कर सकता है। कमला ने मन्दिर के दान खाते में 5001 रु. का एक चैक दिया, अब यदि चैक अनादृत हो जाता है तो मन्दिर के संचालक कमला से रुपया वसूल नहीं कर सकते हैं क्योंकि यह भुगतान प्रलेख द्वारा बिना प्रतिफल के लिए किया गया था।

(4) **दोष रहित अधिकार** – लेखपत्र प्राप्त करने वाले को यह विश्वास होना चाहिए कि उसने यह प्रलेख पूर्ण विश्वास और सद्भाव से प्राप्त किया है और किसी अन्य पक्ष का इस प्रलेख के सम्बन्ध में कोई दूषित अधिकार नहीं है।

(5) लेख-पत्र सभी दृष्टि से पूर्ण होना चाहिए।

इस प्रकार उपर्युक्त शर्तों के पूरा होने के अभाव में कोई व्यक्ति किसी लेखपत्र का यथाविधिधारी नहीं बन सकता है।

यथाविधिधारी के विशेषाधिकार

वैधानिक रूप से जब लेखपत्र को पूर्ण सद्भाव से, देय तिथि के पूर्व और प्रतिफल के बदले में प्राप्त किया जाता है तो इस प्रकार के यथाविधिधारी को अधिनियम के अनुसार अनेक सुविधाएँ प्रदान की गई हैं :–

(1) **स्टाम्पयुक्त लेकिन अपूर्ण लेखपत्र** – धारा 20 के अनुसार, जब कोई व्यक्ति हस्ताक्षर करके स्टाम्प युक्त लेकिन अपूर्ण लेखपत्र किसी दूसरे व्यक्ति को सौंप देता है, तो वह यथाविधिधारी के विरुद्ध यह नहीं कह सकता है कि लेखपत्र उसके द्वारा दिए गए अधिकारों के अनुसार पूर्ण नहीं था। यह आवश्यक शर्त है कि लेखपत्र की धन-राशि के अनुकूल स्टाम्प लगे होने चाहिए।

(2) **पूर्व-पक्षकारों का दायित्व** – धारा 36 के अनुसार, विनिमय साध्य पत्र का प्रत्येक पूर्व पक्षकार यथाविधिधारी के प्रति उस समय तक उत्तरदायी रहता है, जब तक कि लेखपत्र का अन्तिम रूप से पूर्ण भुगतान नहीं हो जाता है।

(3) **कल्पित या झूठे नाम में लिखे प्रपत्र** – धारा 42 की व्यवस्था के अनुसार यदि विपत्र के लेखक ने विपत्र किसी कल्पित या झूठे नाम से लिखा है अथवा वह कल्पित नाम में देय है और उसी व्यक्ति द्वारा लेखक के हस्ताक्षर के रूप में पृष्ठांकित किया गया हो, तो इसका स्वीकर्ता यथाविधिधारी के विरुद्ध यह नहीं कह सकता है कि प्रलेख कल्पित नाम में लिखा गया था।

(4) **शर्त या विशेष प्रयोजन के आधार पर भी यदि किसी लेखपत्र –की सुपुर्दगी की गई थी, तब भी विनिमय** साध्य पत्र की विनिमय साध्यता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। इस प्रकार धारा 46 एवं 47 में यथाविधि धारक की विशिष्ट वैधानिक स्थिति को विनिमय साध्यता के आधार पर प्रभावित नहीं किया जा सकता है।

(5) **धारक को यथाविधिधारक के अधिकार** – धारा 53 के अनुसार यदि यथाविधिधारक ने किसी लेखपत्र का उचित रूप से हस्तांतरण कर दिया है तो ऐसे धारक को यथाविधिधारक से सम्पूर्ण अधिकार प्राप्त हो जाते हैं।

(6) **अवैधानिक साधन या अवैधानिक प्रतिफल के आधार पर लेखपत्र** प्राप्त करने पर, धारा 58 की व्यवस्था है कि जब कोई लेखपत्र खो गया है, या इसके लेखक, स्वीकर्त्ता, अथवा धारक से किसी अपराध या कपट के द्वारा अवैधानिक प्रतिफल के बदले प्राप्त किया गया हो तो उसका यथाविधिधारी अपनी उचित स्थिति के फलस्वरूप दायी व्यक्ति से भुगतान पाने के लिए अधिकृत होता है।

इस प्रकार लेखपत्र का दायी व्यक्ति यथाविधिधारी के विरुद्ध यह नहीं कह सकता है कि उसने वह लेखपत्र कपटपूर्ण ढंग से, या अवैधानिक प्रतिफल के बदले में प्राप्त किया है, परन्तु यथाविधिधारी को अपनी पूर्ण सद्भाव और प्रतिफल वाली स्थिति को सिद्ध करना आवश्यक होता है।

(7) **प्रत्येक धारक यथाविधिधारी होता है** – कानूनी रूप से, किसी विपरीत कानूनी स्थिति के अभाव में, लेखपत्र का धारक यथाविधिधारी माना जाता है।

(8) **लेखपत्र की वैधता के विरुद्ध सुरक्षा** – धारा 120 के अनुसार, किसी भी विनिमय साध्य लेखपत्र को लिखने वाला या स्वीकार करने वाला किसी विपत्र की वैधता को इस आधार पर अस्वीकार नहीं कर सकते हैं कि उनकी स्वीकृति अवैधानिक रूप में प्राप्त की गई थी, यथाविधिधारक को इस प्रकार के विरुद्ध पूर्ण सुरक्षा उपलब्ध होती है।

(9) **अनियमित पृष्ठांकन के विरुद्ध सुरक्षा** – धारा 121 के अनुसार किसी प्रतिज्ञा पत्र को स्वीकार करने वाला, अथवा प्रतिज्ञा पत्र को लिखने वाला किसी भी यथाविधिधारक को भुगतान करने के लिए इस आधार पर इन्कार नहीं कर सकते हैं कि पृष्ठांकन या बेचान करने वाले व्यक्ति में क्षमता नहीं थी।

(10) **संदिग्ध लेखपत्र के विरुद्ध** – यदि किसी विनिमय विपत्र में इस प्रकार से लिखा गया है कि इसे प्रतिज्ञा-पत्र भी समझा जा सकता है तो धारा 17 के अनुसार इस प्रकार के संदिग्ध लेखपत्र की दशा में यथाविधिधारक के अधिकारों पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता है।

धारक एवं यथाविधिधारक में अन्तर

कानूनी रूप से चूँकि विनिमय साध्य पत्रों के धारक और यथाविधिधारकों की कुछ समान स्थितियाँ प्रगट की गई हैं, फिर भी हम इन दोनों प्रकार के पक्षकारों में निम्न आधारों पर अन्तर कर सकते हैं :–

(1) **प्रतिफल की अनिवार्यता** – धारक के लिए प्रतिफल अनिवार्य नहीं होता है, क्योंकि मूलतः प्रलेख उसी के पक्ष में लिखा जाता है, परन्तु यथाविधिधारक के लिए विपत्रों के लिए प्रतिफल का होना आवश्यक है।

(2) **देय तिथि से पूर्व प्राप्ति** – धारक बनने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि इसे देय तिथि से पूर्व ही प्राप्त किया जाए, परन्तु यथाविधिधारी बनने के लिए यह आवश्यक है कि प्रलेख उसे भुगतान तिथि (देय तिथि) के पूर्व प्राप्त हो जाए।

(3) **श्रेष्ठ अधिकार** – धारक को लेखपत्र के सम्बन्ध में अधिकार मात्र हस्तांतरक की तरह ही होते हैं, यदि किसी हस्तांतरक का अधिकार दूषित है तो धारक श्रेष्ठ अधिकार नहीं प्राप्त कर सकता है।

(4) **धारक होने की आवश्यकता** – धारक होने के लिए यथाविधिधारक होना आवश्यक नहीं है लेकिन यथाविधिधारी बनने के लिए विनिमय साध्य पत्र का धारक बनना आवश्यक है।

(5) **विशेषाधिकार** – धारक को यथाविधिधारक के समान विशेषाधिकार प्राप्त नहीं होते हैं जबकि यथाविधिधारक को किसी पक्षकार की त्रुटिपूर्ण या दोषपूर्ण स्थिति होने पर भी यथाविधिधारक सुरक्षित रहता है।

मूल्य के लिए धारक
(Holder for Value)

धारक और यथाविधिधारक के अतिरिक्त एक अन्य स्थिति मूल्य के लिए धारक भी होती है, जिसमें जब कोई व्यक्ति किसी ऐसे लेख-पत्र को प्राप्त करता है, जिसका मूल्य पहले दिया जा चुका था, तो वह मूल्य का धारक कहलाता है। इस प्रकार मूल्य के लिए धारक व्यक्ति बिना किसी प्रतिफल के लिए लेखपत्र को प्राप्त करता है। ऐसे धारक को प्रलेख से सम्बन्धित सभी पूर्व पक्षकारों के विरुद्ध पूर्ण अधिकार प्राप्त होते हैं, जैसे कि एक सामान्य धारक को प्राप्त हैं। उदाहरणस्वरूप, कमला ने 500 रु. की पुस्तकें कैलाश को बेचीं, जिसके बदले में उसे एक 500 रु. का चैक प्राप्त हुआ।

NOTES

कमला ने यह चैक दानस्वरूप रोटरी क्लब को हस्तांतरित कर दिया। इस प्रकार रोटरी क्लब इस चैक का 'मूल्य के लिए धारक' माना जायेगा।

शर्तपूर्ण भुगतान वाला प्रलेख
(Escrow)

जब कोई विनिमय विपत्र किसी अन्य पक्ष को किसी विशिष्ट शर्त के पूर्ण होने पर भुगतान के लिए सौंपा जाता है, तो इसे शर्तपूर्ण भुगतान वाला प्रलेख कहते हैं। इस प्रकार के बिल के सम्बन्ध में शर्तों के पूर्ण करने पर ही दूसरे पक्षकार का दायित्व उदय होता है, परन्तु इसके फलस्वरूप यथाविधिधारक के अधिकारों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

पक्षकारों का दायित्व

जब तक कोई व्यक्ति अपने नाम, हस्ताक्षर, पद या एजेन्ट के रूप में किसी विनिमय साध्य पत्र का पक्षकार सिद्ध नहीं होता है, तो उस पर लेख-पत्र की राशि वसूल करने के सम्बन्ध में वाद प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है, लेकिन यदि कोई नियोक्ता, जिसने व्यवहार एजेन्ट के माध्यम से किया है और अपना नाम गुप्त रखा है, तो उसे भी दायी पक्षकार माना जा सकता है। विनिमय साध्य पत्रों के दायित्व के सम्बन्ध में विभिन्न पक्षकारों की स्थिति निम्न प्रकार होती है :-

(1) **लेखपत्र के लेखक का दायित्व** – धारा 32 के अनुसार प्रतिज्ञा-पत्र का लेखक धारक के माँगने पर (या देय तिथि पर) प्रपत्र में लिखी रकम भुगतान करने के लिए दायी होता है, यदि इस प्रकार वह अपने वचन को पूरा नहीं करता है तो उसे दायी माना जाता है। लेखक की मृत्यु या पागलपन की स्थिति में भी उसके दायित्व पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। प्रतिज्ञा पत्र के लेखक को चाहिए कि वह प्रपत्र के धारक को देय तिथि पर भुगतान कर दे।

(2) **विनिमय विपत्र का लेखक** – धारा 30 की व्यवस्था के अनुसार, विनिमय विपत्र का लेखक प्रारम्भिक रूप से दायी नहीं होता है, वह तो मात्र इतना उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेता है कि विपत्र जब स्वीकृति के लिए उपस्थित किया जायेगा तो इसका लेखक इसे स्वीकार कर लेगा और भुगतान तिथि पर इसका भुगतान कर दिया जायेगा। इस प्रकार ऐसे प्रलेख को यदि स्वीकर्त्ता स्वीकार नहीं करता है अथवा देय तिथि को ऋणी इस विनिमय विपत्र का भुगतान नहीं करता है, तो विपत्र का लेखक उस प्रलेख के धारक को भुगतान करने का दायी होता है, परन्तु स्वीकर्त्ता द्वारा विनिमय विपत्र के अनादरण की सूचना लेखक को अवश्य मिल जानी चाहिए। मिलर बनाम नेशनल बैंक ऑफ इण्डिया (Miller *Vs.* National Bank of India) के विवाद में यह निर्णय दिया गया था कि अनादरण की सूचना विपत्र के लेखक को अवश्य मिलनी चाहिए। यदि ऐसी सूचना समय पर बिल के लेखक को नहीं दी जाती है तो विनिमय विपत्र का धारक लेखक के विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं कर सकता है।

(3) **चैक के लेखक का दायित्व** – यदि किसी चैक का अनादरण बैंक द्वारा किया जाता है, अर्थात् धारक को भुगतान प्राप्त नहीं होता है, तो चैक का धारक चैक के लेखक के विरुद्ध वाद प्रस्तुत कर सकता है, परन्तु इस विषय में उपर्युक्त विवाद मिलर बनाम नेशनल बैंक ऑफ इण्डिया (Miller *Vs.* National Bank of India) का महत्वपूर्ण प्रावधान ध्यान रखने योग्य है, जिसमें प्रत्येक विपत्र के अनादरण की सूचना इसके लेखक को अवश्य मिलनी चाहिए।

(4) **भुगतान करने वाले बैंक का दायित्व** – प्रत्येक चैक किसी बैंक पर लिखा जाता है, जिसमें बैंक को यह आदेश दिया जाता है कि वह माँगने पर धारक को भुगतान कर दे, परन्तु यदि बैंक बिना किसी पर्याप्त कारण के चैक का भुगतान नहीं करता है तो बैंक हर्जाने के लिए दायी बनाया जा सकता है।

(5) **बेचानकर्त्ता का दायित्व** – धारा 35 के अनुसार प्रपत्र के प्रत्येक बेचानकर्त्ता का दायित्व ठीक लिखने वाले और स्वीकार करने वाले के दायित्व के समान होता है और सामान्य रूप से वह अपने दायित्व को सीमित भी नहीं कर सकता है, परन्तु यदि बेचानकर्त्ता ने अपना दायित्व सीमित कर लिया है तो उसके पूर्व और बाद के पक्षकार समान रूप से दायी होंगे। प्रपत्र के अनादरण की सूचना लेखक के अतिरिक्त प्रत्येक बेचानकर्त्ता को भी दी जानी चाहिए।

(6) **पूर्व पक्षकारों का दायित्व** – प्रत्येक पक्षकार का दायित्व एक-दूसरे यथाविधिधारी के प्रति उस समय तक रहता है, जब तक कि लेख पत्र का उचित रूप से पूर्ण भुगतान न हो जाए। इस प्रकार प्रत्येक पक्षकार अपने अगले पक्षकार के प्रति दायी रहता है। धारा 36 से धारा 39 तक की व्यवस्थाओं के अन्तर्गत यह भी स्पष्ट किया गया है कि पूर्व पक्षकार संयुक्त रूप से दायी नहीं होते हैं, बल्कि प्रत्येक पक्षकार पूर्णरूपेण ऋणी माना जाता है।

विनिमय-साध्य लेख-पत्र के लिए प्रतिफल
(Consideration For A Negotiable Instrument)

अधिनियम यह मानकर चलता है कि किसी लेख-पत्र प्रतिफल के बदलने में आहरित (Drawn), पृष्ठांकित तथा हस्तान्तरित किये गये हैं। अतएव प्रतिफल के अभाव में भुगतान न देने पर पक्षकार को यह सिद्ध करना पड़ता है कि लेख-पत्र में प्रतिफल का अभाव है।

1. **प्रतिफल के अभाव में विनिमय-साध्य लेख-पत्र** (Negotiable instrument made etc. without Consideration) (धारा 43)- यदि कोई विनिमय-साध लेख-पत्र बिना प्रतिफल के अथवा ऐसे प्रतिफल के जो असफल हो गया हो, लिखा, आहरित, स्वीकृत, पृष्ठांकित अथवा हस्तान्तरित हुआ हो, तो वह उस व्यवहार (transaction) से सम्बन्धित पक्षकारों का परस्पर भुगतान के लिए कोई दायित्व उत्पन्न नहीं करता, किन्तु यदि ऐसे किसी पक्षकार ने लेख-पत्र को पृष्ठांकन अथवा बिना पृष्ठांकन के किसी प्रतिफल वाले धारक को हस्तान्तरित किया हुआ हो तो यह धारक तथा बाद वाले सभी धारक लेख-पत्र के हस्तान्तरक अथवा किसी भी पूर्व पक्षकार से लेख-पत्र की धनराशि वसूल करने के अधिकारी हैं।

2. **मौद्रिक प्रतिफल का आंशिक अभाव अथवा असफलता** (Partial absence or failure of money consideration) (धारा 44 में)- जब प्रतिफल, जिसके लिये किसी व्यक्ति ने प्रतिज्ञा-पत्र, विनिमय-पत्र अथवा चैक पर हस्ताक्षर किये थे, मुद्रा के रूप में था और वह मूल रूप से आंशिक रूप से मौजूद नहीं था अथवा आंशिक रूप में असफल हो गया था, तो ऐसे लेख-पत्र का धारक अपने साथ नजदीकी सम्बन्ध रखने वाले पक्षकार से लेख-पत्र के ऊपर वास्तव में जितना प्रतिफल दिया गया है, उससे अधिक धनराशि पाने का अधिकारी नहीं है।

उदाहरण के लिए, 'अ', 'ब' पर 500 रु. का एक ऐसा बिल लिखता है जो कि स्वयं के आदेश पर देय है। 'ब' उसे स्वीकार कर देता है, किन्तु बाद में भुगतान न करके उसे अप्रतिष्ठित कर देता है। 'अ', 'ब' के विरुद्ध वाद प्रस्तुत करता है, किन्तु 'ब' यह साबित कर देता है कि वह केवल 400 रु. के मूल्य के लिए स्वीकार किया गया था और शेष वादी के प्रति अनुग्रह के रूप में था। ऐसी दशा में 'अ' केवल 400 रु. पाने का अधिकारी है।

3. **अमौद्रिक प्रतिफल की आंशिक असफलता** (Partial failure of consideration not consisting of Money) (धारा 45)- अब कोई प्रतिफल, जिसके लिये किसी व्यक्ति ने किसी प्रतिज्ञा-पत्र, विनिमय-पत्र अथवा चैक पर हस्ताक्षर किये थे, यद्यपि वह मुद्रा में नहीं है, किन्तु वह बिना किसी कठिनाई के मुद्रा में आँका जा सकता है और वह आंशिक रूप से असफल हो गया है, तो ऐसे लेख-पत्र का धारक अपने साथ नजदीकी सम्बन्ध रखने वाले पक्षकार से लेख-पत्र के ऊपर वास्तव में जितना प्रतिफल दिया गया है, जिससे अधिक धनराशि पाने का अधिकारी है।

प्रश्न

1. विनिमय पत्र के आहर्ता, स्वीकर्ता तथा बेचानकर्ता के अपने-अपने दायित्व क्या हैं?
2. विनिमय-साध्य लेख-पत्र के निर्माता, स्वीकर्ता तथा पृष्ठांकन के अधिकारों तथा दायित्वों का वर्णन कीजिये।
3. विनिमय-साध्य लेख-पत्र के सम्बन्ध में विभिन्न पक्षकारों के क्या दायित्व हैं?
4. विनिमय-साध्य लेख-पत्र के मामले में अवयस्क की क्या स्थिति है?
5. विनिमय विपत्र, प्रतिज्ञा पत्र और चैक के विभिन्न पक्षकारों के नाम बताइए।
6. विनिमय साध्य लेख-पत्रों के लिए एक नाबालिग के अधिकारों की संक्षिप्त व्याख्या कीजिए।
7. धारक और यथाविधि का अर्थ समझाइए और इन दोनों में अन्तर के प्रमुख आधार कौन-से हैं?
8. यथाविधिधारक के लिए कौन-सी विशिष्ट सुविधाएँ उपलब्ध हैं?
9. यथाविधिधारक का अर्थ समझाइए और उसके लिए कौन-सी महत्वपूर्ण शर्तों का पालन करना आवश्यक है?

व्यावहारिक समस्याएँ

1. कमला ने कैलाश (नाबालिग) को एक रेडियो सैट 500 रु. में बेचा, जिसका भुगतान कैलाश को एक चैक से किया। कमला ने यह चैक कमलेश को बेचान कर दिया जिसने इस चैक को सद्भावनापूर्ण ढंग से पूर्ण प्रतिफल के बदले में प्राप्त किया है। यह चैक प्रस्तुत करने पर अनादृत हो गया। क्या कमलेश चैक की राशि प्राप्त करने के लिए कैलाश पर वाद प्रस्तुत कर सकता है? कमलेश को सलाह दीजिए।
2. कमला ने कैलाश के पक्ष में एक प्रतिज्ञा पत्र दिया। देय तिथि से पूर्व कमला ने प्रतिज्ञा पत्र की राशि का भुगतान कैलाश को कर दिया, परन्तु प्रतिज्ञा पत्र वापस लेना भूल गई, हाँ भुगतान की रसीद अवश्य प्राप्त कर ली थी। कैलाश ने इस प्रतिज्ञा पत्र को कमलेश को बेचान कर रखा था, देय तिथि पर कमलेश को भुगतान नहीं किया गया, क्योंकि कमला ने इसका भुगतान पहले ही कर दिया था। कमलेश को सलाह दीजिए।
3. कमला ने कैलाश को 3 रु. कीमत के 1000 पैन बेचने का अनुबन्ध किया। इस प्रतिफल के लिए कैलाश ने 3000 रु. का एक प्रतिज्ञा पत्र कमला को दिया। पैन की सप्लाई में पता चला कि लगभग आधे पैन अनुबन्ध के अनुसार नहीं हैं और नष्ट हो गए हैं या व्यापारिक प्रयोग के लायक नहीं हैं। प्रतिज्ञा पत्र की देय तिथि को कैलाश 3,000 रु. के स्थान पर मात्र 1,500 रु. देना चाहता है। क्या ऐसा करना उचित माना जायेगा?

4. कमला ने बालिग होने के पश्चात् एक प्रतिज्ञा पत्र पिछले प्रतिज्ञा पत्र के स्थान पर (जो उसने अपनी नाबालिग स्थिति में दिया था) कैलाश को दिया। चूँकि इसमें कमला को कोई प्रतिफल प्राप्त नहीं था, अतः उसने देय तिथि पर इसका भुगतान करने से इन्कार कर दिया। कैलाश को सलाह दीजिए।

5. टिप-टॉप लिमिटेड की संचालक कमला ने एक प्रतिज्ञा पत्र स्वीकार करके कैलाश को दिया। इस 10,000 रु. के प्रतिज्ञा-पत्र में यह स्पष्ट नहीं था कि कमला कम्पनी की ओर से इसे स्वीकार कर रही है। इसका धन कम्पनी द्वारा ही प्रयोग में लाया गया था। क्या कम्पनी इस प्रकार के प्रतिज्ञा-पत्र का भुगतान करने के लिए कैलाश के प्रति दायी है?

6. A मिथ्यापूर्ण बहाने अथवा वचन द्वारा शर्त के द्वारा जिसे वह पूरा नहीं करता है B को C के पक्ष में चैक लिखने के लिए प्रेरित करता है। A उस चैक को C को दे देता है जो सद्विश्वास से मूल्य के बदले उसे प्राप्त करता है। तथा C को चैक पर B अथवा A की तुलना में श्रेष्ठ स्वत्व प्राप्त होगा?

उत्तर- प्रस्तुत समस्या में 'स' उचित प्रतिफल के तथा सद्विश्वास के साथ चैक प्राप्त करता अतएव यह 'अ' अथवा 'ब' अथवा दोनों के प्रति वाद प्रस्तुत करने का अधिकारी है।

7. A एक विनिमय-पत्र B पर लिखता है और स्वीकृति के पूर्व C को पृष्ठांकित कर देता है। B उसे अस्वीकार करके अनादरित कर देता है। क्या C को B के विरुद्ध कोई अधिकार है?

उत्तर- इस अधिनियम के अनुसार आहार्यी (Drawee) लेख-पत्र को स्वीकार करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता है और वह उस लेख-पत्र को अस्वीकार कर देता है, तो वह भुगतान सम्बन्धी अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है। यहाँ पर 'अ', 'ब' पर एक विनिमय-पत्र लिखता है और 'ब' द्वारा स्वीकृत किये जाने से पूर्व ही उसका पृष्ठांकन 'स' के पास कर देता है। 'ब' उसको अस्वीकार कर देता है। ऐसी परिस्थिति में 'स' का 'ब' के प्रति कोई भी उपचार प्राप्त नहीं होता, क्योंकि जब 'ब' ने उसको स्वीकार ही नहीं किया है तो उसका भुगतान सम्बन्धी दायित्व कैसा?

8. X, Y को 600 रु. देने का वचन देता है और Y से एक प्रतिज्ञा-पत्र उस राशि को लेता है। वह केवल Q को 500 रु. देता है। क्या X उस प्रतिज्ञा-पत्र के आधार पर 600 रु. वसूल कर सकता है?

उत्तर- प्रस्तुत समस्या विनिमय-साध्य लेख-पत्र अधिनियम की धारा 44 पर आधारित है। इस धारा के अनुसार जब किसी लेख-पत्र में आंशिक रूप में प्रतिफल का अभाव हो अथवा आंशिक रूप में ही प्रतिफल दिया गया हो, तो ऐसे लेख-पत्र का आदाता अथवा लेनदार अपने नजदीकी सम्बन्ध रखने वाले पक्षकार से केवल उतनी ही धनराशि पाने का अधिकारी है जितनी कि उसने वास्तव में दी हो, उससे अधिक नहीं। यहाँ पर X, Y को 600 रु. देने का वचन देता है तथा उतनी ही धनराशि का उससे एक प्रतिज्ञा-पत्र ले लेता है किन्तु वास्तव में केवल 500 रु. ही देता है। ऐसी स्थिति में X केवल 500 रु. ही पाने का अधिकारी है, उससे अधिक नहीं। इसका कारण यह है कि आंशिक प्रतिफल की दशा में लेनदार केवल उतनी ही धनराशि पाने का अधिकारी होता है जो कि वास्तव में उसने दी हो।

9. X 500 रु. का एक विनिमय-पत्र Y पर लिखता है जो बिना प्रतिफल के उसे स्वीकार कर लेता है। X इसका पृष्ठांकन मूल्यवान प्रतिफल के बदले Z को कर देता है। परिपक्वता की तिथि पर Z उसे भुगतान हेतु प्रस्तुत करता है और प्रतिफल के अभाव में उसका भुगतान नहीं होता है। क्या Z, Y से भुगतान वसूल कर सकता है?

अपनी प्रगति की जाँच करें
Test your Progress

उत्तर- प्रस्तुत समस्या विनिमय-साध्य लेख-पत्र अधिनियम की धारा 43 पर आधारित है। इस धारा के अनुसार प्रतिफल के अभाव में लेख-पत्र पक्षकारों के बीच भुगतान के सम्बन्ध में कोई वैधानिक उत्तरदायित्व उत्पन्न नहीं कर सकता है, किन्तु मूल्य के बदले में पाने वाला धारक लेख-पत्र के हस्तान्तरक अथवा किसी भी पूर्व-पक्षकार लेख-पत्र की धनराशि को पाने का अधिकारी है। यहाँ पर X, Y पर 500 रु. का एक बिल लिखता है और Y उसे बिना प्रतिफल के स्वीकार कर लेता है। X इस बिल का हस्तान्तरण मूल्यवान प्रतिफल के बदले में Z के पक्ष में कर देता है। नियत तिथि पर Z उसे भुगतान पाने के लिए प्रस्तुत करता है किन्तु प्रतिफल के न होने के कारण उसका भुगतान नहीं होता। ऐसी स्थिति में Z, Y से 500 रु. की धनराशि पाने का अधिकारी है, क्योंकि वह मूल्यवान प्रतिफल के बदले में बिल का धारक है।

12

चैक रेखांकन एवं प्रकार
(CROSSING AND TYPES OF CHEQUE)

चैक का रेखांकन

सामान्य रूप से चैक माँग पर देय आदेश पत्र होता है, जिसे बैंक की शाखा में प्रस्तुत करने पर शीघ्र भुगतान प्राप्त किया जा सकता है, परन्तु चैक के दुरुपयोग या कपटपूर्ण प्रयोग से बचाने के उद्देश्य से चैक का रेखांकन प्रारम्भ किया गया। 1852 के बेलेमी बनाम मेजोरी बैंक (Bellamy *Vs.* Majori Banks) के विवाद में दिये गये निर्णय के अनुसार चैक के रेखांकन का प्रारम्भ किया गया।

चैक के रेखांकन का सामान्य अभिप्राय यही माना जाता है कि बैंक चैक का भुगतान तत्काल ही नकद न करे और खातेधारी के खाते में जमा करके ही करे, इस प्रकार चोरी या खो जाने पर चैक के गलत प्रयोग की सम्भावनाएँ कम हो जाती हैं। रेखांकन के माध्यम से बैंक को चेतावनी भी हो जाती है। चैक के बाएँ टॉप सिरे पर दो आड़ी समान्तर रेखाओं को खींचना चैक का रेखांकन कहलाता है।

चैक के रेखांकन का नमूना

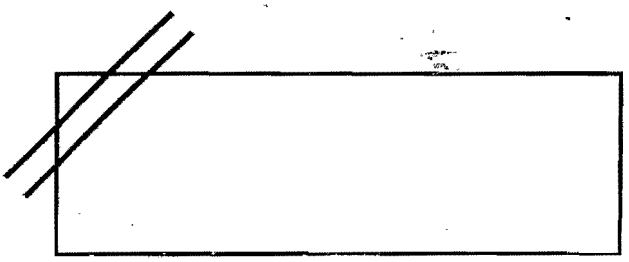

उपर्युक्त नमूने में जो दो रेखाएँ खींची गई हैं, उन्हें ही चैक का रेखांकन माना जाता है।

चैक के रेखांकन के प्रकार

चैक को सामान्य एवं विशिष्ट रूप में रेखांकित किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त प्रतिबन्धात्मक रेखांकन भी व्यापारिक परम्पराओं के अनुसार जोखिम को कम करने के उद्देश्य से किया जा सकता है–

(1) सामान्य या साधारण रेखांकन

अधिनियम की धारा 123 के अनुसार जब किसी चैक पर दो समानान्तर रेखाएँ खींच दी जाती हैं या उन रेखाओं में कुछ शब्दों को लिख दिया जाता है तो उसे सामान्य रेखांकन कहते हैं। साधारण रेखांकन के निम्न स्वरूप भी हो सकते हैं–

(अ) **केवल दो समानान्तर रेखाएँ** – जब चैक के बाएँ ओर ऊपरी कोने में मात्र दो समानान्तर रेखाएँ खींच दी जाती हैं तो इनके खींचने मात्र से चैक का भुगतान बैंक के काउन्टर पर नहीं हो सकता है। इसका नमूना निम्न प्रकार है–

(ब) **समानान्तर रेखाओं के मध्य कुछ शब्द लिखना** – चैक का रेखांकन तो समानान्तर रेखाओं से हो सकता है, परन्तु इन दो रेखाओं के मध्य कुछ शब्द लिखने से कभी-कभी कुछ प्रतिबन्ध कानूनी रूप से लागू हो जाते हैं। इनके कुछ उदाहरण निम्न प्रकार हैं–

(i) **And Company (& Co.)** – दो रेखाओं के मध्य मात्र And Company (या & Co.) लिखने से चैक के सामान्य रेखांकन का यही प्रभाव होता है कि चैक का भुगतान नकद नहीं किया जा सकेगा। इसका नमूना अग्रांकित प्रकार है–

(ii) **विनिमय साध्य नहीं** – जब रेखांकन की समानान्तर रेखाओं के मध्य 'विनिमय साध्य नहीं' (अथवा Not Negotiable) शब्द लिख दिये जाते हैं तो इसका कानूनी रूप से बहुत महत्वपूर्ण प्रभाव होता है। इसका शब्दशः यह अर्थ नहीं लगाना होता है कि इस प्रकार के रेखांकित चैक का पृष्ठांकन या रेखांकन नहीं किया जा सकता है, परन्तु चैक के लेखक को किसी बेईमानी या धोखे के प्रति सुरक्षित अधिकार प्राप्त हो जाते हैं।

इस प्रकार के प्रलेख के हस्तांतरण का प्रभाव यह होता है कि खो जाने पर पाने वाले का अधिकार दूषित माना जाता है, अर्थात् यदि किसी व्यक्ति ने धोखे से जाली हस्ताक्षर करके इस प्रलेख को हस्तान्तरित कर दिया है तो पाने वाले का अधिकार भी दूषित माना जाता है, चाहे उसने पूर्ण सद्भाव एवं प्रतिफल के बदले में प्रलेख को प्राप्त किया हो।

2. **विशेष रेखांकन** – धारा 124 के अनुसार यदि किसी चैक के रेखांकन की दो रेखाओं के मध्य किसी बैंक का नाम भी लिख दिया जाता है तो इसे विशेष रेखांकन कहा जाता है। इसमें सामान्य रेखांकन की तरह & Co. (या Not Negotiable) शब्द भी लिखे जा सकते हैं, परन्तु बैंक का नाम अवश्य लिखा जाता है। इसके कुछ नमूने निम्न प्रकार हैं–

यदि कोई चैक विशिष्ट रेखांकन के अन्तर्गत किसी बैंक के माध्यम से देय है तो वह बैंक ही उस चैक का रुपया संग्रहित करने का अधिकारी होता है।

3. **प्रतिबन्धित रेखांकन** – इस प्रकार के रेखांकन में चैक के हस्तान्तरण पर प्रतिबन्ध लगा दिया जाता है, अर्थात् जिस व्यक्ति के नाम में चैक जारी किया जाता है केवल वहीं व्यक्ति अपने खाते के माध्यम से उस चैक का भुगतान प्राप्त कर सकता है। यह प्रतिबन्धित रेखांकन, सामान्य रेखांकन की ही भाँति हाता है, परन्तु किसी बैंक का नाम लिखकर इसे विशिष्ट रेखांकन के रूप में भी परिवर्तित कर सकते हैं। प्रतिबन्धित रेखांकन के कुछ नमूने निम्न प्रकार हैं–

धारा 130 के अनुसार 'बेचान साध्य नहीं' (Not Negotiable) शब्द का प्रयोग चैक के प्राप्त करने वाले को हस्तान्तरण कर्ता के अधिकार से अच्छा अधिकार नहीं दिलाता है, चाहे प्राप्त कर्ता ने पूर्ण प्रतिफल और सद्भाव से चैक ग्रहण किया हो। इस प्रकार रेखांकन के उपर्युक्त तीनों प्रकारों में Not Negotiable शब्दों का प्रयोग समान प्रभाव से किया जा सकता है।

चैक का रेखांकन कौन कर सकता है?

धारा 125 के अनुसार एक चैक का रेखांकन निम्न पक्षकार कर सकते हैं–

1. चैक का लेखक किसी भी चैक को सामान्य या विशेष रूप से रेखांकित कर सकता है।
2. चैक प्राप्त करने वाला अथवा धारी स्वयं चैक को सामान्य या विशेष रूप से रेखांकित कर सकता है।
3. सामान्य अथवा विशेष रेखांकित चैक में Not Negotiable शब्दों को चैक का धारी बढ़ा सकता है।
4. बैंक अपने पास संकलन के लिए प्राप्त सभी चैकों को अपने नाम से विशेष रेखांकित कर लेता है।
5. जब बैंक उपर्युक्त रूप से संकलन के लिए प्राप्त चैकों का भुगतान प्राप्त करता है तो उन चैकों को सम्बन्धित बैंक के पक्ष में विशेष रेखांकित कर देता है।

भुगतान करने वाले बैंक की सुरक्षा

कानूनी रूप से भुगतान करने वाले बैंक को हर सम्भव संरक्षण प्रदान करने की कोशिश की गई है। धारा 85 में व्यवस्था है कि जब एक चैक जो आदेशानुसार देय होता है और वह भुगतान पाने वाले के द्वारा बेचान कर दिया

जाता है, इस दशा में यदि बैंक द्वारा उचित रूप से भुगतान कर दिया जाता है, तो बैंक अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है। बैंक को अधिकृत किया गया है तो वह उस रकम को ग्राहक के खाते में नाम लिख सकता है, चाहे बाद में बेचान त्रुटिपूर्ण ही सिद्ध क्यों न हो जाये। बैंक को यह सुरक्षा इस आधार पर दी गई है, क्योंकि बैंक से यह आशा नहीं की जा सकती कि वह दुनिया के सभी लोगों के हस्ताक्षरों को पहचाने, परन्तु बैंक को अपने ग्राहक के हस्ताक्षरों की पहचान अवश्य होनी चाहिए। यदि ग्राहक के हस्ताक्षर के पहचानने में ही बैंक द्वारा त्रुटि की जाती है तो बैंक को सुरक्षा नहीं मिलेगी। लन्दन बैंक बनाम मैकमिलन (London J.S. Bank *Vs.* Mc Millan) (1918) के विवाद में यह निर्णय दिया गया था कि यदि बैंक द्वारा हस्ताक्षर को पहचानने में की गई गलती ग्राहक की लापरवाही का परिणाम है, तो बैंक को कुछ सीमा तक अपने दायित्व से मुक्त कर दिया जायेगा।

सामान्य रूप से प्रारम्भ में जारी किया गया वाहक चैक, वाहक ही बना रहता है और बेचानों को यदि बैंक द्वारा ध्यान नहीं दिया गया है एवं उचित रूप में भुगतान किया गया है तो बैंक उत्तरदायी नहीं होता है, परन्तु प्रारम्भिक रूप से चैक आदेशित था, परन्तु बाद में वह साधारण बेचान के फलस्वरूप वाहक बन जाता है, तो उपर्युक्त नियम लागू नहीं होगा अर्थात् यदि सामान्य बेचानकर्ता द्वारा त्रुटि की जाती है और ऐसे त्रुटिपूर्ण बेचान के फलस्वरूप बैंक ग्राहक को भुगतान कर देता है तो बैंक अपने दायित्व से मुक्त नहीं माना जायेगा।

धारा 85 A के अनुसार यदि एक बैंक-ड्राफ्ट जारी करता है और इस ड्राफ्ट पर झूठे बेचान कर दिए जाते हैं तो भुगतान करने वाला ऐसे बेचानों के दायित्व से मुक्त माना जाएगा। इसी प्रकार धारा 128 के अनुसार यदि एक बैंक किसी रेखांकित चैक का भुगतान उचित रूप से कर देता है, तो बैंक अपने दायित्व से मुक्त मान लिया जाता है।

यथाविधि भुगतान के नियम

यथाविधि भुगतान (Payment in Due Course) अर्थात् ठीक रीति से भुगतान करने के सम्बन्ध में नियम चैक या विनिमय विपत्र आदि सभी विनिमय साध्य पत्रों पर लागू होते हैं, धारा 10 में कुछ महत्वपूर्ण नियम (या शर्तें) दी गई हैं, जिनका विश्लेषण निम्न प्रकार है–

1. **प्रपत्र की शर्तों के अनुसार** – किसी भी विनिमय साध्य पत्र का भुगतान प्रपत्र में निर्देशित शर्तों के अनुसार होना चाहिए, ये शर्तें प्रपत्र तैयार करते समय तय की जा सकती हैं, या बाद में पक्षकार आपसी सहमति या अनुबन्ध के आधार पर इनका निर्धारण कर सकते हैं। सामान्य रूप से यह अपेक्षित होता है कि विनिमय साध्य पत्र का भुगतान देय तिथि पर या माँगने पर (यदि माँग पर देय है) किया जाना चाहिए। कुछ परिस्थितियों में भुगतान तिथि से पूर्व ही किया गया भुगतान यथाविधि भुगतान नहीं माना जायेगा।

2. **पूर्ण सद्भावना के और बिना लापरवाही के भुगतान** – विनिमय साध्य पत्र का उचित भुगतान तब ही माना जायेगा, जबकि भुगतान करने वाले ने पूर्ण सावधानी से सद्भावना से भुगतान किया है। यहाँ सद्भावना का आशय यही माना जाता है कि भुगतान पाने वाले के दूषित अधिकारों की जानकारी भुगतानकर्ता को नहीं थी, इसी प्रकार पूर्ण सावधानी (या लापरवाही रहित) भुगतान में, भुगतान कर्ता के प्रति यह न सिद्ध किया जाये कि भुगतान करने वाले ने भुगतान प्राप्त कर्ता से आवश्यक पूछताछ नहीं की। इलाहाबाद बैंक लि. बनाम कुल भूषण (Allahabad Bank Ltd. *Vs.* Kul Bhushan) (1691) के विवाद में यही निर्णय दिया गया था कि बैंक त्रुटि मालूम करने का प्रयत्न करता तो मालूम की जा सकती, परन्तु बैंक ने ऐसा न करके लापरवाही में भुगतान कर दिया। फलस्वरूप वह भुगतान यथाविधि नहीं माना गया।

3. **भुगतान उसी को किया जाना चाहिए जिसके पास प्रपत्र हो** – यदि भुगतान किसी ऐसे व्यक्ति को कर दिया जाता है, जिसके पास विनिमय साध्य पत्र नहीं है, तो इसे ठीक या यथाविधि भुगतान नहीं माना जा सकता है। अर्थात् भुगतान कर्ता को प्रपत्र ठीक प्रकार से देखकर प्राप्त कर लेना चाहिए एवं प्रलेख देने वाले व्यक्ति को ही भुगतान करने चाहिए।

4. **प्रलेख का भुगतान केवल मुद्रा में ही माना जाता है** – यथाविधि भुगतान उसी दशा में माना जायेगा, जबकि विनिमय साध्य का भुगतान देश में प्रचलित मुद्रा में किया गया है। भुगतान कर्ता किसी अन्य वस्तु या अन्य रूप में भुगतान समायोजित करने के लिए बाध्य नहीं कर सकता है, परन्तु किसी एक प्रपत्र के भुगतान के बदले में दूसरा विपत्र या चैक दिया जाता है तो इसे यथाविधि भुगतान माना जा सकता है।

भुगतान पाने वाले बैंक को सुरक्षा

प्रत्येक वाणिज्यिक बैंक अपने ग्राहकों के एजेण्ट के रूप में भुगतान प्राप्त करने वाले बैंक (Collecting Banker) के रूप में कार्य करता है, परन्तु बैंक से यह अपेक्षा की जाती है कि वह इस कार्य को पूर्ण सद्भावना से करेगा परन्तु इस बीच यदि ग्राहक या चैक जमा कराने वाले का ही अधिकार दूषित हो, तो धारा 131 संग्रहीत बैंक को

सुरक्षा प्रदान करता है। इस प्रकार भुगतान प्राप्त करने वाला बैंक ग्राहक के त्रुटिपूर्ण दायित्वों के विरुद्ध सुरक्षित होता है।

NOTES

बैंक को सुरक्षा प्राप्त करने के लिए यह सिद्ध करना पड़ेगा कि –

(1) चैक बैंक के पास आने के पूर्व रेखांकित था,

(2) चैक ग्राहक द्वारा, ग्राहक के लिए प्रस्तुत किया गया था और भुगतान भी बैंक ने ग्राहक के लिए ही प्राप्त किया है।

(3) चैक का रुपया बैंक ने सद्भावना से और बिना लापरवाही के एकत्रित किया है।

उपर्युक्त प्रावधानों से यह स्पष्ट है कि यदि बैंक बिना रेखांकित किये चैक का रुपया किसी ऐसे ग्राहक के लिए इकट्ठा कर लेता है जो चैक का रुपया प्राप्त करने का असली अधिकारी नहीं है और बैंक के पक्ष में झूठे बेचान किये जाते थे तो ऐसे संकलन या संग्रह के लिए बैंक को कोई सुरक्षा उपलब्ध नहीं होगी एवं बैंक चैक के असली मालिक के प्रति उत्तरदायी माना जायेगा।

पुराने धनादेश का भुगतान (Stale or Outdated Cheque)

भारत में एक चैक 6 माह तक वैध माना जाता है और चैक पर लिखी तिथि से 6 माह हो जाते हैं तो बैंक चैक का भुगतान करने से इंकार कर सकता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि यदि बैंक ने किसी पुराने चैक का भुगतान कर दिया है तो वह यथाविधि भुगतान न माना जाये। इसे ठीक या उचित भुगतान माना जायेगा। इंग्लैण्ड में एक चैक 12 महीने तक भुगतान के लिए वैध माना जाता है।

भारतीय समयावधि अधिनियम (Indian Limitation Act) के अनुसार किसी चैक का धारी चैक की तिथि के 3 वर्ष तक कानूनी रूप से रुपया प्राप्त करने का अधिकारी होता है। इसके पश्चात् उस चैक की ऋण वैधता समाप्त (Statute Barred) हो जाती है।

उपर्युक्त प्रारम्भिक अध्ययन के अन्तर्गत हमने यह देखा कि विभिन्न प्रलेखों की विनिमय साध्यता के आधार पर यह निश्चित किया जाना चाहिए कि उन्हें अधिनियम के अनुसार किसी प्रकार का कानूनी रूप दिया जाये। अगले अध्यायों में हम इन्हीं प्रलेखों के अन्य कानूनी पहलुओं का अध्ययन करेंगे।

हुण्डियाँ
(Hundies)

हुण्डियाँ भी विनिमय साध्य लेख पत्र होते हैं और इन्हें प्रादेशिक भाषा में लिखा जाता है। इनका स्वरूप भी साधारणतः विनिमय विपत्र की भाँति होता है और कभी-कभी ये प्रतिज्ञा-पत्र की भाँति भी काम में लायी जाती हैं। भारतवर्ष में हुण्डियों का प्रचलन विनिमय साध्य लेख पत्रों के अधिनियम के पास होने से पहले से ही है। हुण्डियाँ बहुत प्रकार की होती हैं। कुछ महत्वपूर्ण हुण्डियाँ निम्न प्रकार हैं–

(i) **दर्शनी हुण्डी** – यह हुण्डी दर्शन पर देय होती है अर्थात् ऐसी हुण्डी का भुगतान देखने पर करना पड़ता है। यदि यह हुण्डी माँग पर देय हो तो धारक को यथोचित रुपये में देनदार के सम्मुख प्रस्तुत करनी होगी।

(ii) **मुद्दती अथवा मियादी हुण्डी** – यह हुण्डी ऐसी होती है जिसका भुगतान एक निश्चित समय के बाद देय होता है। इसे **मिती हुण्डी** भी कहते हैं।

(iii) **शाहजोग हुण्डी** – 'शाह' का अर्थ किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति से होता है अर्थात् जो बाजार में बहुत ही प्रसिद्ध और बड़ा माना जाता है। ऐसी हुण्डी ऐसे ही व्यक्ति द्वारा देय होती है।

(iv) **नामजोग हुण्डी** – ऐसी हुण्डी का भुगतान उसी व्यक्ति को होता है जिसका नाम उसमें लिखा होता है। इसे **फरमान जोग हुण्डी** भी कहते हैं। इसे पृष्ठांकित भी किया जा सकता है।

(v) **धनीजोग हुण्डी** – यहाँ धनी का अर्थ मालिक से है। ऐसी हुण्डी का भुगतान मालिक को देय होता है।

(vi) **जोखिमी हुण्डी** – यह हुण्डी माल के भेजने वाले के द्वारा माल के मँगाने वाले पर लिखी जाती है। ऐसी हुण्डी का भुगतान केवल उसी समय देय होता है जबकि सामान पहुँच जाता है।

इस हुण्डी से तो लेखक (Drawer) को इसका रुपया पृष्ठांकन के बाद मिल जाता है और दूसरे माल पर एक प्रकार का बीमा भी हो जाता है।

(vii) **जवाबी हुण्डी** – ऐसी हुण्डी का उपयोग एक जगह से दूसरी जगह बैंक के द्वारा रुपया भेजने में किया जाता है।

NOTES

(viii) **देखनहार हुण्डी** – उसे कहते हैं जो दिखाने वाले अर्थात् वाहक को देय हो। दर्शनी हुण्डी देखनहार हुण्डी नहीं हो सकती है।

जिक्री चिट – जब हुण्डी अप्रतिष्ठित हो जाती है अथवा ऐसा होने का सन्देह रहता है तो हुण्डी का लेखक या कोई पक्षकार धारक को एक सुरक्षा पत्र देता है जो किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति के नाम लिखा जाता है। इसमें यह आदेश होता है कि अप्रतिष्ठित होने पर प्रतिष्ठा के लिए वह इसका भुगतान कर दे। इस सुरक्षा पत्र को "जिक्री चिट" कहते हैं।

पुर्जा – यह एक पत्र होता है जो ऋण के लिए कोई व्यक्ति किसी महाजन के नाम लिखता है और उसमें लिखित रकम उधार देने का अनुरोध करता है। इस पर रसीदी टिकट लगता है।

पैठ एवं पर-पैठ – हुण्डी की प्रतिलिपि को "पैठ" कहते हैं और प्रतिलिपि से की गई दूसरी प्रतिलिपि को पर-पैठ कहते हैं। तीसरी प्रतिलिपि को "दर-पैठ" और चौथी को "पंचायती" कहते हैं।

हुण्डी तथा विनिमय-पत्र में अन्तर – हुण्डी के लिखने का ढंग एक-सा नहीं परन्तु विनिमय-पत्र में सर्वत्र ही एकरूपता पाई जाती है। भारत में हुण्डी का चलन स्थानीय रीति-रिवाजों के अनुसार एवं विनिमय साध्य लेख-पत्र अधिनियम के अन्तर्गत होता है। हुण्डी की स्वीकृति मौखिक हो सकती है। विनिमय साध्य पत्र की स्वीकृति सदैव लिखित होती है। विनिमय साध्य पत्र की तरह हुण्डी के अप्रतिष्ठित होने पर सूचना देना आवश्यक नहीं होता। इस प्रकार न्यायालय में संरक्षण प्राप्त करने के लिए इसे विनिमय विपत्र या प्रतिज्ञा पत्र के रूप में लिखकर टिकिट लगाते हैं और बोल-चाल की भाषा में इसे हुण्डी ही मानते हैं।

प्रश्न
(Questions)

1. चैक के रेखांकन का क्या अर्थ है? चैक के रेखांकन की विभिन्न किस्में तथा प्रत्येक के वैधानिक प्रभाव का वर्णन कीजिए।
2. एक चैक के रेखांकन का क्या प्रभाव होता है? क्या एक चैक जिस पर 'अपरक्राम्य रेखांकन' हुआ है, बेचान तथा परक्रामण हो सकता है?
3. चैक का रेखांकन करने का क्या महत्व है?
4. चैक का रेखांकन करने का क्या महत्व है? रेखांकन कितने प्रकार के होते हैं? क्या बिल ऑफ एक्सचेंज रेखांकित किया जा सकता है?
5. चैक के रेखांकन की किस्में तथा प्रत्येक के वैधानिक प्रभाव का वर्णन कीजिए।
6. चैक के लेखांकन का क्या अर्थ है? लेखांकन कौन कर सकता है? इसके प्रकारों को बताइए।
7. 'प्रतिष्ठा हेतु स्वीकृति' तथा 'प्रतिष्ठा हेतु भुगतान' से आप विनिमय-साध्य लेख-पत्रों के अधिनियम के अनुसार क्या समझते हैं? प्रतिष्ठा हेतु स्वीकर्ता तथा भुगतान करने वाले के क्या अधिकार और दायित्व हैं?
8. प्रतिष्ठा के लिए भुगतान और प्रतिष्ठा के लिए स्वीकृति से आप क्या समझते हैं? प्रतिष्ठा के लिये स्वीकर्ता और प्रतिष्ठा के लिये भुगतानकर्ता के क्या-क्या अधिकार और दायित्व हैं?

अपनी प्रगति की जाँच करें
Test your Progress

13

विनिमय साध्य-पत्रों का हस्तान्तरण एवं प्रस्तुतीकरण
[NEGOTIATION AND PRESENTATION OF NEGOTIABLE INSTRUMENTS]

हस्तांतरण या विनिमय साध्यता

अधिनियम की धारा 14 के अनुसार, जब कोई प्रतिज्ञापत्र, विनिमय विपत्र अथवा चैक उसके धारक अथवा यथाविधिधारक द्वारा किसी अन्य पक्षकार के हित में बेच दिया जाता है, जिससे कि अन्य व्यक्ति उसका धारक बन जाए तो इस लेख-पत्र को हस्तांतरित या परक्रामण हुआ कहा जाता है। इस प्रकार हस्तांतरण में अधिकार, स्वामित्व और हितों को हस्तांतरित किया जाता है, जिससे कि हस्तांतरण-ग्रहीता को श्रेष्ठ स्वामित्व प्राप्त हो सके।

परक्रामण सामान्य अधिकार-परिवर्तन से भिन्न होता है, अधिकार-परिवर्तन में यह आवश्यक नहीं है कि स्वामित्व का भी हस्तांतरण हो, लेकिन परक्रामण में पक्षकारों की इच्छा स्वामित्व परिवर्तन की होती है।

अभिहस्तांकन (Assignment)

सम्पत्ति हस्तांतरण अधिनियम के अन्तर्गत जब कोई व्यक्ति अपनी सम्पत्ति का स्वामित्व किसी लिखित प्रलेख के आधार पर अन्य व्यक्ति को सौंपता है। विनिमय साध्य पत्रों के स्वामित्व का हस्तांतरण अभिहस्तांकन के रूप में भी किया जा सकता है। अभिहस्तांकन में प्रपत्र प्राप्त करने वाले को धारक के अधिकार तो मिल जाते हैं, परन्तु उसे यथाविधिधारक नहीं माना जा सकता है। इस प्रकार यदि अभिहस्तांकक का अधिकार दूषित है तो अभिहस्तांकिकी का भी अधिकार त्रुटिपूर्ण माना जाता है।

नरसिंह पण्डा बनाम एन. नरसिंहा मूर्ति (Narsingh Panda *Vs.* N. Narsinha Murty) (1966) के विवाद में मूर्ति ने अन्य पक्षकार के पक्ष में 1,000 रु. का प्रतिज्ञापत्र स्वीकार करके दिया। अन्य पक्षकार ने अभिहस्तांकन के अन्तर्गत यह प्रतिज्ञापत्र पाण्डा को बेच दिया। देय तिथि पर मूर्ति ने भुगतान करने से इन्कार कर दिया। मूर्ति का कहना था कि पाण्डा प्रतिज्ञापत्र का यथाविधिधारी नहीं है। न्यायालय ने निर्णय दिया कि यद्यपि पाण्डा यथाविधिधारी नहीं है, फिर भी वह धारक तो है अतः उसे धारा 8 के अन्तर्गत धारक होने के नाते भुगतान पाने का अधिकार है।

महत्वपूर्ण – विनिमय साध्य पत्र अधिनियम किसी हस्तांकन (Assignment) के व्यवहारों को मान्यता नहीं देता है।

अभिहस्तांकन और हस्तांतरण में अन्तर

अभिहस्तांकन के व्यवहार सम्पत्ति हस्तांतरण अधिनियम (Transfer of Property Act) एवं परक्रामण या हस्तांतरण में विनिमय साध्य पत्रों के व्यवहार विनिमय साध्य अनिनियम से नियमित होते हैं। इस प्रकार अभिहस्तांकन और हस्तांतरण में निम्न आधारों पर अंतर किया जा सकता है :–

(1) **औपचारिकताएँ** – विनिमय साध्य पत्रों का हस्तांतरण मात्र सुपुर्दगी अथवा बेचान द्वारा किए जा सकते हैं; लेकिन अभिहस्तांकन में लिखित और रजिस्टर्ड प्रलेख के आधार पर ही हस्तांतरण सम्भव होता है।

(2) **श्रेष्ठ स्वामित्व** – परक्रामण में हस्तांतरण कर्त्ता से श्रेष्ठ स्वामित्व भी हस्तांतरिणी को प्राप्त हो सकता है, बशर्ते कि वह यथाविधिधारी है। लेकिन अभिहस्तांकन में प्राप्तकर्त्ता को श्रेष्ठ अधिकार प्राप्त नहीं होता है। पूर्ण सद्भाव एवं मूल्य के बदले में भी प्रलेख प्राप्त करने पर प्राप्तकर्त्ता श्रेष्ठतर अधिकार प्राप्त नहीं कर सकता है।

(3) **हस्तांतरण की सूचना** – यदि धारक विनिमय साध्य पत्र का हस्तांतरण करता है तो इसकी सूचना लेखक, स्वीकर्त्ता एवं भुगतानकर्त्ता को देना आवश्यक नहीं है, लेकिन अभिहस्तांकन में मूल ऋणी को सूचना देना आवश्यक समझा जाता है।

(4) **प्रतिफल** – परक्रामण में प्रतिफल हमेशा उपस्थित मान लिया जाता है, जब तक कि इसके विरुद्ध कोई विपरीत स्थिति सिद्ध न कर दी जाए, परन्तु अभिहस्तांकन में प्रतिफल का होना, प्रारम्भ में ही प्रमाणित करना आवश्यक समझा जाता है।

(5) **वाद प्रस्तुत करना** – विनिमय साध्य पत्र का धारक या यथाविधिधारक भुगतानकर्त्ता के विरुद्ध अपने अधिकार का प्रयोग करके धनराशि के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है, परन्तु अभिहस्तांकन में प्रपत्र प्राप्त करने वाला मूल ऋणी और ऋणदाता को सूचित कर देता है और मूल ऋणी के विरुद्ध अपने अधिकार का प्रयोग अपने नाम में नहीं कर सकता है।

विनिमय साध्य पत्र का हस्तांतरणकर्त्ता

किसी भी विनिमय साध्य पत्र का प्रथम हस्तांतरण वह व्यक्ति कर सकता है, जिसका नाम प्रपत्र में भुगतान पाने वाले के रूप में लिखा है। बाद के हस्तांतरण या बेचान प्रपत्र के धारकों द्वारा भी किए जा सकते हैं। धारा 15 की व्यवस्था के अनुसार विनिमय विपत्र का लेखक भी उसका बेचान कर सकता है, परन्तु यह पत्र लेखक या उसके आदेशानुसार देय होना चाहिए। लेखक के प्रथम हस्ताक्षर से तो वह उसका ऋणदाता या लेखक माना जाता है परन्तु उस पर पुनः हस्ताक्षर करके वह उसका बेचान भी कर सकता है। धारा 51 में यह व्यवस्था दी गई है कि किसी विपत्र का लेखक, या बेचानकर्त्ता स्वयं या सामूहिक रूप से बेचान करते हैं, तो ऐसा करने का उन्हें वैधानिक अधिकार उपलब्ध रहता है, परन्तु एक भुगतान प्राप्त कर्त्ता या हस्तांतरिणी उस प्रपत्र का आगे बेचान उसी दशा में कर सकते हैं, जब कि विपत्र उनके पास धारक के रूप में है। दूसरे शब्दों में, जब तक कि परक्रामण का अधिकार अधिनियम द्वारा प्रतिबन्धित न कर दिया गया हो विनिमय साध्य पत्र का प्रत्येक एकाकी लेखक आहर्त्ता, प्राप्तकर्त्ता अथवा पृष्ठांकिती अथवा यदि कई सामूहिक लेखक, आहर्त्ता, प्राप्तकर्त्ता अथवा पृष्ठांकितीं हों तो वे सब मिलकर उसका परक्रामण कर सकते हैं।

किसी मृतधारी का वैधानिक प्रतिनिधि भी धारा 57 के अनुसार एक विनिमय साध्य लेखपत्र का परक्रामण कर सकता है, परन्तु इसमें यह आवश्यक है कि आज्ञा पर देय (माँग पर देय) किसी प्रतिज्ञा पत्र, विनिमय विपत्र या चैक का केवल सुपुर्दगी द्वारा ही परक्रामण नहीं किया जा सकता है, परन्तु ऐसे प्रलेख की सुपुर्दगी की जा सकती है, जिस पर पृष्ठांकन मृतक ने कर दिया था, परन्तु उसकी सुपुर्दगी न दी हो।

बेचान या परक्रामण का प्रभाव

धारा 50 के अन्तर्गत परक्रामण या बेचान के प्रभाव को निम्न प्रकार स्पष्ट किया गया है :–

(1) किसी भी विनिमय साध्य पत्र का स्वामित्व बेचान करने वाले से उस व्यक्ति को हस्तांतरित हो जाता है, जिसके पक्ष में बेचान किया जाता है।

(2) आगे बेचान या परक्रामण का अधिकार भी उस व्यक्ति को प्राप्त हो जाता है, जिसके पक्ष में बेचान किया गया था।

(3) ऐसे व्यक्ति को अपने नाम में लेखपत्र के सभी पक्षों के विरुद्ध अभियोग चलाने का अधिकार मिल जाता है।

वैध बेचान के आवश्यक तत्व

उपर्युक्त विवरण के आधार पर एक वैध बेचान के निम्न आवश्यक तत्व होते हैं :

(1) प्रलेख अपने आप में पूर्ण लेख-पत्र होना चाहिए, यदि बेचान लिखने के लिए प्रलेख में स्थान न बचा हो तो साथ में अलग कागज नत्थी किया जा सकता है। इस प्रकार की स्लिप को अलौंज (Allonge) कहते हैं।

(2) यह लेखपत्र बेचानकर्त्ता द्वारा हस्ताक्षरित होना चाहिए। यदि बेचानकर्त्ता ने मात्र उस पर बेचान के रूप में अपने हस्ताक्षर कर दिए हैं, तब भी इसे पर्याप्त बेचान माना जा सकता है। यदि आदेशित विपत्र है और उसमें लेखक ने नाम के हिज्जे (Spelling) गलत लिख दिए हैं तो हस्ताक्षर के साथ उसी रूप में गलत हिज्जे भी लिखे जाने चाहिए। इस प्रकार सही हस्ताक्षर (Correct Spelling) भी अवश्य लिखना चाहिए।

(3) बेचान के लिए कानूनी रूप से कोई वाक्य या शब्द निर्धारित नहीं किए गए हैं, परन्तु बेचानकर्त्ता प्राप्त करने वाले का नाम और अपने हस्ताक्षर कर देता है, तो इसे पूर्ण मान लिया जाता है।

(4) अन्त में प्रलेख की सुपुर्दगी भी इस उद्देश्य से की जानी चाहिए जिससे कि बेचानकर्त्ता की इच्छा प्रलेख के प्राप्त करने वाले के पक्ष में अधिकार और स्वामित्व सौंपने के उद्देश्य से हो। यदि पक्षकारों की इच्छा ऐसी नहीं होगी तो बेचान पूर्ण नहीं माना जाएगा।

बेचान के प्रकार

किसी भी विनिमय साध्य पत्र का परक्रामण या बेचान निम्न प्रकारों से किया जा सकता है :–

(1) **साधारण बेचान** (General of Blank Endorsement) – जब किसी पत्र का धारक उस लेखपत्र पर मात्र अपने हस्ताक्षर कर देता है और बेचान किसी विशिष्ट पक्षकार के हित में नहीं करता है तो इसे कोरा बेचान या

... धारा 15 के अनुसार इस प्रकार के सामान्य बेचान से विपत्र का वाहक ही उसका धारक बन जाता है और इसे सुपुर्दगी मात्र से ही बेचान किया जा सकता है। धारा 16 के अनुसार भी हम देखते हैं कि इस प्रकार के बेचान से आदेशित प्रलेख भी वाहक को देय बन जाते हैं। पीकोक बनाम रोड्स (Peacock *Vs*. Rhodes) (1781) के विवाद में यही निर्णय दिया गया था कि सामान्य बेचान या वाहक को देय पत्र में स्वामित्व का हस्तांतरण मात्र सुपुर्दगी से ही पूर्ण हो जाता है।

(2) **विशेष या पूर्ण बेचान** (Endorsement in Full or Special Endorsement) – बेचान करने वाला जब प्रपत्र में दूसरे पक्षकार का नाम लिख देता है एवं अपने नाम के हस्ताक्षर कर देता है तो इसे पूर्ण बेचान कहते हैं।

साधारण बेचान को विशिष्ट या पूर्ण बेचान के रूप में भी परिवर्तित किया जा सकता है। धारा 49 के अनुसार सामान्य बेचान में बेचानकर्त्ता मात्र अपने हस्ताक्षर कर देता है, परन्तु इस प्रलेख को प्राप्त करने वाला वहाँ अपना/या अन्य नाम भर सकता है। इस प्रकार वाहक को देय विपत्र आदेशित बनाया जा सकता है।

इस प्रकार के सामान्य बेचान को विशेष बेचान में करने का प्रमुख प्रभाव यही होता है कि प्रारम्भिक बेचानकर्त्ता और जिस पक्षकार का नाम लिखा है, उसके प्रत्यक्ष सम्बन्ध हो जाते हैं और इसके बीच के सभी पक्षकार अपने दायित्व से मुक्त हो जाते हैं। धारा 55 के अनुसार, इस प्रकार के बेचान के पूर्व उस विपत्र को वाहक को देय ही माना जाता है और बेचान पूर्ण होने पर, जिस व्यक्ति का नाम लिखा है, वह अगले बेचानों के लिए अवश्य दायी बनाया जा सकता है।

(3) **आंशिक बेचान** – जब बेचानकर्त्ता प्रपत्र में लिखी रकम का कुछ ही अंश बेचानकर्त्ता को भुगतान कराना चाहता है तो उसे आंशिक बेचान कहा जाता है अर्थात् 4,500 रु. के विनिमय विपत्र के बेचान में यदि यह लिख दिया जाए "कैलाश को 1,500 रु. भुगतान कीजिए", तो इसे आंशिक बेचान कहा जाएगा। कानूनी रूप से आंशिक बेचान को त्रुटिपूर्ण माना जाता है और इसे वैधानिक संरक्षण प्राप्त नहीं होता है। धारा 56 के अनुसार आंशिक बेचान व्यर्थ माना जाता है।

अपवादस्वरूप यह अवश्य सम्भव है कि यदि किसी लेख-पत्र का आंशिक भुगतान कर दिया गया है तो शेष राशि के लिए बेचान किया जा सकता है, परन्तु आंशिक भुगतान की टिप्पणी अवश्य दी जाती है। इस प्रकार के विपत्र के बेचान में निम्न प्रकार की भाषा लिखी जा सकती है :–

"कैलाश या उसके आदेशित को 1,500 रु. बिल की बकाया राशि भुगतान की जाए" ("Pay to Kailash or order Rs.1,500/- being the unpaid residue of the Bill.")

इस बेचान से स्पष्ट है कि बिल में 1,500 की रकम लेना शेष है, जिसके लिए बेचान किया जा रहा है। हैलबट बनाम नेविल (Heilbut *Vs*. Nevill) (1869) के विवाद में भी यही निर्णय दिया गया था कि आंशिक बेचान बिना किसी स्पष्ट टिप्पणी के व्यर्थ माने जाते हैं।

(4) **सीमित बेचान** – जब किसी बेचान के अन्तर्गत किसी विनिमय साध्य पत्र के अगले बेचानों पर प्रतिबन्ध लग जाता है तो इसे सीमित या प्रतिबन्धित बेचान कहते हैं। जैसे "Pay to Kamla only", इस दशा में कमला इस विपत्र का आगे हस्तांतरण नहीं कर सकती है। लॉयड बनाम सिगोर्नी (Lloyd *Vs*. Sigourney) (1829) के विवाद में कमला को कैलाश ने बिल का हस्तांतरण इस प्रकार किया, "कमला को या आदेशित को मेरे उपयोग हेतु अदा करें" "Pay to Kamla or order or my use"। कमला ने इस बिल को बैंक से भुना लिया, बैंक की देय तिथि को भुगतान प्राप्त हो गया। यह निर्णय दिया गया कि कैलाश बिल का रुपया बैंक से वसूल कर सकता है।

(5) **शर्तपूर्ण या प्रतिबन्धित बेचान** – जब किसी विनिमय साध्य पत्र का बेचानकर्त्ता, बेचान करते समय स्पष्ट शब्दों द्वारा अपने दायित्व को सीमित कर देता है या अपने दायित्व का निषेध करने के स्थान पर बेचान द्वारा किसी अनिश्चित घटना के घटित होने पर अपने दायित्व को सीमित कर लेता है तो ऐसे बेचान को शर्तपूर्ण या प्रतिबन्धित बेचान कहते हैं। यह बेचान सीमित बेचान से भिन्न होता है क्योंकि सीमित बेचान में बेचानकर्त्ता प्रलेख के आगे बेचान पर प्रतिबन्ध लगाता है, परन्तु शर्तपूर्ण बेचान में बेचानकर्त्ता स्वयं अपने दायित्व को सीमित कर लेता है। प्रतिबन्धित बेचान में अपने दायित्व को सीमित निम्न प्रकार से किया जा सकता है :–

(अ) **दायित्व रहित बेचान** (Sans Recourse) – जब बेचानकर्त्ता यह स्पष्ट कर देता है कि वह उस व्यक्ति के प्रति, जिसके लिए बेचान किया जा रहा है या दूसरे धारकों के प्रति लेख-पत्र के अनादरित होने पर उत्तरदायी नहीं होगा, तो ऐसे बेचान को दायित्व रहित बेचान कहते हैं। इसमें बेचानकर्त्ता को निम्न प्रकार बेचान करना चाहिए :–

("कमला को या उसके आदेशित को भुगतान किया जाए।") ("Pay to Kamla or order Sans Recourse.")

NOTES

अथवा

("कमला को या उसके आदेश पर उसके जोखिम पर भुगतान किया जाए") ("Pay to Kamla or order at her own risk.")

(ब) **ऐच्छिक बेचान** (Facultative) – जब बेचान करने वाला स्पष्ट शब्दों में यह लिख देता है कि लेखपत्र के अनादरण होने पर धारक या बेचानकर्त्ता को सूचना देना आवश्यक नहीं है, तो इसे ऐच्छिक बेचान कहते हैं। इस प्रकार के बेचान में बेचानकर्त्ता अपना दायित्व बढ़ा भी सकता है।

(स) **व्यय-मुक्त बेचान** (Sans Frais) – जब बेचानकर्त्ता यह चाहता है कि अमुक विपत्र के आगामी बेचानकर्त्ता प्रलेख के हस्तांतरण में अन्य अतिरिक्त खर्चे न करें अथवा भविष्य के खर्चों के लिए बेचानकर्त्ता स्वयं दायित्व ग्रहण कर लेता है तो इसे व्यय-मुक्त बेचान कहते हैं।

(द) **असम्भव/आकस्मिक दायित्व का बेचान** (Liability dependent upon a Contingency) – जब किसी विपत्र को बेचानकर्त्ता किसी ऐसी असम्भव आकस्मिक घटना की शर्त बेचान में शामिल कर देता है, जिसके न घटने पर बेचानकर्त्ता दायित्व मुक्त रहेगा, तो इस प्रकार सीमित बेचान के रूप में भी यह बेचान किया जा सकता है।

("कमला को भुगतान किया जाए यदि वह कमलेश से शादी करे।") ("Pay to Kamla if she marries with Kailash.") इस प्रकार की स्थिति में भुगतानकर्त्ता को यह देखना आवश्यक हो जाता है कि कमला को भुगतान उसी स्थिति में किया जाए जबकि उसने कैलाश से शादी कर ली हो, परन्तु भारतीय अधिनियम में इस प्रकार की शर्त को विनिमय साध्यता या बेचान के लिए मान्य नहीं समझा जाता है।

विनिमय साध्य-पत्रों का प्रस्तुतीकरण
(Presentation)

जब किसी विनिमय विपत्र को उसके लेखक द्वारा स्वीकर्त्ता के समक्ष स्वीकृति या भुगतान के लिए प्रस्तुत किया जाता है तो इसे प्रस्तुतीकरण कहा जाता है। यह प्रस्तुति दो प्रकार की हो सकती है : (1) स्वीकृति के लिए प्रस्तुति, (2) भुगतान के लिए प्रस्तुति।

I. स्वीकृति के लिये प्रस्तुतीकरण

एक विनिमय विपत्र की स्वीकृति का आशय होता है कि वह व्यक्ति जिस पर प्रपत्र लिखा जाता है वह उस लेखपत्र की रकम चुकाने को तैयार है। व्यवहार में ऋणदाता, ऋणी को एक आदेश के रूप में पत्र लिखता है, जिस पर टिकिट लगाकर ऋणी 'स्वीकार है', शब्द लिखकर हस्ताक्षर करके ऋणदाता को लौटा देता है, इसे ही स्वीकृति कहा जाता है। इस प्रकार की स्वीकृति देने वाले को स्वीकर्त्ता कहते हैं। स्वीकृति के सम्बन्ध में धारा 7 की उपर्युक्त व्यवस्था के सम्बन्ध में निम्न बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है :–

(1) स्वीकृति मौखिक नहीं होनी चाहिए, विपत्र पर स्पष्ट रूप से 'स्वीकृत है' शब्द लिखकर हस्ताक्षर किए जाने चाहिए।

(2) स्वीकृति देने के पश्चात् यदि स्वीकर्त्ता अपनी स्वीकृति रद्द करना चाहता है, तो वह कर सकता है, बशर्ते कि बिल उसी के अधिकार में हो।

(3) विपत्र कई भाग में होने की दशा में स्वीकर्त्ता को अपनी स्वीकृति केवल एक भाग में देना चाहिए यदि वह एक से अधिक भागों पर अपनी स्वीकृति दे देता है और वे अलग-अलग धारकों या यथाविधिधारकों के पास पहुँच जाते हैं तो स्वीकर्त्ता उन सभी स्वीकृतियों के लिए भुगतान करने को दायी होता है।

(4) लिखने वाले की मृत्यु के पश्चात् भी बिल स्वीकार किया जा सकता है।

माँग पर देय बिल की दशा में, यदि उस बिल की स्वीकृति के सम्बन्ध में समय, तिथि, स्थान आदि नहीं दिया गया है, तो उचित कारोबार के दिनों में उचित समय पर बिल प्रस्तुत किया जाना चाहिए, जिससे कि स्वीकर्त्ता उचित तलाश करने पर मिल सके। धारा 61 के अनुसार यदि उचित रूप से तलाश करने पर भी स्वीकर्त्ता नहीं मिलता है तो ऐसे बिल (ड्राफ्ट) को स्वीकृति न होने के फलस्वरूप अप्रतिष्ठित मान लिया जाएगा। डाक द्वारा भी बिल को स्वीकृति के लिए भेजा जा सकता है।

स्वीकृति के प्रकार – किसी भी विनिमय विपत्र की स्वीकृति निम्न प्रकार की हो सकती है :–

(1) **साधारण स्वीकृति** – यदि स्वीकर्त्ता ने बिना कुछ शब्द लिखे मात्र अपने हस्ताक्षर कर दिए हैं या 'स्वीकार है', शब्द लिख कर हस्ताक्षर कर दिए हैं, तो ऐसी स्वीकृति साधारण या सामान्य स्वीकृति कहलाती है।

(2) **शर्तपूर्ण स्वीकृति** – जब विपत्र का स्वीकर्त्ता अपनी स्वीकृति देने के पूर्व कुछ शर्तें भी लिख देता है तो इसे शर्त वाली स्वीकृति कहते हैं। शर्तपूर्ण स्वीकृतियाँ निम्न प्रकार की हो सकती हैं :–

(अ) घटना या अवसर सम्बन्धी शर्त भी स्वीकर्ता शामिल कर सकता है। जैसे यदि वह लिख देता है कि जब रुपया होगा तब भुगतान करूँगा तो इसे शर्त वाली स्वीकृति माना जायेगा।

(ब) आंशिक धन की सहमति – अर्थात् यदि लेखक ने विपत्र पर देय राशि 1,000 रु. लिखी है, परन्तु स्वीकर्त्ता उस पर लिख देता है कि 'केवल 600 रु. के लिए स्वीकार है' तो इसे शर्त पूर्ण स्वीकृति माना जाता है।

(स) स्थान सम्बन्धी शर्त – यदि स्वीकर्त्ता देय तिथि पर भुगतान के लिए कोई स्थान नियत कर देता है तो उस बिल के भुगतान के स्थान को मानना होगा। अर्थात् यदि स्वीकर्त्ता लिखता है –

'Accepted for payable at State Bank of Indore, Gwalior **only**.'

'Accepted for payable at State Bank of Indore, Gwalior **and not elsewhere**.'

उपर्युक्त स्वीकृति में यदि 'Only' अथवा 'Not elsewhere' शब्द नहीं होते तो इसे सामान्य स्वीकृति ही माना जाता।

(द) समय सम्बन्धी शर्त – यदि लेखक द्वारा कोई समय नहीं लिखा गया है अथवा स्वीकर्त्ता उस समय से सहमत नहीं है तो वह समय के सम्बन्ध में अपनी शर्त लिख सकता है, अर्थात् यदि बिल में 3 माह के पश्चात् देय लिखा है और स्वीकर्त्ता 5 माह बाद भुगतान करना चाहता है तो अपनी सहमति में वह इस प्रकार की शर्त शामिल कर सकता है।

(इ) किश्तों में भुगतान – स्वीकर्त्ता किसी भी विपत्र को भुगतान करने के सम्बन्ध में भी स्वीकृति के समय ही अपनी स्थिति स्पष्ट कर सकता है। जैसे 5,000 रु. के बिल का भुगतान 1,000 रु. की पाँच मासिक किश्तों में किया जायेगा।

(फ) अनेक देनदारों में से कुछ की स्वीकृति – यदि किसी विपत्र के अनेक देनदार हैं, परन्तु वे साझेदार नहीं हैं, तो किसी एक द्वारा दी गई स्वीकृति उसके ऋण की सीमा तक स्वीकृति मानी जाती है, परन्तु यदि वे लोग साझेदार हैं तो उनमें से किसी एक के द्वारा फर्म की ओर से स्वीकृति देने पर अन्य सभी साझेदार भी दायी बन जाते हैं, परन्तु इसे साधारण स्वीकृति माना जाता है।

II. भुगतान के लिए प्रस्तुत

धारा 64 में स्पष्ट व्यवस्था दी गई है कि समस्त प्रतिज्ञापत्र, विनिमय विपत्र एवं चैक भुगतान के लिए धारक द्वारा अथवा उसकी ओर से लेखक, स्वीकर्त्ता या भुगतान करने वाले के समक्ष प्रस्तुत किये जाने चाहिए। यदि भुगतान के लिए प्रस्तुत करने में धारक द्वारा कोई त्रुटि की जाती है तो कोई भी अन्य पक्षकार ऐसे धारक के प्रति उत्तरदायी नहीं होगा।

नियम – भुगतान के प्रस्तुति के सम्बन्ध में अधिनियम में समय, स्थान और विलम्ब आदि के लिए कुछ स्पष्ट नियम दिये हैं, जिनका संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है :–

(1) **प्रस्तुति का समय** – धारा 65 के अनुसार किसी भी विनिमय साध्य पत्र की भुगतान के लिए प्रस्तुति सामान्य कार्य व्यापार के घण्टों में होनी चाहिए। बैंक द्वारा भुगतान की दशा में बैंक के लेन-देन के घण्टे सामान्य कारोबार का समय माना जाता है।

(2) **परिपक्वता पर भुगतान** – धारा 66 में यह व्यवस्था दी गई है कि यदि कोई प्रतिज्ञा पत्र या विनिमय पत्र उसकी तिथि अथवा माँग पर भुगतान के पश्चात् किसी निश्चित अवधि पर देय (तीन दिन बाद) हो तो उसी के अनुरूप उसे भुगतान के लिए प्रस्तुत किया जाना चाहिए।

(3) **किश्तों पर देय भुगतान के लिए प्रस्तुति** – धारा 67 के अनुसार, यदि कोई प्रतिज्ञा-पत्र किश्तों में देय है, तो वह प्रत्येक किश्त के भुगतान की तिथि के तीन दिन के अन्दर प्रस्तुत कर दिया जाना चाहिए। यदि स्वीकर्त्ता किसी भी किश्त का भुगतान नहीं करता है तो यह मान लिया जाएगा कि सम्पूर्ण बिल/प्रतिज्ञापत्र अनादृत हो गया है।

(4) **प्रस्तुति का स्थान** – भुगतान के लिए प्रस्तुति का स्थान बहुत ही महत्वपूर्ण होता है। अतः अधिनियम में प्रस्तुति के स्थान के संदर्भ में निम्न नियम दिए गए हैं :–

(अ) जब किसी लेखपत्र का भुगतान **किसी निश्चित स्थान पर किया** जाना है तो धारा 68 के अनुसार यदि कोई प्रतिज्ञा पत्र, विनिमय पत्र अथवा चैक किसी निश्चित स्थान पर भुगतान के लिए तैयार किया गया है तो उसके भुगतान के लिए प्रस्तुति उसी निश्चित स्थान पर की जानी चाहिए।

(ब) जब किसी प्रतिज्ञा पत्र या विनिमय विपत्र की स्वीकृति किसी निश्चित स्थान पर भुगतान के लिए दी गई है तो धारा 69 के अनुसार उस लेखपत्र की प्रस्तुति के अन्दर बताए गए स्थान पर ही की जानी चाहिए।

(स) यदि किसी विनिमय-विपत्र या प्रतिज्ञा-पत्र में भुगतान के लिए **स्थान निश्चित नहीं किया गया है** तो धारा 70 के अनुसार तो यह लेखपत्र स्वीकर्त्ता के **कारोबार के प्रमुख स्थान पर** अथवा स्वीकर्त्ता के **सामान्य निवास स्थान पर भुगतान** के लिए प्रस्तुत किया जाना चाहिए।

(द) यदि किसी विनिमय विपत्र या प्रतिज्ञा-पत्र में भुगतान कर्त्ता ने भुगतान करने का कोई निश्चित स्थान नहीं लिखा है और सामान्य रूप से उसका कारोबार का भी कोई स्थान नहीं लिखा है और सामान्य रूप से उनका कारोबार का भी कोई स्थान नहीं है और न ही उसके निवास-स्थान का कुछ पता-ठिकाना है, तो धारा 71 के अनुसार भुगतान के लिए प्रस्तुति उसी स्थान पर मानी जाएगी जहाँ वह व्यक्ति मिल जाता है।

प्रस्तुति के स्थान के सम्बन्ध में यह अवश्य कष्ट साध्य एवं महत्वपूर्ण है कि धारक उस भुगतान कर्त्ता का कारोबार का स्थान, घर ढूँढ़े, ऐसा करने में असमर्थ होने पर ही व्यक्तिगत प्रस्तुति आवश्यक समझी जाती है।

(5) **चैक की प्रस्तुति** – सामान्य रूप से चैक उसी बैंक में प्रस्तुत किया जाना चाहिए जिस बैंक की निश्चित शाखा पर वह लिखा गया था। साथ ही चैक को शीघ्रातिशीघ्र प्रस्तुत कर देना चाहिए क्योंकि हो सकता है कि बैंक और ग्राहक के सम्बन्धों में कुछ अन्तर हो जाए। यहाँ यह ध्यान रखने योग्य है कि धारा 84 में यह स्पष्ट प्रावधान दिया गया है कि यदि धारक ने चैक उचित समय के अन्दर बैंक में भुगतान के लिए प्रस्तुत नहीं किया है, एवं इस बीच चैक के लेखक और बैंक के सम्बन्ध बिगड़ जाते हैं, जिसके फलस्वरूप चैक अनादृत हो जाता है तो भुगतान प्राप्त करने वाले को हुई क्षति के लिए चैक का लेखक दायी नहीं ठहराया जा सकता है।

(6) **उचित समय में चैक की** प्रस्तुति के सम्बन्ध में धारा 73 में भी यह प्रावधान है कि चैक के लेखक के अतिरिक्त किसी पक्षकार को उत्तरदायी ठहराने के लिए धारक का यह कर्त्तव्य होता है कि वह चैक जल्दी से जल्दी बैंक में भुगतान के लिए प्रस्तुत कर दे।

(7) **माँग पर देय प्रलेख** की भी उचित समय में प्रस्तुति की जानी चाहिए। धारा 31 की व्यवस्थाओं को ध्यान में रखते हुए धारा 74 के अनुसार यह आवश्यक है कि माँग पर देय विनिमय साध्य-पत्रों को उचित समय के अन्दर भुगतान के लिए प्रस्तुत कर दिया जाना चाहिए। यद्यपि इस उचित समय का स्पष्टीकरण अधिनियम में नहीं दिया गया है, फिर सामान्य व्यापारिक परम्पराओं के आधार पर उचित समय का निर्धारण पक्षकार आपस में मिलकर भी तय कर सकते हैं, परन्तु जब भी लेखपत्र प्रस्तुत किया जाए, इसका भुगतान अवश्य किया जाना चाहिए।

(8) **मृतक, दिवालिए, पागल के कानूनी प्रतिनिधि एवं** एजेन्ट के सामने भी विनिमय साध्य लेख पत्र भुगतान के लिए प्रस्तुत किए जा सकते हैं। धारा 75 के अनुसार स्वीकृति अथवा भुगतान के लिए प्रस्तुति, भुगतान कर्त्ता के अधिकृत एजेन्ट के सामने की जा सकती है; यदि भुगतान कर्त्ता की मृत्यु हो गई है तो उसके वैधानिक प्रतिनिधि के समक्ष भुगतान की माँग प्रस्तुत की जा सकती है; अथवा यदि भुगतान कर्त्ता दिवालिया घोषित हो गया है तो उसके अभिहस्तांकी को प्रस्तुत किया जा सकता है।

प्रस्तुति में विलम्ब के लिये क्षमा

धारा 75 (A) के अनुसार यदि धारक द्वारा भुगतान के लिए प्रस्तुति में विलम्ब इस कारण से हुआ है जो उसके नियन्त्रण में नहीं था और न ही उसकी कोई त्रुटि या लापरवाही थी, तो ऐसी दशा में देर से प्रस्तुति के लिए धारक को क्षमा किया जा सकता है; परन्तु जब देरी का कारण समाप्त हो जाए तो प्रस्तुति शीघ्र ही एवं उचित समय के अन्दर की जानी चाहिए।

उपर्युक्त क्षमा के सम्बन्ध में धारा 76 का प्रावधान ध्यान में रखना आवश्यक है कि देर से प्रस्तुति की दशा में भुगतान कर्त्ता को किसी प्रकार की क्षति या हानि नहीं होनी चाहिए; अन्यथा ऐसी हानि की क्षतिपूर्ति धारक से माँगी जा सकती है।

धारा 77 के अनुसार यदि कोई बिल का भुगतान बैंक द्वारा करना था और समय पर बैंक में प्रस्तुति करने पर बैंक ने उस बिल का अनादरण बिना किसी उचित कारण के (लेकिन लापरवाही से) कर दिया तो धारक बैंक से क्षतिपूर्ति की माँग कर सकता है।

प्रस्तुति कब अनावश्यक है ?
(When Presentment Un-Necessary ?)

निम्नलिखित दशाओं में भुगतान के लिए प्रस्तुति अनावश्यक होती है और वह लेख-पत्र देय तिथि पर अप्रतिष्ठित माना जाता है (धारा 76)

(1) यदि निर्माता (अर्थात् लेखक), आहार्यी अथवा स्वीकर्ता जान-बूझकर लेख-पत्र प्रस्तुत करने में बाधा उपस्थित करता है, अथवा

घण्टों में उसे बन्द रखता है, अथवा

(3) यदि लेख-पत्र किसी अन्य निश्चित स्थान पर देय है और ऐसे स्थान पर न तो वह स्वयं और न उसका कोई अधिकृत प्रतिनिधि कारोबार के घण्टों में उपस्थित होता है, अथवा

(4) यदि लेख-पत्र किसी निश्चित स्थान पर देय नहीं है और वह उचित तलाश करने पर भी नहीं मिलता है, अथवा

(5) यदि प्रस्तुति माँगने वाला अधिकारी पक्षकार प्रस्तुति न होने पर भी भुगतान के लिए सहमत हो जाता है, अथवा

(6) यदि लेखक, स्वीकर्ता आहार्यी (यह जानते हुए भी कि लेख-पत्र भुगतान की तिथि पर (Maturity) प्रस्तुत नहीं किया गया है) आंशिक भुगतान करता है अथवा पूर्ण या आंशिक रूप से भुगतान करने का वचन देता है अथवा किसी अन्तिम रीति से प्रस्तुति माँगने के अपने अधिकार का परित्याग (Waive) कर देता है, अथवा

(7) यदि प्रस्तुति न होने के कारण आहार्ता को किसी प्रकार की क्षति न हुई हो, अथवा

(8) यदि लेख-पत्र का लेखक मिथ्या व्यक्ति हो अथवा अनुबन्ध करने के लिए अयोग्य हो, अथवा

(9) जब लेख-पत्र का धारक एवं लेखक एक ही व्यक्ति हो, अथवा

(10) जब कोई प्रतिज्ञा-पत्र माँग पर देय हो, परन्तु किसी निश्चित तिथि पर देय न हो, अथवा

(11) यदि बिल अस्वीकृति से अप्रतिष्ठित हो गया हो, अथवा

(12) यदि प्रस्तुति करना असम्भव हो, जैसे- धारक तथा लेखक दोनों के देशों में परस्पर युद्ध छिड़ जाय, अथवा

(13) यदि उत्तरदायी पक्षकार ने प्रस्तुतिकरण से इन्कार कर दिया हो।

प्रश्न
(Questions)

1. विनिमय-साध्य विलेख की प्रस्तुति से आपका क्या आशय है? भुगतान के लिए प्रस्तुति से सम्बन्धित नियमों का वर्णन कीजिए।
2. विनिमय तथा अभिहस्तांकन में अन्तर बताइए।
3. परक्रामण से आप क्या समझते हैं? स्पष्ट रूप से समझाइये। यह किस प्रकार प्रभावी होता है और यह साधारण अभिहस्तांकन से किस प्रकार भिन्न है? क्या कालातीत लेख-पत्र का परक्रामण किया जा सकता है?
4. प्रस्तुति क्या है? विनिमय-साध्य लेख-पत्र की दशा में भुगतान के लिए प्रस्तुति कब अनावश्यक होती है?
5. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिये-
   (i) परक्रामण (Negotiation)
   (ii) भुगतान के लिए प्रस्तुति
6. बेचान या हस्तांतरण का अर्थ समझाइए और स्पष्ट कीजिए कि बेचान अभिहस्तांकन से किस प्रकार भिन्न है?
7. किसी भी विनिमय साध्य पत्र को बेचान के द्वारा ही लेना क्यों अच्छा समझा जाता है? अभिहस्तांकन द्वारा स्वीकार करने में क्या कठिनाइयाँ होती हैं?
8. बेचान के विभिन्न प्रकार समझाइए और सामान्य बेचान, विशेष एवं प्रतिबन्धात्मक बेचान के प्रभाव उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।
9. 'आंशिक बेचान किसी लेख-पत्र की बेचान साध्यता को प्रभावित नहीं करता है। इस कथन की समीक्षा कीजिए।'
10. एक विनिमय साध्य-पत्र का हस्तांतरण या बेचान कौन पक्ष कर सकते हैं?
11. बेचान का विभिन्न पक्षकारों के कानूनी हितों पर क्या प्रभाव पड़ता है?
12. एक वैध बेचान के आवश्यक तत्वों की संक्षिप्त विवेचना कीजिए।
13. प्रस्तुतिकरण या प्रस्तुति का अर्थ समझाइए और स्वीकृति के लिए प्रस्तुति एवं भुगतान के लिए प्रस्तुति किन प्रलेखों की करना आवश्यक होता है?
14. स्वीकृति के लिए प्रस्तुतिकरण के आवश्यक नियम संक्षेप में समझाइए।
15. स्वीकृति के विभिन्न प्रकार संक्षेप में स्पष्ट कीजिए।

16. क्या शर्त पूर्ण स्वीकृति हमारे अधिनियम में मान्य होती है? कुछ शर्तपूर्ण स्वीकृतियों के उदाहरण दीजिए।
17. भुगतान के लिए प्रस्तुति का अर्थ समझाइए और स्पष्ट कीजिए यह स्वीकृति के लिए प्रस्तुति से किस प्रकार भिन्न है?
18. भुगतान के लिए प्रस्तुति में 'स्थान' का क्या महत्व है, कुछ नियमों को उदाहरण सहित समझाइए।
19. भुगतान के लिए चैक की प्रस्तुति से सम्बन्धित आवश्यक नियमों की संक्षिप्त व्याख्या कीजिए।
20. यदि धारक द्वारा लेख पत्र की प्रस्तुति में देर कर दी जाती है तो उसे किन आधारों पर क्षमा किया जा सकता है। आवश्यक नियम समझाइए।

व्यावहारिक समस्याएँ

1. कमला ने कैलाश के पक्ष में 500 रु. का एक चैक जारी किया। कैलाश के नौकर ने उस पर जाली बेचान करके कमलेश को सौंप दिया। कमलेश ने यह चैक पूर्ण सद्भाव से पूर्ण प्रतिफल के बदले में प्राप्त किया था, कमलेश ने इस चैक का भुगतान बैंक से प्राप्त कर लिया। अब कैलाश कमलेश से रुपये की माँग करता है। दोनों पक्षकारों को कानूनी सलाह दीजिए, क्या कैलाश सफल हो सकता है?
2. कमला ने एक विनिमय विपत्र कैलाश के विपक्ष में बेचान किया, जिसमें कमला ने 'Pay to Kailash Sans Recourse' शब्द लिखकर अपने हस्ताक्षर कर दिए थे। कैलाश ने यह बिल अ को बेचान किया, अ ने ब को, ब ने स को और स ने फिर कमला को हस्तांतरित कर दिया। देय तिथि पर भुगतान न होने पर क्या कमला, कैलाश अ, ब, स पक्षकारों को भुगतान के लिए दायी ठहरा सकती है?
3. कमला ने कैलाश को एक विनिमय विपत्र बिना प्रतिफल के लिए स्वीकार करके दिया। कैलाश ने विपत्र कमलेश को पूर्ण प्रतिफल के लिए बेचान कर दिया, कमलेश ने विनय को। देय तिथि को कमला ने भुगतान करने से इन्कार कर दिया। बिना प्रतिफल के विपत्र के सम्बन्ध में कमलेश और विनय क्या भुगतान प्राप्त कर सकते हैं?
4. कमला ने कैलाश को एक बिल बेचान कर दिया। कैलाश के पास यह बिल खो गया और कमलेश ने इसे चुराकर इस पर जाली बेचान विनय के नाम कर दिया, देय तिथि पर इस बिल का भुगतान नहीं हुआ। विनय अपना कानूनी अधिकार किन पक्षकारों पर लागू कर सकता है।

अपनी प्रगति की जाँच करें
Test your Progress

14

एकाधिकारात्मक एवं प्रतिबंधात्मक व्यापार व्यवहार अधिनियम, 1969 (MRTP)

[MONOPOLIES & RESTRICTIVE TRADE PRACTICES ACT, 1969]

परिचय (Introduction)

देश में आर्थिक एवं सामाजिक अधिनियमों के सन्दर्भ में एकाधिकारात्मक एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार अधिनियम, 1969 का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। यह अधिनियम देश के संविधान के अनुच्छेद 38 तथा 39 की व्यवस्थाओं की पूर्ति की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। अनुच्छेद 38 में कहा गया है कि "सरकार एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था को प्राप्त एवं सुरक्षित करके जनता के कल्याण को प्रोत्साहित करेगी, जिसमें राष्ट्रीय जीवन के सभी क्षेत्रों में सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय प्राप्त हो।" अनुच्छेद 39 (ब) में उल्लिखित किया गया है कि "सरकार अपनी नीतियों को इस प्रकार निर्देशित करेगी कि समाज के भौतिक संसाधनों पर नियन्त्रण और स्वामित्व इस प्रकार वितरित हो जाये जिससे अधिकतम सामान्य हित हो।" अनुच्छेद 39 (स) में यह व्यक्त किया गया है कि "आर्थिक व्यवस्था के संचालन का ऐसा परिणाम न हो, जो सामान्य हितों के विरुद्ध सम्पत्ति और उत्पत्ति के साधनों का केन्द्रीकरण कर दे।"

सन् 1964 में सरकार ने एकाधिकार जाँच आयोग की नियुक्ति की थी। आयोग ने अपनी रिपोर्ट 1965 में प्रस्तुत की और एक ऐसे स्थायी आयोग की स्थापना का सुझाव दिया, जिसे अवरोधक व्यापार व्यवहारों एवं अधिकारों को रोकने के कार्यों का उत्तरदायित्व सौंपा जा सके। आयोग ने इस सम्बन्ध में विधेयक का एक प्रारूप भी अपनी रिपोर्ट में दिया था। इस प्रारूप में कुछ आवश्यक संशोधन करके अगस्त, सन् 1967 में "एकाधिकारात्मक एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार विधेयक" राज्य सभा में प्रस्तुत किया गया। लोक सभा में यह विधेयक 17 दिसम्बर, 1969 को पारित हो गया और व्यवहार में यह अधिनियम 1 जून, 1970 से लागू हुआ।

यह अधिनियम जम्मू तथा कश्मीर राज्य को छोड़कर पूरे देश में लागू है। अधिनियम के क्रियान्वयन में आये अनुभवों के आधार पर सन् 1974, 1980, 1982, 1984, 1985, 1986, 1988, 1991, 1994 एवं इसके उपरान्त इसमें संशोधन किए गये हैं जिनका उल्लेख यथास्थान किया गया है।

अधिनियम के उद्देश्य
(Objectives Of The Act)

इस अधिनियम के प्रमुख उद्देश्य निम्न प्रकार हैं :

(1) यह देखना कि देश में उत्पादन और वितरण की क्रियाओं का कार्य-संचालन इस प्रकार न हो कि उससे जनहित के विरुद्ध आर्थिक शक्ति का केन्द्रीकरण हो,

(2) ऐसे एकाधिकारी एवं अवरोधक व्यापार व्यवहारों को नियन्त्रित करना, जो जनहित के विरुद्ध हों, तथा

(3) जन-सामान्य पर एकाधिकारी एवं अवरोधक व्यापार व्यवहारों के प्रभावों को मालूम करना और सुधारात्मक कार्यवाही के लिए सुझाव देना।

सन् 1984 में हुए संशोधनों के पश्चात् प्रस्तुत अधिनियम के मुख्य प्रावधानों से निम्न उद्देश्यों को पाने की कल्पना की गई :-

(1) जनहित के विरुद्ध सत्ता के केन्द्रीकरण को नियन्त्रित करना। [धाराएँ 20-30]

(2) निर्दिष्ट समामेलित संस्थाओं द्वारा अंशों के हस्तान्तरण पर रोक। [धाराएँ 30-A से 30-G]

(3) प्रतिबन्धित एवं अनुचित व्यवहारों को नियन्त्रित करना। [धाराएँ 33-41]

(4) प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहारों से सम्बन्धित समझौतों के पंजीकरण के लिए व्यवस्था करना। [धाराएँ 33-36]

उपर्युक्त के साथ-साथ अधिनियम इस प्रकार की भी व्यवस्था करता है कि विभिन्न निजी उपक्रमों के मध्य स्वस्थ प्रतिस्पर्धा उत्पन्न हो तथा प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहारों को नियन्त्रित वस्तुओं (माल) तथा सेवाओं के उत्पादन एवं वितरण के विभिन्न स्तरों पर सुखद प्रतियोगिता का मार्ग प्रशस्त हो सके।

NOTES

नवीन औद्योगिक नीति, 1991 की पृष्ठभूमि में किये गये संशोधनों के कारण अब प्रस्तुत अधिनियम के उद्देश्यों में क्रान्तिकारी परिवर्तन आया है तथा अधिनियम की मूल धारणा एकाधिकार को नियंत्रित करने की न होकर अब मात्र प्रतिबन्धात्मक तथा अनुचित व्यवहारों को रोकने तक सीमित रह गई है।

अधिनियम के प्रमुख प्रावधान निम्नलिखित हैं :-

(1) **एकाधिकारात्मक एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार आयोग की स्थापना** (Establishment of Monopolies and Restrictive Trade Practices Commission, 1969 - MRTPC)- इस अधिनियम के अधीन एक आयोग की स्थापना की गयी है। आयोग में अध्यक्ष के अतिरिक्त कम से कम 2 तथा अधिक से अधिक 8 सदस्य हो सकते हैं। आयोग का अध्यक्ष उच्च न्यायालय अथवा उच्चतम न्यायालय का कोई वर्तमान अथवा भूतपूर्व न्यायाधीश अथवा समकक्ष योग्यता रखने वाला कोई भी व्यक्ति हो सकता है। इस आयोग के दो प्रमुख कार्य हैं - (i) एकाधिकार एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहारों की जाँच करना, तथा (ii) आर्थिक सत्ता के संकेन्द्रण के मामलों पर सरकार द्वारा सलाह माँगे जाने पर अपनी सलाह देना।

(2) **एकाधिकारी प्रवृत्तियों पर नियन्त्रण** (Control on Monopolistic Tendencies)- यदि कोई व्यापारिक गतिविधि ऐसी है जिसके द्वारा - (i) प्रतिस्पर्द्धा में कमी आती है, तथा (ii) बाजार में वस्तुओं का कृत्रिम अभाव उत्पन्न होता है, या (iii) वस्तुओं के मूल्यों में अनावश्यक वृद्धि होती है, या (iv) वस्तुओं की किस्म में गिरावट आती है, तो सरकार आयोग की सलाह के आधार पर इन गतिविधियों पर रोक लगा सकती है।

(3) **एकाधिकारात्मक व्यापार व्यवहार समझौतों का पंजीकरण** - इस अधिनियम के अन्तर्गत यह व्यवस्था की गयी है कि आयोग की सहायता के लिए दो अधिकारियों की नियुक्ति की जा सकती है - (i) प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार रजिस्ट्रार, एवं (ii) जाँच निदेशक। रजिस्ट्रार का कार्य उन सभी व्यापारिक समझौतों का पंजीकरण करना है जो व्यापारिक प्रतियोगिता को कम करते हैं तथा जाँच निदेशक का कार्य प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहारों में सम्बोधित शिकायतों की जाँच करके इस सम्बन्ध में अपना निर्णय देना है।

(4) **आर्थिक सत्ता के संकेन्द्रण को रोकना** (Prevention of Concentration of Economic Power)- यदि कोई उपक्रम किसी ऐसे समूह से सम्बद्ध हो जिसकी कुल सम्पत्ति 100 करोड़ रुपये या अधिक है तो उसे **विशाल उपक्रम** (Large Undertaking) कहा जायेगा। यदि कोई उपक्रम किसी वस्तु की कुल बाजार माँग के 1/3 या इससे अधिक भाग पर नियन्त्रण रखता है तो उसे **प्रभावी उपक्रम** (Dominant Undertaking) कहा जायेगा। यदि कोई उपक्रम किसी वस्तु की कुल बाजार माँग के 1/2 या इससे अधिक भाग पर नियन्त्रण रखता है तो उसे **एकाधिकारी उपक्रम** (Monopolistic Undertaking) कहा जायेगा। ऐसे उपक्रमों की स्थापना, विस्तार, एकीकरण, संविलयन, अधिग्रहण या विभाजन के किसी भी प्रस्ताव के सम्बन्ध में केन्द्रीय सरकार की पूर्व-अनुमति आवश्यक है।

(5) **पुनः विक्रय मूल्य अनुरक्षण पर रोक** (Prohibition on Maintaining Re-sale Price)- इस अधिनियम के अन्तर्गत कोई भी संस्था अपने थोक एवं फुटकर विक्रेताओं के साथ ऐसा समझौता नहीं कर सकती जिसमें उन विक्रेताओं को कोई वस्तु न्यूनतम मूल्य पर बेचने के लिए बाध्य किया गया हो।

(6) **एकाधिकारात्मक तथा प्रतिबन्धात्मक व्यापार में अन्तर** (Distinction between Monopolistic and Restrictive Trade)- प्रस्तुत अधिनियम के अन्तर्गत एकाधिकारात्मक तथा प्रतिबन्धात्मक व्यापार में स्पष्ट अन्तर किया गया है। एकाधिकारात्मक व्यापार व्यवहार से आशय प्रभावी उपक्रम के व्यापार व्यवहारों से है। यहाँ पर एकाकी प्रभावी उपक्रमों के व्यवहारों को सन्दर्भित किया गया है। इसके विपरीत, प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहारों से आशय प्रतियोगिता को समाप्त करने के उद्देश्य से दो या दो से अधिक औद्योगिक संस्थाओं के सामूहिक व्यापार व्यवहारों से है।

(7) **सरकारी अनुमति** - विशाल तथा प्रभावी उपक्रमों को निम्नलिखित दशाओं में सरकार की पूर्व-अनुमति लेना आवश्यक है : (i) उत्पादन क्षमता में महत्वपूर्ण वृद्धि करना। (ii) अन्तर सम्बन्धित (Inter-connected) उपक्रमों की स्थापना। (iii) अन्य उपक्रमों के साथ संविलयन अथवा सम्मिश्रण करते समय। (iv) अन्य उपक्रम का आंशिक अथवा पूर्णरूप में अधिग्रहण अथवा लिये जाने पर। (v) विद्यमान उपक्रम में विविधता लाने पर।

(8) **अन्य प्रावधान** (Other Provisions)- (i) यह अधिनियम केवल निजी क्षेत्र के उपक्रमों पर लागू होता है लेकिन यदि केन्द्रीय सरकार चाहे तो इसे सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों पर भी लागू करा सकती है। (ii) अधिनियम की व्यवस्थाओं का पालन न करने पर दण्ड एवं जुर्माने की व्यवस्था की गयी है।

अधिनियम की आलोचनाएँ (Criticisms of the Act)

(1) **स्थापना एवं विकास में स्थगन तथा विलम्ब** - आयोग को नवीन औद्योगिक इकाइयों की स्थापना का नियमन करने का अधिकार प्राप्त है। इसका आशय यह है कि ऐसी इकाइयों की स्थापना एवं विकास में अनावश्यक रूप में स्थगन तथा विलम्ब होगा जिससे देश में औद्योगिक विकास की गति रुक जायेगी।

(2) **नियन्त्रण की कड़ी में वृद्धि** - भारत में एक ओर तो औद्योगिक विकास पर बल दिया जा रहा है जबकि दूसरी ओर रोज नये-नये नियम एवं अधिनियम बनाकर विभिन्न प्रकार की बाधाएँ उत्पन्न की जा रही हैं। यह नियम भी उन बाधाओं में वृद्धि करता है।

(3) **संयोजन प्रतिस्पर्धात्मक शक्ति में वृद्धि तथा तकनीकी कुशलता में वृद्धि करता है** - आधुनिक विश्व में यह माना जा रहा है कि औद्योगिक इकाइयों का संयोजन प्रतिस्पर्धात्मक शक्ति तथा तकनीकी कुशलता में वृद्धि एवं सुधार लाने के लिए नितान्त आवश्यक है। क्या भारत में स्थित स्वतन्त्र एवं एकाकी औद्योगिक इकाइयाँ देश तथा विदेशों में होने वाली गलाकाट प्रतियोगिता के सामने टिक पायेंगी? यह सर्वविदित है कि जब से हमारी सरकार ने उदारीकरण की नीति को अपनाया है तब से विदेशी विशाल आकार वाली औद्योगिक इकाइयाँ अपनी विशाल पूँजी तथा आधुनिकतम तकनीकी ज्ञान के साथ भारत में बड़ी संख्या में निरन्तर प्रवेश कर रही हैं।

(4) **पक्षपातपूर्ण अधिनियम** - भारत में सार्वजनिक क्षेत्र तथा निजी क्षेत्र दोनों साथ-साथ कार्यरत हैं, किन्तु प्रस्तुत अधिनियम केवल निजी क्षेत्र पर लागू है, सार्वजनिक क्षेत्र पर नहीं। ऐसा पक्षपातपूर्ण रवैया क्यों? सरकारी क्षेत्र की अकुशलता तो सर्वविदित ही है। क्या निजी क्षेत्र को भी सरकार उसी श्रेणी में लाना चाहता है ?

(5) **सम्पत्तियों के मूल्यांकन का आधार गलत** - अधिनियम एकाधिकार के निर्णय करने का आधार सम्बन्धित औद्योगिक संस्थान की कुछ सम्पत्तियों के मूल्यांकन को माना गया है। क्या विश्व के किसी अन्य देश में भी ऐसा आधार कार्यरत है ? हमारी सम्पत्ति में तो आधार यह होना चाहिए था कि सम्बन्धित उद्योग किस सीमा तक उपभोक्ताओं के हितों के विरुद्ध कार्यरत है।

(6) **पूँजी का कुछ हाथों में केन्द्रीकरण होना** - भारत में एकाधिकार का केवल इस आधार पर विरोध किया जाता है कि इससे पूँजी का केवल कुछ ही हाथों में केन्द्रीकरण हो जाता है। क्या हमने कभी यह भी सोचा कि आखिर ऐसा होना जनसाधारण के हित में है अथवा अहित में है ?

(7) **कार्यों का दोहरीकरण एवं समय की बर्बादी** - आयोग की क्रियाओं से यह विदित होता है कि आयोग या तो लाइसेन्सिग समिति अथवा कम्पनी लॉ बोर्ड के कार्यों को दुहरा रहा है। क्या यह समय की बर्बादी नहीं है।

(8) **उपभोक्ताओं तथा लघु उत्पादकों के हितों पर ध्यान नहीं** - आलोचकों का कथन है कि आयोग अन्य कार्यों में व्यस्त रहने के कारण उपभोक्ताओं तथा लघु उत्पादकों के हितों पर तनिक भी ध्यान नहीं दे रहा है।

संक्षिप्त नाम, विस्तार तथा प्रारम्भ
(Short Title, Extent and Commencement)

(i) इस अधिनियम को '**एकाधिकार एवं प्रतिबन्धित व्यापारिक व्यवहार अधिनियम, 1969**' कहा जायेगा।

(ii) यह जम्मू एवं कश्मीर राज्य को छोड़कर शेष **सम्पूर्ण भारत** में लागू होता है।

(iii) यह उस तिथि से प्रभावी होगा जिसे केन्द्रीय सरकार सरकारी गजट में अधिसूचित करे। भारतीय गजट के अनुसार यह अधिनियम 1 जून, 1970 से लागू हुआ है। **[धारा 1]**

परिभाषाएँ
(Definitions)

(1) **ठहराव** (Agreement) के अन्तर्गत कोई व्यवस्था (Arrangement) या समझौता (Understanding) शामिल है भले ही इस ठहराव को कानूनी कार्यवाही (इस अनुबन्ध के प्रावधानों के अतिरिक्त) द्वारा प्रवर्तनीय कराने की इच्छा है या नहीं। **[धारा 2 (a)]**

(2) **आयोग** (Commission) से आशय धारा 5 में गठित 'एकाधिकार एवं प्रतिबन्धित व्यापारिक व्यवहार आयोग' (Monopolies and Restrictive Trade Practices Commission) से है। **[धारा 2 (b)]**

(3) **महानिदेशक** (Director General) से आशय इस अधिनियम की धारा 8 के अन्तर्गत नियुक्त महानिदेशक एवं रजिस्ट्रार से है। इसमें कोई भी अतिरिक्त, संयुक्त, उप या सहायक महानिदेशक एवं रजिस्ट्रार सम्मिलित है। **[धारा 2 (c)]**

(4) **प्रभावी या प्रबल** (Dominant Undertakings) से आशय है :

(i) एकाधिकार एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार (संशोधन) अधिनियम, 1991 द्वारा हटा दिया गया है;

(ii) ऐसा कोई संस्थान जो स्वयं अथवा अपनी अन्तर-सम्बन्धित इकाइयों के साथ ऐसे कुल माल का कम से कम 1/4 भाग बनाता हो, पूर्ति करता हो, वितरित अथवा अन्यथा नियन्त्रित करता हो, जो भारत में या उसके सारवान् भाग में निर्मित, आपूर्त अथवा वितरित होता हो; अथवा

(iii) एक ऐसा उपक्रम जो उन सेवाओं (Services) के, जो भारत में अथवा उसके पर्याप्त भाग में प्रदान की जाती हैं, कम से कम 1/4 भाग की पूर्ति करता है अथवा पूर्ति को नियन्त्रित करता है। **[धारा 2 (d)]**

स्पष्टीकरण - यह प्रश्न कि क्या कोई संस्थान स्वयं में या अन्य अन्तर्सम्बन्धित संस्थानों के साथ किसी माल के 1/4 भाग का सृजन या नियन्त्रण करता है, इसको निम्न मानदण्डों में से किसी के भी आधार पर निर्धारित किया जा सकता है - मूल्य (Value), लागत (Cost), कीमत (Price), मात्रा (Quantity), अथवा माल अथवा सेवाओं की क्षमता (Capacity) आदि।

(5) **वित्तीय संस्था** (Financial Institution) से तात्पर्य निम्न से है :

(i) सार्वजनिक वित्तीय संस्थान जा कम्पनी अधिनियम, 1956 की धारा 4-क में वर्णित है,

(ii) राज्यीय वित्तीय औद्योगिक या विनियोग निगम,

(iii) स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया या उसकी कोई सहायक बैंक,

(iv) एक राष्ट्रीयकृत बैंक,

(v) भारत का सामान्य बीमा निगम (General Insurance Corporation of India),

(vi) भारत का औद्योगिक पुनर्निर्माण निगम (Industrial Reconstruction Corporation of India)

(vii) कोई अन्य संस्था जिसे इस सन्दर्भ में अधिसूचना द्वारा निर्धारित कर दे। **[धारा 2 (da)]**

(6) **माल** (Goods) से तात्पर्य उस माल से है जो वस्तु विक्रय अधिनियम में परिभाषित है तथा इसमें निम्न शामिल हैं :

(i) भारत में उत्पादित एवं प्रसंस्कृत (Processed) माल तथा भारत की खानों से प्राप्त माल,

(ii) अंश एवं स्टॉक,

(iii) भारत में पूर्तित (Supplied), वितरित (Distributed) या नियन्त्रित (Controlled) माल के सन्दर्भ में वह माल जो भारत में आयातित है। **[धारा 2 (e)]**

(7) **किसी विवरण का माल** (Goods of any Description)- इसे सन् 1991 में किये गये संशोधन के द्वारा हटा दिया गया है। **[धारा 2 (ee)]**

(8) **भारत** (India)- इस अधिनियम के उद्देश्यों के लिये भारत से आशय उन क्षेत्रों से है जिनमें यह अधिनियम लागू होता है। **[धारा 2 (f)]**

(9) **उद्योग अधिनियम** (Industries Act)- इस अधिनियम के लिए उद्योग अधिनियम का आशय **औद्योगिक (विकास एवं नियमन) अधिनियम, 1951** [Industries (Development and Regulation) Act, 1951] तथा इसके अन्तर्गत बनाये गये नियमों, आदेशों या अधिसूचनाओं से है। **[धारा 2 (ff)]**

(10) **स्थापित क्षमता** (Installed Capacity)- इसे सन् 1991 में किये गये संशोधन के द्वारा हटा दिया गया है। **[धारा 2 (ff)]**

(11) **अन्तर्सम्बन्धित उपक्रम** (Inter-connected Undertaking) से आशय ऐसे दो या अधिक उपक्रमों से है जो एक-दूसरे से निम्न में से किसी भी रीति से सम्बन्धित हों :

(i) यदि एक उपक्रम दूसरे का स्वामी हो अथवा उसे नियन्त्रित करता हो,

(ii) यदि उपक्रम किन्हीं फर्मों के स्वामित्व में है तथा उन फर्मों में एक या अधिक समान साझेदार (Common Partner) हों,

(iii) यदि उपक्रम किसी समामेलित संस्थाओं के स्वामित्व में हो :

(अ) एक समामेलित संस्था दूसरी समामेलित संस्था की सहायक (subsidiary) हो, या

(ब) एक समामेलित संस्था दूसरी समामेलित संस्था का प्रबन्ध करे, या

(स) यदि ऐसी समामेलित संस्थाएँ एक ही प्रबन्ध के अन्तर्गत हों, या

(iv) यदि एक उपक्रम किसी समामेलित संस्था (Body Corporate) के स्वामित्व में हो तथा दूसरा उपक्रम किसी फर्म के स्वामित्व में हो तथा यदि उस फर्म के एक या अधिक साझेदार:

(अ) उस समामेलित संस्था के कम से कम 50% सामान्य या पूर्वाधिकार अंशों के प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में स्वामी हों,

अथवा

(ब) संचालक या अन्य किसी स्थिति या रूप में उस समामेलित संस्था पर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में नियन्त्रण रखते हों।

(v) यदि एक उपक्रम किसी समामेलित संस्था के स्वामित्व में है तथा दूसरा उपक्रम किसी ऐसी फर्म के स्वामित्व में है जिसमें समामेलित संस्थाएँ साझेदार हैं, तथा यदि ये सभी समामेलित संस्थाएँ एक ही प्रबन्ध के अधीन हैं।

(vi) यदि उपक्रम किसी एक ही व्यक्ति या समूह के स्वामित्व अथवा नियन्त्रण में हों।

(vii) यदि उपक्रम एक-दूसरे से प्रत्यक्षत: अथवा किन्हीं कितने ही ऐसे उपक्रमों के माध्यम से जो पूर्व-वर्णित उप-धाराओं के प्रावधानों के अनुसार एक-दूसरे से अन्तर्सम्बन्धित हैं। **[धारा 2 (g)]**

स्पष्टीकरण - (I) इस अधिनियम के उद्देश्यों के लिए 'दो समामेलित संस्थाएँ' (Two Bodies Corporate) निम्न दशाओं में **एक ही प्रबन्ध के अन्तर्गत मानी जाती हैं :**

(i) यदि ऐसी एक समामेलित संस्था दूसरी संस्था पर नियन्त्रण रखती हैं या दोनों समामेलित संस्थाएँ एक ही समुदाय (Group) अथवा किसी एक ही घटक (Constituents) के नियन्त्रण में हैं।

(ii) यदि ऐसे किसी एक समामेलित संस्था का प्रबन्ध-संचालक अथवा प्रबन्धक दूसरी समामेलित संस्था का प्रबन्ध-संचालक या प्रबन्धक भी है।

(iii) यदि ऐसी किसी एक समामेलित संस्था के पास दूसरी संस्था के कम से कम 1/4 समता अंश हैं अथवा यह दूसरी संस्था के संचालक-मण्डल की कुल सदस्य संख्या के गठन के 1/4 को नियंत्रित करता है।

(iv) यदि ऐसी एक समामेलित संस्था का एक या अधिक संचालक (स्वतन्त्र रूप से अथवा इसके संचालकों या कर्मचारियों के रिश्तेदारों के साथ संयुक्त रूप से) दूसरी समामेलित संस्था के संचालक-मण्डल का 1/4 भाग गठन करते हैं अथवा उस दिन के, जिस दिन यह प्रश्न उठता है कि क्या दोनों संस्थायें एक ही प्रबन्ध के अन्तर्गत हैं, तुरन्त पूर्व के 6 माह की अवधि में किसी समय गठित करते थे।

(v) यदि किसी समुदाय का कोई एक व्यक्ति या अनेक व्यक्ति स्वयं अथवा अपने रिश्तेदारों के साथ दोनों समामेलित संस्थाओं में कम से कम 1/4 अंशों के स्वामी हैं।

(vi) यदि कोई एक समामेलित संस्था या अनेक समामेलित संस्थायें, जो किसी एक समूह से सम्बन्धित हैं, स्वतन्त्र रूप से अथवा अपनी सहायक कम्पनी या कम्पनियों के साथ दोनों समामेलित संस्थाओं, जिनके एक ही प्रबन्ध के बारे में विचार करना है, में पृथक्-पृथक् रूप से कम से कम 1/4 समता अंशों के स्वामी हैं।

(vii) यदि दोनों समामेलित संस्थाओं में कुल मतदान का 1/4 भाग किसी एक ही व्यक्ति द्वारा (स्वयं अथवा अपने रिश्तेदारों के साथ) अथवा एक संस्था द्वारा (स्वयं अथवा अपनी सहायक संस्थाओं के साथ) प्रयुक्त या नियन्त्रित किया जाता है।

(viii) यदि दोनों समामेलित संस्थाओं में प्रत्येक सम्बन्ध में कुल मतदान का 1/4 भाग एक ही समुदाय के समान व्यक्तियों द्वारा अथवा समान समामेलित संस्थाओं द्वारा (By same individuals or bodies corperate of a group) प्रयुक्त एवं नियन्त्रित किया जाता है।

(ix) यदि ऐसी एक किसी एक समामेलित संस्था के संचालक, दूसरी समामेलित संस्था के किसी एक या अधिक संचालकों के निर्देशों अथवा अनुदेशों (instructions) के अनुसार कार्य करते हैं अथवा दोनों ही समामेलित संस्थाओं के संचालक किसी एक व्यक्ति के, जो किसी समुदाय का है अथवा नहीं, निर्देशों या अनुदेशों के अनुसार कार्य करते हैं।

स्पष्टीकरण (II) के अनुसार, यदि कोई समुदाय किसी समामेलित संस्था का नियन्त्रण करता है तो वह समामेलित संस्था तथा उस समामेलित संस्था का प्रत्येक घटक (Constituent) जो उस समुदाय द्वारा नियंत्रित है, एक ही प्रबन्ध के अधीन समझे जायेंगे।

स्पष्टीकरण (III) के अनुसार, यदि एक ही प्रबन्ध के अधीन वाली दो या अधिक समामेलित संस्थायें किसी अन्य समामेलित संस्था के कम से कम 1/4 समता अंशों की स्वामिनी हैं तो वह अन्य समामेलित संस्था भी उसी प्रबन्ध के अन्तर्गत मानी जायेगी।

स्पष्टीकरण (IV) के अनुसार, यदि निर्धारित करने के लिए कि दो या अधिक समामेलित संस्थायें एक ही प्रबन्ध के अधीन हैं अथवा नहीं, ऐसी समामेलित संस्थाओं में सार्वजनिक वित्तीय संस्थाओं द्वारा धारित (held) अंशों को गणना में नहीं लिया जायेगा।

(12) **अनुज्ञप्ति क्षमता** (Licensed Capacity)- इसे सन् 1991 में किये गये संशोधन के अन्तर्गत हटा दिया गया है। **[धारा 2 (gg)]**

(13) **सदस्य** (Member) का अभिप्राय आयोग (Commission) के सदस्य से है। **[धारा 2 (h)]**

(14) **एकाधिकारी व्यापारिक व्यवहार** (Monopolistic Trade Practices) से आशय ऐसे व्यापारिक व्यवहारों से है **जिनका निम्न प्रभाव** (effect) **होता है :**

(i) किसी माल के उत्पादन, पूर्ति एवं वितरण को कम करते हुए या नियंत्रित रखते हुए भी अथवा सेवाओं की पूर्ति कम या नियंत्रित रखते हुए भी माल अथवा सेवाओं का मूल्य पूर्ववत् बनाये रखना अर्थात् मूल्य घटाये बिना भी उत्पादन, पूर्ति या वितरण घटाना सम्भव हो।

(ii) किसी माल के उत्पादन, पूर्ति या वितरण अथवा किसी सेवा की पूर्ति में **प्रतियोगिता को अनुचित रूप** से रोकना अथवा कम करना।

(iii) जन-सामान्य के लिए अहितकर रूप में तकनीकी विकास अथवा पूँजी विनियोग को सीमित रखना या उत्पादित, पूर्तित (supplied) या वितरित माल अथवा प्रदत्त सेवाओं के गुणों (quality) में गिरावट होने देना।

(iv) निम्न में अनुचित रूप से वृद्धि करना :

(अ) किसी भी माल की उत्पादन लागत, या

(ब) किसी सेवा के लिए मूल्य में वृद्धि करना

(v) निम्न में अनुचित रूप से वृद्धि करना :

(अ) माल या सेवा के विक्रय-मूल्य में, या

(ब) माल या सेवा से होने वाले लाभों में, या

(vi) किसी माल के उत्पादन, पूर्ति या वितरण में अथवा किसी सेवा की पूर्ति में होने वाले प्रतियोगिता में अनुचित तरीके या अनुचित या कपटपूर्ण विधियाँ अपनाकर रोकना। **[धारा 2 (i)]**

(15) **अधिसूचना** (Notification)- अधिसूचना से आशय सरकारी गजट से प्रकाशित अधिसूचना से है। **[धारा 2 (j)]**

(16) **स्वामी** (Owner)- किसी उपक्रम के सम्बन्ध में स्वामी से अभिप्राय एक व्यक्ति, हिन्दु अविभाजित परिवार, समामेलित संस्था या व्यक्तियों के अन्य ऐसे समुदाय, समामेलित हैं अथवा नहीं, या किसी ऐसे ट्रस्ट (जो सार्वजनिक हो या निजी या धार्मिक या पुण्यार्थ है अथवा नहीं) से है जो उस उपक्रम पर पूर्ण स्वामित्व या नियन्त्रण रखते हों तथा इसमें कोई भी ऐसा सम्बद्ध व्यक्ति (associated person) शामिल है जो किसी समुदाय का घटक (constituent) है तथा जिसका ऐसे उपक्रम के कार्यों पर पूर्ण अथवा लगभग पूर्ण नियन्त्रण प्राप्त है। **[धारा 2 (ja)]**

(17) **निर्धारित** (Prescribed)- निर्धारित से आशय उस अधिनियम के अन्तर्गत बनाये गये नियमों से है। **[धारा 2 (k)]**

(18) **मूल्य** (Price)- किसी माल के विक्रय या किन्हीं सेवाओं को प्रदान करने के सम्बन्ध में मूल्य के अन्तर्गत प्रत्येक मूल्यवान प्रतिफल शामिल है जो प्रत्यक्ष में मिला हो अथवा परोक्ष में तथा इसमें कोई ऐसा प्रतिफल भी शामिल है जो किसी माल के विक्रय अथवा सेवाओं को प्रदान करने के सम्बन्ध में मिला हो यद्यपि दिखावटी या प्रकट रूप में वह अन्य मामले या वस्तु से सम्बन्धित लगता हो। **[धारा 2 (l)]**

(19) **उपज** (Produce)- उपज में निर्माण आदि सम्मिलित हैं। **[धारा 2 (ll)]**

(20) रजिस्टर (Register)- रजिस्टर से आशय महानिदेशक द्वारा धारा 36 के अधीन रखे गये रजिस्टर से है। [धारा 2 (m)]

NOTES

(21) **पंजीकृत उपभोक्ता संस्था** (Registered Consumers' Association)- पंजीकृत उपभोक्ता संस्था से आशय कम्पनी अधिनियम अथवा प्रचलन में किसी अन्य अधिनियम के अन्तर्गत पंजीकृत व्यक्तियों की ऐच्छिक संस्था से है जिसका निर्माण उपभोक्ताओं के हितों की सुरक्षा करने के लिए किया गया हो और जिसको निर्धारित प्रारूप में आवेदन करने पर केन्द्रीय सरकार ने संस्था के रूप में मान्यता प्रदान की हो। [धारा 2 (n)]

(22) **अवरोधक व्यापारिक व्यवहार** (Restrictive Trade Practices)- अवरोधक व्यापारिक व्यवहार से आशय ऐसे व्यापारिक व्यवहार से है जिसका प्रभाव, प्रतियोगिता को रोकना, समाप्त करना या प्रतिबन्धित करना है, तथा विशेष रूप से -

(i) उत्पादन में पूँजी व अन्य साधनों के प्रवाह (Flow of capital and other resources) को रोकना है, या

(ii) वस्तु या सेवा के मूल्यों, सुपुर्दगी शर्तों या सुपुर्दगी प्रवाह (Flow of delivery) में इस प्रकार की गड़बड़ी (Manipulation) करना जिससे उपभोक्ताओं पर अतिरिक्त व्यय भार पड़े या प्रतिबन्ध लगे।

[धारा 2 (o)]

(23) **फुटकर विक्रेता** (Retailer)- किसी माल के विक्रय के सम्बन्ध में फुटकर विक्रेता के अन्तर्गत प्रत्येक वह व्यक्ति, थोक विक्रेता के अतिरिक्त, सम्मिलित है जो किसी अन्य व्यक्ति को माल बेचता है तथा वह थोक विक्रेता भी सम्मिलित है जो पुनः विक्रय करने वाले व्यक्ति के अतिरिक्त किसी भी अन्य व्यक्ति को माल बेचता है। अर्थात् यदि थोक विक्रेता फुटकर विक्रेता के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति को माल बेचता है तो वह भी फुटकर विक्रेता माना जायेगा।

[धारा 2 (p)]

(24) **वित्त योजना** (Scheme of Finance)- वित्त योजना से आशय ऐसी योजना से है जो किसी उपक्रम द्वारा प्रस्तावित वित्त प्राप्त करने के स्रोतों तथा शर्तों को बताती है। [धारा 2 (q)]

किन्तु एकाधिकार तथा अवरोधक व्यापार व्यवहार (संशोधित) अधिनियम, 1984 के लागू होने के पश्चात् प्रत्येक वित्त योजना में ऐसी अनुमानित पूँजी की मात्रा का उल्लेख करना भी आवश्यक होगा जिसकी उक्त योजना को प्रभावी बनाने में आवश्यकता हो।

(25) **सेवा** (Services) के आशय में प्रत्येक ऐसा कार्य शामिल किया जाता है, जो माल के उपभोक्ताओं को उपलब्ध कराया जाता है और इसमें बैंकिंग, वित्त प्रबन्धन, बीमा, परिवहन, प्रक्रियन, विद्युत तथा अन्य ऊर्जा की उपलब्धि, रहने तथा खाने की व्यवस्था, मनोरंजन, समाचार अथवा अन्य सूचनायें प्रदान करने की सुविधायें शामिल की जाती हैं लेकिन इसके अन्तर्गत निःशुल्क सेवायें और व्यक्तिगत अनुबन्ध के अन्तर्गत की गयी सेवायें शामिल नहीं की जातीं।

[धारा 2 (r)]

(26) **व्यापार** (Trade)- व्यापार से आशय माल के उत्पादन, पूर्ति, वितरण या नियन्त्रण से सम्बन्धित किसी भी प्रकार के व्यापार, व्यवसाय, उद्योग, पेशा एवं धन्धे (Occupation) से है तथा इसमें किन्हीं सेवाओं की व्यवस्था करना भी सम्मिलित है। [धारा 2 (s)]

(27) **व्यापार संस्था** (Trade Association)- व्यापार संस्था से आशय व्यक्तियों के ऐसे समूह से है (चाहे उसका समायोजन हुआ हो अथवा नहीं) जोकि अपने सदस्यों अथवा अपने सदस्य प्रतिनिधियों के व्यापारिक हितों में वृद्धि करने हेतु किया जाता है। [धारा 2 (t)]

(28) **व्यापारिक व्यवहार** (Trade Practice)- व्यापारिक व्यवहार से अभिप्राय व्यापार को चलाने से सम्बन्धित किसी व्यवहार से है तथा इसके अन्तर्गत निम्न शामिल हैं :

(i) किसी व्यक्ति द्वारा किया गया कोई भी ऐसा कार्य जो किसी व्यापारी या व्यापारियों के समुदाय द्वारा वसूल किए गये मूल्य या व्यापार के तरीके (Method of Trading) को नियन्त्रित अथवा प्रभावित करता है।

(ii) किसी व्यक्ति द्वारा किया कोई एक या अकेला कार्य जो किसी व्यापार से सम्बन्धित हो।

[धारा 2 (u)]

(29) **उपक्रम** (Undertaking)- उपक्रम से तात्पर्य उस संस्था से है जो किसी वस्तु (article) या माल के उत्पादन, संग्रहण, पूर्ति, वितरण, प्राप्ति (acquisition) या नियन्त्रण में या किन्हीं सेवाओं की व्यवस्था एवं पूर्ति में, प्रत्यक्ष रूप से या अपनी एक या अधिक इकाइयों (units) के माध्यम से, जो एक ही स्थान पर या विभिन्न स्थानों पर स्थापित हैं, लगी हुई है। [धारा 2 (v)]

संक्षेप में, वह संस्था जो किसी वस्तु या माल का - (i) उत्पादन करती है, (ii) पूर्ति करती है, (iii) वितरण कार्यों में लगी है, (iv) प्राप्ति में लगी है, (v) नियन्त्रण करती है, या (vi) किसी सेवा की व्यवस्था एवं पूर्ति करती है,

उपक्रम कहलाती है। कोई भी संस्था उक्त कार्य स्वयं कर सकती है अथवा अपनी इकाइयों के माध्यम से भी कर सकती है। [धारा 2 (v)]

(30) **औद्योगिक अधिनियम क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाला उपक्रम** - इसे सन् 1991 में किये गये संशोधनों के द्वारा हटा दिया गया है। [धारा 2 (vv)]

(31) **सम्पत्तियों का मूल्य** (Value of Assets)- उपक्रम के सम्बन्ध में सम्पत्तियों के मूल्य से आशय सम्पत्तियों के उस मूल्य से है, जोकि ह्रास के लिये प्रावधान करने के पश्चात् खातों में प्रदर्शित किया गया हो। [धारा 2 (w)]

(32) **थोक व्यापारी** (Wholesaler)- किसी माल के विक्रय के सम्बन्ध में थोक व्यापारी का आशय एक ऐसे व्यक्ति से है जो माल को विक्रय के लिए इकट्ठा या बड़ी मात्रा में (In bulk or in large quantities) किसी अन्य व्यक्ति को पुन: विक्रय के उद्देश्य से करता है चाहे वह अन्य व्यक्ति उस माल को इकट्ठा बेच दे या छोटी-छोटी मात्राओं में बेचे। [धारा 2 (x)]

(33) शब्दों एवं अभिव्यक्तियों का उपयोग तो किया गया है किन्तु इस अधिनियम में व्याख्या नहीं की गई है और कम्पनी अधिनियम में उनकी व्याख्या की गई है, उनका अर्थ वही होगा जोकि सम्बन्धित अधिनियम में दिया गया हो। [धारा 2 (y)]

कुछ परिस्थितियों में अधिनियम का लागू न होना
(Act not to apply in certain cases)

जब तक केन्द्रीय सरकार अधिसूचना द्वारा अन्य कोई बात स्पष्ट न करे, यह अधिनियम निम्न परिस्थितियों में लागू नहीं होता :

1. कोई ऐसा उपक्रम, जो किसी सरकारी कम्पनी के स्वामित्व या नियन्त्रण में हो,
2. कोई ऐसा उपक्रम, जो सरकार के स्वामित्व या नियन्त्रण में हो,
3. कोई ऐसा उपक्रम, जो किसी ऐसे निगम के स्वामित्व या नियन्त्रण में है, जो किसी राज्य या केन्द्रीय अधिनियम के अन्तर्गत स्थापित हुआ है,
4. कोई श्रम-संघ अथवा कर्मचारियों का ऐसा संगठन जो उनके उचित संरक्षण के लिए बनाया गया हो,
5. कोई ऐसा औद्योगिक उपक्रम, जिसका प्रबन्ध सरकार द्वारा किसी अधिनियम के अन्तर्गत अर्जित कर लिया गया हो,
6. कोई ऐसा उपक्रम, जो किसी ऐसी सहकारी समिति के स्वामित्व में हो, जो सहकारी समितियों से सम्बन्धित किसी राज्य या केन्द्रीय अधिनियम के अन्तर्गत पंजीकृत हो,
7. कोई वित्तीय संस्थान। [धारा 3]

अधिनियम की धारा 4 (2) के अनुसार यह अधिनियम बैंकिंग और बीमा कम्पनियों पर उस सीमा तक लागू नहीं होगा, जहाँ तक उन कम्पनियों के सम्बन्ध में निम्न अधिनियमों में स्पष्ट प्रावधान दिये गये हैं :

(1) रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया एक्ट, 1934; (2) बैंकिंग रेगुलेशन एक्ट, 1949; (3) स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया एक्ट, 1955; (4) स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया (सहायक बैंक) एक्ट, 1959 अथवा (5) बीमा अधिनियम, 1938।

दूसरे अधिनियमों का लागू होना बाधित नहीं
(Apply of other laws not barred)
[धारा 4 (1)]

(1) जब तक कि उपधारा (2) अथवा इस अधिनियम में अन्य स्थान पर कोई प्रतिकूल प्रावधान न हो, इस अधिनियम के प्रावधान प्रचलित किसी अन्य अधिनियम के अतिरिक्त होंगे। [धारा 4 (1)]

(2) जब तक कि इस अधिनियम की धारा 3 अथवा अन्य स्थान पर कोई प्रतिकूल बात न हो, इस अधिनियम के प्रावधान उन मामलों से सम्बन्धित हों जिनके लिए निम्न में विशिष्ट प्रावधान विद्यमान हैं :

(i) रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया अधिनियम, अथवा

(ii) स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया अधिनियम, अथवा

(iii) बीमा अधिनियम,

तो उपर्युक्त पर उक्त सीमा तक इस अधिनियम के प्रावधान लागू नहीं होंगे। [धारा 4]

NOTES

एकाधिकारात्मक एवं प्रतिबन्धात्मक व्यवहारों में अन्तर
(Difference between Monopolistic and Restrictive Trade Practices)

अधिनियम में एकाधिकारात्मक एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहारों में अन्तर किया गया है। एकाधिकारात्मक व्यापार व्यवहारों में 'प्रभावी फर्म' (Dominant Undertaking) के व्यवहारों को शामिल किया जाता है। इनसे फर्म के वैयक्तिक व्यवहार अथवा तीन फर्मों तक के अल्पाधिकार (Oligoploy) का संकेत मिलता है, क्योंकि फर्म अथवा फर्म समूह का कुल उत्पादन में श्रेष्ठतम भाग होता है। इसके विपरीत, प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार में दो या दो से अधिक शर्तों द्वारा एक समझौता किया जाता है, जिससे उनमें आपसी प्रतियोगिता समाप्त हो जाती है। ऐसे समझौते में यह आवश्यक नहीं है कि किसी फर्म का उस वस्तु के कुल उत्पादन में प्रधान भाग हो।

एकाधिकारात्मक व्यापार व्यवहारों में एकाधिकार आयोग को केवल सलाहकारी अधिकार दिये गये हैं। यह सरकार पर निर्भर है कि वह आयोग की सलाह को स्वीकार करे अथवा न करे। प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार के बारे में आयोग को आदेशात्मक अधिकार (Mandatory Powers) दिये गये हैं।

एकाधिकार व्यापार व्यवहार
(Monopolistic Trade Practices)
[धारा 31-32]

आयोग द्वारा एकाधिकार व्यापार व्यवहारों की जाँच (Investigation by Commission of Monopolistic Trade Practices) **[धारा 31]**

(1) **केन्द्रीय सरकार द्वारा मामले को सन्दर्भ किये जाने पर अथवा स्वयं जाँच करना** - यदि केन्द्रीय सरकार को यह प्रतीत हो कि एक अथवा एक से अधिक उपक्रमों के स्वामी किसी ऐसे व्यवहार में संलग्न हो रहे हैं जोकि एकाधिकार व्यापार व्यवहार है अथवा हो सकता है अथवा किन्हीं माल अथवा सेवाओं में एकाधिकार व्यापार व्यवहार विद्यमान हैं, तो केन्द्रीय सरकार उस मामले को पूछताछ करने हेतु आयोग को सौंप सकती है। आयोग उचित रूप में सुनवाई करने के पश्चात् अपना प्रतिवेदन केन्द्रीय सरकार को देगा।

किन्तु यदि आयोग को भी ऐसी सूचना मिलती है अथवा वह जान जाता है कि कोई उपक्रम अथवा दो या दो से अधिक उपक्रमों के स्वामी किसी ऐसे व्यापार व्यवहार से संलग्न हो रहे हैं जोकि एकाधिकार व्यापार व्यवहार है अथवा किन्हीं माल अथवा सेवाओं में एकाधिकार व्यापार व्यवहार विद्यमान है, तो वह स्वयं ही, इस उप-धारा के अन्तर्गत बिना केन्द्रीय सरकार के सन्दर्भ के मामले में पूछताछ कर सकता है। **[धारा 31 (1)]**

(2) **आयोग द्वारा प्रतिवेदन प्रस्तुत किया जाना** - यदि आयोग पूछताछ करने के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि देश की विद्यमान आर्थिक दशाओं को ध्यान में रखते हुए तथा अन्य सम्बन्धित मामलों को भी ध्यान में रखते हुए व्यापार व्यवहार प्रचलन में है अथवा जन-हित के विरुद्ध प्रचलन में आने की सम्भावना है तो आयोग अपने निष्कर्षों सहित प्रतिवेदन केन्द्रीय सरकार के समक्ष प्रस्तुत करेगा। केन्द्रीय सरकार प्रतिवेदन के प्राप्त होने पर, यदि किसी प्रचलित अन्य अधिनियम में इसके विरुद्ध कोई अन्य बात न हो, ऐसे व्यापार व्यवहार से उत्पन्न होने वाले दोषों के उपचार अथवा रोकने हेतु ऐसे आदेश, जो वह उचित समझे, निर्गमित कर सकती है। **[धारा 31 (2)]**

(3) **एकाधिकार व्यापार व्यवहार के धारा 32 में निर्दिष्ट अपवादों में सम्मिलित न होने पर** - यदि आयोग के प्रतिवेदन में इस बात का उल्लेख हो कि किसी उपक्रम का स्वामी अथवा दो या दो से अधिक उपक्रमों के स्वामी एकाधिकार व्यापार व्यवहार में संलग्न हैं, अथवा किन्हीं माल अथवा सेवाओं के सम्बन्ध में एकाधिकार व्यापार व्यवहार विद्यमान है, और केन्द्रीय सरकार इस बात से संतुष्ट है कि एकाधिकार व्यापार व्यवहार के फलस्वरूप उत्पन्न अथवा उत्पन्न होने वाले दोषों का उपचार करने अथवा रोकने के लिए आवश्यक कदम उठाने आवश्यक हैं और वह एकाधिकार व्यापार व्यवहार धारा 32 में निर्दिष्ट अपवादों में नहीं आता है, यदि प्रस्तुत अधिनियम में अथवा प्रचलित किसी अन्य अधिनियम में कोई विरुद्ध बात न हो, तो केन्द्रीय सरकार निम्न आदेश दे सकती है, जोकि वह उचित समझे।

(अ) सम्बन्धित उपक्रम का स्वामी अथवा सम्बन्धित उपक्रमों का स्वामी, जो भी हो, पर ऐसे एकाधिकार व्यापार व्यवहार में संलग्न रहने पर रोक लगाना, अथवा

(ब) किसी वर्ग के उपक्रमों के स्वामियों अथवा सामान्य रूप में उपक्रमों पर ऐसे माल अथवा सेवाओं सम्बन्धी एकाधिकार व्यापार व्यवहारों में संलग्न रहने पर रोक लगाना, तथा

उपरोक्त माल एवं सेवाओं में एकाधिकार व्यापार व्यवहारों को चालू रहने से उत्पन्न होने वाले दोषों के उपचारस्वरूप अथवा रोकने के लिए भी आदेश निर्गमित कर सकती है। **[धारा 31 (2-A)]**

आदेश में सम्मिलित होने वाली अन्य बातें -,

धारा 2-क में प्रदान किये गये अधिकारों के प्रति बिना किसी पूर्वग्रह के केन्द्रीय सरकार द्वारा दिये गये आदेश में निम्नलिखित को भी सम्मिलित किया जा सकता है -

(i) उपक्रम द्वारा किसी माल के उत्पादन, संग्रहण, पूर्ति, वितरण अथवा नियन्त्रण का नियमन किया जाना अथवा नियन्त्रण करना अथवा सेवाओं की पूर्ति का नियमन या नियन्त्रण करना और विक्रय की शर्तें (मूल्य सहित) निर्धारित करना अथवा पूर्ति;

(ii) किसी उपक्रम को ऐसे किसी कार्य को करने से रोकना जो कि किसी माल के उत्पादन, संग्रह, पूर्ति अथवा वितरण अथवा सेवाओं का प्रावधान करने में होने वाली प्रतियोगिता को रोकता है या उसे कम करता है;

(iii) उपक्रम द्वारा उपयोग में आने वाले अथवा उत्पादित माल का प्रमाप निर्धारित करना;

(iv) आदेश में अथवा अन्तर्गत किये गये प्रावधानों को छोड़कर अन्य मामलों में होने वाले अनुबन्ध को अवैधानिक घोषित करना;

(v) किसी पक्षकार को निर्धारित अवधि में निर्दिष्ट ठहराव करने के लिए बाध्य करना;

(vi) माल के उत्पादन, संग्रहण, पूर्ति, वितरण अथवा नियन्त्रण अथवा सेवाओं के प्रावधान करने से होने वाले लाभों का नियमन करना;

(vii) माल की किस्म अथवा सेवाओं के प्रावधान का नियमन करना ताकि उनका प्रमाप गिरने न पाये।

(4) **आदेश का निष्पादन-** जब भी केन्द्रीय सरकार द्वारा उप-धारा (2-अ) के अन्तर्गत किसी उपक्रम के स्वामी अथवा किसी वर्ग के उपक्रमों अथवा सामान्यतः उपक्रमों को एकाधिकार व्यापार व्यवहार में संलग्न होने से रोकने के लिए कोई आदेश निर्गमित किया जाता है, तो

(अ) उपक्रम का स्वामी अथवा वर्ग के उपक्रमों के स्वामी, जो भी हो, ऐसा आदेश मिलने की तिथि से 30 दिन के अन्दर (अथवा यदि पर्याप्त कारणों के आधार पर केन्द्रीय सरकार ने समय में वृद्धि कर दी हो तो उक्त बढ़े हुए समय में) केन्द्रीय सरकार को आदेश के निष्पादन की सूचना देंगे, तथा

(ब) महानिदेशक आदेश की तिथि से 90 दिन के अन्दर (अथवा केन्द्रीय सरकार द्वारा समय में वृद्धि करने पर उक्त अवधि की समाप्ति से) केन्द्रीय सरकार को आदेश का निष्पादन करने के बारे में सूचित करेगा। यदि महानिदेशक को यह विश्वास करने का पर्याप्त कारण हो कि किसी उपक्रम के द्वारा ऐसे आदेश का उल्लंघन किया गया है अथवा किया जा रहा है, तो वह केन्द्रीय सरकार को ऐसे उपक्रम के स्वामी के बारे में विवरण सूचित करेगा ताकि केन्द्रीय सरकार इस अधिनियम के अन्तर्गत उसके विरुद्ध ऐसी कार्यवाही कर सके, जो कि वह उचित समझे। **[धारा 31 (4)]**

कुछ मामलों में छोड़कर एकाधिकार व्यापार व्यवहार को जन-हित के विरुद्ध माना जाना (Monopolistic Trade Practice to be deemed to prejudicial to the public interest except in certain cases)
[धारा 32]

इस अधिनियम के उद्देश्यों के लिए, निम्नलिखित को छोड़कर, प्रत्येक एकाधिकार व्यापार व्यवहार जन-हित के विरुद्ध माना जायेगा -

(अ) ऐसा व्यापार व्यवहार जिसे किसी प्रचलित अधिनियम द्वारा स्पष्ट रूप में अधिकृत किया गया हो, अथवा

(ब) केन्द्रीय सरकार के सन्तुष्ट होने पर कि निम्न व्यापार व्यवहार आवश्यक है -

(i) भारत की रक्षा सम्बन्धी आवश्यकताओं अथवा उसके कुछ भाग हेतु अथवा राज्य की सुरक्षा हेतु; अथवा

(ii) समुदाय के लिए आवश्यक वस्तुओं और सेवाओं की पूर्ति बनाये रखने के लिए; अथवा

(iii) किसी ऐसे ठहराव की शर्तों को प्रभावी बनाने के लिए जिसमे केन्द्रीय सरकार भी एक पक्षकार हो, तो ऐसी स्थिति में केन्द्रीय सरकार लिखित आदेश द्वारा उपक्रम के स्वामी को ऐसा व्यापार व्यवहार चलाने की अनुमति प्रदान कर देगी। **[धारा 32]**

प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार
(Restrictive Trade Practice)
[धाराएँ 33-36]

प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहारों से सम्बन्धित पंजीयन योग्य ठहराव
(Registerable agreements relating to Restrictive Trade Practice)

[धारा 33]

(1) **प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार कौन से हैं** - निम्नलिखित श्रेणियों के प्रत्येक ठहराव इस अधिनियम के उद्देश्यों के लिए प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार माना जायेगा और उसका पंजीयन इस अध्याय के प्रावधानों के अनुसार होगा -

... माल का विक्रय किया जाता है अथवा जिनसे माल का क्रय किया जाता है, रोकता है अथवा रोकने की सम्भावना है;

(b) ऐसा ठहराव जो कि क्रेता को किसी माल का क्रय करने के साथ-साथ किसी अन्य माल के क्रय करने के लिए बाध्य करता है;

(c) ऐसा ठहराव जोकि किसी भी ढंग से क्रेता को अपने व्यवहार के दौरान विक्रेता अथवा किसी अन्य व्यक्ति के माल के अतिरिक्त किसी दूसरे का माल प्राप्त करने से रोकता है;

(d) क्रेता तथा विक्रेता के मध्य सहमत मूल्यों अथवा शर्तों पर ही माल को खरीदने अथवा बेचने के लिए प्रस्तुत करने का कोई भी ठहराव;

(e) सम्बन्धों अथवा व्यवहारों के आधार पर रियायतें अथवा लाभ प्रदान करने का ठहराव। इसमें भत्ते, छूट, कटौती अथवा साख (उधार) भी सम्मिलित है;

(f) माल को इस शर्त पर बेचने का ठहराव कि क्रेता द्वारा उसका पुनः विक्रय विक्रेता द्वारा निर्धारित मूल्यों पर ही किया जा सकेगा;

(g) माल का निपटारा करने के लिए, सीमा, प्रतिबन्ध अथवा किसी माल का उत्पादन अथवा पूर्ति को रोकने अथवा क्षेत्र या बाजार का आबंटन करने का ठहराव;

(h) माल के निर्माण में किसी विधि को लागू करने, यन्त्र अथवा प्रक्रिया को लागू करने अथवा रोकने का ठहराव;

(i) किसी व्यापार से सम्बन्धित निर्मित व्यापार संघ में किसी ऐसे व्यक्ति को सम्मिलित न करने का ठहराव जो कि सद्‌विश्वास से समान व्यवसाय चला रहा है अथवा चलाना चाहता है;

(j) ऐसे मूल्य पर माल को बेचने का ठहराव जिससे प्रतियोगिता या प्रतियोगी समाप्त हो जाये;

(ja) ऐसा ठहराव जो कि किसी भी ढंग से थोक विक्रेताओं, उत्पादकों अथवा पूर्तिकर्ताओं, जिनसे माल क्रय किया जा सकता हो, के वर्ग अथवा संख्या को सीमित करता हो;

(jb) माल के विक्रय हेतु की गई नीलामी में किसी पक्षकार द्वारा बोली लगाने सम्बन्धी ठहराव अथवा ऐसा ठहराव जिसके द्वारा कोई पक्षकार माल के विक्रय की नीलामी में बोली लगाने से रोका जाता है;

(k) ऐसा ठहराव जिसका सन्दर्भ इस अधिनियम में नहीं हो किन्तु केन्द्रीय सरकार द्वारा आयोग की किसी सिफारिश के आधार पर अधिसूचना द्वारा प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार से सम्बन्धित निर्दिष्ट हो;

(l) इस उप-धारा में संदर्भित किसी ठहराव को लागू करने के लिए किया गया कोई ठहराव।

[धारा 33 (1)]

(2) **प्रस्तुत धारा का सेवा सम्बन्धी ठहरावों पर लागू होना** - इस धारा के प्रावधान, जहाँ तक सम्भव हो, सेवाओं का प्रावधान करके सम्बन्धी ठहरावों के सम्बन्ध में, उसी प्रकार से लागू होंगे कि वे माल के उत्पादन, संग्रह, पूर्ति, वितरण अथवा नियन्त्रण करने से सम्बन्धित ठहरावों पर लागू होते हैं। **[धारा 33 (2)]**

(3) **किस ठहराव का पंजीयन कराने की आवश्यकता नहीं** - इस धारा के अन्तर्गत आने वाले ऐसे किसी भी ठहराव के पंजीयन की आवश्यकता नहीं है यदि वह उस समय प्रचलित किसी अन्य अधिनियम के अन्तर्गत स्पष्ट रूप में अधिकृत हो अथवा केन्द्रीय सरकार द्वारा अनुमोदित हो अथवा यदि सरकार स्वयं उक्त ठहराव की पक्षकार हो।

[धारा 33 (3)]

[धारा 34 - इस धारा को हटा दिया है।]

ठहरावों का पंजीयन (Registration of Agreements) **[धारा 35]**

(1) **केन्द्रीय सरकार द्वारा दिन निश्चित किया जाना** - केन्द्रीय सरकार अधिसूचना द्वारा दिन निर्दिष्ट करेगी जिस दिन को एवं जिस दिन से धारा 33 के अन्तर्गत आने वाला प्रत्येक ठहराव इस अधिनियम के अन्तर्गत पंजीयन करने योग्य हो जायेगा।

विभिन्न वर्गों के ठहरावों के लिए विभिन्न दिन निश्चित किये जा सकते हैं। **[धारा 35 (1)]**

(2) **पंजीयन कराने हेतु ठहरावों में दिया जाने वाला विवरण** - उक्त निर्धारित दिन को विद्यमान किसी ठहराव की दशा में 60 दिनों के अन्तर, तथा उक्त निर्धारित दिन के पश्चात् किये गये ठहरावों की दशा में ऐसे ठहराव करने के दिन से 60 दिन के अन्दर धारा 33 के अन्तर्गत आने वाले प्रत्येक के सम्बन्ध में महानिदेशक को निम्नलिखित विवरण प्रस्तुत होगा -

(अ) ऐसे व्यक्तियों के नाम जोकि ठहराव के पक्षकार हों, तथा

NOTES

NOTES

(ब) ठहराव की सम्पूर्ण शर्तें। [धारा 35 (2)]

(3) **पंजीकृत ठहराव में किये गये परिवर्तन की सूचना** - यदि इस अधिनियम के अन्तर्गत ठहराव का पंजीयन हो जाने के पश्चात् किसी भी समय ठहराव में कोई परिवर्तन किया जाता है (चाहे ऐसा परिवर्तन पक्षकारों के सम्बन्ध में किया गया हो अथवा ठहराव की शर्तों के सम्बन्ध में हो तो ऐसा परिवर्तन करने की तिथि से एक महीने के अन्तर्गत किये गये परिवर्तन का विवरण महा निदेशक के पास भेजना होगा।) [धारा 35 (3)]

(4) **प्रस्तुत किया जाने वाला विवरण** - इस धारा के अन्तर्गत किसी ठहराव में किये गये परिवर्तन का निम्न विवरण प्रस्तुत करना होगा -

(अ) यदि ठहराव में परिवर्तन किसी विलेख के माध्यम से लिखित रूप में किया गया हो, उक्त ठहराव की मूल प्रति अथवा सच्ची प्रतिलिपि प्रस्तुत करके, तथा

(ब) यदि लिखित रूप में परिवर्तन न किया गया हो तो ऐसी स्थिति में परिवर्तन की सूचना देने वाले व्यक्ति के द्वारा लिखित रूप में ज्ञापन प्रस्तुत करके। [धारा 35 (4)]

(5) **विवरण प्रस्तुत करने वाला व्यक्ति** - इस अधिनियम के अन्तर्गत विवरण ऐसे किसी भी व्यक्ति द्वारा अथवा उसकी ओर से प्रस्तुत किया जा सकता है जोकि ठहराव का पक्षकार हो अथवा परिवर्तन करने के तुरन्त पूर्व ठहराव का पक्षकार था। यह विवरण करने के पश्चात् यह मान लिया जायेगा कि इस धारा के प्रावधानों को सभी पक्षकारों ने पूरा कर लिया है। [धारा 35 (5)]

रजिस्टर रखना (Keeping the Register) [धारा 36]

(1) **महानिदेशक द्वारा रजिस्टर रखना और उसमें प्रविष्टि करना** - इस अधिनियम के उद्देश्यों के लिए महानिदेशक निर्धारित प्रारूप में रजिस्टर रखेगा और उसमें ठहराव के पंजीयन से सम्बन्धित निर्धारित विवरण की प्रविष्टि करेगा। [धारा 36 (1)]

(2) **रजिस्टर के विशिष्ट भाग में आयोग द्वारा निर्देशित विवरण को भरने का प्रावधान करना** - महानिदेशक रजिस्टर के विशिष्ट भाग में आयोग द्वारा निर्देशित निम्न विवरण की प्रविष्टि करने अथवा भरने का प्रावधान करेगा -

(अ) ऐसी सूचना का विवरण जिसका प्रकाशन, आयोग की सम्मति में, जन-हित के प्रतिकूल हो,

(ब) किसी मामले में सम्बन्ध में ऐसी सूचना का विवरण, जिसका प्रकाशन होने पर, आयोग की सम्मति में, किसी व्यक्ति के वैध व्यापारिक हितों को पर्याप्त रूप में क्षति पहुँचेगी। [धारा 36 (2)]

(3) **रजिस्ट्रार को आवेदन** - धारा 35 के अन्तर्गत पंजीकृत किये जाने वाले किसी ठहराव का भी पक्षकार रजिस्ट्रार को निम्नलिखित के लिए आवेदन कर सकता है :

(i) ठहराव अथवा उसका कोई भाग पंजीयन सम्बन्धी प्रावधानों से इस आधार पर हटाये जाने के लिए कि उक्त ठहराव अथवा उसके किसी भाग की पर्याप्त आर्थिक महत्ता नहीं है, अथवा

(ii) विशिष्ट भाग में ठहराव के किसी प्रावधान को सम्मिलित करने के लिए, महानिदेशक मामले का निपटारा आयोग द्वारा दिये गये सामान्य अथवा विशिष्ट निर्देशों को ध्यान में रखकर करेगा। [धारा 36 (3)]

अनुचित व्यापार व्यवहार
(Unfair Trade Practices)
[धारा 36-क - 36-ङ]

अनुचित व्यापार व्यवहारों की परिभाषा (Definition of Unfair Trade Practices) [धारा 36-क]

इस भाग में, जब तक कि कोई अन्य सन्दर्भ न हो, अनुचित व्यापार व्यवहार से आशय ऐसे व्यापार व्यवहार से है जोकि विक्रय संवर्धन, माल के उपयोग अथवा पूर्ति अथवा सेवाओं का प्रावधान करने के लिए निम्नलिखित में से एक अथवा एक से अधिक व्यापार व्यवहारों को अपनाता है और इस प्रकार ऐसे माल अथवा सेवाओं के उपभोक्ताओं को हानि अथवा क्षति पहुँचाता है, चाहे ऐसा प्रतिस्पर्द्धा को समाप्त अथवा प्रतिबन्धित करके अथवा अन्य प्रकार से किया गया हो।

(1) ऐसे कथन द्वारा, चाहे मौखिक हो अथवा लिखित रूप में अथवा दृष्टिगत प्रतिनिधित्व द्वारा हो, जोकि -

(i) मिथ्या रूप में यह कहता है कि माल एक विशिष्ट प्रमाप, गेड, बनावट, ढंग अथवा प्रतिरूप का है;

(ii) मिथ्या रूप में यह कहता है कि सेवाएँ एक विशिष्ट प्रमाप, किस्म अथवा ग्रेड की हैं;

(iii) मिथ्या रूप में पुनः निर्मित, सैकिण्ड हेण्ड, नवाचार सुधारा हुआ अथवा पुराने माल को नया माल बताता है;

(iv) इस बात का प्रतिनिधित्व करता है कि माल अथवा सेवाओं का प्रयोजन, अनुमोदन, निष्पादन, विशेषताएँ, अतिरिक्त, उपयोग अथवा लाभ है जोकि ऐसे माल अथवा सेवाओं के नहीं होते हैं;

(v) यह प्रतिनिधित्व करता है कि विक्रेता अथवा पूर्तिकर्ता के पास आयोजन अथवा अनुमोदन अथवा सम्बद्धता है जोकि ऐसे विक्रेता अथवा पूर्तिकर्ता के पास नहीं होती है;

... अथवा भुलावा देने वाला अभिवेदन (representation) लाता है;

(vii) किसी उत्पाद अथवा किसी माल के निष्पादन, कुशलता अथवा जीवन की अवधि के सम्बन्ध में जनता को ऐसा आश्वासन अथवा गारण्टी देता है जोकि पर्याप्त उचित परीक्षण पर आधारित नहीं हो;

(viii) ऐसे प्रारूप में जनता को अभिवेदन करता है जिसका अभिप्राय -

(अ) उत्पादन अथवा माल अथवा सेवाओं का आश्वासन अथवा गारण्टी देता हो, अथवा

(ब) किसी वस्तु अथवा उसके भाग का तब तक पुनः स्थापन, बनाये रखने अथवा मरम्मत, बदलने अथवा सेवाएँ प्रदान करने का वचन तब तक कि निर्दिष्ट परिणाम प्राप्त न हों, यदि ऐसे आश्वासन अथवा गारण्टी अथवा वचन का अभिप्राय मूलभूत रूप में भुलावा देना हो अथवा ऐसी उचित सम्भावना न हो कि ऐसे आश्वासन, गारण्टी अथवा वचन को पूरा किया जायेगा;

(ix) किसी उत्पाद अथवा समान उत्पादों अथवा माल अथवा सेवाओं के ऐसे मूल्य के सम्बन्ध में जनता को भुलावा देता है जिस पर कि उसका सामान्य रूप में विक्रय होता है अथवा उसको उपलब्ध किया जता है;

(x) किसी व्यक्ति के माल, सेवाओं अथवा व्यापार के सम्बन्ध में मिथ्यापूर्ण अथवा भुलावा देने वाले तथ्य देना है। **[धारा 36-क]**

आयोग द्वारा अनुचित व्यापार व्यवहारों के सम्बन्ध में पूछताछ [Inquiry into Unfair-trade practices by Commission] **[धारा 36 -ख]**

निम्नलिखित दशाओं में आयोग अनुचित व्यापार व्यवहारों के सम्बन्ध में पूछताछ कर सकता है -

(अ) किसी व्यापार संघ अथवा उपभोक्ता अथवा पंजीकृत उपभोक्ता संघ, चाहे ऐसा उपभोक्ता उस उपभोक्ता संघ का सदस्य हो अथदा नहीं, से ऐसे तथ्यपूर्ण शिकायत प्राप्त होने पर जोकि ऐसे व्यापार की स्थापना करती है; अथवा

(ब) केन्द्रीय सरकार अथवा राज्य सरकार के द्वारा सन्दर्भित किये जाने पर; अथवा

(स) महानिदेशक द्वारा आवेदन-पत्र प्रस्तुत किये जाने पर; अथवा

(द) स्वयं के ज्ञान अथवा सूचना के आधार पर।

कुछ मामलों में प्रक्रिया के निर्गमन से पूर्व महानिदेशक द्वारा जाँच -

(Investigation by Director-General before an issue of process in certain cases) **[धारा 36-ग]**

किसी अनुचित व्यापार व्यवहार के सम्बन्ध में जिसकी शिकायत धारा-B के वाक्य - अ के अन्तर्गत की गई हो, आयोग किसी प्रक्रिया के निर्गमन से पूर्व उस व्यक्ति को बुलायेगा जिसके विरुद्ध शिकायत की गई है तथा महानिदेशक को प्रारम्भिक जाँच करने का निर्देश स्वयं की संतुष्टि प्राप्त करने के लिए देगा कि शिकायत के बारे में पूछताछ किये जाने की आवश्यकता है। **[धारा 36 ग]**

अधिकार जिनका उपयोग आयोग द्वारा किसी अनुचित व्यापार व्यवहार की पूछताछ करने में किया जा सकता है (Powers which can be exercised by the Commission inquiring into an unfair trade practice) **[धारा 36-घ]**

(1) **पूछताछ करना एवं आदेश देना** - आयोग किसी ऐसे अनुचित व्यापार व्यवहार के सम्बन्ध में पूछताछ कर सकता है जोकि पूछताछ करने के पश्चात् उसकी सम्मति में व्यवहार जन-हित अथवा उपभोक्ताओं के हितों के सामान्य रूप में विरुद्ध है, तो वह आदेश द्वारा यह निर्देश दे सकता है कि -

(अ) व्यवहार को चालू नहीं रखा जायेगा अथवा दोहराया नहीं जायेगा; अथवा

(ब) ऐसे अनुचित व्यवहार से सम्बन्धित कोई भी ठहराव व्यर्थ होगा अथवा आदेश में निर्दिष्ट ढंग से संशोधित हुआ माना जायेगा। **[धारा 36 घ (1)]**

(2) **हितों के प्रतिकूल न होने पर** - इस धारा के अन्तर्गत आदेश देने के स्थान पर आयोग सम्बन्धित पक्षकार को उसके द्वारा आवेदन करने पर अनुचित व्यवहार को चालू रखने की अनुमति दे सकता है तथा निर्दिष्ट समय में ऐसे कदम उठा सकता है जोकि आयोग द्वारा यह सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक है कि व्यापार व्यवहार अब जन-हित अथवा उपभोक्ता अथवा उपभोक्ताओं के हितों के विरुद्ध नहीं है। यदि आयोग सन्तुष्ट हो जाता है कि उसके द्वारा

निर्धारित समय में आवश्यक कदम उठाये जा चुके हैं, तो वह इस अधिनियम के अन्तर्गत उस व्यापार व्यवहार के विरुद्ध कोई भी आदेश नहीं देने का निर्णय कर सकता है। **[धारा 36-I (2)]**

(3) **किसी अन्य प्रचलित अधिनियम के अन्तर्गत व्यापार व्यवहार अधिकृत होने पर** - यदि वह व्यापार व्यवहार प्रचलित किसी अन्य अधिनियम के अन्तर्गत स्पष्ट रूप में अधिकृत हो तो उसके विरुद्ध उप-धारा (1) के अन्तर्गत कोई भी आदेश नहीं दिया जायेगा। **[धारा -36 घ (3)]**

प्रतिबन्धित व्यापार व्यवहारों से सम्बन्धित अधिकार का प्रयोग अथवा निष्पादन अनुचित व्यापार व्यवहारों के सम्बन्ध में भी किया जा सकता है (Power relating to Restrictive Trade Practices may exercised or performed in relation to Unfair Trade Practices) **[धारा 36-ङ]**

धाराएँ 12-क, 12-ख तथा 12-घ के प्रति बिना किसी पूर्वग्रह के आयोग, महानिदेशक अथवा आयोग या महानिदेशक की ओर से अधिकृत अन्य कोई व्यक्ति अनुचित व्यापार व्यवहार के सम्बन्ध में उन्हीं अधिकारों या कर्त्तव्यों का प्रयोग अथवा निष्पादन कर सकता है जिनका वह प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहारों के विरुद्ध उपयोग करने अथवा निष्पादन करने के लिए अधिकारी है अथवा करता है। **[धारा 36-ङ]**

कुछ प्रतिबन्धित व्यापार व्यवहारों का नियन्त्रण
(Control of Certain Restrictive Trade Practices)
[धाराएँ 37-41]

आयोग द्वारा प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहारों की जाँच किया जाना (Investigation into Restrictive Trade Practices by Commission) **[धारा 37]**

(1) **पूछताछ करना तथा आदेश देना** - आयोग किसी प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार के सम्बन्ध में पूछताछ कर सकता है, चाहे उससे सम्बन्धित ठहराव, यदि कोई हो, धारा 55 के अन्तर्गत पंजीकृत हुआ हो अथवा नहीं। यदि पूछताछ करने के पश्चात् उसकी यह सम्मति हो कि उक्त व्यवहार जन-हित के विरुद्ध है, तो आयोग आदेश द्वारा निम्न निर्देश दे सकता है -

(अ) कि व्यवहार को चालू नहीं रखा जायेगा अथवा दोहराया नहीं जायेगा;

(ब) उससे सम्बन्धित ठहराव आदेश में निर्दिष्ट ढंग से व्यर्थ होगा। **[धारा 37 (1)]**

(2) **प्रतिबन्धित व्यवहार को जारी रखने की अनुमति** - आयोग इस अधिनियम के अन्तर्गत आदेश देने के स्थान पर पक्षकार द्वारा आवेदन करने पर प्रतिबन्धित व्यवहार को चालू रखने की अनुमति दे सकता है तथा इस सम्बन्ध में निर्दिष्ट समय के अन्दर वह ऐसे कदम उठा सकता है जोकि आयोग द्वारा सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक हो कि व्यापार व्यवहार जन-हित के विरुद्ध नहीं रहा है। ऐसे मामले में यदि आयोग सन्तुष्ट हो जाता है कि निर्दिष्ट समय में आवश्यक कदम उठाये जा चुके हैं, तो वह उस व्यापार व्यवहार के विरुद्ध इस अधिनियम के अन्तर्गत कोई भी आदेश नहीं देने का निर्णय कर सकता है। **[धारा 37 (2)]**

(3) **निम्नलिखित के सम्बन्ध में उप-धारा (1) के अन्तर्गत कोई भी आदेश निर्गमित नहीं किया जायेगा**- (अ) ऐसे माल के सम्बन्ध में क्रेताओं के मध्य हुआ कोई ठहराव जोकि क्रेताओं द्वारा उपभोग के लिए क्रय किया जाता है न कि अन्तिम रूप में विक्रय करने के लिए, चाहे उसी अथवा विभिन्न प्रारूप, प्रकार अथवा विशिष्ट अथवा किसी अन्य माल के अंग के रूप में; (ब) ऐसा व्यापार व्यवहार जो किसी अन्य प्रचलित अधिनियम के अन्तर्गत अधिकृत हो। **[धारा 37 (3)]**

(4) **केन्द्रीय सरकार के समक्ष प्रस्तुत किया जाना** - जब तक उस अधिनियम में कोई प्रतिकूल बात न हो, यदि आयोग उप-धारा (1) के अधीन की गई पूछताछ के दौरान यह पाता है कि किसी उपक्रम का स्वामी एकाधिकार एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहारों में संलग्न है, तो वह उप-धारा (1) अथवा (2) के अन्तर्गत प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार के सम्बन्ध में आवश्यक आदेशों को देने के पश्चात् उक्त मामले को अपने निष्कर्षों सहित केन्द्रीय सरकार को आवश्यक कदम उठाने के लिए सौंप सकता है। **[धारा 37 (4)]**

प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1. एकाधिकार एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार अधिनियम, 1969 के संदर्भ में निम्नलिखित से आप क्या समझते हैं,

   (अ) अन्तर्सम्बन्धित उपक्रम, (ब) एकाधिकार व्यापार व्यवहार,

2. एकाधिकारी व्यापार व्यवहार क्या है? इस संदर्भ में एकाधिकार एवं अवरोधन (प्रतिबन्धात्मक) व्यापार व्यवहार अधिनियम, 1969 के प्रावधानों का वर्णन कीजिए।
3. एकाधिकार एवं अवरोधक (प्रतिबन्धात्मक) व्यापार व्यवहार अधिनियम क्या है? इसके उद्देश्य तथा उन परिस्थितियों को समझाइए जिनमें यह लागू नहीं होता।
4. एकाधिकार तथा अवरोधक व्यापार व्यवहार अधिनियम, 1969 में एकाधिकार व्यापार व्यवहार तथा अवरोधक व्यापार व्यवहार को किस प्रकार परिभाषित किया गया है? उनमें अन्तर कीजिए।
5. एकाधिकार एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार अधिनियम के प्रमुख प्रावधानों का मूल्यांकन कीजिए।
6. अनुचित व्यापार व्यवहारों की परिभाषा दीजिये। कौन-कौन से व्यापार व्यवहार अनुचित व्यापार व्यवहारों के अन्तर्गत आते हैं?

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिये :
   (i) एकाधिकार व्यापार व्यवहार।
   (ii) प्रभावी उपक्रम।
   (iii) अनुचित व्यापार व्यवहार।
2. एकाधिकार एवं प्रबन्धात्मक व्यापार व्यवहार अधिनियम के उद्देश्य बताइये।
3. उन मामलों को बताइये जहाँ एकाधिकार एवं प्रतिबन्धात्मक अधिनियम लागू नहीं होता।

NOTES

अपनी प्रगति की जाँच करें
Test your Progress

NOTES

15

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986

[CONSUMER PROTECTION ACT, 1986]

आजकल सभी स्तरों पर व्यावसायियों में एवं उपभोक्ताओं में अपने अपने उत्तरदायित्वों के प्रति चेतना जागृत करने के प्रयास किये जा रहे हैं। इसी दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए भारत में उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 प्रभावशील है। इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य उपभोक्ताओं के हितों की श्रेष्ठ ढंग से रक्षा करना तथा इस उद्देश्य के लिये उपभोक्ता विवादों तथा अन्य सम्बन्धित मामलों का निपटारा करने के लिये उपभोक्ता परिषदों एवं अन्य संस्थाओं की स्थापना करना है।

प्रमुख विशेषताएँ
(Main Features)

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :-

(1) **नाम** – यह अधिनियम उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 के नाम से जाना जाता है तथा इसमें कुल मिलाकर 31 धाराएँ हैं।

(2) **अतिरिक्त अधिनियम** – यह अधिनियम उपभोक्ता संरक्षण के क्षेत्र में वर्तमान में भारत में लागू एकाधिकार एवं प्रतिबन्धित व्यापार व्यवहार अधिनियम के अतिरिक्त है।

(3) **संस्थागत ढाँचा** – इस अधिनियम के अन्तर्गत उपभोक्ता संरक्षण आन्दोलन को गति प्रदान करने के लिए उपभोक्ता संरक्षण परिषद तथा उपभोक्ता परिवादों के निपटारे के लिए एक अर्द्ध-न्यायिक तंत्र की व्यवस्था की गई है।

(4) **क्षेत्र** – यह अधिनियम जम्मू-कश्मीर राज्य को छोड़कर सम्पूर्ण भारत पर लागू है।

(5) **वस्तु और सेवाएँ** – यह अधिनियम सभी वस्तुओं और सेवाओं पर केवल उन्हें छोड़कर, जिन्हें सरकार ने अधिसूचना द्वारा छूट प्रदान कर दी है, लागू होता है।

अधिनियम के उद्देश्य
(Objects of the Act)

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 में निम्न उद्देश्य उल्लेखित हैं :

(1) उपभोक्ताओं के हितो को श्रेष्ठ संरक्षण प्रदान करना।

(2) उद्देश्यों का संवर्द्धन एवं संरक्षण केन्द्र तथा राज्य स्तर पर स्थापित व्यवसाय संरक्षण परिषदों द्वारा करना।

(3) उपभोक्ता विवादों का शीघ्रता से निपटारा करने के लिए अर्द्ध सरकारी न्यायिक व्यवस्था की स्थापना करना।

(4) उपभोक्ताओं के अधिकारों का संवर्द्धन एवं संरक्षण करना।

(5) उपभोक्ताओं के हितों पर समुचित ध्यान देना।

आवश्यक परिभाषाएँ
(Necessary Definitions)

1. **उपभोक्ता** (Consumer) – 'उपभोक्ता' से आशय ऐसे व्यक्ति से है जो किसी ऐसे प्रतिफल के लिए जिसका भुगतान किया गया है या वचन दिया गया है या किसी आस्थगित भुगतान पद्धति के अधीन माल का क्रय करता है और प्रयोग करता है परन्तु इसमें पुनः विक्रय नहीं आता है। माल की तरह सेवाओं को भाड़े पर लेना और उनका उपयोग करने वाला भी उपभोक्ता ही कहलाता है।

2. **निर्माता** (Manufacturer) – 'निर्माता' से आशय ऐसे व्यक्ति से है जो :

(i) किसी माल या उसके भाग को बनाता है या निर्माण करता है; या

(ii) अन्य व्यक्तियों द्वारा बनाये गये हिस्सों या पुर्जों का संयोजन करता है; या

(iii) किसी अन्य निर्माता द्वारा बनाये गये माल पर अपना स्वयं का चिह्न लगाता है और यह दावा करता है कि वह उसके द्वारा निर्मित माल है।

[illegible] हर्जाना प्राप्त करने के उद्देश्य से वादी द्वारा लिखित में दिया गया ऐसा कथन जिससे प्रकट हो –

(i) वादी द्वारा खरीदी गई किसी वस्तु में एक या अधिक त्रुटियाँ।

(ii) किसी व्यापारी द्वारा किया गया अनुचित या अवरोधक व्यापार व्यवहार।

(iii) ऐसा माल, जिसकी प्रयोग विधि या प्रभाव का प्रदर्शन किया जाना कानूनन आवश्यक है अन्यथा वह जीवन की सुरक्षा को खतरा पैदा कर सकता है तथा ऐसा माल व्यापारी द्वारा जन-सामान्य के विक्रय हेतु रखा जाना।

(iv) व्यापारी द्वारा परिवाद में वर्णित माल का मूल्य पैकेज पर प्रदर्शित मूल्य या किसी कानून द्वारा नियत मूल्य से अधिक लेना।

(v) वादी द्वारा भाड़े पर ली गई सेवा या (सेवा सम्बन्धी अनुबन्ध) में किसी प्रकार की कोई कमी।

4. **व्यापारी** (Trader) – किसी माल के सम्बन्ध में 'व्यापारी' से आशय ऐसे व्यक्ति से है जो विक्रय के उद्देश्यों से माल को विक्रय करता है तथा उसका वितरण करता है।

5. **अनुचित व्यापार व्यवहार** (Unfair Trade Practices) – 'अनुचित व्यापार व्यवहार' से आशय ऐसे व्यवहार से है, जिनके द्वारा किसी वस्तु का विक्रय, उपभोग या आपूर्ति प्रोत्साहित करने के लिये या सेवाओं की व्यवस्था करने के लिए अनुचित तरीके अथवा छल कपटपूर्ण व्यवहार का उपयोग किया जाता है।

6. **दोष** (Defect) – 'दोष' से आशय किसी माल की किस्म, मात्रा, सामर्थ्य, शुद्धता अथवा प्रमाप जिसे उस समय प्रचलित किसी विधान के अधीन व्यापारी द्वारा, किसी भी प्रकार से माल के सम्बन्ध में बनाये रखना आवश्यक हो, में किसी त्रुटि अथवा कमी से है।

7. **निर्धारित** (Prescribed) – 'निर्धारित' से आशय इस अधिनियम के अन्तर्गत राज्य सरकार या केन्द्र सरकार द्वारा निर्धारित नियमों से है।

8. **अधिसूचना** (Notification) – 'अधिसूचना' से आशय राजपत्र में प्रकाशित किसी अधिसूचना से है।

उपभोक्ता संरक्षण परिषदें
(Consumer Protection Councils)

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 में उपभोक्ता अधिकारों में वृद्धि एवं संरक्षण हेतु केन्द्रीय तथा राज्य स्तर पर उपभोक्ता संरक्षण परिषदें गठित करने की निम्न व्यवस्था की गई है–

(1) **केन्द्रीय उपभोक्ता संरक्षण परिषद्** – केन्द्रीय सरकार एक अधिसूचना द्वारा केन्द्रीय उपभोक्ता संरक्षण परिषद् के रूप में एक परिषद् का गठन कर सकती है जिसमें निम्न सदस्य होंगे–

(i) केन्द्रीय सरकार के उपभोक्ता कार्य का भारसाधक मंत्री जो इसका अध्यक्ष होगा।

(ii) उपभोक्ता हितों का प्रतिनिधित्व करने वाले अन्य सरकारी या गैर-सरकारी सदस्य एक निर्धारित संख्या में। **(धारा 4)**

केन्द्रीय परिषद् के उद्देश्य – केन्द्रीय परिषद् का उद्देश्य उपभोक्ता के अधिकारों का संवर्द्धन और संरक्षण करना होगा, जैसे –

(अ) जीवन और सम्पत्ति को हानि पहुँचाने वाले माल के विक्रय के विरुद्ध संरक्षण का अधिकार;

(ब) माल का गुण, मात्रा, शक्ति, शुद्धता, मानक और मूल्य के बारे में सूचित किये जाने का अधिकार;

(स) जहाँ भी सम्भव हो वहाँ प्रतिस्पर्धी मूल्यों पर विभिन्न किस्मों का माल और सेवाएँ उपलब्ध कराने में आश्वासन दिये जाने का अधिकार;

(द) उपभोक्ताओं के हितों पर समुचित पीठों में सही रूप से विचार करने और उन्हें सुने जाने का अधिकार;

(य) उपभोक्ताओं के शोषण के विरुद्ध हर्जाना प्राप्त करने का अधिकार; तथा

(र) उपभोक्ता शिक्षा का अधिकार। **(धारा 6)**

(2) **राज्य उपभोक्ता संरक्षण परिषद्** – राज्य सरकार अधिसूचना द्वारा उपभोक्ता संरक्षण परिषद् के रूप में एक परिषद् का गठन कर सकेगी जिसमें निम्न सदस्य होंगे –

(अ) राज्य सरकार में उपभोक्ता कार्य विभाग के प्रभारी मंत्री इसके अध्यक्ष होंगे, तथा

NOTES

NOTES

(ब) उपभोक्ता हितों का प्रतिनिधित्व करने वाले अन्य सरकारी और गैर-सरकारी व्यक्ति एक निर्धारित संख्या में इसके सदस्य होंगे। **(धारा 7)**

राज्य परिषद् राज्य के भीतर उपभोक्ता के लिए उन अधिकारों को प्राप्त कराने में मदद करेगी जो केन्द्रीय परिषद् के उद्देश्यों में वर्णित किये गये हैं।

अधिनियम में यह भी व्यवस्था की गई है कि वर्ष में केन्द्रीय परिषद् कम से कम एक तथा राज्य परिषद् कम से कम दो बैठकें ऐसे समय व स्थान पर आयोजित करेंगी जो सम्बन्धित अध्यक्ष उचित समझे।

उपभोक्ता विवाद प्रतितोषण अभिकरण
(Consumer Disputes Redressal Agencies)

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 की धारा 9 से 26 तक में उपभोक्ता विवादों के निपटारे तथा पीड़ित उपभोक्ता को उचित हर्जाना दिलवाने सम्बन्धी प्रावधान किये गये हैं जिनके अन्तर्गत एक न्यायिक तन्त्र के रूप में उपभोक्ता विवाद प्रतितोषण अभिकरण की स्थापना की जायेगी तथा इस अभिकरण के निम्नलिखित प्रमुख अंग होते हैं :-

(1) जिला पीठ या फोरम **(धाराएँ 10-15)**

(2) राज्य आयोग **(धाराएँ 16-19)**

(3) राष्ट्रीय आयोग **(धाराएँ 20-23)**

(1) जिला पीठ या जिला फोरम

राज्य सरकार 'जिला पीठ' के रूप में एक उपभोक्ता विवाद प्रतितोषण पीठ की स्थापना, अधिसूचना द्वारा राज्य के प्रत्येक जिले में करेगी। यदि आवश्यक हो तो एक जिले में एक से अधिक 'जिला पीठ' भी स्थापित की जा सकती है।

संरचना – प्रत्येक जिला पीठ में एक अध्यक्ष तथा दो अन्य सदस्य होंगे जिनमें एक सदस्य महिला होगी। अध्यक्ष ऐसा होगा जो जिला न्यायाधीश है या रह चुका है या होने के लिए योग्यता रखता है। सदस्य ऐसे व्यक्ति होंगे जो आर्थिक, विधि, वाणिज्य लेखा, उद्योग, लोक कार्य या प्रशासन से सम्बन्धित ज्ञान और अनुभव रखते हों। ये नियुक्तियाँ राज्य सरकार द्वारा एक ऐसी चयन समिति की सिफारिश पर की जायेंगी। चयन समिति में राज्य आयोग का अध्यक्ष, राज्य के विधि विभाग तथा उपभोक्ता कार्य विभाग के सचिव होंगे। जिला पीठ के प्रत्येक सदस्य का कार्यकाल पाँच वर्ष या 65 वर्ष की आयु जो पहले तक रहेगा और वह पुनर्नियुक्ति के लिए पात्र नहीं होगा। इन सदस्यों को राज्य सरकार द्वारा निर्धारित मानदेय और अन्य भत्ते देय होंगे।

अधिकार – जिला पीठ को ऐसे परिवादों को ग्रहण करने या सुनने का अधिकार होगा जहाँ माल या सेवा का मूल्य और दावा पाँच रुपये से अधिक न हो। परिवाद उस जिला पीठ में दाखिल किया जायेगा जिसके अधिकारों की स्थानीय सीमाओं के भीतर विरोधी पक्षकार (विकेता) निवास करता है या कारोबार करता है या शाखा कार्यालय रखता है।

परिवाद प्रस्तुतीकरण – विक्रित माल या भाड़े पर ली गई सेवा के सम्बन्ध में उपभोक्ता निम्न रूप में परिवाद को जिला पीठ के सम्मुख प्रस्तुत कर सकता है –

(i) उस उपभोक्ता द्वारा जिसको ऐसा माल विक्रय किया गया है या विक्रय अनुबन्ध किया गया है;

(ii) किसी भी मान्यता प्राप्त उपभोक्ता संघ द्वारा चाहे पीड़ित उपभोक्ता उस संघ का संदस्य है या नही;

(iii) समान हित वाले बहुत से उपभोक्ताओं की ओर से पीठ की अनुमति से उनमें से एक या अधिक उपभोक्ताओं द्वारा; या

(iv) केन्द्रीय अथवा राज्य सरकार द्वारा।

परिवादों के प्राप्त होने पर प्रक्रिया – जिला पीठ, किसी परिवाद की प्राप्ति पर निम्न कदम उठायेगा –

(i) परिवाद की एक प्रति विरोधी पक्षकार को इस निर्देश के साथ भेजेगा कि वह तीस दिन के भीतर अथवा पीठ द्वारा 15 दिन बढ़ाई गई अवधि के भीतर मामले के बारे में अपना स्पष्टीकरण दे।

(ii) जहाँ परिवादी ने माल में किसी ऐसी त्रुटि या कमी का जिक्र किया है जिसका पता माल के परीक्षण कराये बिना नहीं लगाया जा सकता तो वहाँ जिला पीठ परिवादी से माल का नमूना प्राप्त करेगा, उसे सीलबन्द करेगा तथा समुचित प्रयोगशाला को परीक्षण हेतु इस निर्देश के साथ भेजेगा कि इसकी रिपोर्ट 45 दिन के अन्दर जिला पीठ को प्रेषित कर दी जाये।

NOTES

... सहित जिला पीठ विरोधी पक्षकार को भेजेगी। यदि विरोधी पक्षकार प्रयोगशाला के औचित्य पर प्रश्न उठाता है तो जिला पीठ उसकी सुनवाई करेगी।

(iv) यदि विरोधी पक्षकार उसको भेजी गई परिवाद की प्रति की प्राप्ति कर उपभोक्ता द्वारा की गई शिकायत से इन्कार करता है या उसका प्रतिवाद करता है या पीठ द्वारा दिये गये समय के अन्दर कोई जवाब नहीं देता है तो जिला पीठ उपभोक्ता अथवा विरोधी पक्षकार द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य के आधार पर उपभोक्ता का निपटारा करेगा।

शक्तियाँ – जिला पीठ की शक्तियाँ उपभोक्ता विवादों को निपटारे के लिए एक सिविल न्यायालय के समान होंगी। वह प्रतिवादी या साक्षी को हाजिर होने, शपथ लेने के निर्देश दे सकता है। जिला पीठ के समक्ष प्रत्येक कार्यवाही भारतीय दण्ड संहिता की धारा 193 और 221 के अर्थ में न्यायिक कार्यवाही समझी जायेगी और जिला पीठ सिविल न्यायालय समझा जायेगा।

निर्णय – यदि उपर्युक्त कार्यवाही के पश्चात् जिला पीठ इस बात से सन्तुष्ट हो जाता है कि माल या सेवाओं में कोई कमी या त्रुटि है तो वह विरोधी पक्षकार को निम्न आदेश दे सकती है–

(i) माल सम्बन्धी त्रुटि की दशा में

(क) प्रश्नगत माल में से समुचित प्रयोगशाला द्वारा प्रकट की गई त्रुटि को दूर करना;

(ख) माल को उसी प्रकार के नये और त्रुटिहीन माल से बदलना;

(ग) उपभोक्ता द्वारा विक्रेता को अदा की गई कीमत या धनराशि को उपभोक्ता को लौटाना; तथा

(घ) उपभोक्ता (परिवादी) को हुई हानि की क्षतिपूर्ति करना।

(ii) सेवा सम्बन्धी त्रुटियों या कमियों की दशा में –

(क) अनुचित/अवरोधक व्यापार व्यवहार को बन्द कर देने तथा दुबारा न करने के लिए;

(ख) जीवन के लिए संकटमय वस्तुओं की बिक्री रोक देने के लिए;

(ग) विक्रय हेतु भेजी गई संकटमय वस्तुओं को वापस मँगा लेने के लिए; तथा

(घ) पक्षकारों को उचित कीमत प्रदान करने के लिए।

अपील – जिला पीठ के आदेश से पीड़ित पक्षकार आदेश की तारीख से तीस दिन के भीतर एक निर्धारित प्रारूप में राज्य आयोग को अपील कर सकेगा। राज्य आयोग, तीस दिन की अवधि की समाप्ति पर भी, यदि उचित कारण हैं, तो अपील स्वीकार कर सकता है।

(2) राज्य आयोग

(i) **संरचना** – प्रत्येक राज्य में एक राज्य आयोग का गठन किया जायेगा जिसमें –

(क) एक ऐसा व्यक्ति जो किसी, उच्च न्यायालय का न्यायाधीश है या रह चुका है, इसका अध्यक्ष होगा। अध्यक्ष की नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा राज्य के मुख्य न्यायाधीश के परामर्श से की जायेगी।

(ख) दो अन्य सदस्य होंगे, जो योग्य, सत्यनिष्ठा और प्रतिष्ठा पाने वाले व्यक्ति हों और जिन्हें अर्थशास्त्र, विधि, वाणिज्य, लेखाकर्म, उद्योग, लोक कार्य या प्रशासन का पर्याप्त ज्ञान या अनुभव हो। इन सदस्यों में एक सदस्य महिला होगी। ये नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा एक निर्धारित चयन समिति के परामर्श से की जायेगी। चयन समिति में राज्य आयोग का अध्यक्ष, राज्य सरकार के विधि विभाग का सचिव तथा राज्य सरकार के उपभोक्ता कार्य विभाग का प्रभारी सचिव होगा।

(ii) **वेतन व कार्य-काल** – राज्य आयोग के सदस्यों को देय वेतन या मानदेय और अन्य भत्ते तथा उनकी सेवा शर्तें वे होंगी जो सरकार द्वारा निर्धारित की जायें। राज्य आयोग के सदस्यों का कार्य-काल पाँच वर्ष या 65 वर्ष की आयु, जो भी पहले हो, तक होगा और उनकी पुनर्नियुक्ति नहीं होगी।

(iii) **अधिकार** – इस अधिनियम के प्रावधानों के अधीन राज्य आयोग को निम्न अधिकार होंगे –

(अ) ऐसे परिवादों को सुनवाई हेतु स्वीकार करना जहाँ माल और सेवाओं का मूल्य दावा प्रतिकर सहित पाँच लाख रुपये से अधिक परन्तु बीस लाख रुपये से अधिक नहीं है;

(ब) उस राज्य के भीतर किसी जिला पीठ के उद्देश्यों के विरुद्ध अपील स्वीकार करना; तथा

(स) जहाँ राज्य आयोग को यह प्रतीत हो कि किसी जिला पीठ ने ऐसे किसी अधिकार का प्रयोग किया है जो कानूनन उसमें निहित नहीं है या जिला पीठ ने अपने अधिकार का प्रयोग अवैध व अनियमित रूप में किया है तो सम्बन्धित अभिलेखों को मँगाना और उचित आदेश पारित करना।

(iv) **प्रक्रिया** – परिवादों के निपटारों के सम्बन्ध में राज्य आयोग के लिए भी वही प्रक्रिया प्रावधान लागू होंगे जो जिला पीठ पर लागू होते हैं। राज्य आयोग इस प्रक्रिया में थोड़ा बहुत संशोधन कर सकता है।

(v) **अपील** – राज्य आयोग द्वारा किये गये किसी आदेश से पीड़ित पक्षकार, आदेश की तारीख से 30 दिन के अन्दर निर्धारित प्रारूप तथा विधि से राष्ट्रीय आयोग को अपील कर सकता है ;

परन्तु राष्ट्रीय आयोग, यदि पर्याप्त कारण विद्यमान हों, तो उक्त अवधि की समाप्ति के पश्चात् भी अपील ग्रहण कर सकता है।

(3) राष्ट्रीय आयोग

(i) **संरचना** – राष्ट्रीय आयोग में निम्न व्यक्ति होंगे –

(अ) एक ऐसा व्यक्ति जो उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश है या रह चुका है, इसका अध्यक्ष होगा। इसकी नियुक्ति केन्द्रीय सरकार करेगी।

(ब) चार अन्य सदस्य जो योग्यता, सत्यनिष्ठा और प्रतिष्ठा वाले व्यक्ति होंगे और जिनको अर्थशास्त्र विधि, वाणिज्य, लेखाकर्म, उद्योग, लोक कार्य या प्रशासन का पर्याप्त ज्ञान व अनुभव होगा। इन सदस्यों में एक महिला होगी। इन सदस्यों की नियुक्ति एक चयन समिति की सिफारिश पर केन्द्रीय सरकार द्वारा की जायेगी।

चयन समिति तीन व्यक्तियों की होगी जिनमें भारत के मुख्य न्यायाधीश द्वारा नामित उच्चतम न्यायालय का कोई न्यायाधीश भारत सरकार के विधिक कार्य विभाग का सचिव तथा भारत सरकार के उपभोक्ता कार्यों का निष्पादन करने वाले विभाग का सचिव, सम्मिलित होंगे।

(ii) **वेतन व कार्य-काल** – राष्ट्रीय आयोग के सदस्यों को देय वेतन या मानदेय और अन्य भत्ते तथा उनकी सेवा की अन्य शर्तें केन्द्रीय सरकार द्वारा निर्धारित होंगी। राष्ट्रीय आयोग का प्रत्येक सदस्य पाँच वर्ष की अवधि के लिए या 70 वर्ष की आयु जो पहले हो, तक पदासीन रहेगा और पुनर्नियुक्ति नहीं की जा सकेगी।

(iii) **अधिकार** – इस अधिनियम के प्रावधानों के अन्तर्गत राष्ट्रीय आयोग को निम्न अधिकार होंगे–

(अ) ऐसे परिवादों को सुनवाई के लिए ग्रहण करना जहाँ माल या सेवाओं का मूल्य अथवा दावा 20 लाख रुपये से अधिक है।

(ब) किसी राज्य आयोग के आदेशों के विरुद्ध अपील ग्रहण करना।

(स) जहाँ राष्ट्रीय आयोग को यह प्रतीत हो कि राज्य आयोग ने ऐसे किसी अधिकार का प्रयोग किया है जो कानूनन उसमें निहित नहीं है या अपने अधिकारों का अवैध व अनियमित प्रयोग किया है तो सम्बन्धित अभिलेखों को मँगाकर समुचित आदेश पारित करना।

(iv) **प्रक्रिया** – परिवादों के निपटारे हेतु राष्ट्रीय आयोग के लिए भी वही प्रक्रिया निर्धारित की गई है जो जिला पीठ तथा राज्य आयोग के लिए निर्दिष्ट है। वैसे राष्ट्रीय आयोग ऐसी प्रक्रिया का पालन करने के लिए बाध्य है जो केन्द्रीय सरकार द्वारा निर्धारित की जाये।

(v) **अपील** – राष्ट्रीय आयोग के आदेश से पीड़ित व्यक्ति आदेश की तारीख से 30 दिन के भीतर उस आदेश के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील कर सकता है। उच्चतम न्यायालय उक्त तीस दिन की समाप्ति के पश्चात् भी अपील स्वीकार कर सकता है। यदि उक्त अवधि में अपील फाइल न कर पाने के पार्याप्त कारण विद्यमान हैं।

अन्य प्रावधान

(1) **आदेशों का प्रवर्तन** – जिला पीठ, राज्य आयोग या राष्ट्रीय आयोग द्वारा किये गये प्रत्येक आदेश का प्रवर्तन उसी भाँति कराया जायेगा जैसे कि वह किसी न्यायालय द्वारा पारित की गई कोई डिक्री या आदेश हो और इसके निष्पादित करने में पक्षकार की असमर्थता की दशा में इसका परिपालन करवाने हेतु उस न्यायालय में भेजा जायेगा जिसकी सीमाओं में आरोपी पक्षकार आता है अर्थात् :-

(अ) किसी कम्पनी के विरुद्ध आदेश की दशा में उस कम्पनी के पंजीकृत कार्यालय का स्थान या शहर।

(ब) किसी अन्य व्यक्ति की दशा में वह स्थान जहाँ सम्बन्धित व्यक्ति स्वेच्छा से निवास करता है या कारोबार करता है। (धारा 25)

[illegible] जिला पीठ, राज्य आयोग या राष्ट्रीय आयोग यह पाता है कि परिवाद व्यर्थ है तो वह उसे निरस्त कर सकता है तथा परिवादी को आदेश दे सकता है कि वह विरोधी पक्षकार को कोई जो दस हजार रुपये से अधिक न होगी, अदा करें। इससे व्यर्थ परिवादों पर अंकुश लगेगा। **(धारा 26)**

(3) **शास्तियाँ** – यदि कोई व्यापारी या ऐसा व्यक्ति जिसके विरुद्ध परिवाद किया गया है या परिवादी जिला पीठ, राज्य आयोग या राष्ट्रीय आयोग के किसी आदेश का अनुपालन नहीं करता तो वह एक माह से तीन वर्ष तक की सजा अथवा 2000 रु. से 10,000 रु. तक के दण्ड अथवा दोनों से दण्डनीय होगा। **(धारा 27)**

उपभोक्ता के सामान्य अधिकार
(General Rights of Consumer)

उपभोक्ता को विभिन्न अधिकार प्राप्त हैं। इस दृष्टि से अमेरिका के उपभोक्ताओं को अन्य देशों की तुलना में सबसे अधिक व्यापक अधिकार प्राप्त हैं। थोड़ा-सा भी उनके उपभोक्ता का हनन होने पर वह तुरन्त न्यायालय की शरण ले सकते हैं। अतएव वहाँ के उपभोक्ता अपने अधिकारों के प्रति सबसे अधिक जागरूक हैं। अमेरिका के भूतपूर्व राष्ट्रपति **जॉन एफ. कैनेडी व जॉनसन** पहले व्यक्ति थे जिन्होंने उपभोक्ता के अधिकारों को सूचीबद्ध किया। उन्होंने उपभोक्ता के निम्न चार अधिकारों का उल्लेख किया :-

(1) सुरक्षा का अधिकार, (2) चुनाव या पसन्द का अधिकार,

(3) जानने का अधिकार, तथा (4) सुनवाई का अधिकार।

बाद में इन अधिकारों में एक और अर्थात् **पाँचवां अधिकार** जोड़ा गया जो **'मूल्य के अधिकार'** के नाम से जाना जाता है। इन्हीं पाँचों अधिकारों को बाद में अमेरिका के 'उपभोक्ता अधिनियम' में जोड़ा गया।

'उपभोक्ता संघों के अंतर्राष्ट्रीय संगठन' (IOCU) ने इन अधिकारों की सूची में तीन अधिकार और जोड़े हैं। वे हैं :

(i) उपचार का अधिकार, (ii) उपभोक्ता शिक्षा का अधिकार,

(iii) स्वस्थ वातावरण का अधिकार।

इस प्रकार अब अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर उपभोक्ता के आठ अधिकार माने जाते हैं। भारत के **उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986** की प्रारंभिक टिप्पणी तथा इस अधिनियम की धारा 6 में उपभोक्ता के अधिकारों का उल्लेख किया गया है। इन अधिकारों में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मान्य आठ अधिकारों में से सात अधिकार सम्मिलित हैं। आठवाँ अधिकार 'पर्यावरण का अधिकार' हमारे देश के अधिनियम में अभी तक सममिलित नहीं है। किन्तु हम यहाँ उपभोक्ता के सभी आठों अधिकारों का वर्णन कर रहे हैं :

1. **सुरक्षा का अधिकार** (The Right to Safety)- सुरक्षा के अधिकार से आशय ऐसे अधिकार से है जो उपभोक्ता को समस्त ऐसी वस्तुओं के विपणन के लिए सुरक्षा प्रदान करने में सहायक है जो कि उसके स्वास्थ्य एवं जीवन के लिए खतरनाक अथवा हानिकारक सिद्ध हो सकती हैं, जैसे - वस्तुओं में मिलावट एवं खतरनाक रसायन आदि। अमेरिका में उपभोग की वस्तुओं में मिलावट करने वालों को बड़ी सख्त सजा दी जाती है। वहाँ पर यह एक ऐसा गम्भीर अपराध माना जाता है जिसके सम्बन्ध में किसी भी प्रकार का समझौता मान्य नहीं होता है। यदि अपराध किया है तो सजा तो मिलेगी ही।

2. **चयन या पसन्द करने का अधिकार** (The Right to a Choice)- चयन के उपभोक्ता के अधिकार से आशय उपभोक्ता के ऐसे अधिकार से है जिसके अन्तर्गत वह विभिन्न वस्तुओं एवं सेवाओं में से अपनी इच्छा एवं आवश्यकताओं के अनुरूप उपयुक्त वस्तु अथवा सेवा का चयन करने के लिए स्वतन्त्र है। उसे अमुक वस्तु अथवा सेवा ही क्रय करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता है। यह अधिकार उपभोक्ता को उपयुक्त वस्तुएँ अथवा सेवाएँ प्रतियोगी मूल्यों पर प्राप्त करने में सहायता करने के साथ-साथ यह भी विश्वास दिलाता है कि उसे सन्तोषप्रद किस्म एवं सेवा उचित मूल्य पर प्राप्त होगी।

3. **सूचना प्राप्त करने का अधिकार** (The Right to be Informed)- इस अधिकार के अन्तर्गत किसी वस्तु अथवा सेवा क्रय करने से पूर्व उपभोक्ता उसके सम्बन्ध में आवश्यक सूचनाएँ प्राप्त कर सकता है, जैसे - वस्तु की किस्म, स्तर, मूल्य, उपयोग, वजन, नाप-तौल आदि। सूचना प्राप्त करने का उपभोक्ता का अधिकार उसे कपट, मिथ्याकथन एवं भ्रामक सूचनाओं, झूठे एवं मिथ्या विज्ञापनों एवं अन्य असमान व्यवहारों के प्रति सुरक्षा प्रदान करने से सम्बन्धित है।

4. **सुने जाने का** अधिकार (The Right to be Heard)- उपभोक्ता का यह अधिकार उसकी परिवेदनाओं तथा उसकी सुरक्षा एवं हितों के संरक्षण से सम्बन्धित विचारों को सुने जानें से सम्बन्धित है। इसके साथ ही उसका यह

NOTES

अधिकार उन्हें विश्वास दिलाता है कि इस सम्बन्ध में राजकीय नीतियों के निर्धारण में उपभोक्ताओं के संरक्षण सम्बन्धी हितों एवं विचारों का पूर्ण ध्यान रखा जायेगा।

5. **उपचार का अधिकार** (The Right to be Redressed)- उपभोक्ता का यह अधिकार उसे अपनी परिवेदनाओं एवं शिकायतों का उचित एवं न्यायपूर्ण उपचार अथवा समाधान प्रदान करता है। इस अधिकार के अन्तर्गत वह न्यायालय की शरण ले सकता है। इस अधिकार से उपभोक्ताओं को व्यवसायी के अनुचित एवं अनैतिक व्यवहार अथवा अनुचित एवं अनैतिक शोषण से मुक्ति मिल सकती है।

6. **उपभोक्ता शिक्षा का अधिकार** (The Right to Consumer Education)- यह अधिकार उपभोक्ता को शोषण से मुक्ति दिलाने तथा हितों की रक्षा हेतु शिक्षा प्राप्त करने से सम्बन्धित है। उदाहरण के लिए, जीरा, धनिया, मिर्च आदि मसालों में मिलावट की जाँच कैसे करें? कम नाप-तौल की पकड़ जैसे करें? इत्यादि के सम्बन्ध में यह शिक्षा उपभोक्ताओं को सरकारी तथा गैर-सरकारी प्रचार माध्यमों द्वारा दी जा सकती है।

7. **मूल्य अथवा प्रतिफल का अधिकार** (The Right to Value of Consideration)- उपभोक्ता का यह अधिकार उसे उसके द्वारा चुकाये गये धन वस्तु विक्रय के दौरान अथवा विज्ञापन में किये गये वायदों एवं जगाई गई आशाओं को पूरा करने का अधिकार प्रदान करता है।

8. **स्वस्थ या स्वच्छ वातावरण का अधिकार** (The Right to Healthy Environment)- उपभोक्ताओं को भौतिक स्वच्छ वातावरण प्राप्त करने के अधिकार को स्वच्छ वातावरण का अधिकार कहते हैं। उदाहरण के लिए, विभिन्न प्रकार के प्रदूषणों (जैसे - वायु प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, जल प्रदूषण आदि) एवं उनके दुष्प्रभावों की रोकथाम सम्बन्धी अधिकार। आजकल उपभोक्ताओं के इस अधिकार की सुरक्षा के लिए राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न कदमों के उठाये जाने पर विशेष बल दिया जा रहा है।

भारत में उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम की आवश्यकता अथवा महत्व
(Need or Importance of Consumers Protection Act in India)

यदि देखा जाये तो उपभोक्ताओं के लिए उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम की आवश्यकता उस समय अनुभव हुई, जबकि एक ओर तो उपभोक्ताओं को सही मूल्य पर सही मात्रा में, सही किस्म की एवं सही समय पर सही वस्तुएँ अथवा सेवाएँ उपलब्ध होने में कठिनाई होने लगी तथा दूसरी ओर उत्पादक एवं वितरण श्रृंखलाओं की उत्पाद के विषय में भ्रामक सूचनाओं तथा विभिन्न प्रकार से उपभोक्ताओं को ठगे जाने की विधियों द्वारा उपभोक्ताओं के शोषण करने की प्रवृत्ति में वृद्धि होने लगी। अतएव उपभोक्ताओं ने उपरोक्त शोषण से बचने के लिए उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम की माँग की।

जहाँ तक भारत में उपभोक्ताओं के संरक्षण हेतु उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम की आवश्यकता अथवा महत्ता का प्रश्न है तो भारतीय उपभोक्ता की बढ़ती क्रय क्षमता का ही परिणाम है कि उपभोक्ता वस्तु का उपयोग करने वाले देशों की बिरादरी में आज भारत का अमरीका के बाद दूसरा स्थान है। जिस गति से भारतीय उपभोक्ता बाजार दुनिया का सबसे बड़ा उपभोक्ता बाजार की स्थिति प्राप्त करने जा रहा है, उस अनुपात में उपभोक्ताओं को प्राप्त सुविधाएँ नगण्य हैं। अमरीका में उपभोक्ता की हर तकलीफ का पूरा-पूरा ध्यान रखा जाता है। उन्हें हर प्रकार की सुविधाएँ दी जाती हैं। अधिक उत्पादन एवं उचित वितरण ही वहाँ के जन जीवन की धुरी है। व्यापारी के हर योग्य उत्पादन को उपभोक्ता एवं उपभोक्ता को प्रत्येक उचित वस्तु किफायती दामों पर मिल सके इस बात का पर्याप्त ध्यान दिया जाता है।

भारत एक विशाल देश है जिसका जनसंख्या की दृष्टि से चीन के बाद दूसरा स्थान है हमारे देश की जनसंख्या मई, 2000 में 100 करोड़ के अंक को पार कर गयी। भारत के अधिकांश उपभोक्ता गरीब, असहाय, अशिक्षित एवं अज्ञानी हैं। भारत में अधिकांश वस्तुओं में '**विक्रेता का बाजार**' है। यहाँ के अधिकांश विकेता भ्रष्ट, बेईमान, धोखेबाज एवं मुनाफाखोरी करने वाले हैं। हमारे यहाँ दैनिक जीवन तक में प्रयोग में आने वाली वस्तुओं में मिलावट, घटिया किस्म की दवाएँ एवं बिजली के उपकरण और खतरनाक रसायन से उपभोक्ताओं के जीवन को खतरा दिनों-दिन बढ़ता जा रहा है। उदाहरण के लिए, पिसे धनिये में 'घोड़े की लीद' मिलाई जाती है। पिसों मिर्च में 'लाल पिसा पत्थर' या 'लाल पिसी बजरी' मिलाई जाती है, तथाकथित शक्ति प्रदान करने वाले अंग्रेजी दवा के टॉनिकों में साधारण पानी में रंग व चीनी का मिश्रण मिलता है, असली घी में मृत पशु की चर्बी मिलाई जाती है, अपार शक्तिवर्द्धक च्यवनप्राश (अवलेह स्पेशल) में आँवले के गूदे के स्थान पर सकरकन्दी का गूदा मिलाया जाता है, दालों में छोटे-छोटे कंकड़ व बहुत निम्न श्रेणी की मौत का पैगाम देने वाली तथाकथित खेसरी दाल के दाने मिलाये जाते हैं। उपभोक्ता की वाजिब शिकायतों को अधिकारीगण जेब में रखकर बैठ जाते हैं। भारत में लैटिन सूत्र 'केविट एम्टर' (Caveat emptor) यानी 'क्रेता सावधान रहें' को माल वस्तु संव्यवहार में ज्यों का ज्यों स्वीकार कर लिया गया है। बेचारा आम भारतीय उपभोक्ता इतना अकेला, असहाय, असंगठित, अशिक्षित, अज्ञानी, अनुभवहीन तथ निहत्था होता है कि बेईमान उत्पादक

NOTES

वापस माँगने पर दुकानदार ठेंगा दिखा देता है।

कहने को तो भारत में सन् 1930 से लेकर अब तक खाद्य पदार्थों में अपमिश्रण अधिनियम, आवश्यक वस्तु अधिनियम और एकाधिकार नियन्त्रक जैसे लगभग दो दर्जन कानून पारित किये जा चुके हैं परन्तु पेचीदगियों, जटिलता, खर्चीलापन तथा विलम्ब के कारण उपभोक्ता वर्ग को कोई राहत नहीं मिल पाई है। व्यापारी और उपभोक्ता के मध्य संव्यवहार को निर्दोष व्यापारिक व्यवहार की संज्ञा नहीं दी जा सकती क्योंकि व्यापारी वर्ग सजग, संगठित तथा जागरूक होता है, जबकि भारत का उपभोक्ता कम शिक्षित या अशिक्षित, असंगठित, लाचार, गरीब, असहाय तथा अनुभवहीन होता है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आज समूचे विश्व में तथा विशेषतः भारत के सन्दर्भ में उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम की सर्वाधिक आवश्यकता है। यदि देखा जाय तो उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम की आवश्यकता अनेक कारणों से होती है जिनमें से कुछ प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं :

1. **सामाजिक उत्तरदायित्व के प्रति चेतना जगाने के लिए** - आजकल सभी स्तरों पर व्यवसायियों में अपने सामाजिक उत्तरदायित्वों के प्रति चेतना जागृत कराने के प्रयास किये जा रहे हैं। इसका कारण यह है कि येन-केन तरीकों से अधिकाधिक लाभ कमाने की लालसा उन्हें सामाजिक उत्तरदायित्व के प्रति उदासीन बना रही है। इस दृष्टि से भी उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम की आवश्यकता अनुभव की गयी है।

2. **उपभोक्ताओं की व्यवसायियों की शोषण करने की प्रवृत्ति से रक्षा करने के लिए** - आज व्यवसायियों ने उपभोक्ताओं का शोषण करने के लिए तरह-तरह के तरीके निकाले हुए हैं, जैसे - कम तोलना, उपभोग की वस्तुओं में मिलावट करना, कृत्रिम कमी उत्पन्न कर देना, काला बाजारी करना आदि। भारत जैसे देश में जहाँ का उपभोक्ता अपेक्षाकृत अधिक असंगठित, अनपढ़ या कम पढ़ा-लिखा, लाचार, निहत्था एवं अपने अधिकारों के प्रति कम जागरूक है, आसानी से व्यवसायियों की शोषण की प्रवृत्ति का शिकार बन जाता है। उसे व्यवसायियों की इस दूषित शोषण करने की मनोवृत्ति से बचाने के लिए भी उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम की नितान्त आवश्यकता है।

3. **उपभोक्ताओं को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक करने के लिए** - आजकल का सामान्य उपभोक्ता अपने अधिकारों के प्रति उदासीन है। या तो उसे अपने अधिकारों के प्रति जानकारी नहीं है अथवा यदि उसे थोड़ी-सी जानकारी है भी, तो वह विभिन्न कारणों से (जैसे - दयनीय आर्थिक स्थिति) इतना अधिक निराश हो चुका है कि वह कुछ करने के लिए अपने आपको पूर्णतः अकेला, असहाय एवं निष्क्रिय अनुभव करता है। इस दृष्टि से भी उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम की आवश्यकता है।

4. **आवश्यक सूचनाएँ उपलब्ध कराने के लिए** - आज सामान्य उपभोक्ता को उपभोग वस्तुओं की गुणवत्ता, टिकाऊपन, शुद्धता, उपयोगिता, उपयोग विधि, तुलनात्मक मूल्य-स्तर आदि के बारे में जानकारी कराना परम आवश्यक है ताकि वह उक्त जानकारी के आधार पर सही समय पर सही वस्तु का चयन कर सके। सामान्य उपभोक्ता के इस मूलभूत अधिकार की क्रियान्विति के लिए भी उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम की आवश्यकता है।

5. **परिवेदनाओं तथा शिकायतों का यथाशीघ्र निपटारा करने के लिए** - यदि उपभोक्ता व्यवसायियों के द्वारा किये जाने वाले शोषण का शिकार हो जाता है तो वह उसकी शिकायत करे तो किससे? क्या उसकी परिवेदना एवं शिकायत की ओर किसी के द्वारा यथाशीघ्र ध्यान दिया जायेगा? क्या उसके द्वारा की गई शिकायत की सुनवाई में न्यायालयों में चल रहे अन्य विवादों की तरह वर्षों नहीं लगेंगे? यह सब ऐसे प्रश्न हैं जिनकी ओर ध्यान देना परम आवश्यक है। उपभोक्ताओं को शिकायतें करने का न केवल मूलभूत अधिकार प्राप्त है वरन् उनकी शिकायतों का निपटारा यथाशीघ्र करने की भी व्यवस्था होनी चाहिए। इस बात को ध्यान में रखते हुए तथा की गई शिकायतों का शीघ्र तथा बहुत कम खर्च पर निपटारा करने के उद्देश्य से ही उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 (जिसका आगे विस्तृत विवेचन किया गया है) के अन्तर्गत 'जिला फोरम' की स्थापना की गई है जिसमें उपभोक्ता द्वारा की गई शिकायतों का निपटारा तीन महीनों में होना आवश्यक है।

6. **व्यवसाय की एकाधिकारी मनोवृत्ति से मुक्ति प्रदान करने के लिए** - आजकल व्यवसायी अनाधिकृत संयोजनों के द्वारा वस्तुओं के उत्पादन तथा वितरण पर एकाधिकार स्थापित कर लेते हैं। इसमें उपभोक्ताओं का शोषण होता है। उन्हें ऐसे व्यवसायियों द्वारा निर्धारित एकाधिकारी मूल्यों पर वस्तुएँ खरीदने के लिए बाध्य होना पड़ता है और इस प्रकार असंगठित उपभोक्ताओं को ऐसे एकाधिकारी व्यवसायिक संगठनों की शोषण रूपी मनोवृत्ति का शिकार होना पड़ता है। व्यवसायियों की इस अनुचित एकाधिकारी मनोवृत्ति का शिकार होने से उपभोक्ताओं को बचाने के लिए भी उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम की आवश्यकता है।

7. **प्रदूषण से सुरक्षा प्रदान करने के लिए** - आज प्रदूषण की समस्या चाहे वह जल प्रदूषण हो, वायु प्रदूषण हो अथवा ध्वनि प्रदूषण, दिनों-दिन गम्भीर रूप धारण करती जा रही है। आज के उपभोक्ता को शुद्ध उपभोग्य वस्तुओं का तो कहना ही क्या, उसे उपभोग करने के लिए पर्याप्त शुद्ध जल एवं वायु तक नहीं मिल पाती है जिसके कारण उसका सामान्य जीवन नारकीय बन गया है। वह तरह-तरह की बीमारियों का शिकार हो रहा है। प्रदूषण की इस दूषित बीमारी के प्रति उपभोक्ता को सुरक्षा प्रदान करने के लिए भी उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम की आवश्यकता है।

8. **मानवीय कल्याण के लिए** - आज विश्व का प्रत्येक मानव पहले उपभोक्ता है और बाद में कोई और। हम सभी किसी न किसी रूप में उपभोक्ता ही तो हैं। इसमें स्वयं व्यवसायी भी सम्मिलित हैं। मानव कल्याण के लिए यह परम आवश्यक है कि सभी मनुष्यों को उपभोग के लिए पर्याप्त मात्रा में सस्ती, सुन्दर, शुद्ध एवं सही गुणवत्ता वाली वस्तुएँ उपलब्ध हों। इस दृष्टि से भी उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम आवश्यक है। ऐसा करने से मानवीय स्वास्थ्य में भी सुधार होगा।

9. **अनुचित व्यापारिक पद्धति द्वारा किये जाने वाले शोषण से मुक्ति दिलाने के लिए** - प्रायः यह देखने में आता है कि व्यवसायी अपनी अधिकतम लाभ कमाने की लालसा की सन्तुष्टि करने के लिए विभिन्न प्रकार की अनुचित व्यापारिक पद्धतियों का उपयोग करता है, जैसे - कम तोलना, कम नापना, भ्रामक विज्ञापन करना, काला बाजारी करना, नकली पैकिंग करना, मिलावट करना आदि। व्यवसायियों की इन अनुचित पद्धतियों के शोषण से उपभोक्ताओं को मुक्ति प्रदान करने के लिए भी उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम आवश्यक है।

10. **अन्य कारण** - (i) निर्माताओं एवं उत्पादकों को उत्पाद की गुणवत्ता के प्रति जागरूक करने के लिए; (ii) उपभोक्ताओं के उपभोग के स्तर को ऊंचा उठाने के लिए; (iii) शुद्ध एवं गुणवत्ता वाली वस्तुओं के निर्माण एवं उत्पादन को प्रोत्साहित करने के लिए; (iv) निर्यातों में वृद्धि करने के लिए; (v) भ्रष्ट एवं बेईमान उत्पादकों, निर्माताओं एवं व्यवसायियों के ऊपर से पर्दा उठाने के लिए; (vi) उपभोक्ता चेतना में वृद्धि करने के लिए; (vii) वितरण प्रणाली के दोषों को दूर करने एवं उसे अधिक सुदृढ़ बनाने के लिए; (viii) उपभोक्ताओं के जीवन-स्तर को ऊंचा उठाने के लिए; (ix) उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं को समझने के लिए; (x) सरकार को उपभोक्ताओं के प्रति जागरूक बनाये रखने के लिए; तथा (xi) उपभोक्ताओं को मानसिक तनाव से मुक्ति प्रदान करने के लिए आदि।

अपील की सुनवाई
(Hearing of Appeal)

1. **याचिकाकर्ता द्वारा 'अपील' करना** (Act for Appeal)- ऐसे समस्त उपभोक्ता, जो कि राज्य आयोग के निर्णय से संतुष्ट नहीं होते, उन्हें अपील करने के लिए, एक 'स्मरण-पत्र' (Memorandum) जो कि राष्ट्रीय आयोग के कार्यालय से प्राप्त होता है, को भर कर व्यक्तिशः या डाक द्वारा भेजा जाता है। [नियम 15(1)]

2. **स्मरण-पत्र का प्रारूप** (Form of Memorandum)- यह प्रपत्र, विभिन्न शीर्षकों में बंटा हुआ होता है, जिनमें अपील को आधारों का उल्लेख होता है। [नियम 15(2)]

3. **निर्णय की प्रति संलग्न करना** (Inclusion of the copy of order)- स्मरण-पत्र के साथ, वह प्रतिलिपि भी संलग्न की जाएगी जो कि निर्णय के आदेश के रूप में (राज्य आयोग द्वारा अवार्ड के रूप में) निर्गमित/प्रस्तुत की गई थी ओर जिससे उपभोक्ता संतुष्ट नहीं था। [नियम 15(3)]

4. **साक्ष्य/प्रमाण प्रस्तुत करना** (Presentation of Evidence)- उपभोक्ता द्वारा, अपील क्यों की जा रही है, इस तथ्य की पुष्टि निमित्त, विभिन्न ऐसे साक्ष्य भी प्रस्तुत करने पड़ेंगे जिससे कि अपील का औचित्य सिद्ध हो सके। [नियम 15(3)]

5. **निर्धारित अवधि की समाप्ति के पश्चात् अपील** (Appeal after the 'Prescribe Time')- राज्य आयोग द्वारा दिए गए निर्णय के पश्चात् यदि 30 दिन के भीतर भी उपभोक्ता द्वारा अपील नहीं की जाती है तो इन दिनों के पश्चात् उसे इस आशय का शपथ-पत्र (Affidavit) भी प्रस्तुत करना होगा कि जिससे राष्ट्रीय आयोग, अपील पर संतुष्ट होकर, उसे तथ्यों के आधार पर स्वीकार कर सके। [नियम 15(4)]

6. **प्रतियों की संख्या** (Number of copies)- असंतुष्ट उपभोक्ता द्वारा अपील करते समय, स्मरण की छः प्रतिलिपियाँ संलग्न करना अनिवार्य होता है। [नियम 15(5)]

7. **सुनवाई पर उपस्थिति** (Presentment on Hearing)- प्रत्येक अपीलार्थी या उसके एजेण्ट का अपील की बहस के समय उपस्थितित होना अनिवार्य है, अन्यथा राष्ट्रीय आयोग, ऐसे पक्षकारों की अनुपस्थिति की दशा में, अपील को निरस्त करने (Cancel) का अधिकार रखता है। यदि बचाव-पक्ष (Defendant) का कोई पक्षकार/एजेण्ट, सुनवाई के समय उपस्थित नहीं होता है तो आयोग एक पक्षीय निर्णय दे सकता है। [नियम 15(6)]

भी असंतुष्ट उपभोक्ता उन साक्ष्यों पर बहस नहीं कर सकेगा जो कि स्मरण-पक्ष में, पूर्व में दिए जा चुके हैं। परन्तु आयोग को यदि ऐसा प्रतीत होता है कि निर्णय में उक्त साक्ष्यों के अतिरिक्त अन्य साक्ष्य भी सहायता दे सकते हैं तो वह अतिरिक्त प्रमाणों/साक्ष्यों को भी स्वीकार कर सकता है। [नियम 15(7)]

NOTES

9. अपील पर निर्णय का स्थगन (Postponement on Appeal)- राष्ट्रीय आयोग, जहाँ तक संभव होगा, नियमानुसार, अपील पर 90 दिन के भीतर निर्णय प्रतिपादित करेगा परन्तु एक बार के लिए निर्णय को आगामी तिथि तक के लिए आयोग द्वारा स्थगित किया जा सकता है। [नियम 15(8)]

10. आदेश पर हस्ताक्षर एवं संवहन (Signatur and Communication)- राष्ट्रीय आयोग द्वारा अपील पर जो भी निर्णय दिया जाएगा, उस पर आयोग के सभापति सहित सभी सदस्यों के हस्ताक्षर होंगे एवं उस आदेश से संबंधित समस्त पक्षकारों को 'अवार्ड' (निर्णय) की प्रतिलिपियाँ निःशुल्क वितरित की जाएगी।

राष्ट्रीय आयोग (The National Commission)- भारतवर्ष में, उपभोक्ताओं के विवादों को हल करने वाली, यह एक स्वतंत्र एवं वैधानिक संस्था है। इसे राष्ट्रीय उपभोक्ता विवाद निवारण आयोग (National Consumer Disputes Redressal Commission) भी कहा जाता है।

1. **स्थापना एवं गठन** (Establishment and Composition)- उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 की [धारा 9(c)] के अंतर्गत, केन्द्रीय सरकार राजपत्र (Gazettee) में अधिसूचना (Notification) जारी करके, इस आयोग की स्थापना कर सकती है। वर्तमान में, इस आयोग की स्थापना, नई दिल्ली में कर दी गई है।

राष्ट्रीय आयोग में कुल पाँच सदस्य होते हैं, जिनमें एक सभापति (Chairman) तथा चार अन्य सदस्य होते हैं। इनकी योग्यताएँ इस प्रकार से अधिसूचित की गई हैं-

(i) **सभापति** (President)- भारत के उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश से परामर्श के पश्चात् केन्द्रीय सरकार द्वारा ऐसे व्यक्ति की नियुक्ति सभापति के पद पर की जाती है जो कि उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश हो अथवा रह चुका हो।

(ii) **चार सदस्य** (Four Members)- इन सदस्यों में एक महिला सदस्य, अनिवार्य रूप से होगी तथा ये सभी सदस्य पर्याप्त योग्यताधारी, ख्याति प्राप्त, अनुभवी, आर्थिक, वाणिज्यिक, लेखाकर्म, कानून तथा लोक प्रशासन से संबंधित समस्याओं का निवारण करने में निपुण व्यक्ति होने आवश्यक हैं।

उपरोक्त चारों सदस्यों की नियुक्ति चयन समिति की सिफारिशों के आधार पर की जाती है।

2. **चयन समिति का गठन** (Composition of Selection Committee)- राष्ट्रीय आयोग में सदस्यों का चयन करने के लिए, उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश द्वारा, उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को ही, चयन समिति का अध्यक्ष नियुक्त किया जाता है। दो अन्य सदस्यों का चयन भारत सरकार के विधि-विभाग (Law Department) तथा उपभोक्ता-विभाग के सचिवों के नामांकन के रूप में किया जाता है।

3. **वेतन तथा अन्य भत्ते** (Salaries and Allowances)- राष्ट्रीय आयोग के सदस्यों का वेतन, भत्ते तथा सेवा की समस्त शर्तें, केन्द्रीय सरकार द्वारा ही निर्धारित की जाती हैं। [धारा 20(2)]

4. **सदस्यों का कार्यकाल** (Term)- इस आयोग के प्रत्येक सदस्य का कार्यकाल अधिकतम पाँच वर्ष या सत्तर वर्ष की आयु तक, जो भी पहले हो, तक ही रहता है। [धारा 20(3)]

5. **क्षेत्राधिकार** (Jurisdiction)- यह आयोग, केवल उन दावों की सुनवाई करता है-

(i) जिनमें वस्तुओं, सेवाओं अथवा सेवापूर्ति की राशि 20 लाख रुपए से अधिक होती है,

(ii) राज्य-आयोग के निर्णय के विरुद्ध की गई अपील कर पुनर्विचार करके निर्णय देता है, तथा

(iii) राज्य आयोग के द्वारा, क्षेत्राधिकार का पालन नहीं किया जाता है अथवा कोई असंविधानिक कार्य क्रिया किया जाता है तो ऐसे कार्यों के मामले में यह रिकार्ड माँग करता है। [धारा 21]

6. **अधिकार/शक्तियाँ** (Powers)- राष्ट्रीय आयोग की जनपद न्यायालय (धारा 13) की तथा आदेश प्रसारित करने की समस्त शक्तियाँ (धारा 14 (1) तथा धारा 22) प्राप्त हैं। इन शक्तियों के आधार पर, यह आयोग किसी भी गवाह को 'बुलावा-पत्र' (Summon) भेजकर बुलवा सकता है, शपथ ले सकता है तथा साक्ष्य/प्रमाण प्रस्तुत करने के लिये आदेश दे सकता है और उनके आधार पर 'निर्णय' प्रतिपादित कर सकता है। [धारा 22(a)]

7. **कार्य-विधि** (Procedure)- राष्ट्रीय आयोग, केन्द्रीय सरकार द्वारा बनाए गए नियमों के अनुरूप, शिकायतों का समाधान करने की प्रक्रिया को अपनाता है। (धारा 22)

8. **उच्चतम न्यायालय से अपील** (Appeal to Supreme Court)- यदि कोई उपभोक्ता, राष्ट्रीय आयोग द्वारा प्रतिपादित निर्णय से संतुष्ट नहीं होता है तो वह निर्णय की तिथि से 30 दिन के भीतर उच्चतम न्यायालय में अपील कर सकता है। यदि उच्चतम न्यायालय, इस अवधि के पश्चात् अपील करने के कारणों से संतुष्ट हो जाता है, तो वह अपील को स्वीकार कर सकता है। (धारा 23)

शिकायत निवारण की प्रकिया

उपभोक्ता संरक्षण नियम, 1987 के अनुरूप, केन्द्रीय सरकार के द्वारा राष्ट्रीय आयोग के लिए कुछ ऐसे नियमों का प्रतिपादन किया गया है कि अनेक आधार पर यह आयोग शिकायतों का निवारण कर सकता है-

1. **शिकायतों का प्रस्तुतीकरण** (Presentation of Complaints)- नियम 14 (1) में यह स्पष्ट किया गया है कि शिकायतकर्त्ता स्वयं या ऐजण्ट के माध्यम से शिकायत प्रस्तुत कर सकता है। प्रार्थना-पत्र में शिकायतकर्त्ता का नाम, पता, विवरण, विरोधी पक्षकार का नाम, पता, विवरण, शिकायत से संबंधित विभिन्न तथ्य, आरोपों को पुष्ट करने वाले तथ्यों/साक्ष्यों का सम्पूर्ण विवरण प्रस्तुत किया जाना आवश्यक होता है।

2. **निवारण प्रक्रिया** (Disposal Process)- राष्ट्रीय आयोग द्वारा शिकायत निवारण के लिए उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 की धारा 13(1) एवं 13(2) के अंतर्गत, जिला मंच द्वारा अपनाई जाने वाली प्रक्रिया को ही आधार माना गया है। [धारा 14 (2)]

3. **सुनवाई की तिथि पर उपस्थिति** (Presence at the Time of Hearing)- आयोग के समक्ष अपील करने वाले प्रत्येक पक्षकार/एजेण्ट का यह कर्त्तव्य निर्धारित किया गया है कि वह सुनवाई की तिथि पर आयोग के समक्ष उपस्थित हो अन्यथा, किसी भी पक्ष के अनुपस्थित रहने पर, राष्ट्रीय आयोग मुकद्दमे के गुण-दोषों के आधार पर एकपक्षीय 'निर्णय' की घोषणा कर सकता है। [धारा (4)]

4. **निर्णय का स्थगन एवं समयावधि** (Postponement and Term of Decision/Award)- नियम 14 (4) में, उक्त तथ्यों के बारे में यह स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया गया है कि यदि शिकायत की वस्तु की जाँच अथवा विश्लेषण की आवश्यकता नहीं है तो राष्ट्रीय आयोग 90 दिन के भीतर निर्णय प्रस्तुत करेगा परन्तु, परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, यदि आयोग उचित समझता है तो वह निर्णय को आगामी किसी भी तिथि के लिए स्थगित कर सकता है।

5. **आदेश प्रसारित करना** (To Communicate the Order)- सन् 1993 में किए गए एक संशोधन के अनुरूप, जब राष्ट्रीय आयोग सुनवाई पूर्ण होने के पश्चात् शिकायत में लगाए गए आरोपों से संतुष्ट हो जाता है तो वह विरोधी पक्षकार को यह आदेश प्रदान कर सकता है कि-

(i) वह माल के उन दोषों को दूर करे जो कि प्रयोगशाला में जाँच के दौरान पाए गए थे,

(ii) शिकायतकर्त्ता द्वारा चुकाए गए मूल्य का वापस लौटाए,

(iii) उपभोक्ता को, स्वयं विरोधी पक्ष की लापरवाही से हुई क्षति की पूर्ति करे,

(iv) अनुचित व्यापार-व्यवहार नहीं करे, तथा

(v) भविष्य में खतरनाक माल को बेचने का प्रस्ताव नहीं करे। [नियम 14 (1) संशोधित]

6. **उच्चतम न्यायालय में अपील** (Appeal in Supreme Court)- उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 की धारा 23 में इस तथ्य की पुष्टि की गई है कि पीड़ित पक्षकार, राष्ट्रीय आयोग के आदेश के विरुद्ध 30 दिन के भीतर उच्चतम न्यायालय में अपील कर सकता है या उच्चतम न्यायालय द्वारा बढ़ाई गई अवधि में अपील कर सकता है।

तुलनात्मक-तथ्यों का विश्लेषण (Comparative Study of Facts)- इस अधिनियम में, उपभोक्ताओं की शिकायतों के निवारण के लिए, जिस मशीनरी का गठन किया गया है, उनकी तुलना निम्न स्तर के आधार पर नहीं की जा सकती है।

उपभोक्ता संरक्षण मशीनरी की समान कार्यशीलता- 1. धारा 24 में यह स्पष्ट किया गया है कि यदि कोई पक्षकार अपील नहीं करता है तो जिला मंच, राज्य आयोग या राष्ट्रीय आयोग द्वारा दिया गया निर्णय, अन्तिम आदेश के रूप में माना जाएगा और पक्षकार, उसे मानने के लिए बाध्य होंगे।

2. धारा 25 इस तथ्य की पुष्टि करती है कि जिला मंच, राज्य आयोग, राष्ट्रीय आयोग द्वारा किए गए प्रत्येक आदेश को न्यायालय के आदेश की भाँति ही माना जाएगा।

3. धारा 26 के अनुसार, यदि कोई व्यक्ति झूठी शिकायत करता है तो तथ्यानुसार, गलत पाए जाने पर, जिला मंच, राज्य आयोग तथा राष्ट्रीय आयोग, इस शिकायत को रद्द कर सकता है।

नहीं करते हैं तो उसके लिए, निम्न प्रकार से दंड की व्यवस्था की जा सकती है-

(i) उसे 1 माह से लेकर 3 वर्ष तक का कारावास अथवा

(ii) 2000 रु. से 10000 रु. तक का अर्थदण्ड अथवा

(iii) दोनों ही दण्ड दिए जा सकते हैं।

NOTES

प्रश्न

1. उपभोक्ता संरक्षण से आपका क्या आशय है? उपभोक्ता के प्रमुख अधिकारों का वर्णन कीजिए।
2. उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 क्या है? इसके प्रमुख प्रावधानों का वर्णन कीजिए।
3. उपभोक्ता विवादों के निवारण के लिए उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम में दी गई व्यवस्था का संक्षेप में वर्णन कीजिये।
4. उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 के अन्तर्गत जिला मंच का गठन किस प्रकार किया जाता है? जिला मंच द्वारा उपभोक्ता विवादों को निपटाने के लिए अपनायी जाने वाली प्रक्रिया का संक्षेप में वर्णन कीजिये।
5. उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम के अन्तर्गत केन्द्रीय संरक्षण परिषद् सम्बन्धी प्रावधानों का संक्षेप में वर्णन कीजिये।
6. उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 के अन्तर्गत जिला मंच, राज्य आयोग तथा राष्ट्रीय आयोग से सम्बन्धित प्रमुख प्रावधानों का वर्णन कीजिये।
7. उपभोक्ता विवाद अभिकरण क्या हैं? एक जिला मंच क्या है? विवेचना कीजिये।
8. उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम के अन्तर्गत राष्ट्रीय आयोग क्या है? इसके गठन, कार्यक्षेत्र एवं शिकायतों के निवारण की कार्यविधि का वर्णन कीजिए।
9. उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 के अन्तर्गत जिला मंच का गठन किस प्रकार किया जाता है? जिला मंच द्वारा उपभोक्ता विवादों को निपटाने के लिए अपनायी जाने वाली प्रक्रिया का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
10. राज्य आयोग के गठन, क्षेत्र तथा विवाद के निपटारे के सम्बन्ध में अपनायी जाने वाली प्रक्रिया का संक्षेप में वर्णन करो।

अपनी प्रगति की जाँच करें
Test your Progress

NOTES

16

विदेशी मुद्रा विनिमय प्रबन्धन अधिनियम, 1999 (फेमा)

(FOREIGN EXCHANGE MANAGEMENT ACT, 1999 (FEMA))

विदेशी मुद्रा प्रबन्धन अधिनियम, 1999 सम्पूर्ण भारत पर लागू होगा। यह अधिनियम भारत के अतिरिक्त, विदेशों में स्थित उन सभी शाखाओं, कार्यालयों तथा अभिकर्त्ताओं पर भी लागू होगा यदि वे ऐसे व्यक्ति के स्वामित्व या नियन्त्रण में है जो भारत के निवासी हैं। यह अधिनियम उस तिथि से प्रभावी होगा जिसे केन्द्रीय सरकार गजट द्वारा अधिसूचित करे। यह अधिनियम 1 जून, 2000 से भारत में प्रभावी हो गया है।

प्रमुख विशेषतायें
(Main Features)

विदेशी विनियम प्रबन्धन अधिनियम मुद्रा, 1999 की मुख्य विशेषतायें निम्नलिखित है -

(1) **संक्षिप्त नाम** - इस अधिनियम को विदेशी मुद्रा विनिमय प्रबंधन अधिनियम 1999 कहा जा सकता है।

[धारा 1 (i)]

(2) **प्रारम्भ** - यह अधिनियम 1 जून, 2000 से लागू हुआ है।

(3) **क्षेत्र या विस्तार** - यह अधिनियम सम्पूर्ण भारत में लागू होता है।

(4) इस अधिनियम में कुल 49 धाराएँ हैं।

(5) यह अधिनियम भारत के बाहर स्थित शाखाओं कार्यालयों तथा एजेन्सियों पर लागू होता है।

अधिनियम के उद्देश्य

विदेशी मुद्रा विनिमय प्रबन्धन अधिनियम, 2000 के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं -

(1) भारत में विदेशी पूंजी की प्रविष्टि का नियमन करना।

(2) विदेशी विनिमय के क्रय विक्रय पर नियंत्रण रखना।

(3) विदेशी विनिमय दर में स्थिरता लाना।

(4) भारत के विदेशी विनिमय बाजार को सुदृढ़ विकसित रखना।

(5) भुगतान असन्तुलन को दूर करने में सहायता करना।

(6) विदेशी व्यापार को प्रोत्साहन देना।

(7) देश के विनिमय संसाधनों का अनुरक्षण करना।

(8) विदेशी जिलों में होने वाली हेरा-फेरी को रोकना।

आधारभूत परिभाषाएँ (Basic Definitions)

विदेशी मुद्रा विनिमय प्रबंधन अधिनियम, 1999 में कुछ शब्दों को परिभाषित किया गया है। इनमें प्रमुख परिभाषाएँ निम्न हैं –

1. **व्यक्ति** (Person) – व्यक्ति से आशय है :

(i) एक व्यक्ति (ii) एक हिन्दू अविभाजित परिवार

(iii) एक कम्पनी (iv) एक फर्म

(v) व्यक्तियों का एक संघ या एक संस्था चाहे वह समामेलित हो या नहीं

(vi) प्रत्येक कृत्रिम न्यायिक व्यक्ति जो उपर्युक्त में शामिल न हो।

(vii) ऐसे व्यक्ति के स्वामित्व या नियन्त्रण में कोई एजेन्सी, कार्यालय या शाखा।

2. अधिकृत व्यक्ति (Authorised Person) – 'अधिकृत व्यक्ति' से आशय अधिकृत डीलर, मुद्रा परिवर्तक (Money changer), तटीय (off-shore) बैंकिंग इकाई अथवा अन्य उस व्यक्ति से है जिसे कुछ समय के लिए विदेशी मुद्रा या विदेशी प्रतिभूतियों में लेन-देन करने हेतु अधिकृत कर दिया गया है।

3. मुद्रा चलन (Currency) – मुद्रा या मुद्रा चलन में शामिल है– पत्र मुद्रा, पोस्टल आडर, धनादेश, चेक, ड्राफ्ट, यात्री चैक, साख पत्र, विनिमय विपत्र व प्रतिज्ञा पत्र, क्रेडिट कार्ड अथवा ऐसा ही अन्य प्रपत्र जो भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा अधिसूचित हो सके। यहाँ **पत्र मुद्रा** (Currency notes) से आशय सिक्कों तथा बैंक नोटों के रूप में रोकड़ से है।

4. **प्रतिभूति** (Security) – 'प्रतिभूति' से आशय है अंश, स्कन्ध, बॉण्ड व ऋण- पत्र, सरकारी बचत पत्र, भारतीय यूनिट ट्रस्ट व अन्य म्युचुअल फंड के यूनिट, सरकारी प्रतिज्ञा-पत्र तथा अन्य कोई प्रपत्र जो भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा प्रतिभूति अधिसूचित कर दिये जायें।

5. **विदेशी मुद्रा** (Foreign Currency) – 'विदेशी मुद्रा' से आशय ऐसी मुद्रा से है जो भारतीय मुद्रा नहीं है।

6. **विदेशी मुद्रा विनिमय** – 'विदेशी मुद्रा विनिमय' से आशय विदेशी मुद्रा से है जिसमें शामिल होता है –

(i) विदेशी मुद्रा में देय जमाएँ, साख एवं शेष,

(ii) भारतीय मुद्रा में आहरित परन्तु विदेशी मुद्रा में देय ड्राफ्ट, यात्री चैक, साख-प्रपत्र अथवा विनिमय विपत्र।

7. **विदेशी प्रतिभूति** (Foreign Security) – 'विदेशी प्रतिभूति' से आशय ऐसी किसी भी प्रतिभूति से है जैसे– अंश, स्कन्ध, बॉण्ड व ऋण-पत्र अथवा अन्य कोई प्रपत्र जो विदेशी मुद्रा में अभिव्यक्त किया गया हो परन्तु उसका शोधन अथवा उस पर ब्याज अथवा लाभांश भारतीय मुद्रा में देय हो।

8. **भारत को प्रत्यावर्तन** (Reptriate to India) – 'भारत को प्रत्यावर्तन' से आशय है वसूल हुए विदेशी मुद्रा विनिमय को भारत में लाना तथा ऐसी विदेशी मुद्रा विनिमय को रुपयों के बदले अधिकृत व्यक्ति को विक्रय करना अथवा रिजर्व बैंक के नियमानुसार अधिकृत व्यक्ति के यहाँ इसे खाते में जमा रखना अथवा इसमें से विदेशी मुद्रा में प्राप्य ऋण व दायित्व को चुकता करना।

9. **भारत में निवासी व्यक्ति** (Person resident in India) – (i) कोई भी व्यक्ति भारत में निवासी कहा जायेगा यदि वह गत वित्तीय वर्ष में 182 दिन से अधिक भारत में रहा हो परन्तु इसमें निम्न शामिल नहीं होंगे –

(A) एक व्यक्ति की विदेश में रोजगार के कारण या विदेश में व्यवसाय के कारण या अन्य किसी कारण से एक अनिश्चित समय तक भारत से बाहर रहने की इच्छा प्रतीत होती है।

(B) एक विदेशी व्यक्ति की रोजगार या व्यवसाय या अन्य किसी कारण से एक अनिश्चित समय तक भारत में रहने की इच्छा प्रकट होती है।

(i) भारत में पंजीकृत या समामेलित कोई संस्था या कम्पनी।

(ii) भारत के बाहर निवासी व्यक्ति के स्वामित्व या नियन्त्रण वाली भारत में स्थित कोई एजेन्सी, कार्यालय या शाखा।

(iii) भारत में निवासी व्यक्ति के स्वामित्व या नियन्त्रण वाली भारत के बाहर स्थित कोई एजेन्सी, कार्यालय या शाखा।

10. **भारत के बाहर निवासी व्यक्ति** (Person resident outside India) – 'भारत के बाहर निवासी व्यक्ति' से आशय ऐसे व्यक्ति से है जो भारत में निवासी व्यक्ति नहीं है।

11. **पूँजी खाता लेन-देन** (Capital Account Transaction) – 'पूँजी खाता लेन-देन' से आशय उन लेन-देनों से है जिनके फलस्वरूप भारत में निवासी व्यक्ति की विदेशों में स्थित सम्पत्तियों व दायित्वों तथा भारत के बाहर निवासी व्यक्ति की भारत में स्थित सम्पत्तियों व दायित्वों में परिवर्तन हो जाता है।

12. **चालू खाता लेन-देन** (Current Account Transaction) – चालू खाता लेन-देन जो पूँजी खाता लेन-देन से भिन्न है, में निम्न शामिल हैं –

(i) विदेशी व्यापार, सेवाओं तथा अल्पकालीन बैंकिंग व साख सुविधाओं के सम्बन्ध में देय अदायगी।

(ii) ऋण पर ब्याज व विनियोगों पर शुद्ध आय का देय भुगतान।

(iii) माता-पिता, बच्चे, पत्नी जो विदेश में रह रहे हैं, उनके जीवन-यापन व्यय हेतु मुद्रा भुगतान।

(iv) माता-पिता, बच्चे व पत्नी के विदेश यात्रा, शिक्षा, दवाइयाँ आदि पर विदेश में किये जाने वाले व्यय का देय भुगतान।

विदेशी मुद्रा का नियमन तथा प्रबन्ध
(Regulation and Management of Foreign Exchange)

NOTES

A. **विदेशी मुद्रा व्यवहार** (Foreign Exchange Dealings) – विदेशी मुद्रा विनिमय प्रबन्धन अधिनियम, 1999 के अन्तर्गत एक व्यक्ति पर विदेशी मुद्रा के लेन-देन के सम्बन्ध में अग्र प्रतिबन्ध लागू होंगे। भारतीय रिजर्व बैंक की सामान्य या विशिष्ट अनुमति के बिना –

(i) वह किसी भी व्यक्ति से विदेश में सम्पत्ति प्राप्त करने के प्रतिफलस्वरूप भारत में वित्तीय प्रकृति का लेन-देन नहीं करेगा।

(ii) वह भारत के बाहर निवासी व्यक्ति से अधिकृत व्यक्ति के माध्यम से अतिरिक्त किसी भी रूप में भुगतान प्राप्त नहीं करेगा।

(iii) वह किसी भी रूप में भारत के बाहर निवासी व्यक्ति को न कोई भुगतान करेगा और न उसे खाते में जमा करेगा।

(iv) वह अधिकृत व्यक्ति के अतिरिक्त अन्य किसी व्यक्ति को विदेशी मुद्रा या विदेशी प्रतिभूति का न तो लेन-देन करेगा और न हस्तान्तरण करेगा। **(धारा 3)**

B. **विदेशी मुद्रा अधिग्रहण** (Holding of Foreign Exchange) – भारतीय रिजर्व बैंक की अनुमति के बिना भारत में निवासी कोई व्यक्ति भारत के बाहर स्थित विदेशी मुद्रा, विदेशी प्रतिभूति अथवा अन्य अचल सम्पत्ति को न तो प्राप्त करेगा, न उसका अधिग्रहण करेगा और न हस्तान्तरण। **(धारा 4)**

C. **चालू खाता लेन-देन** (Current Account Transaction) – कोई भी व्यक्ति सरकार द्वारा निर्धारित सीमा तक चालू खाता लेन-देन हेतु अधिकृत व्यक्ति से विदेशी मुद्रा का क्रय तथा अधिकृत व्यक्ति को विदेशी मुद्रा का विक्रय कर सकता है। **(धारा 5)**

D. **पूँजी खाता लेन-देन** (Capital Account Transaction) – कोई भी व्यक्ति खाता लेन-देन हेतु एक अधिकृत व्यक्ति से रिजर्व बैंक द्वारा निर्धारित सीमा तक विदेशी मुद्रा विनिमय का क्रय कर सकता है तथा उसे विक्रय कर सकता है, परन्तु इसमें उन्हीं पूँजीगत लेन-देनों को सम्मिलित किया जायेगा जो भारत सरकार के परामर्श से रिजर्व बैंक द्वारा निर्दिष्ट कर दिये गये हों। यद्यपि रिजर्व बैंक भी ऋणों के भुगतान (Amortisation) पर रोक नहीं लगा सकती। **(धारा 6)**

पूँजीगत लेन-देनों के सम्बन्ध में निम्न प्रावधान भी महत्वपूर्ण हैं –

1. भारत में निवासी व्यक्ति भारत के बाहर स्थित विदेशी मुद्रा, प्रतिभूति या अचल सम्पत्ति का स्वामी हो सकता है, हस्तान्तरण कर सकता है, विनियोग कर सकता है यदि ऐसी मुद्रा, प्रतिभूति या सम्पत्ति प्राप्त करते समय वह भारत के बाहर का निवासी व्यक्ति रहा हो या यह सम्पत्ति भारत के बाहर के निवासी व्यक्ति से उत्तराधिकार में मिली हो।

2. भारत के बाहर का निवासी व्यक्ति भारतीय मुद्रा, प्रतिभूति तथा भारत में स्थित अचल सम्पत्ति का स्वामी हो सकता है, हस्तान्तरण तथा विनियोग कर सकता है बशर्ते कि ऐसी मुद्रा, प्रतिभूति या अचल सम्पत्ति प्राप्त करते समय वह भारत का निवासी व्यक्ति रहा हो या यह सम्पत्ति भारत में निवासी व्यक्ति से उत्तराधिकार में मिली हो।

E. **माल एवं सेवाओं का निर्यात** – धारा 7 (1) के अनुसार माल का प्रत्येक निर्यातक निर्यात किये जाने वाले माल के सम्बन्ध में आवश्यक सभी तथ्यपूर्ण सही विवरण, माल के पूर्ण मूल्य सहित, रिजर्व बैंक अथवा अन्य अधिकृत संस्था को निर्धारित समय के अन्तर्गत प्रेषित करेगा। यदि माल निर्यात करते समय उसका पूर्ण मूल्य निर्धारित कर पाना सम्भव न हो तो उस समय की बाजार दशाओं के अनुसार निर्यातक को विदेश से प्राप्त हो सकने वाली अनुमानित राशि ही प्रेषित करनी होगी। इसके अतिरिक्त यदि रिजर्व बैंक ऐसे निर्यात से वसूल हो सकने वाली राशि का निर्धारण करने हेतु कोई सूचना माँगती है तो तुरन्त प्रेषित करनी होगी।

रिजर्व बैंक निर्यात किये गये माल के मूल्य को शीघ्र मँगाने के लिए निर्यातक को उचित निर्देश दे सकती है जिनका पालन निर्यातक को करना होगा।

धारा 7 (3) के अनुसार सेवाओं का प्रत्येक निर्यातक भी रिजर्व बैंक या अन्य अधिकृत संस्था को निर्दिष्ट ढंग से तथा निर्दिष्ट प्रारूप में ऐसी सूचना प्रेषित करेगा जिससे सेवाओं से प्राप्त होने वाले भुगतान के सम्बन्ध पूर्ण एवं सही विवरण ज्ञात हो सके।

... (Realisation and Repatriation of Foreign Exchnage) – जब भारत में निवासी व्यक्ति के पक्ष में कोई विदेशी मुद्रा विनिमय धनराशि देय या अर्जित हो जाये तो रिजर्व बैंक द्वारा निर्दिष्ट ढंग तथा समयावधि में ऐसे विदेशी मुद्रा विनियोग को वसूल करने तथा भारत भेजने हेतु वह व्यक्ति सभी उचित कदम उठायेगा। (धारा 8)

छूटें (Exemptions) – निम्न दशाओं में उपर्युक्त धारा लागू नहीं होगी –

(i) एक व्यक्ति का विदेशी मुद्रा तथा विदेशी सिक्कों पर उस सीमा तक अधिकार जितना रिजर्व बैंक ने निर्दिष्ट किया हो।

(ii) रिजर्व बैंक द्वारा निर्दिष्ट सीमा तक निर्दिष्ट व्यक्तियों द्वारा संचालित विदेशी मुद्रा खाता।

(iii) रिजर्व बैंक द्वारा निर्दिष्ट सीमा तक विदेशी मुद्रा की प्राप्ति जो रोजगार व्यवसाय, व्यापार, सेवा, उपहार, उत्तराधिकार या अन्य किसी वैध साधन से अर्जित की गई हो।

(iv) अन्य कोई भी विदेशी मुद्रा प्राप्तियाँ जो रिजर्व बैंक द्वारा निर्दिष्ट हों। (धारा 9)

अधिकृत व्यक्ति
(Authorised Person)

रिजर्व बैंक प्रार्थना-पत्र प्राप्त होने पर किसी भी व्यक्ति को विदेशी मुद्रा विनिमय में तथा विदेशी प्रतिभूतियों में लेन-देन करने हेतु एक डीलर, मुद्रा परिवर्तक अथवा तटीय बैंकिंग इकाई आदि के रूप में अधिकृत कर सकती है। ऐसा अधिकृतीकरण लिखित में किया जायेगा तथा उन शर्तों के अधीन होगा जो रिजर्व बैंक निर्धारित करे। [धारा 10 (1)]

ऐसा अधिकृतीकरण रिजर्व बैंक द्वारा किसी भी समय रद्द किया जा सकता है यदि रिजर्व बैंक यह समझती है कि –

(i) ऐसा करना जन-हित में है, अथवा

(ii) अधिकृत व्यक्ति ने कुछ शर्तों का पालन नहीं किया है अथवा उसने अधिनियम के प्रावधानों या अन्य नियमों, सूचनाओं व निर्देशों का उल्लंघन किया है। [धारा 10 (3)]

अधिकृत व्यक्ति का कर्त्तव्य – अधिकृत व्यक्ति का यह कर्त्तव्य है कि वह यह सुनिश्चित करे कि विदेशी मुद्रा विनिमय का लेन-देन जो वह अन्य व्यक्ति के लिए कर रहा है अधिनियम के प्रावधानों के अन्तर्गत है। इस सम्बन्ध में वह सम्बन्धित व्यक्ति से कोई भी आवश्यक सूचनाएँ प्राप्त करने का अधिकार रखता है। संतुष्ट न होने की दशा में अधिकृत व्यक्ति लिखित में ऐसे लेन-देन को करने के लिए मना कर सकता है। [धारा 10 (5)]

रिजर्व बैंक के अधिकार (Powers of Reserve Bank) – अधिनियम के प्रावधानों तथा अन्य सम्बन्धित नियमों व निर्देशों का पूर्ण पालन सुनिश्चित करने हेतु रिजर्व बैंक को निम्न अधिकार हैं –

(i) यह किसी भी अधिकृत व्यक्ति को विदेशी मुद्रा विनिमय सौदे में भुगतान करने या रोक देने का निर्देश दे सकती है।

(ii) यह किसी भी अधिकृत व्यक्ति को सम्बन्धित सूचना भेजने का निर्देश दे सकती है।

(iii) यदि कोई अधिकृत व्यक्ति रिजर्व बैंक के निर्देशों का उल्लंघन करता है या निर्देशित प्रपत्र नहीं भेजता है तो रिजर्व बैंक ऐसे व्यक्ति पर 10,000 रु. तक दण्ड लगा सकती है। इसके उपरान्त भी यदि अधिकृत व्यक्ति उल्लंघन जारी रखता है तो 2,000 रु. प्रतिदिन के हिसाब से उसे अतिरिक्त दण्ड भरना पड़ेगा। (धारा 11)

अधिकृत व्यक्ति द्वारा भेजे गये विवरणों अथवा सूचनाओं की सत्यता की जाँच करने हेतु तथा अधिनियम के प्रावधानों के परिपालन की जाँच करने हेतु रिजर्व बैंक किसी भी अधिकारी की नियुक्ति कर सकती है। ऐसी देशा में अधिकृत व्यक्ति का यह दायित्व है कि है उपर्युक्त अधिकारी के निर्देशानुसार आवश्यक लेखा बही, विवरण, सूचना आदि प्रस्तुत करे। (धारा 12)

उल्लंघन तथा दण्ड
(Contravention and Penalties)

यदि कोई व्यक्ति इस अधिनियम के किसी प्रावधान का उल्लंघन करता है या सम्बन्धित किसी नियम, अधिसूचना, निर्देश अथवा आदेश का उल्लंघन करता है, रिजर्व बैंक द्वारा अधिकृतीकरण (authorisation) करते समय लगायी गई किसी शर्त का उल्लंघन करता है तो ऐसा व्यक्ति अधिनिर्णय के अन्तर्गत दण्ड के लिए दायी होगा जो उल्लंघन हुए

प्रावधान में निहित राशि के तीन गुने यदि उपरान्त भी यदि उल्लंघन जारी रहता है तो 5000 रु. प्रतिदिन की दर से अतिरिक्त दण्ड भरना होगा।

अधिनिर्णय अधिकरण (Adjudicating Authority) – निर्णय देते समय ही यदि उचित मानता है तो दण्ड के अतिरिक्त उल्लंघन से सम्बन्धित मुद्रा, प्रतिभूति अथवा सम्पत्ति को केन्द्रीय सरकार के पक्ष में कर लिए जाने तथा ऐसे विदेशी मुद्रा विनिमय को विदेश से भारत लाने तथा विदेश में ही रोके रखने का आदेश दे सकता है।

(धारा 13)

अधिनिर्णय तथा अपील
(Adjudication and Appeal)

(1) **अधिनिर्णय अधिकरण** (Adjudication Authority) – केन्द्रीय सरकार, सरकारी गजट में प्रकाशित आदेश के अन्तर्गत, केन्द्रीय सरकार के अधिकारियों को अधिनिर्णय अधिकरण के रूप में नियुक्त कर सकती है। ये अधिकरण उन शिकायतों की सुनवाई करेंगे, जो किन्हीं भी व्यक्तियों के विरुद्ध धारा 13 के उल्लंघन करने के सम्बन्ध में प्राप्त हुई है। ये अधिकार निर्णय देने तथा दण्ड लगाने से पूर्व आरोपित व्यक्ति को सुनने का उचित अवसर प्रदान करेंगे। यदि अधिनिर्णय अधिकरण को यह आभास होता है कि आरोपित व्यक्ति देश से भाग सकता है या दण्ड भुगतान में कठिनाई उत्पन्न कर सकता है तो ऐसे आरोपित व्यक्ति को आवश्यक धनराशि की गारण्टी की व्यवस्था करने का निर्देश दिया जा सकता है। ये अधिकरण कोई भी जाँच का कार्य तभी लेंगे जब इस तरह की शिकायत सरकार द्वारा पारित आदेश के अन्तर्गत सम्बन्धित अधिकारी ने लिखित में दी हो।

प्रत्येक अधिनिर्णय अधिकरण को सिविल कोर्ट के अधिकार होंगे अतः अधिकरण के समक्ष आरोपित व्यक्ति अपना पक्ष अपने वकील या चार्टर्ड एकाउन्टेंट के द्वारा प्रस्तुत कर सकेगा। ये अधिकरण सभी शिकायतों का शीघ्रतापूर्वक निपटारा करेगी। किसी भी दशा में यह समय शिकायत मिलने वाले दिन से एक वर्ष से अधिक नहीं होगा अन्यथा अधिकरण को लिखित में ऐसे विलम्ब का कारण बताना होगा।

(2) **विशेष निदेशक-अपील्स** (Special Director-Appeals) – केन्द्रीय सरकार अधिसूचना द्वारा एक या एक से अधिक विशेष निदेशक-अपील्स नियुक्त कर सकती है जो अधिनिर्णय अधिकरण के निर्णय से पीड़ित व्यक्तियों के प्रार्थना-पत्र पर सुनवाई करेंगे। यह अपील अधिकरण के आदेश की प्राप्ति प्राप्त होने के 45 दिन के अन्दर कर दी जानी चाहिए। पीड़ित पक्षकार के प्रार्थना-पत्र पर विशेष निदेशक-अपील्स उसे सुनेगा तथा इसके उपरान्त अधिकरण के आदेश की पुष्टि कर सकता है, संशोधित कर सकता है अथवा निरस्त कर सकता है। विशेष निदेशक-अपील्स को सिविल कोर्ट के अधिकार होंगे। वह भारतीय न्यायिक सेवा/भारतीय राजस्व सेवा का संयुक्त सचिव के समकक्ष पद वाला व्यक्ति होगा।

(3) **अपीलीय न्यायाधिकरण** (Appellate Tribunal) – केन्द्रीय सरकार अधिसूचना जारी करके विदेशी मुद्रा विनिमय हेतु अपीलीय न्यायाधिकरण (विशिष्ट दशाओं में) का गठन करेगी जो अधिनिर्णय अधिकरण तथा विशेष निदेशक-अपील्स के आदेश के विरुद्ध की गई अपील पर सुनवाई करेगा। यह अपील केन्द्रीय सरकार या पीड़ित पक्षकार द्वारा अधिकरण या विशेष निदेशक के आदेश की तिथि से 45 दिन के अन्दर निर्धारित प्रारूप में निर्धारित शुल्क सहित की जानी चाहिए।

ऐसी अपील पर अपीलीय न्यायाधिकरण पीड़ित पक्षकार को सुनने का अवसर देगा, अधिकरण या विशेष निदेशक-अपील्स के रिकार्ड का यदि आवश्यक समझे तो अध्ययन करेगा और इसके उपरान्त अपना आदेश पारित करेगा जिसमें वह उस आदेश जिसके विरुद्ध अपील सुनी गई है, की पुष्टि कर सकता है, उसमें संशोधन कर सकता है या उसे निरस्त कर सकता है। ऐसी अपील का निपटारा यह न्यायाधिकरण अपील दाखिल किये जाने के अधिकतम 180 दिन के अन्तर्गत कर देगा अन्यथा लिखित में विलम्ब के कारण बताने होंगे।

अपीलीय न्यायाधिकरण का गठन केन्द्रीय सरकार करेगी। इसमें एक अध्यक्ष तथा सरकार द्वारा निर्धारित संख्या में सदस्य होंगे। अध्यक्ष की योग्यता उच्च न्यायालय के न्यायाधीश तथा सदस्यों की योग्यता जिला न्यायाधीश के समकक्ष होगी। अध्यक्ष तथा सदस्यों का कार्यकाल पाँच वर्ष होगा।

प्रवर्तन निदेशालय
(Directorate of Enforcement)

धारा 36 (i) के अनुसार केन्द्रीय सरकार एक प्रवर्तन निदेशालय की स्थापना करेगी जिसमें एक निदेशक तथा आवश्यकतानुसार अधिकारी नियुक्त होंगे जो इस अधिनियम के अन्तर्गत प्रवर्तन अधिकारी के नाम से जाने जायेंगे।

... सहायक निदेशक के
नीचे के पद वाले प्रवर्तन अधिकारी नियुक्त करने के लिए अधिकृत कर सकती है।

तलाशी व जब्ती के अधिकार (Power of search and seizure) – विदेशी मुद्रा विनिमय प्रबन्धन अधिनियम, 1999 की धारा 13 के उल्लंघन की जाँच का कार्य प्रवर्तन निदेशालय का निदेशक या अन्य कोई अधिकारी जो सहायक निदेशक के निचले पद वाला न हो, कर सकता है। इस तरह का अधिकार केन्द्रीय सरकार अधिसूचना जारी करके केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकार रिजर्व बैंक के किसी भी ऐसे अधिकारी को दे सकती है जो सहायक सचिव (Under Secretary) के समकक्ष पद वाला हो। इस अधिनियम में तलाशी व जब्ती के अधिकार आयकर अधिनियम, 1961 वाले ही लागू होंगे। **(धारा 37)**

केन्द्रीय सरकार, आदेश द्वारा निर्धारित शर्तों व सीमाओं के साथ तटकर व केन्द्रीय उत्पाद कर विभाग के किसी अधिकारी किसी पुलिस अधिकारी अथवा अन्य किसी केन्द्रीय अथवा राज्य सरकार के अधिकारी को प्रवर्तन निदेशालय सम्बन्धी निश्चित कर्त्तव्य व अधिकार सौंप सकती है **(धारा 38)**

विविध प्रावधान
(Miscellaneous Provisions)

विदेशी मुद्रा विनिमय प्रबन्धन अधिनियम, 1999 की धाराओं 39 से 49 तक में विविध प्रावधान निम्नलिखित प्रकार से दिये गये है:-

(1) **अधिनियम के क्रियाशीलन पर रोक** - केन्द्रीय सरकार अधिनियम के द्वारा यदि सार्वजनिक हित में आवश्यक समझें तो अनिश्चित अवधि के लिये रोक लगा सकती है और प्रतिबन्ध या रोक हटाये जाने का आदेश दे सकती है। किन्तु अधिसूचना संसद के दोनों सदनों में प्रस्तुत किया जाना आवश्यक होगा।

(2) **केन्द्रीय सरकार का निर्देशन देने का अधिकार** - इस अधिनियम के उद्देश्य की पूर्ति के लिये रिजर्व बैंक को जैसा वह उचित समझे, समय समय पर सामान्य अथवा विशेष निर्देशन देने का अधिकार केन्द्रीय सरकार को है।

(3) **कम्पनियों द्वारा उल्लंघन** - इस अधिनियम के प्रावधानों, किसी नियम, निर्देश, आदेश का उल्लंघन करने वाली कोई कम्पनी है तो प्रत्येक ऐसा व्यक्ति जो उल्लंघन के समय दोषी माना जायेगा उसके विरुद्ध दण्डात्मक कार्यवाही की जा सकेगी। कम्पनी के निर्देशक, प्रबन्धक, सचिव या अन्य प्राधिकारी दोषी होने पर दण्ड में भागी होंगे।

(4) **कुछ मामलों के अन्तर्गत मृत्यु या दिवालिया** - यदि कोई अधिकार, दायित्व, उत्तरदायित्व हो तो वह सम्बन्धित व्यक्ति की मृत्यु अथवा दिवालिया हो जाने पर समाप्त नहीं होते। बल्कि मृतक अथवा दिवालिया व्यक्ति के वैधानिक उत्तराधिकारी व्यक्ति उत्तरदायी होंगे।

(5) **वैधानिक कार्यवाहियों को रोकना** - इस अधिनियम के अन्तर्गत प्राप्त अधिकारों का प्रयोग करते समय केन्द्रीय सरकार या रिजर्व बैंक वैधानिक कार्यवाहियों के विरुद्ध रोक लगा सकती है।

(6) **कठिनाइयों का हटाया जाना** - अधिनियम के प्रभावी बनाने में यदि किसी प्रकार की कठिनाईयाँ आती है तो केन्द्रीय सरकार आदेश से इन कठिनाइयों को हटा सकती है।

(7) **नियमों को बनाने का अधिकार** - केन्द्रीय सरकार अधिसूचना द्वारा इस अधिनियम के प्रावधानों के प्रचलन हेतु नियमों को बना सकती है।

(8) **रिजर्व बैंक को अधिकार** - रिजर्व बैंक अधिसूचना द्वारा इन अधिनियमों के प्रावधानों को प्रभावशाली बनाने के लिये नियमन तथा नियमों को बना सकता है।

(9) **संसद के सम्मुख प्रस्तुत नियम एवं नियमन** - इस अधिनियम के अधीन निर्मित प्रत्येक नियम एवं नियमन संसद के दोनों सदनों के समक्ष रखना आवश्यक होता है। यदि दोनों सदन सहमत नहीं होते है तो नियम एवं नियमन लागू नहीं किये जाते है।

(10) **निरस्त तथा बचाव खण्ड** - जब तक कि अधिनियम में इसके विरुद्ध कोई अन्य बात न हो, कोई भी न्यायालय तथा अभिनिर्णायक अधिकारी धारा 51 के अन्तर्गत समाप्त हुये अधिनियम के अधीन अपराध एवं उल्लंघन पर इस अधिनियम के लागू होने के दो वर्ष के पश्चात विचार नहीं करेगा।

NOTES

महत्वपूर्ण प्रश्न
(Important Questions)

1. विदेशी मुद्रा विनिमय प्रबन्धन अधिनियम, 1999 के अन्तर्गत विदेशी मुद्रा के नियमन तथा प्रबन्ध सम्बन्धी प्रावधानों को समझाइये।
2. अधिकृत व्यक्ति क्या है? रिजर्व बैंक को ऐसे अधिकृत व्यक्ति के सम्बन्ध में क्या अधिकार प्राप्त हैं?
3. विदेशी मुद्रा विनिमय प्रबन्धन अधिनियम 1999 का उल्लंघन करने वालों के विरुद्ध दण्ड की क्या व्यवस्था की गई है?
4. विदेशी मुद्रा विनिमय प्रबन्धन अधिनियम, 1999 के अन्तर्गत अधिनिर्णय तथा अपील सम्बन्धी प्रावधानों को स्पष्ट कीजिये।
5. प्रवर्तन निदेशालय के गठन एवं अधिकारों सम्बन्धी प्रावधानों को बताइये।
6. विदेशी मुद्रा विनिमय प्रबन्धन अधिनियम, 1999 के सन्दर्भ में निम्न शब्दावली की व्याख्या कीजिए–
   (i) व्यक्ति,
   (ii) भारत में निवासी व्यक्ति,
   (iii) विदेशी मुद्रा विनिमय।

अपनी प्रगति की जाँच करें
Test your Progress

17

विश्व व्यापार संगठन की नियमन रूपरेख
(REGULATORY FRAMEWORK OF WORLD TRADE ORGANISATION)

परिचय (Introduction) –

"विश्व व्यापार संगठन", प्रशुल्क व व्यापार पर सामान्य समझौता (General Agreement on Trade & Tariff- GATT) का एक उत्तराधिकारी संगठन है। इसकी स्थापना सदस्य राष्ट्रों की संसदों द्वारा अनुमोदित एक अन्तर्राष्ट्रीय संधि के आधार पर हुई है। विश्व के आर्थिक जगत में इसकी स्थिति अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष व विश्व बैंक के समान है। विश्व व्यापार संगठन (WTO) ने 1 जनवरी, 1995 से अपना कार्य प्रारम्भ किया। भारत इस संगठन का संस्थापक सदस्य है। सिंगापुर में पहला मंत्रिस्तरीय सम्मेलन आरम्भ होने से पूर्व इसकी सदस्य संख्या 128 थी जो बढ़कर जनवरी, 2002 तक 144 हो गई। इसका मुख्यालय जिनेवा में है।

इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि विश्व व्यापार संगठन की स्थापना इसके पूर्ववर्ती 'गैट' (GATT) की उरुग्वे चक्र की लम्बी वार्ता (1986-93) के परिणामस्वरूप हुई है। स्वयं गैट की स्थापना सन् 1947 में हवाना चार्टर के महत्वपूर्ण मुद्दे – "व्यापार प्रतिबन्धों में ढिलाई" को मूर्त रूप देने के लिये हुई थी। स्थापना के समय गैट के मुख्य उद्देश्य थे – अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का विस्तार करना, व्यापार पर लगे प्रतिबन्धों को समाप्त करना, सदस्य देशों में पूर्ण रोजगार की व्यवस्था कर विश्व-उत्पादन में वृद्धि करना, विश्व संसाधनों का विकास करना तथा उनका पूर्ण उपयोग करना और विश्व में समग्र दृष्टिकोण के आधार पर सम्पूर्ण समाज के लोगों का जीवन-स्तर ऊँचा उठाना। गैट में अभी तक आठ अधिवेशन हुए और अन्तिम अधिवेशन, जिसे उरुग्वे राउण्ड के नाम से जाना जाता है, में सदस्य देशों की सहमति से ही विश्व व्यापार संगठन की स्थापना सन् 1944 में हुई। फलतः गैट का स्थान अब विश्व व्यापार संगठन ने ले लिया है।

संगठन एवं प्रबन्ध –

विश्व व्यापार संगठन के कार्य संचालन के लिए एक **सामान्य परिषद्** (General Council) है जिसमें प्रत्येक सदस्य राष्ट्र का एक स्थायी प्रतिनिधि होता है। इसकी बैठक सामान्यतः माह में एक बार जिनेवा में होती है। इसके साथ ही नीति निर्धारण करने हेतु सर्वोच्च अधिकार प्राप्त इसका **'मन्त्रिस्तरीय सम्मेलन'** (Ministerial Conference) है। मन्त्रिस्तरीय सम्मेलन का आयोजन प्रत्येक दो वर्ष में होता है।

दिन-प्रतिदिन के प्रशासकीय कार्यों को सम्पन्न करने के लिए संगठन का सर्वोच्च पदाधिकारी **महानिदेशक** (Director General) होता है। सामान्य परिषद द्वारा महानिदेशक का चुनाव 4 वर्ष के लिए किया जाता है। इटली के पूर्व व्यापार मन्त्री **श्री रिनेटो रूगेरो इसके** पहले महानिदेशक बनाए गए थे। 1 सितम्बर, 1999 से तीन वर्ष के लिए न्यूजीलैण्ड के पूर्व प्रधानमन्त्री **माइक मूर को** WTO का महानिदेशक बनाया गया। 1 सितम्बर, 2002 से आगामी तीन वर्षों के लिए यह पद थाइलैण्ड के उप प्रधानमन्त्री **सुपाचाई पानिचपाकड़ी** को सौंपा गया। महानिदेशक की सहायता के लिए विभिन्न सदस्य राष्ट्रों से चार उपमहानिदेशक भी चुने जाते हैं।

विश्व व्यापार संगठन के कार्य संचालन हेतु अनेक महत्वपूर्ण समितियाँ हैं। सर्वाधिक महत्वपूर्ण दो समितियाँ – (i) विवाद निवारण समिति (Dispute Settlement Body - DSB), तथा (ii) व्यापार नीति समीक्षा समिति (Trade Policy Review Body - TPRB), विवाद निवारण समिति (DSB) का कार्य विभिन्न राष्ट्रों के विरुद्ध विश्व व्यापार संगठन के व्यापार नियमों के उल्लंघन की शिकायतों पर विचार करना है। सभी सदस्य देश इस समिति के सदस्य होते हैं, किन्तु किसी शिकायत विशेष के गहन अध्ययन के लिए यह विशेषज्ञों की समिति गठित कर सकती है। इस समिति की बैठक माह में दो बार होती है।

विश्व व्यापार संगठन की व्यापार नीति समीक्षा समिति (TPRB) का कार्य सदस्य राष्ट्रों की व्यापार नीति की समीक्षा करना है। सभी बड़ी व्यापारिक शक्तियों की व्यापार नीति की दो वर्ष में एक बार समीक्षा की जाती है। संगठन के सभी सदस्य राष्ट्र इस समिति के सदस्य होते हैं।

इसके साथ ही विश्व व्यापार संगठन की अन्य महत्वपूर्ण समितियाँ – **वस्तु व्यापार परिषद्** (Council for Trade in Goods), **सेवा व्यापार परिषद्** (Council for Trade in Services) तथा **बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के व्यापार सम्बन्धी पहलुओं पर परिषद्** (Council for Trade Related Aspects of Intellectual Property Rights) आदि हैं।

गैट के विभिन्न दौर

सदस्य देशों के बीच आपसी विचार-विमर्श हेतु आयोजित की जाने वाली सामान्य बैठकों को **गैट दौर** (GATT Round) कहते हैं। गैट में आपसी विचार-विमर्श के अब तक आठ दौर हो चुके हैं जिनका संक्षिप्त ब्यौरा सारणी- 1 में दिया गया है-

सारणी 1- विभिन्न प्रशुल्क सम्मेलनों के मुख्य तथ्य

	अधिवेशन	सम्मिलित व्यापार का मूल्य	प्रदत्त रियायतों की संख्या
1.	जिनेवा - 1947	10 बिलियन डालर	45,000
2.	अनेसी - 1949	आँकड़े अप्राप्त	5,000
3.	तोरके - 1951	आँकड़े अप्राप्त	8,700
4.	जिनेवा - 1956	2.5 बिलियन डालर	आँकडे अप्राप्त
5.	जिनेवा - 1961 (डिल्लन राउण्ड)	4.9 बिलियन डालर	4,400
6.	जिनेवा - 1964-67 (कैनेडी राउण्ड)	40 बिलियन डालर	आँकडे अप्राप्त
7.	जिनेवा - 1973-79 (टोकियो राउण्ड)	300 बिलियन	27,000
8.	उरुग्वे - 1986-94 (उरुग्वे राउण्ड)	आँकड़े अप्राप्त	आँकडे अप्राप्त

गैट के इन आठ राउण्डों में से पहले 6 राउण्ड मुख्यतः बहुमुखी प्रशुल्क दरों में कमी करने के लिए आयोजित किये गये तथा उन्हें इस उद्देश्य की प्राप्ति में अपेक्षित सफलता भी प्राप्त हुई, किन्तु इन राउण्ड के दौरान यह तथ्य सामने आया कि प्रायः सदस्य देश प्रशुल्क को घटाकर उसके स्थान पर गैट-प्रशुल्क प्रतिबन्ध लागू करने लगे थे। इसलिये गैट के 7वें राउण्ड में प्रशुल्क और गैट-प्रशुल्क दोनों प्रकार के प्रतिबन्धों को समाप्त करने हेतु कुछ नवीन प्रकार के कोड बनाये गये। गैट का **आठवाँ राउण्ड** (उरुग्वे राउण्ड) जो कि 1986 से 1994 तक चला अभी तक के सभी राउण्ड की तुलना में सबसे अलग होने के साथ ही चर्चित एवं विवादास्पद रहा है।

उरुग्वे राउण्ड
(Urugway Round)

गैट वार्ताओं का आठवाँ दौर (राउण्ड) 20 सितम्बर, 1986 को उरुग्वे में प्रारम्भ हुआ जिसमें कुल 120 देशों ने भाग लिया। इस दौर की 15 दिसम्बर, 1993 को अंतिम बैठक में सात वर्षीय उरुग्वे दौर की बातचीत समाप्त हुई। 15 अप्रैल, 1994 को 123 सदस्य देशों के मंत्रियों ने उरुग्वे दौर के परिणामों को मराकश (मोरक्को) में स्वीकृति प्रदान कर दी। इसके साथ ही गैट समाप्त होकर 1 जनवरी, 1995 को **विश्व व्यापार संगठन** (WTO) में विलीन हो गया।

उरुग्वे राउण्ड की प्रथम बैठक में विचार-विमर्श हेतु रखे गये प्रस्ताव को दो भागों में बाँटा गया था। **प्रथम भाग** के अन्तर्गत वस्तु व्यापार के क्षेत्र में प्रशुल्क, गैर-प्रशुल्क उपाय, टैक्सटाइल तथा कपडे, कृषि, प्राकृतिक संसाधन आधारित वस्तुएँ, बहुपक्षीय व्यापार वाली संधियाँ, आर्थिक सहायता, बौद्धिक सम्पदा अधिकार, गैट अनुच्छेद, बचाव संबंधी उपाय, विवाद निपटारा, गैट प्रणालियों की कार्य विधि से सम्बन्धित कुल 14 क्षेत्र शामिल थे। **दूसरे भाग** के अन्तर्गत सर्वथा नवीन एवं वस्तु व्यापार से अलग सेवाओं संबंधी व्यापार को शामिल किया गया। इस राउण्ड में गैट ने अपने कार्यक्षेत्र में विभिन्न परम्परागत क्षेत्रों के साथ ही तीन नये क्षेत्र जोड़े जो निम्न हैं -

1. व्यापार संबंधी बौद्धिक सम्पदा अधिकार (TRIPS),
2. व्यापार संबंधी विनियोग उपाय (TRIMS),
3. सेवा क्षेत्र को व्यापार में शामिल करना।

उपर्युक्त तीनों क्षेत्र गैट के आठवें राउण्ड में गम्भीर विवाद का विषय बने रहे। गैट के तत्कालीन कार्यकारी निदेशक **आर्थर डंकेल** ने सभी सदस्य देशों के सुझावों को ध्यान में रखते हुए एक प्रस्ताव तैयार किया जो '**डंकेल प्रस्ताव**' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस प्रस्ताव में सभी अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक हस्तान्तरणों को अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के

व्यापार, चुंगी, मूल्यांकन, राशिपातन, सरकारी क्रय आदि विषयों पर विचार प्रस्तावित थे। द्वितीय भाग में सेवाओं के व्यापार, बौद्धिक सम्पदा संबंधी अधिकार और एक नये विश्व व्यापार संगठन की स्थापना से सम्बन्धित प्रस्ताव शामिल थे। डकेल प्रस्ताव को अनेक संशोधनों के बाद स्वीकार कर उरुग्वे दौर को समाप्त करने का प्रस्ताव पारित किया गया।

गैट का मूल्यांकन

गैट की स्थापना अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सहयोग के क्षेत्र की महत्वपूर्ण उपलब्धि मानी जाती है, किन्तु गैट अपने प्रारम्भिक वर्षों में विशेष उल्लेखनीय कार्य करने में असफल रहा। गैट की स्थापना सदस्य देशों के मध्य व्यापार प्रतिबन्धों को समाप्त कर अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को बढ़ाने के लिए की गई थी, किन्तु आलोचकों ने यह विचार व्यक्त किया है कि अमेरिका ने विश्व की व्यापारिक गतिविधियों को संचालित करने हेतु गैट का उपयोग किया है। इसके फलस्वरूप अल्प विकसित एवं विकासशील देश अपने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को बढ़ाने में असफल हुए हैं। इसके बावजूद गैट अपने उद्देश्यों की प्राप्ति में काफी हद तक सफल रहा है।

विश्व व्यापार संगठन के उद्देश्य
(Objectives of World Trade Organisation)

विश्व व्यापार संगठन के प्रमुख उद्देश्य निम्न प्रकार हैं –

1. व्यापार और वित्त के क्षेत्र में इसके कार्यों का संचालन इस प्रकार किया जाएगा जिससे सदस्य देशों में पूर्ण रोजगार के साथ-साथ वास्तविक आय एवं प्रभावी माँग में लगातार वृद्धि हो जिससे कि रहन-सहन के स्तर में सुधार हो तथा वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन तथा व्यापार में विस्तार हो।
2. विश्व के साधनों का इष्टतम उपयोग सत्तीय (Sustainable) दृष्टि से करना, जिससे कि : (क) पर्यावरण की रक्षा और संरक्षण और (ख) पर्यावरण रक्षा के साधनों का विस्तार, आर्थिक विकास के विभिन्न स्तरों की आवश्यकताओं और समस्याओं के अनुरूप हो।
3. निश्चयात्मक प्रयत्न करना जिससे विकासशील देश, विशेषत: निम्नतम विकसित देश अपने आर्थिक विकास की आवश्यकताओं के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की वृद्धि में अपना उचित भाग पा सकें।
4. पारस्परिक और परस्पर लाभकारी व्यवस्थाएँ जिनके द्वारा टैरिफ और व्यापार की रुकावटें तथा अंतर्राष्ट्रीय व्यापार संबंधों में पक्षपातकारी व्यवहार को हटाकर इन उद्देश्यों की प्राप्ति करना।
5. गैट में सम्मिलित, भूतकालीन व्यापार उदारीकरण के परिणाम और उरुग्वे दौर की सभी बहुपक्षीय व्यापार वार्ताओं के फलस्वरूप अधिक स्थायी और व्यवहार्य बहुपक्षीय संगठित व्यापार प्रणाली को विकसित करना।
6. व्यापारिक नीतियों, पर्यावरण संबंधी नीतियों और सततीय विकास से संबंध स्थापित करना।

विश्व व्यापार संगठन के उपर्युक्त उद्देश्यों से यह स्पष्ट है कि इसके उद्देश्य गैट के उद्देश्यों से काफी मिलते-जुलते हैं, किन्तु डब्ल्यू.टी.ओ. के उद्देश्य निर्यात प्रतिस्पर्धा की नीति, बाजार पहुँच (Market Access) और स्वतंत्र व्यापार को अधिक सख्ती से लागू करके उसे प्राप्त करने की दिशा में अधिक सुदृढ़ है।

विश्व व्यापार संगठन के कार्य
(Functions of World Trade Organisation)

विश्व व्यापार संगठन के प्रमुख कार्य निम्न प्रकार हैं –

1. यह सदस्यों के लिए मंत्रिस्तरीय कान्फ्रेंस द्वारा स्वीकृत समझौतों संबंधी, बहुपक्षीय व्यापार संबंधी-विषयक वार्ताओं तथा इनके द्वारा किए गए निर्णयों के कार्यान्वयन के लिए एकमंच प्रस्तुत करता है।
2. यह समझौते के झगड़ा-निपटान के नियमों तथा प्रक्रियाओं की व्याख्या का प्रबंध-संचालन करता है।
3. व्यापार एवं प्रशुल्क से संबंधित मुद्दों के लिए एक उचित मंच सदस्यों के लिए प्रदान करना।
4. विश्व संसाधनों का अनुकूलतम प्रयोग करना।
5. विश्व स्तर पर आर्थिक नीति निर्माण में अधिक सामंजस्य उत्पन्न करने के लिए IMF एवं IBRD का सहयोग करना।
6. व्यापार नीति समीक्षा प्रक्रिया से संबंधित नियमों एवं प्रावधानों को लागू करना।
7. यह समझौते और बहुपक्षीय व्यापार समझौतों के कार्यान्वयन, प्रबंधन और संचालन को सरल बनाता है।

NOTES

विश्व व्यापार संगठन के समझौते

गैट के उरुग्वे राउण्ड की बहुपक्षीय वार्ताओं के परिणामों के आधार पर विश्व व्यापार संगठन (WTO) के मूलभूत समझौते निम्न प्रकार हैं –

1. वस्तुओं के व्यापार के बहुपक्षीय समझौते (Multilateral Agreement on Trade in Goods)– (अ) **कृषि सम्बन्धी समझौता** (Agreement on Agriculture) – डब्ल्यू.टी.ओ. में कृषि क्षेत्र से सम्बन्धित चर्चाएँ सर्वाधिक विवादास्पद रही हैं। अंतिम अधिनियम (Final Act) में कृषि में निम्न मुद्दों पर सहमति बनी है –

(i) **घरेलू समर्थन** (Domestic Support) – सभी देशों को घरेलू समर्थन कीमतें कम करने का प्रावधान है। इसे समर्थन के लिये कुल उपाय (Aggregate Measeres for Support - AMS) कहा गया है। यदि समर्थन के लिये कुल उपाय (AMS) 10 प्रतिशत से अधिक हो जाते हैं, तब इन्हें 10 वर्षों में घटाकर 10 प्रतिशत की सीमा में रखना होगा। गैर-सीमा शुल्कों को भी आयात-निर्यात करों द्वारा प्रतिस्थापित करना होगा।

(ii) **निर्यात प्रतियोगिता** (Export Competition) – विश्व व्यापार संगठन का एक आधारभूत उद्देश्य विश्व व्यापार में प्रतियोगिता को बढ़ाना है। अतः वस्तु-बाजार में भी इसे बढ़ाना है। इसे एक नियमित व्यवस्था (Regulatory Regiones) के रूप में स्वीकारा गया है।

(iii) **बाजार पहुँच** (Market Access) – व्यापार अवरोधों को कम करके तथा भेद-भाव को समाप्त करके, चाहे ये विदेशी उपायों या घरेलू नीतियों के द्वारा किये जाएँ, सभी देशों के बाजार पहुँच के सिद्धान्त को स्वीकारा गया है। इसके लिये सीमा करों की बाध्यता को कम किया जाता है।

(ब) **कपड़ा और वस्त्रों का समझौता** (Agreement on Textiles & Clothing) – गैट के अन्तर्गत सन् 1994 में एक बहुतंत्रीय समझौता (Multi Fibre Agreement) किया गया था। इसे डब्ल्यू.टी.ओ. में भी स्वीकार कर लिया गया है। इस समझौते के अन्तर्गत विकसित देशों में संरक्षणात्मक प्रवृत्ति है, उसे समाप्त करने का प्रावधान है। इससे विकासशील निर्यातक देशों को स्वतंत्रतापूर्वक विकसित देशों को कपड़ा एवं वस्त्रों के निर्यात की सुविधा प्राप्त होगी।

(स) **व्यापार में तकनीकी बाधाओं का समझौता** (Agreement on Technical Barriers to Trade) – यह समझौता सुनिश्चित करता है कि तकनीकी विमर्श और मानक परीक्षण और प्रमाणन प्रणालियाँ व्यापार के मार्ग में बाधक न बनें।

(द) **व्यापार संबंधी निवेश उपायों के पहलुओं का समझौता** (Trade Related Investment Measures) – व्यापार से संबंधित निवेश उपाय (Trade Related Investment Measures – TRIMS) के अनुसार विदेशी निवेश पर सभी प्रकार के प्रतिबंध हटा देने चाहिए। प्रत्येक सदृश्य देश को विदेशी निवेशकर्ताओं को वे सभी सुविधाएँ देनी चाहिए जो वे घरेलू निवेशकर्ताओं को दे रहे हैं। विदेशी निवेशकर्ताओं पर निर्यात संबर्धन, स्थानीय कच्चे माल के प्रयोग या इसी प्रकार का कोई अन्य प्रतिबंध नहीं लगाया जाना चाहिए। संक्षेप में, WTO में TRIMS के प्रावधान विदेशी निवेशकों को विश्व में किसी भी आर्थिक क्रिया में निवेश करने के अवसर देते हैं।

2. **सेवाओं में व्यापार का सामान्य समझौता** (General Agreement on Trade in Services – GATS) – इस समझौते के अधीन पहली बार व्यापार के साथ-साथ **सेवाओं के विदेशी व्यापार** से भी प्रतिबंध हटाने का समझौता किया गया है। GATS में केवल उन्हीं सेवाओं को मुक्त व्यापार करने के लिए चुना गया है जिनके लिए उच्च किस्म की तकनीक (Advanced Technology) की आवश्यकता है जैसे, बैंकिंग, शिपिंग, यातायात, बीमा, टेलीकम्युनिकेशन्स आदि। इन सेवाओं पर से सभी प्रकार के प्रतिबंध समाप्त कर दिये जाने चाहिए तथा विदेशी कंपनियों को इन सेवाओं को प्रदान करने की पूर्ण स्वतंत्रता होनी चाहिए। विश्व व्यापार संगठन का यह मानना है कि इसका मुख्य लाभ विकसित देशों को होगा।

3. **बौद्धिक संपदा अधिकारों के व्यापार संबंधी पक्ष का समझौता** (Agreement on Trade Related Aspects of Intellectual Property Rights – TRIPS) – विश्व व्यापार संगठन के बौद्धिक सम्पदा अधिकारों से सम्बन्धित (TRIPS) समझौते में बौद्धिक सम्पत्ति से सम्बन्धित निम्न प्रावधान उल्लेखित है –

(अ) कॉपीराइट तथा तत्संबंधी अधिकार, ट्रेडमार्क, भौगोलिक संकेत, औद्योगिक डिजाइन, पेटेंट, संघटित सर्किट तथा व्यापारिक रहस्य (Trade Secrets)। यह समझौता बौद्धिक संपत्ति अधिकारों के दुरुपयोग को रोकने के उद्देश्य से विभिन्न देशों की सरकारों के मध्य विचार-विमर्श को प्रेरित करता है।

(ब) WTO 'व्यापार से संबंधित बौद्धिक संपदा अधिकार' संबंधी व्यवस्था उत्पादों के पेटेंट की व्यवस्था करती है। इसमें सभी देशों के विकास का स्तर एक माना गया है और उन्हें समान रूप से संरक्षण देने के लिए उच्च स्तर के

[illegible], ट्रेडमार्क, पेटेन्ट आदि का महत्व दिया गया है जिन देशों में पेटेंट की व्यवस्था नहीं है उन्हें यह व्यवस्था करने के लिए दस वर्ष का समय दिया गया है।

(स) पौधों के प्रजनन (Plant Breeding) के संरक्षण के लिये एवं विशेष व्यवस्था का प्रावधान किया गया है। यह व्यवस्था स्वे-जेनेरिस (Sui-generis) प्रणाली कहलाती है, जो पेटेंट व्यवस्था से अलग किन्तु बौद्धिक सम्पत्ति की रक्षा से सम्बन्धित है।

4. **विवाद निपटारा प्रणाली** (Dispute Settlement System)– सदस्य देशों के आपसी विवादों के निपटारे के लिए नियमों और प्रणालियों के समझौते में प्रावधान किये गये हैं। इसके लिए एक विवाद निपटारा संस्था (Dispute Settlement Body) की स्थापना की गयी है। इस विवाद निपटारा कार्यविधि में अल्पविकसित देशों के विशेष हित के कई लक्षण हैं, जिसमें WTO के डायरेक्टर जनरल के कार्यकाल तक स्वयंमेव पहुँच (Automatic Access) शामिल है, ताकि उसकी मध्यस्थता से किसी विवाद का संतोषजनक हल प्राप्त हो सके और कम समय की सीमा में ही पंच (Penal) अपने विमर्श (Deleberations) पूरे कर विवादों को सुलझाने में सहायक हो सकें।

5. **व्यापार नीति पुनरावलोकन तंत्र** (Trade Policy Review Mechanism – TPRM) – यह समझौता व्यापार तंत्र के सुचारु रूप से चलने के लिए बहुपक्षीय और अनेक पक्षीय व्यापार समझौतों के अंतर्गत व्यापार नीतियों और प्रक्रियाओं की व्याख्या करता है। व्यापार नीति अनुवीक्षण (TPR) प्रक्रिया ने व्यापार तथा आर्थिक सुधारों का मूल्यांकन करने के लिए देशों को काफी सहायता दी है और कुछ अंश तक उदारीकरण में भी योगदान दिया है। भविष्य में *TPR* प्रक्रिया अपने समझौतों को लागू करने का मूल्यांकन करने में WTO सदस्यों को सहायता देगी और व्यापार प्रणाली में संभावित प्रवृत्तियों के बारे में भागीदारों को चेतावनी भी देगी। कार्यप्रणाली में पूर्ण पारदर्शिता के लिए प्रत्येक सदस्य देश को निरन्तर अपने द्वारा जारी व्यापार नीतियों और प्रक्रियाओं की रिपोर्ट देना होगी। समय-समय पर इन नीतियों का गहराई से निरीक्षण भी किया जावेगा।

विश्व व्यापार संगठन का आलोचनात्मक मूल्यांकन
(Critical Appraisal of WTO Agreements)

विश्व व्यापार संगठन में गैट के उरुग्वे राउण्ड द्वारा 8 लंम्बे वर्षों की चर्चाओं के दौरान हुए विभिन्न समझौतों में से 28 समझौतों का समावेश किया गया है। इसमें सम्मिलित विभिन्न समझौतों का आलोचनात्मक मूल्यांकन निम्न प्रकार है –

1. **कृषि से सम्बन्धित समझौता** – यह एक विवाद का विषय रहा है कि डब्ल्यू.टी.ओ. के कृषि से सम्बन्धित समझौते का विकासशील देशों को लाभप्रद रहेगा या नहीं यह समझौता खाद्य सुरक्षा की उन्नति और आत्मनिर्भरता के लिए दी हुई सब्सिडियों तथा कृषि उत्पादों के निर्यात में वृद्धि के लिए सब्सिडी में कोई भेद नहीं करता, क्योंकि यह विकासशील देशों के उत्पाद के मूल्य के 10% तक की ही सब्सिडी की स्वीकृति देता है। अतएव उन देशों की सरकारों के लिए विशेष कृषि वस्तुओं में कीमत-सहायता देना लगभग असंभव हो जायेगा। यही बात निवेश-सब्सिडियों की भी है जो केवल अल्प आय वाले किसानों तक ही सीमित हैं। इस प्रकार किसानों के कुल आगतों जैसे ईंधन, बिजली, खाद, माल की ढुलाई, बीज आदि पर तथा उपभोक्ताओं के जन-वितरण इत्यादि के रूप में सब्सिडियाँ समाप्त ही करनी पड़ेंगी। सब्सिडियों में कटौती और बिल्कुल हटाने के साथ-साथ यदि विवेकी कीमत नीति नहीं अपनाई गई तो विकासशील देशों के किसानों की अपार क्षति होगी।

कृषि के क्षेत्र में मुक्त बाजार तथा आयतों से समस्त प्रतिबन्ध हटाने से भी कृषकों को हानि हो सकती है। इसके साथ ही कृषि में प्रयुक्त उर्वरक एवं कीटनाशक भी अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों द्वारा स्थापित मानदण्डों के अनुरूप होना चाहिए। अतः यह भी सम्भावित है कि ये संगठन विकासशील देशों की कृषि उपजों को असुरक्षित घोषित कर सकते हैं, किन्तु यदि विकसित देशों द्वारा अपने देशों में कृषि क्षेत्र को दी जाने वाली सब्सिडी समाप्त कर दी जाती है, तो इससे विकासशील देशों को लाभ होने की सम्भावना है।

2. **कपड़ा और वस्त्र** – कपड़ा और वस्त्रों से सम्बन्धित समझौते से सामान्यतः विकासशील देशों को लाभ होगा। यह लाभ बहुतंत्रीय समझौते (Multi-Fibre Agreement या MFA) को शामिल करने से प्राप्त होगा, किन्तु इस समझौते के संक्रमण काल (10 वर्ष) में विलम्ब होने से लाभ की मात्रा सीमित हो जावेगी। संक्षेप में, यह समझौता छोटे वितरकों और रुई-उत्पादक एवं निर्यातक विकासशील देशों के लिए लाभदायक होगा।

3. **व्यापार सम्बन्धीं निवेश उपायों के पहलुओं का समझौता** (TRIMS) – इस समझौते के अन्तर्गत यह प्रावधान है कि विदेशी निवेश कम्पनियों को घरेलू कम्पनियों के बराबर रखा जावेगा तथा विदेशी पूँजी के निवेश में आने वाली रुकावटों को रोकता है। यद्यपि इस समझौते में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश का नाम नहीं लिया गया है, तथापि

NOTES

यह आशंका है कि बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ विकासशील देशों में उच्च प्राथमिकता वाले क्षेत्रों पर नियंत्रण करने की चेष्टा करेंगे। संक्षेप में, TRIMS समझौते से राष्ट्रीय सरकारों की निर्णयात्मक शक्ति कम हो गई है।

4. **मात्रात्मक रुकावटें** (Quantitative Restrictions) – अपनी भुगतान सन्तुलन सम्बन्धी कठिनाइयों को दूर करने के लिये मात्रात्मक प्रतिबन्धों को विकासशील देशों के लिये अ-प्रभावकारी बना दिया है। इसे केवल न्यूनतम विकसित देशों तक सीमित कर दिया गया है। मात्रात्मक रुकावटों के स्थान पर कीमत आधारित उपाय लागू किए जा सकते हैं। विकासशील देशों को भिन्न-भिन्न वस्तुओं पर भिन्न-भिन्न दरों से कर लगाने का अधिकार दिया गया है जिससे कि वे अनावश्यक वस्तुओं के आयातों को निरुत्साहित कर सकें।

5. **सेवाओं में व्यापार का सामान्य समझौता या गेट्स** (GATS) – सेवाओं में व्यापार से सम्बन्धित समझौते या गेट्स सामान्यतः विकासशील देशों के हितों के विरुद्ध जाता है। यह उन्हीं सेवाओं के उदारीकरण पर जोर देता है जिनमें विकसित देशों को निश्चित लाभ है, जैसे आर्थिक, जलपोत संबंधी, परिवहन और संचार सेवाएँ, स्वास्थ्य, शिक्षा, व्यवसाय और मीडिया सेवाएँ। सेवाओं के व्यापार में उदारीकरण द्वारा विकसित देशों का मुख्य ध्येय विकासशील देशों के उत्पादन और सेवाओं के प्रयोग पर नियंत्रण की चेष्टा करना ही है।

विवाद का मुख्य मुद्दा यह है कि विकासशील देशों के सेवा-क्षेत्र को विकसित देशों की फर्मों के विशाल संसाधनों की प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ेगा। कुछ विकासशील देशों के पास कुशल और अकुशल कर्मियों का तुलनात्मक अधिक लाभ है, परन्तु उनके स्वतन्त्र आवागमन के विरुद्ध विकसित देशों ने कठोर आप्रवासिक कानून बना रखे हैं। सेवा क्षेत्र के इस पहलू पर कोई सुझाव नहीं दिया गया क्योंकि चयनात्मक बुद्धिजीवी पलायन से विकसित देशों को ही लाभ होता है।

6. **बौद्धिक सम्पत्ति अधिकारों के व्यापार से सम्बन्धित समझौते-ट्रिप्स** TRIPS – आलोचकों का मत है कि बौद्धिक सम्पत्ति अधिकारों से सम्बन्धित समझौता या ट्रिप्स समझौता विशेषतः पक्षपातपूर्ण है। यह अनेक कारणों से विकसित देशों के हित में होगा और विकासशील देशों को अहितकर। यह औषधियों, कृषि पौधे और पशु आदि संबंधी पेटेंट प्रणाली के अंतर्गत प्रभावी क्षेत्र का विस्तार करेगा। क्योंकि विकसित देशों और उनकी बहुदेशीय कंपनियों के पास अनुसंधान और विकास के असीम साधन और सुविधाएँ हैं, इसलिए उन्हें निवेश करने और प्रक्रियाओं तथा वस्तुओं को पेटेंट करवाने की अधिक सुविधा होगी। ऐसी सब स्थितियों में विकासशील देशों को रॉयल्टी देनी पड़ेगी। ऐसे सब पदार्थों, विशेषतया औषधियों तथा मशीनों की कीमतें बढ़ जाएँगी और उपभोक्ता पर अधिक भार पड़ेगा। विकासशील देशों में पेटेंट किए हुए कच्चे माल और पदार्थों का और अधिक आयात होगा और निर्यात को आघात पहुँचेगा। परिणामस्वरूप, भुगतान-शेष और अधिक बिगड़ेगा।

विकसित देश भी ट्रिप्स से प्रभावित होंगे। एक अनुमान के अनुसार, यदि ट्रिप्स समझौते का पूर्णतया पालन किया गया तो औषधियों की कीमतों में आकाशभेदी वृद्धि होगी और विश्व की 90% आबादी पर इसका कुप्रभाव पड़ेगा।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि विश्व व्यापार संगठन के अनेक प्रावधान विकसित देशों के पक्ष में। इनमें से कुछ समझौते विकासशील देशों को हानि भी पहुँचा सकते हैं, किन्तु यदि दीर्घकालीन प्रभावों का अध्ययन करें तो यह स्पष्ट होगा कि विकासशील देशों को विकास का अवसर प्राप्त होगा और वे अपनी प्रतियोगी शक्ति को बढ़ाकर स्वतंत्र व्यापार से लाभान्वित हो सकते हैं।

भारत एवं विश्व व्यापार संगठन
(India and World Trade Organisation)

भारत विश्व के उन प्रमुख देशों में से एक है जो मुक्त व्यापार एवं बहुपक्षीय व्यापार समझौता प्रणाली के समर्थक हैं। इसी तारतम्य में भारत पहले गैट (GATT) और फिर बाद में विश्व व्यापार संगठन (WTO) का संस्थापक सदस्य रहा। विश्व व्यापार संगठन के प्रति वचनबद्धता के कारण ही भारत ने इस संगठन द्वारा लिये गये सभी निर्णयों का स्वागत किया और तदनुसार उनका अनुशरण किया। **भारत को विश्व व्यापार संगठन से सम्भावित लाभ** निम्न प्रकार हैं –

(1) **निर्यात व्यापार** – विश्व व्यापार संगठन का सदस्य बने रहने से भारत के 144 देशों के साथ बहुपक्षीय समझौते संभव हो जायेंगे। इन देशों के साथ द्विपक्षीय समझौते नहीं करने पड़ेंगे। इसके अलावा सीमा शुल्क की दरों में कमी और मंडियाँ खुलने से व्यापार में वृद्धि होती है। अनुमान है कि WTO समझौते के फलस्वरूप विश्व व्यापार में 2,000 से 3,000 करोड़ डालर की वृद्धि होगी। कृषिगत पदार्थों के निर्यात के बढ़ने के भी नये अवसर उत्पन्न हुए हैं, क्योंकि विदेशों में कृषि पर सब्सिडी कम होगी साथ ही कृषिगत निर्यातों पर भी सब्सिडी घटेगी जिससे भारतीय माल के बिकने की संभावनाएँ बढ़ेंगी।

व्यापार पर कोटा संबंधी प्रतिबंध लागू थे, 2005 तक समाप्त कर दिये जायेंगे। कोटा निर्धारण प्रक्रिया समाप्त हो जाने से भारत को अपने वस्त्रों एवं सिले-सिलाये कपड़ों के निर्यात में वृद्धि करने में मदद मिलेगी।

(3) **सेवा क्षेत्र** – विश्व व्यापार संगठन के प्रस्ताव के अंतर्गत सेवा क्षेत्र के व्यापार को शामिल कर लेने से भारत जैसे विकासशील देशों को लाभ प्राप्त होगा। इस प्रस्ताव के अनुसार विकसित देश विकासशील राष्ट्रों में अनेक व्यापारिक एवं सेवा के प्रतिष्ठानों जैसे बैंक, यातायात, होटल आदि खोलेंगे। इसके बदले में विकसित राष्ट्र भारत को अपनी वस्तुएँ बेचने के लिए व्यापक बाजार उपलब्ध करायेंगे।

(4) **व्यापार संबंधित बौद्धिक संपदा अधिकार** – कॉपीराइट, ट्रेडमार्क, ट्रेड सीक्रेट्स, औद्योगिक डिजाइन, विद्युत आपूर्ति, भौगोलिक संकेतांक और पेटेंट्स को बौद्धिक संपदा अधिकार के अंतर्गत रखा गया है। इस प्रस्ताव से भारत को कोई विशेष हानि होने वाली नहीं है, क्योंकि केवल पेटेंट्स को छोड़ अन्य सभी क्षेत्रों में भारत की न्यायिक और प्रशासनिक पद्धति अंतर्राष्ट्रीय स्तर की है।

पेटेंट्स के संबंध में यह आशंका है कि इससे दवाइयों की कीमत में थोड़ी वृद्धि हो सकती है, परन्तु इस संबंध में भी विशेष चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि भारत में कुल उपलब्ध दवाइयों में से केवल 10% से 15% दवाइयाँ ही पेटेंट सूची के अंतर्गत हैं।

(5) **राशिपातन से सुरक्षा** – राशिपातन से सुरक्षा के लिये यह व्यवस्था की गई है कि यदि आयातकर्ता देश के घरेलू उद्योग को हानि पहुँचाता है तो अनुबंधित सदस्यों को अधिकार है कि वे राशिपातन-विरोधी उपायों को अपनाएँ। भारत में कई देशों द्वारा अपने उत्पादों का राशिपातन किया जाता है, इन नियमों से यहाँ की सरकार को राशिपातन के खिलाफ नियम बनाने में मदद मिलेगी।

(6) **विदेशी-मुद्रा भंडारों में वृद्धि** – भारत के निर्यातों एवं विशेषज्ञों की सेवाओं के निर्यात से होने वाली वृद्धि से विदेशी-मुद्रा की प्राप्ति होगी तथा देश में एक मजबूत विदेशी-मुद्रा कोष बनेगा।

(7) **विदेशी निवेश में वृद्धि** – समझौते में विदेशी निवेश कंपनियों को घरेलू कंपनियों के बराबर रखे जाने की व्यवस्था है। इससे देश में विदेशी निवेश बढ़ेंगे।

(8) **विदेशी वस्तुओं की उपलब्धता** – गैट समझौते से उदारीकरण को जो बल मिलेगा उससे देश में विदेशी वस्तुएँ उचित मूल्य पर पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होंगी।

यह कहना ठीक नहीं है कि भारत को विश्व व्यापार संगठन से लाभ ही लाभ प्राप्त होंगे, हानि नहीं। आलोचकों का मत है कि भारत जैसे तीसरे विश्व तथा विकासशील देशों में निम्न **हानियों** की भी सम्भावनाएँ हैं–

(1) **कृषि क्षेत्र** – विश्व व्यापार संगठन की सदस्यता से भारत का कृषि क्षेत्र को निम्न प्रकार से हानि की सम्भावना है –

(i) कृषकों को कृषि सम्बन्धी तकनीकी, उन्नत बीजों, कीटनाशक, उर्वरक कृषि यंत्र आदि बहुराष्ट्रीय कम्पनियों से खरीदने होंगे;

(ii) कृषि को मिलने वाली सब्सिडी धीरे-धीरे समाप्त हो जाएगी जिससे छोटे एवं लघु कृषकों को हानि उठाना पड़ेगी।

(iii) खाद्यान्नों का देश की कुल खपत का 3% अनिवार्य रूप से आयात करना होगा जिससे देश भुगतान सन्तुलन पर बुरा प्रभाव पड़ेगा।

(2) **विदेशी विनियोग** – भारत विदेशी विनियोग पर कोई नियंत्रण नहीं लगा सकेगा। फलतः बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ यहाँ अपने उद्योग स्थापित करने के लिये स्वतंत्र होगी। इससे घरेलू उद्योगों पर बुरा प्रभाव पड़ेगा। विदेशी विनियोग सम्बन्धी समझौतों से राष्ट्रीय सरकारों की निर्णयात्मक शक्ति कम होगी।

(3) **बौद्धिक सम्पदा अधिकार** – इनसे भारत को हानि होना सम्भावित है, जो कि निम्न प्रकार सम्भावित हैं –

(i) औषधियों, कृषि और पशु आदि सम्बन्धी पेटेंट प्रणाली का विस्तार होगा। चूँकि विकसित देशों के पास अनुसंधान और विकास के अधिक साधन हैं, फलतः पेटेंट प्रणाली का उन्हें अधिक लाभ होगा।

(ii) विदेशी विनियोग की छूट, पेटेंट के लिये रायल्टी का भुगतान आदि से देश की मुद्रा बाहर जाएगी जिससे भुगतान सन्तुलन प्रभावित होगा।

(iii) विकासशील देशों को पेटेंट किए गए कच्चे माल का आयात करना होगा। इससे अनावश्यक रूप से आयातों में वृद्धि होगी।

(4) **सेवा क्षेत्र** – सेवाओं के सामान्य समझौते विकसित देशों के पक्ष में हैं, क्योंकि उन्हीं सेवाओं को उदारीकृत किया गया है जिनका लाभ उन्हें मिले। भारत की बैंकिंग, बीमा, यातायात, शिक्षा तथा होटल आदि को बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की सेवाओं से प्रतियोगिता करना होगी।

(5) **अन्य हानियाँ** –

(i) मात्रात्मक प्रतिबन्धों के स्थान पर मूल्य आधारित प्रतिबन्धों को अपनाना होगा।

(ii) निर्यातों की तुलना में आयातों में अधिक वृद्धि होगी जिससे भुगतान सन्तुलन प्रभावित होगा।

(iii) ऐसा अनुमान है कि विकसित देशों द्वारा बाल-श्रम, मानवाधिकार, पर्यावरण एवं अन्य सामाजिक मुद्दों पर भारत के निर्यातों पर प्रतिबन्ध लगाए जाएगी।

विश्व व्यापार संगठन के समझौते भारत जैसे तीसरे विश्व के देशों के लिये चुनौती हैं। अतः इनसे लाभ तभी उठाया जा सकता है कि देश को तकनीकी दृष्टि विकसित किया जाए जिससे लागतों में कमी के साथ-साथ औद्योगिक एवं कृषि उत्पादनों में गुणवत्ता में सुधार लाया जाये। चीन का उदाहरण हमारे सामने है, जो अनेक क्षेत्रों में विश्वस्तरीय वस्तुओं का उत्पादन कर बड़ी मात्रा में निर्यात कर रहा है। अतः भारतीय अर्थव्यवस्था को भी कुशलता प्राप्त करनी होगी जिससे कि यहाँ के उत्पादन विश्व-प्रतियोगिता का सामना कर सके।

भारत द्वारा आयातों पर मात्रात्मक प्रतिबन्धों की समाप्ति– विश्व व्यापार संगठन के समझौते के अनुरूप भारत सरकार देश के आयातों पर से मात्रात्मक प्रतिबन्धों (Quantitative Restrictions – QRs) को समाप्त कर दिया है। इस सम्बन्ध में सरकार ने WTO के एक फैसले के परिप्रेक्ष्य में अमेरिका के साथ 29 दिसम्बर, 1999 को एक समझौते पर हस्ताक्षर किये हैं।

अमेरिका के साथ हुए समझौते के अन्तर्गत भारत ने 714 उत्पादों पर से मात्रात्मक प्रतिबन्ध अप्रैल 2000 तक हटा लिये हैं तथा शेष 714 उत्पादों पर से मात्रात्मक प्रतिबन्ध 31 मार्च, 2001 को घोषित वर्ष 2001-2002 की आयात-निर्यात नीति में हटा दिये गये हैं।

WTO के मंत्रि-स्तरीय सम्मेलन
(Ministerial Conference of WTO)

मन्त्रिस्तरीय सम्मेलन WTO की नीतियों के निर्धारण हेतु सर्वोच्च शक्तिशाली मंच है। अब तक छः मंत्रिस्तरीय सम्मेलन हो चुके हैं जैसा कि सारणी-1 में दर्शाया गया है :

सारणी 1 – WTO के मंत्रि-स्तरीय सम्मेलन

सम्मेलन	वर्ष	स्थान
पहला	9-13 दिसम्बर, 1996	सिंगापुर
दूसरा	18-20 मई, 1998	जेनेवा
तीसरा	30 नवम्बर-3 दिसम्बर, 1999	सिएटल
चौथा	9-14 नवम्बर, 2001	दोहा (कतर)
पाँचवाँ	10-14 सितम्बर, 2003	कैनकुन मेक्सिको
छठवाँ	13-18 दिसम्बर, 2005	हांग-कांग (चीन)

WTO का छठवाँ मंत्रि-स्तरीय सम्मेलन
(Sixth Ministerial Confrence of WTO)

विश्व व्यापार संगठन की भावी कार्य योजना का विनिश्चय करने के लिए 13 से 18 दिसम्बर, 2005 को **हांगकांग** में छठवें WTO के मंत्रिस्तरीय सम्मेलन का आयोजन किया गया। इस सम्मेलन में 150 सदस्य राष्ट्रों के वाणिज्य मंत्रियों ने भाग लिया। इस सम्मेलन में **टोंगा** को भी WTO का नया सदस्य बनाया गया।

इस मंत्रिमंडलीय सम्मेलन के विचार-विमर्श में भारत ने सक्रिय भूमिका निभायी। भारतीय प्रतिनिधि मण्डल का नेतृत्व वाणिज्य मंत्री कमलनाथ द्वारा किया गया। इस सम्मेलन में मुख्य रूप से कृषि सब्सिडी में कटौती के साथ-साथ औद्योगिक उत्पादों पर प्रशुल्कों में कटौती व सेवा क्षेत्र से संबंधित मुद्दे छाए रहें। इस सम्मेलन में विकसित देशों ने कृषि निर्यात पर दी जाने वाली समस्त सब्सिडी को सन् 2013 तक समाप्त करने की घोषणा की है जिससे भारत सहित अन्य विकासशील देशों के किसानों को विदेशी प्रतियोगिता से राहत मिल सकेगी। साथ ही औद्योगिक उत्पादों के आयातों पर प्रशुल्क घटाने के संबंध में भी विकसित देश सहमत हुए है, इसके अन्तर्गत विकासशील देश कुछ विशेष उत्पादों की सूची बना सकेंगे जिन्हें प्रशुल्क कटौती से बाहर रख जा सकेगा।

विश्व व्यापार संगठन की चुनौतियाँ
(Challanges of WTO)

NOTES

सीमाओं और रुकावटों के बिना व्यापार आज की जरूरत है। डब्ल्यूटीओ में अब 151 देश हैं। टोंगा अभी उसमें शामिल हुआ है। वह फिलहाल दुनिया का सबसे ताकतवर बहुपक्षीय व्यापार संगठन बन गया है। अपनी अर्थव्यवस्था के खुलने से भारतीय व्यापार को भीतर और बाहर कुछ चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। उसे भी बाहरी देशों में अपने व्यापार की संभावनाएँ तलाशनी चाहिए। विकासशील देशों की आवाज के तौर पर भारत की भूमिका को अब धीरे-धीरे महसूस किया जाने लगा है। दोहा में हुए डब्ल्यूटीओ की वार्ताओं में यह साफतौर पर दिखाई दिया।

उम्मीद है कि अगले बजट में उत्पाद शुल्क और भी कम हो जाएगा। तब बाहर से प्रतिस्पर्धा और जबर्दस्त हो जाएगी। लघु उद्योग इकाइयों पर उसका सबसे ज्यादा असर होगा। उद्योगों के लिए आगे सबसे बड़ा काम यह है कि वे लागत को घटाएँ और उत्पादों को बेहतर बनाएँ। पिछले दस सालों में जबसे सुधार शुरू हुए हैं, इस मामले में जबरदस्त बदलाव आया है। कई व्यापारिक प्रतिष्ठानों ने खुद को सँवारा है और प्रबंधन को बेहतर बनाया है।

आकार एक अलग मुद्दा है। विदेशों में उत्पादन बढ़ाने के लिए कंपनियाँ साझेदारी कर रही हैं, मिल-जुल रही हैं। इस साझेदारी ने जबरदस्त संस्थान बनाए हैं। वे एक ओर रिसर्च पर खूब पैसा खर्च कर सकते हैं। दूसरी ओर बाजार में ठोक-ठाक दामों पर अपना माल भी ले आते हैं। एक उदाहरण लें। 'टाइम वारनर' और 'अमेरिका आन-लाइन' आपस में मिल गए। यह सौदा तकरीबन 105 अरब डालर का था इसी तरह दो ब्रिटिश कंपनियाँ 'स्मिथ क्लाइन बीचम' और 'ग्लैक्सी वेलकम' मिल गईं। यह सौदा भी करीबन 77 अरब डालर मूल्य का बताया जाता है।

ऑटोमोबाइल उद्योग ने सन् 1998 में कार बनाने वाली दो कंपनियाँ जर्मनी की 'डाइमलर बेंज एजी' और अमेरिका की 'क्रिसलर कॉरपोरेशन' आपस में मिल गईं। इस साझेदारी से उनका उत्पादन 40 अरब डालर मूल्य तक पहुँच गया। ये कुछ उदाहरण हैं। कहा जा रहा है कि सन् 2000 में ही 25 बड़ी कंपनियाँ साझेदारी की दुनिया में आ गईं। इस वैश्वीकरण के दौर में टिके रहने और विस्तार करने के लिए उद्योगों ने खुद के लिए नई सोच विकसित की और प्रबंधन के अलग तौर-तरीकों को खोजा। कॉरपोरेट तरीके का कामकाज, बेहतर और पारदर्शी हिसाब-किताब, मानवीय प्रबंधन और नयी मानव संसाधन तकनीक को उद्योगों में लागू किया गया

अपने देश के लिए अगले पाँच साल अहम हैं। वैश्वीकरण महज भारतीय कंपनियों के लिए पश्चिम के दरवाजे ही नहीं खोलेगा, बल्कि हमारे बाजार भी उनके लिए खुलेंगे। यही एक मायने में इम्तिहान का दौर होगा। हमने देखा है कि एक समान अवसर की कमी से कई घरेलू कंपनियाँ विदेशी प्रतिस्पर्धा के दबाव में ढह गईं। यह एक बड़ी दिक्कत है, जिसका समाधान जरूरी है। इसके बिना भारतीय कंपनियाँ विदेशी कंपनियों को टक्कर नहीं दे पाएँगी और न ही अपने को बढ़ा ही पाएँगी।

घरेलू कंपनियों को कई दिक्कतों से उलझना पड़ता है। मसलन, पूँजी की भारी कीमत, कमजोर बुनियादी सुविधाएँ, बिजली के ज्यादा दाम, पुराने श्रम कानून आदि। सरकार की भूमिका यह है कि विकास का सही रास्ता निकाले। उसमें नयी और पुरानी अर्थव्यवस्था का कायदे से मेल हो जाए। अभी तक एक ही उद्योग है, जो अंतरराष्ट्रीय लिहाज से खड़ा हो पाया है। वह है कंप्यूटर सॉफ्टवेयर। इस तरह के कई उद्योग आगे आ सकते हैं। अगर लगातार उन्हें बेहतर प्रतियोगी बनाने की सही कोशिश की जाए तो वे भारत की बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ बन सकती हैं।

अंतरराष्ट्रीय व्यापार में विश्व व्यापार संगठन के तहत चुनौतियों का सामना तो करना ही है। इसके अलावा अपनी अर्थव्यवस्था में जबरदस्त बदलाव भी करने होंगे। उसमें भी निवेश और बचत पर खास ध्यान रखना पड़ेगा।

निवेश और बचत
(Investment and Saving)

सकल घरेलू उत्पाद की विकास दर बढ़ने का मतलब ही निवेश में बढ़ोत्तरी है। मोटे तौर पर जीडीपी में एक फीसदी की बढ़ोत्तरी का मतलब निवेश में 3.5 से 4 फीसदी बढ़ाव होता है। अगर अर्थव्यवस्था को सात फीसदी विकास दर पर लाना है, तो निवेश को जीडीपी के 26 फीसदी पर लाना जरूरी होगा। फिलहाल निवेश लगभग 23 फीसदी है।

सीधे विदेशी निवेश को बहुत बढ़ा-चढ़ाकर पेश नहीं करना चाहिए। हालाँकि सरकार ने एफडीआई के लिए दस अरब डालर सालाना का लक्ष्य तय किया था, लेकिन अभी तक वह तीन अरब डालर से आगे नहीं बढ़ सका है। गौरतलब है कि चीन में यह सालाना 50 अरब डालर है। इसमें कमी की सबसे बड़ी वजह कायदे का व्यापारिक माहौल न होना है। अगर इस दिशा में जरूरी कदम उठा लिए जाएँ, तो कोई वजह नहीं कि हमें जीडीपी के दो फीसदी से ज्यादा निवेश अपने यहाँ ले आने को विवश होना पड़े।

NOTES

धीमेपन के दौर से निकलने की कोशिश

राजस्व घाटे के और बढ़ जाने की कीमत पर भी सरकार को कुछ ज्यादा पैसा खर्च कर अर्थव्यवस्था को उठाना चाहिए। ये पैसा सरकार को बुनियादी क्षेत्र या विकास के कामों में खर्च करना चाहिए। जैसे :- सड़क, बंदरगाह और बिजली वगैरह। फिलहाल अपने पास विदेशी मुद्रा का भंडार 45 अरब डालर के आसपास है। अगर सरकार बुनियादी परियोजनाओं में तीन से पाँच अरब डालर खर्च कर दे तो कमाल हो सकता है। यह खर्च करने के बावजूद हमारे पास 40 अरब डालर से ज्यादा का विदेशी मुद्रा भंडार बचा रहेगा।

रोजगार के अवसर बढ़ाना

अधिक आर्थिक विकास से आम आदमी की समस्या हल नहीं होगी, अगर वह कमजोर वर्गों की आमदनी नहीं बढ़ाती। विकास के बावजूद गरीबी कम नहीं होगी। आज लगभग 30 फीसदी लोग गरीबी रेखा के नीचे हैं। इसीलिए स्तरीय विकास में बेहतर आय का होना खास मायने रखता है।

यह जरूरी है कि अधिक विकास से ज्यादा रोजगार के मौके निकल आएँ। उद्योग बहुत ज्यादा लोगों को अपने यहाँ नहीं खपा सकते, क्योंकि वे पूँजी केन्द्रित हैं और फिर उन्हें दुनिया के साथ प्रतियोगिता में भी खड़ा होना है, लेकिन दो ऐसे क्षेत्र हैं, जहाँ लोगों की खपत आसानी से हो सकती है। वे हैं बुनियादी और सेवा क्षेत्र। इसके अलावा कृषि क्षेत्र तो है ही।

निर्माण का काम श्रम आधारित है। बड़े शहारों को जोड़ते हाइवे या राजमार्ग, शहरों, कस्बों और गाँवों को जोड़ती, सड़कें, मकान और बिल्डिंग वगैरह के काम में भी काफी लोगों को रोजगार मिल सकता है और यह काम पूरे देश में फैला हुआ है।

एक और क्षेत्र सेवा का है – व्यापार और वाणिज्य। होटल और रेस्टोरेंट, बैंकिंग और बीमा, कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर वगैरह रोजगार और आय बढ़ाने के कारगर रास्ते हो सकते हैं। इसके अलावा कृषि क्षेत्र में रोजगार के अवसरों का पूरी तरह से इस्तेमाल ही नहीं किया गया है। अगर कृषि को भी कॉरपोरेट रंग दे दिया जाए तो उससे खेती की नयी तकनीक का तो विकास होगा ही, रोजगार के अवसर भी बढ़ेंगे। खाद्य प्रसंस्करण इसका इच्छा विकल्प साबित हो सकते हैं।

रोजगार के अवसर बढ़ाना बेहद जरूरी है। विकास की राह ऐसी होनी चाहिए ताकि यह जरूरत खुद ही पूरी हो जाए। अगर ऐसा नहीं होगा तो विकास गलत दिशा में होगा और लोग उसके खिलाफ खड़े होने को मजबूर हो जाएँगे।

श्रम सुधार

सुधार की प्रक्रिया शुरू हुए अब एक दशक हो गया है, लेकिन एक क्षेत्र ऐसा है, जहाँ अभी तक कोई ध्यान नहीं दिया गया है। वह है श्रम सुधार। वित्त मंत्री ने अपने पिछले बजट भाषण में इस दिशा में कदम उठाने का वादा किया था, लेकिन अभी तक कोई ठोस काम होता नहीं दिख रहा है। विकास की चुनौतियों के मद्देनजर अपने श्रम कानूनों को भी अंतरराष्ट्रीय मानदंडों के अनुरूप होना चाहिए। श्रम कानूनों में बदलाव ला कर रोजगार का प्रबंधन और कर्मचारी के बीच कांट्रेक्ट या अनुबंध के तौर पर लागू करना चाहिए। जैसा चीन में है।

लेकिन इस तरह के कानून तभी कारगर हो सकते हैं, जब सामाजिक सुरक्षा का जाल मजबूत हो। इसीलिए जो लोग बेरोजगार हैं, उनके लिए सामाजिक सुरक्षा की प्रक्रिया के लिए एक संगठन होना चाहिए। तभी नये श्रम कानूनों को लागू करना चाहिए।

उचित वातावरण

यह साफ तौर पर समझ लेना चाहिए कि अर्थव्यवस्था का प्रदर्शन सही माहौल पर निर्भर करता है। यह माहौल नीतियों को प्रभावित करने वाली कई चीजों पर टिका होता है। मसलन - प्रशासन, व्यापारिक प्रतिष्ठानों का रवैया और कर्मचारी। अगर माहौल बेहतर होने से लोग अपना सर्वश्रेष्ठ कौशल दे रहे हों, तो अर्थव्यवस्था शिखर पर जाएगी ही। विकास दर बढ़ ही जाएगी। रोजगार भी बढ़ेगा। आय का बेहतर वितरण होगा और जाहिर है गरीबी में कमी आएगी।

राजनीतिक माहौल

अपना लोकतंत्र लोक लुभावन तरीकों पर टिका हुआ है। इसी वजह से अजीबों-गरीब नीतियाँ सामने आती हैं। अर्थव्यवस्था के खास क्षेत्रों - बिजली, सिंचाई, यातायात और संचार वगैरह में पिछड़ जाने की एक अहम् वजह यही है। राज्यों के बिजली बोर्ड यों ही घाटा में नहीं हैं। ये बोर्ड हर साल 15 हजार करोड़ रुपए का घाटा झेल रहे हैं। सही मायनों में वे दीवालिया हो गए हैं।

NOTES

सिंगापुर, दक्षिण कोरिया, ताइवान और हांगकांग वगैरह, जिन देशों ने तेजी से विकास किया है वे इसलिए ऐसा कर सके क्योंकि वहाँ की आर्थिक नीतियाँ राजनीति की मोहताज नहीं थीं। हमें एक ऐसा लोकतंत्र बनाना है जो आबादी और जिम्मेदारी में संतुलन या तालमेल बिठा सके। जहाँ फैसले राजनीतिक पूर्वाग्रहों से नहीं बल्कि मेरिट या योग्यता के लिहाज से हों। उस लोकतंत्र में नेताओं के लिए भी यही लक्ष्य हों। असल नेतृत्व वही है, जो लोगों को समझा सके कि क्या सही है और क्या गलत? वह भी लंबे समय को ध्यान में रखकर न कि तात्कालिक या उसी समय के हितों के लिहाज से। ऐसा नहीं हुआ तो तात्कालिकता लंबे समय तक हावी हो जाएगी।

भ्रष्टाचार को जड़ से मिटाना

अगर भ्रष्टाचार चारों ओर जड़ें जमा लेता है तो आर्थिक विकास की नीति धीमी पड़ जाती है। भ्रष्ट देश के मामले में भारत नीचे से 71 वें नंबर पर है। उसे दस में से 2.7 अंक ही मिल सके हैं। अभी तक चीन हमारे साथ कदमताल करता था। अब उसने अपनी स्थिति सुधार ली है, वह 57वें पर पहुँच गया है। घोटालों और भ्रष्टाचारों की बातें लगातार सुनाई पड़ती रहती हैं। पिछले दो साल में ही वित्तीय घोटालों वगैरह के ढेरों मामले सामने आए हैं। उनमें बैंकों, वित्तीय संस्थानों और सरकार के आला-अफसर जुड़े पाए गए हैं। हालाँकि हर्षद मेहता के मामले को दस साल हो चुके हैं, लेकिन उसकी याद लोगों में अब भी तरोताजा हैं। बैंक और वित्तीय संस्थानों के बड़े अफसर कैसे इस तरह की भ्रष्टाचार गतिविधियों में जकड़ जाते हैं, यह अपने-आप में बड़ी चिंता का विषय है।

इन सब घोटालों ने देश का नाम डुबोया है। अगर कस्टम का प्रमुख तस्करी के मामले में पकड़ा जाएगा, तो विदेशी मीडिया बड़ी तादाद में बड़े सरकारी अधिकारियों पर भ्रष्टाचारी होने की बात कह सकते हैं या उंगली उठा सकते हैं। इससे समाज पर दोहरी मार पड़ती है जो भी कहा जाता है, उतना फायदा लोगों को नहीं मिलता या सही लोगों को नहीं मिल पाता। फिर इस तरह के घोटालों से प्रोजेक्ट की लागत बढ़ जाती है। अर्थव्यवस्था का विकास भी रुक जाता है। सबसे बुरा असर तो कामकाजी लोगों की मानसिकता पर पड़ता है।

अनुमान है कि इस देश में सरकारी प्रतिष्ठानों का कुल मिलाकर खपत में छठवाँ हिस्सा है और निवेश में एक तिहाई, तो जाहिर है कि विकास की दर एक फीसदी सिकुड़ हो जाएगी। भ्रष्टाचार बेहतर प्रशासन से ही दूर हो सकता है उसके लिए प्रतिबद्ध नेतृत्व की जरूरत है। फैसलों में पारदर्शिता चाहिए और एक सामूहिक पहल की दरकार है, जिसमें जागरूक प्रेस भी शामिल है।

उच्च आर्थिक विकास पाने के लिए चुनौतियाँ तो बहुत हैं लेकिन ये चुनौतियाँ सरकार और व्यापार से परे की चीज नहीं हैं। वे इन चुनौतियों से लड़ सकते हैं। किसी भी समस्या को तभी सुलझाया जा सकता है, अगर उसके लिए ठोस इच्छाशक्ति हो। कुछ समस्याएँ बहुत गहरी होती हैं, उन्हें सुलझाने में विकास हो सकता है, लोगों का जीवन स्तर सुधारा जा सकता है। आज जरूरत इस बात की है कि आर्थिक विकास को मुख्यधारा में लाया जाए। बाकी मुद्दे बाद में निपटा लिए जाएँगे। इससे उत्साहजनक नतीजे निकलेंगे।

चुनौतियाँ तो बढ़ती ही रहेंगी, लेकिन ठोस इच्छाशक्ति से हम उनसे पार पा सकते हैं। कुल मिलाकर भारतीय अर्थव्यवस्था में ही ये संभावनाएँ निहित हैं। बस जरूरत इस बात की है कि आर्थिक मामलों से जुड़े तमाम लोग इन चुनौतियों से जूझने की एक ईमानदार कोशिश करें।

तीसरे विश्व के देशों में निर्यात के मार्ग में अवरोध
(Barriers to Exports from The Third World Countries)

तीसरे विश्व से आशय उन विकासशील देशों से है जो यद्यपि विकसित देशों की तुलना में पिछड़े हैं, तथापि तेजी से विकास के मार्ग में आगे बढ़ रहे हैं। अति आधुनिक मशीनें एवं उन्नत तकनीकी के अभाव में ये देश उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों को समुचित विदोहन नहीं कर पा रहे हैं। फलत: इन देशों की प्रति व्यक्ति आय विकसित देशों की तुलना में कम है।

इन देशों की एक विशेषता यह है कि यहाँ जनसंख्या वृद्धि की दर लगभग 2.0 प्रतिशत प्रति वर्ष है, जो कि विकसित देशों की तुलना में बहुत अधिक है। तीव्र जनसंख्या की वृद्धि के कारण इन देशों में जहाँ उपभोग व्यय तेजी से बढ़ रहा है, वहीं बचत एवं पूँजी-निर्माण की दर में वृद्धि धीमी गति से हो रही। इसके साथ ही तीसरे विश्व के देशों में धीमी विकास दर के कारण बेरोजगारी एवं गरीबी जैसी भयावह समस्याएँ विद्यमान हैं। इन समस्याओं के कारण इन देशों में जहाँ पूर्ण मशीनीकरण सम्भव नहीं है, वहीं श्रम-गहन तकनीकी के अपनाने से उत्पादन लागत को प्रतियोगी बनाना कठिन हो जाता। इससे विकास दर भी प्रभावित होती है।

इन देशों की एक समस्या भुगतान सन्तुलन के असाम्य की भी है। जहाँ औद्योगीकरण के लिये इन देशों को बड़ी मात्रा में आयात करना होता है, जिससे कि मशीनें, तकनीकी विशेष प्रकार के कच्चे एवं अर्ध-निर्मित माल, रासायनिक एवं अन्य अनेक पदार्थ को प्राप्त किया जा सके, वहीं दूसरी ओर निर्यातों में वृद्धि नहीं हो पाती। फलत: भुगतान सन्तुलन

के असाम्य की भयावह समस्या का सामना करना पड़ता है। इस समस्या से निपटने के लिये इन देशों को अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं एवं विकसित देशों से ऋण लेना पड़ता है। कहा जाता है कि इन देशों पर ऋण भार इतना अधिक हो गया है कि ये **"ऋण जाल"** में फँस चुके हैं। प्रतिवर्ष मूलधन एवं ब्याज के रूप में एक बड़ी मात्रा में विदेशी मुद्रा का भुगतान करना पड़ता है।

अतः यह स्पष्ट है कि इन देशों की समस्याओं का निदान बहुत बड़ी सीमा तक निर्यात व्यापार को बढ़ाने में है। गैट की चर्चाओं और विश्व व्यापार संगठन की स्थापना के बाद से ही यह स्वीकारा गया है कि तीसरे विश्व के देशों को अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से समुचित लाभ प्राप्त होना चाहिए। यद्यपि सैद्धान्तिक आधार पर विश्व व्यापार संगठन में अनेक ऐसे प्रावधान हैं, जिनसे तीसरे विश्व के देशों के निर्यातों को प्रोत्साहन मिलेगा, किन्तु, व्यावहारिक दृष्टिकोण से ये प्रावधान निर्यातों के स्थान पर आयातों के भार को बढ़ाने वाले सिद्ध हो रहे हैं।

निर्यात के मार्ग में अवरोध
(Barriers To Export)

तीसरे विश्व के निर्यात व्यापार में अनेक प्रकार के अवरोध एवं बाधाएँ हैं जिनके कारण इन देशों के निर्यात नहीं बढ़ पा रहे। इन अवरोधों को दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है, प्रथम-**विश्व व्यापार संगठन के प्रावधानों** से पैदा होने वाले अवरोध **और द्वितीय परम्परागत अवरोध**। इनका विस्तृत विवरण निम्न प्रकार हैं –

(अ) विश्व व्यापार संगठन से सम्बन्धित अवरोध

1. **पर्यावरण (Environmental) से सम्बन्धित अवरोध** – विश्व व्यापार संगठन के प्रावधानों में यह उल्लेखित है कि विकसित देश विकासशील देशों के ही कृषि पदार्थ आयात करेंगे जिन पर उर्वरक, कीटनाशक, बीज एवं अन्य श्रम-मानक रसायनों की प्रभाव शून्य हो। यदि उन्हें इन वस्तुओं पर कोई भी प्रभाव दृष्टिगत हुआ तो ये देश विकासशील देशों से कोई भी आयात नहीं करेंगे। स्पष्ट है कि इस प्रावधान की आड़ में कोई भी विकसित देश तीसरे देशों से कृषि पदार्थों का आयात नहीं करेगा। ऐसी स्थिति में ये देश अपने निर्यातों को बढ़ाने में सफल नहीं होंगे। कृषि पदार्थों के साथ-साथ यह व्यवस्था चमड़ा एवं चमड़े का सामान, सिले हुए वस्त्र जैसी अनेक वस्तुओं पर लागू होगा जहाँ पर विभिन्न प्रकार के रासायनिक पदार्थों एवं रंग आदि का प्रयोग होता है।

इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि विकसित देशों ने अपने यहाँ उत्पादनों को विविधीकृत कर लिया है एवं विकासशील देशों से आयात की जाने वाली वस्तुओं की प्रतिस्थापन वस्तुओं का उत्पादन अपने यहाँ प्रारम्भ कर दिया है जिसके कारण इन वस्तुओं के आयातों की माँग कम हो गई है।

इसके साथ ही यह भी उल्लेखनीय है कि विकासशील देशों में अनुसंधान एवं विकास की सुविधाएँ बहुत सीमित हैं। अतः ऐसे रासायनिक पदार्थों का उत्पादन करना एक कठिन कार्य है जिनका उपयोग विकसित देशों के मानदण्डों पर खरा सिद्ध हो। उदाहरणार्थ शुद्ध पेय जल (मिनरल वाटर) का उत्पादन पश्चिमी देशों द्वारा स्थापित मानदण्डों के अनुसार करना बहुत अधिक खर्चीला है तथा व्यावहारिक दृष्टि से सम्भव नहीं है। ऐसी स्थिति में कृषि आधारित एवं अन्य उत्पादनों का विकसित देशों को निर्यात करना एक कठिन कार्य होगा।

(2) **श्रम मानक** (Labour Standard) **सम्बन्धी अवरोध** – श्रम मानक से आशय है वस्तुओं का उत्पादन जिन श्रमिकों के द्वारा किया जाता है उनका किसी प्रकार शोषण नहीं होना चाहिए। भारत कई वर्षों से कार्पेट, सिले हुए वस्त्र, कलात्मक सामान का निर्यात कर रहा है, किन्तु अब इन वस्तुओं के निर्यात के समय उत्पादक को यह प्रमाणित करना होगा कि इन वस्तुओं के उत्पादन में मानक श्रम का ही उपयोग किया गया है, किन्तु यदि कहीं यह तथ्य उजागर होता है कि इनके उत्पादन में 'बाल श्रमिकों' का उपयोग किया गया है, तो उन्हें अपने आयात निरस्त करने का अधिकार होगा। तीसरे विश्व के देशों में गरीबी एवं परम्परागत आधार पर बाल श्रम का उपयोग अनेक उद्योगों में किया जाता रहा है, किन्तु विश्व व्यापार संगठन के प्रावधानों के अन्तर्गत अब ऐसी वस्तुओं का निर्यात करना कठिन हो जावेगा।

(3) **बौद्धिक सम्पत्ति अधिकार** – ट्रिप्स समझौते भी विकासशील देशों के निर्यात व्यापार को प्रभावित करेंगे। कारण यह है कि अनुसंधान एवं विकास की सुविधाएँ विकसित देशों में बहुत अधिक हैं। परिणाम स्वरूप जड़ी- बूटियाँ एवं अनेक पदार्थों, जिनका उपयोग विकासशील देशों में परम्परागत रूप से हो रहा है, पर अनुसंधान करके बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ अपना एकाधिकार स्थापित कर लेंगे। जैसा कि हल्दी, नीम, अदरक आदि के बारे में हुआ है। परिणाम यह होगा कि इन वस्तुओं का निर्यात व्यापार प्रभावित होगा। कारण यह है कि विकसित देशों में प्रक्रियाओं तथा वस्तुओं को पेटेंट करवाने की अधिक सुविधाएँ हैं। विकासशील देशों को निर्यात के स्थान पर पेटेंट किए हुए कच्चे माल और पदार्थों का आयात करना होगा।

NOTES

(iv) निर्यात उद्योगों की कमी – तृतीय विश्व के देशों में ऐसे उद्योग सीमित होते हैं जिनके उत्पादन की निर्यात सम्भावनाएँ अधिक होती हैं। वास्तविकता यह है कि मशीनें एवं तकनीकी स्तर की कमी के कारण निर्यात-उद्योगों का समुचित विकास नहीं हो पाता। फलतः ऐसे देशों के निर्यात व्यापार में वृद्धि नहीं हो पाती।

(v) घरेलू बाजार में माँग का अधिक होना – तृतीय विश्व के देशों में जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ रही है जिसके कारण घरेलू बाजार में निर्मित वस्तुओं की माँग भी तेजी से बढ़ती है। फलतः ऐसे देशों में निर्यात हेतु अतिरिक्त उत्पादन बहुत सीमित मात्रा में होता है जिससे निर्यात व्यापार बढ़ नहीं पाता।

(vi) कृषि का पिछड़ापन – तृतीय विश्व के देश मुख्य रूप से कृषिगत वस्तुओं का निर्यात करते हैं, किन्तु कृषि के पिछड़े होने के कारण कृषि-उत्पादों की पूर्ति कम होती है तथा निर्यात हेतु उपलब्ध मात्रा बहुत सीमित होती है। फलतः निर्यात व्यापार को बढ़ाना सम्भव नहीं हो पाता।

(vii) विदेशों में माँग का बेलोचदार होना – तीसरे विश्व के देश जिन वस्तुओं का निर्यात करते हैं, उनकी विदेशों में माँग बेलोचदार होती है। ऐसी स्थिति में कीमतों को कम करके भी अधिक मात्रा में निर्यात करना सम्भव नहीं हो पाता।

(viii) परस्पर प्रतियोगिता – निर्यात के क्षेत्र में तीसरे विश्व के देश परस्पर प्रतियोगिता करते हैं। इससे निर्यात का समुचित लाभ नहीं मिल पाता। उदाहरण के लिये चाय के निर्यात में भारत को श्रीलंका से कड़ी प्रतियोगिता करना पड़ती है। फलतः निर्यात की सम्भावनाएँ सीमित हो जाती हैं।

(ix) गुणात्मक स्तर में कमी तथा कीमत का अधिक होना – तीसरे विश्व के देशों में वस्तुओं की किस्म उच्च कोटि की नहीं होती। इसके साथ ही उनकी कीमतें भी अधिक रहती हैं। इससे निर्यात व्यापार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि तीसरे विश्व के देशों के सामने अनेक ऐसी बाधाएँ एवं अवरोध होते हैं जिनके कारण उनका निर्यात व्यापार आवश्यकताओं के अनुरूप नहीं बढ़ पाता। व्यापार संगठन की स्थापना से इन अवरोधों में कमी के स्थान पर वृद्धि हुई है। प्रयास ऐसा होना चाहिए कि तीसरे विश्व के देश मिलकर प्रभावी संगठन बनाएँ एवं अपने हित के प्रावधानों को विश्व व्यापार संगठन की चर्चाओं में प्रस्तुत करें और उन्हें स्वीकार कराने के लिये दबाव डालें।

महत्वपूर्ण प्रश्न

अपनी प्रगति की जाँच करें
Test your Progress

1. विश्व व्यापार संगठन के उद्देश्य एवं कार्यों की विवेचना कीजिए।
2. "विश्व व्यापार संगठन एवं भारत" पर एक लेख लिखिए।
3. विश्व व्यापार संगठन के विभिन्न समझौतों की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
4. **निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए -**
   (i) प्रशुल्क एवं व्यापार संबंधी सामान्य समझौता (GATT)
   (ii) उरुग्वे राउण्ड (Uruguay Round)
   (iii) विश्व व्यापार संगठन (WTO)
   (iv) ट्रिप्स एवं ट्रिम्स (TRIPS & TRIMS)
   (v) भारत एवं विश्व व्यापार संगठन
   (vi) तीसरे विश्व के निर्यातों में अवरोध
   (vii) पर्यावरण एवं श्रम मानक

NOTES

18

WTO - विकासशील देशों के प्रावधान एवं प्रभाव
(PROVISIONS AND EFFECTS OF DEVELOPING COUNTRIES)

भूमिका -

विश्व व्यापार संगठन के अस्तित्व में आने से आर्थिक नीतियों के उदासीकरण एवं अंतरराष्ट्रीयकरण की विचारधाराएँ मजबूत हुई हैं। विकासशील राष्ट्रों के लिए इन विचारधाराओं से अलग रास्ते पर चलना असम्भव हो गया है। जिन विकासशील राष्ट्रों ने इसके महत्व को समझ लिया है, उन्होंने तेजी से अपने घरेलू आर्थिक नीतियों के नए परिवेश के अनुसार इस प्रकार ढाल लिया है कि उनके घरेलू उद्योग अंतरराष्ट्रीय स्पर्द्धा में सफल रहे हैं। जो राष्ट्र अभी इस पर बहस ही कर रहे हैं वे न तो अपने उद्योगों का भला कर रहे हैं, और न अपने राष्ट्र का।

विकासशील देशों में उद्योगों के सामने सबसे पहली चुनौती है अंतरराष्ट्रीय स्पर्द्धा में सफल कैसे हों? सर्वप्रथम, उन्हें उत्पादोन्मुखी के बजाय बाजारोन्मुखी बनना होगा। दूसरा, जरूरी नहीं कि नई स्पर्द्धा में सफल होने के लिए विभिन्न कंपनियाँ कानून व्यवस्था के अंतर्गत ही व्यापार करें, अनुचित व्यापार व्यवहार करने वाली कंपनियों के विरुद्ध पहल करने की उनकी समझ और क्षमता इस नए वातावरण की एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है। यह पहल उन्हें देशी और विदेशी दोनों ही बाजारों में करनी होगी।

विश्व में अंतरराष्ट्रीय स्तर पर कानूनों के एकीकरण के अभूतपूर्व प्रयास हो रहे हैं। विश्व व्यापार संगठन का अस्तित्व में आना इस बात का सबूत है। नई अंतरराष्ट्रीय व्यापार व्यवस्था लगातार अंतरराष्ट्रीय कानूनों पर आधारित होती जा रही है, चाहे वे पर्यावरण से संबंधित हों या खाद्य सुरक्षा से जुड़े जोखिम अध्ययन या नए उभरते श्रम मानक। कोई भी उद्यमी बिना इन परिवर्तनों को समझे नई व्यापार व्यवस्था में जीवित नहीं रह सकता।

विश्व व्यापार संगठन के कारण देशी सरकारों के अधिकार समाप्त हो गए हैं, यह सिर्फ एक भ्रम है। विश्व व्यापार संगठन के अंतर्गत हस्ताक्षरित समझौतों में सम्प्रभु सरकारों को अनेक अधिकार दिए गए हैं जिससे वे अपने घरेलू उद्योगों के संरक्षण के लिए निश्चित कदम उठा सकती हैं। किन्तु सरकारों की कार्यशैली और संसाधनों के आबंटन की वरीयताओं में आमूल चूल परिवर्तन निश्चित है। यह समझना आवश्यक है कि संप्रभु सरकारें ही नहीं अपितु उद्योग का हिस्सा हैं। इसलिए बिक्री में आड़े आने वाली आर्थिक समस्याओं की जानकारी अपनी सरकारों को देने की पहल व्यापार संगठनों के लिए एक महत्वपूर्ण चुनौती हैं ताकि सरकारें विश्व व्यापार संगठन के उचित मंच पर उसे उठा सकें।

औद्योगिक क्रांति के बाद आर्थिक संसाधनों और अपने यहाँ निर्मित सामान बेचने हेतु बाजारों को कब्जाने की एक अभूतपूर्व होड़ प्रारम्भ हुई जिसकी परिणति प्रथम एवं द्वितीय विश्वयुद्ध के रूप में सामने आई। जाहिर है कि उस समय अंतरराष्ट्रीय व्यापार में जंगल राज जैसी स्थिति थी। इसीलिए द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अंतरराष्ट्रीय व्यापार के लिए एक नियम कानून पर आधारित एक अंतरराष्ट्रीय निकाय बनाने की कोशिशें प्रारंभ हुई। अन्ततः 1948 में 'तटकरों और व्यापार पर आम समझौता' (गैट)- सामने आया जिस पर 23 राष्ट्रों ने हस्ताक्षर किए। भारत इस समझौते के पहले पक्षकारों में था। 1948 से लेकर 1994 तक 'गैट' ही अकेला ऐसा बहुउद्देशीय मंच बना रहा जिसने विश्व व्यापार के अधिकांश नियम बनाए। 1948 से 1994 तक गैट समझौता वार्ताओं के आठ दौर हुए जिनमें आठवां दौर-जिसे उरुग्वे दौर के नाम से जाना जाता है, सबसे व्यापक और सबसे विवादित रहा। इसी दौर में विश्व व्यापार संगठन के गठन का निर्णय लिया गया। इस तरह 'गैट' ने, जो एक तदर्थ और अस्थाई निकाय था, 1 फरवरी 1995 को एक स्थायी 'विश्व व्यापार संगठन' का रूप ले लिया। गौरतलब है कि जहां 'गैट' के नियम सिर्फ वस्तुओं के व्यापार तक सीमित थे वहीं विश्व व्यापार संगठन का दायरा विस्तृत हो गया और इसके नियम न केवल वस्तुओं के व्यापार बल्कि सेवाओं के व्यापार और बौद्धिक संपदा पर भी प्रभावी हुए। विश्व व्यापार संगठन अंतर्निहित रूप से गैट से बेहतर व्यवस्था है क्योंकि इसका ठोस कानूनी आधार है। यहां तक कि सदस्य देशों की संसदों द्वारा इसके समझौतों की भी पुष्टि की जाती है।

NOTES

विश्व व्यापार संगठन के निर्देशक सिद्धांत निम्नलिखित हैं :

1. **गैर भेदभाव व्यवहार:** इसके दो अर्थ होते हैं। पहला सिद्धांत 'अति कृपापात्रा राष्ट्र' का दर्जा देना है। इसका अर्थ यह है कि अगर विश्व व्यापार संगठन का कोई देश किसी दूसरे देश को कोई व्यापारिक रियायत देता है तो वह सभी सदस्य देशों को देनी होगी। दूसरा है 'राष्ट्रीय व्यवहार' जिसका अर्थ है कि आयातित 'वस्तुओं और घरेलू वस्तुओं के बीच कोई भेदभाव नहीं किया जाना चाहिए और उन्हें एक जैसा दर्जा दिया जाना चाहिए।'
2. **क्रमशः मुक्त व्यापार प्रणाली:** इसका अर्थ है कि समझौतों के जरिए अंतरराष्ट्रीय व्यापार में आने वाले अवरोधों जैसे सीमा शुल्क इत्यादि को लगातार कम करना।
3. **अनुमान्य व्यापार प्रणाली:** सदस्य देशों द्वारा सीमा शुल्क की अधिकतम सीमा शुल्क की दरों को लागू करना।
4. **अधिक प्रतिस्पर्द्धात्मक व्यापार प्रणाली:** निर्यात पर सब्सिडी कम करना।

विश्व व्यापार संगठन और समझौते

विश्व व्यापार संगठन के अंतर्गत हस्ताक्षरित तीन मुख्य समझौते इस प्रकार हैं:

1. **तट करों और व्यापार पर आम समझौता** जिसमें सभी औद्योगिक, उपभोक्ता वस्तुएँ शामिल हैं।
2. **सेवाओं के व्यापार पर आम समझौता:** इसका प्रभाव बैंकिंग, बीमा, सलाह आदि के व्यापार पर है।
3. **बौद्धिक संपदा अधिकार के व्यापार से जुड़े पहलुओं पर समझौता:** इसका प्रभाव पेटेंट, कापीराइट, ट्रेड मार्क इत्यादि पर है।

उपरोक्त समझौतों के अतिरिक्त विकासशील देशों के उद्योगों पर स्पष्ट प्रभाव पड़ता है जो कि मुख्य बिन्दु इस प्रकार हैं-

(1) बाजार प्रवेश प्रतिबद्धताएँ

बाजार-प्रवेश प्रतिबद्धताएँ उरुग्वे दौर की वार्ताओं की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। इन प्रतिबद्धताओं के दो घटक हैं। पहला है तटकरों की बद्धता और दूसरा बद्ध-तटकरों में सिलसिले वार कमी।

जहाँ तक तटकरों की बद्धता का प्रश्न है, भारत में 67 प्रतिशत तटकर सूचियों को बद्ध किया गया जिनमें लगभग सभी कृषि उत्पाद और 62 प्रतिशत औद्योगिक उत्पाद शामिल हैं। अब तटकरों वाली सूचियों में अधिकतर ऐसे उत्पाद हैं जो बहुत समय से मात्रात्मक प्रतिबंधों वाली सूची में रहे हैं। जैसे- उपभोक्ता वस्तुएँ, पेट्रोलियम उत्पाद इत्यादि। इसका अर्थ है कि भारत केवल इन्हीं उत्पादों के आयात पर इच्छानुसार आयात शुल्क लगा इसके समझौते कर सकता है चूँकि ये भारतीय प्रतिबद्धताओं की सूची में नहीं हैं।

'बद्ध-तटकरों में कमी' से संबंधित प्रतिबद्धताओं के चलते 1 जनवरी 1995 से प्रारंभ आयात कर दरों को वार्षिक समान किश्तों में पूरा किया जाता है। वस्त्र-संबंधी आयात में कमी समय सीमा 10 वर्ष है। हाल में हुए सूचना-प्रौद्योगिकी संबंधी समझौते के कारण सन् 2003 तक 217 सूचना-प्रौद्योगिकी उत्पादों पर से आयात शुल्क की दरें प्रायः बद्ध दरों से भी कम हैं। इसलिए जरूरत पड़ने पर आयात शुल्क दरों को इन प्रतिबद्धताओं के घेरे में रहते हुए भी बढ़ाया जा सकता है। यह बात अलग है कि भविष्य की वार्ताओं में बद्ध दरों में भी लगातार कमी होगी।

(2) वस्त्र और परिधान समझौता

कपड़े और पोशाकों का विश्व व्यापार पिछले तीन दशकों से द्विपक्षीय कोटा प्रबंध के एक जटिल मकड़जाल में उलझा रहा है जिसे 'मल्टी फाइबर एग्रीमेंट' कहते हैं। समझौते में इन प्रतिबंधों को 1995 से अगले दस वर्षों में खत्म करने की व्यवस्था है। भारत के लिए इस समझौते का बहुत महत्व है जिसका इस क्षेत्र से निर्यात 5 अरब अमेरिकी डालर से अधिक का है। 'गैट' के संदर्भ में इस क्षेत्र के 'स्वोट' विश्लेषण से निम्नलिखित नतीजे निकलते हैं :-

सूती, जूट, रेशमी और हस्तनिर्मित धागों के सबसे बड़े उत्पादकों में एक, उत्पादन की पूरी श्रृंखला की उपलब्धता। उदाहरण के लिए सूती कपड़ों के क्षेत्र में कपास उगाने से लेकर ओटन, धुनाई, बुनाई, पोशाक बनाना, तैयार करने की क्षमता साथ हीं कपड़ा मशीनरी क्षेत्र और एनआईएफ जैसे सहायक संस्थान भी मौजूद, सस्ते कुशल श्रमिक की उपलब्धता।

कपास उगाने से लेकर ओटने और बुनाई तक सभी स्तरों पर कम उत्पादकता (अधिकाधिक उपक्षेत्रों में क्षमता का 50% ही उपयोग), दोनों प्रकार की ढांचागत सुविधाओं का अभाव, बाहरी (बुनियादी ढांचे-मसलन पत्तन, सड़कें, ऊर्जा आदि) और भीतरी (90 प्रतिशत इकाइयाँ बहुत छोटे या 'गौण' क्षेत्रों में है), सभी उपक्षेत्रों में उत्पादक अर्थतंत्र का

अभाव, मूल्य सवाधत कर का कमी, उपक्षेत्रों के मुक्त प्रवाह पर बहुत ज्यादा नियमन और नियंत्रण, प्रतिबंधात्मक आयात व्यवस्था और व्यापार नीति माहौल, तकनीक का पुराना पड़ जाना, दीर्घकालिक रणनीति का अभाव।

प्रतिबंधात्मक व्यापार नीतियों 'एमएफए' और अन्य मात्रात्मक प्रतिबंध को खत्म किए जाने के साथ ही बाजार का अत्यधिक विस्तार होने की संभावना है। विकसित देशों के अलावा विकासशील देशों में भी नए बाजारों के द्वार खुलेंगे। 'गैट' के बाद कपड़े और पोशाकों के व्यापार में हर साल 24 अरब अमेरिकी डालर (तकरीबन एक लाख आठ हजार करोड़ रुपए) की वृद्धि होने की उम्मीद है।

गैट के तहत हस्ताक्षरित 'एटीसी' समझौते का असली लाभ सन् 2008 के पहले नहीं मिल पाएगा। कोटा जरूर खत्म किया जा रहा है, मगर गैट तटकर अवरोध तेजी से 'कोटा' का स्थान ले रहे हैं (डंपिंग, उपभोक्ता सुरक्षा, पर्यावरण-लेबलिंग आदि के नाम पर)। कोटा प्रणाली खत्म होने का यह भी मतलब है कि देश सिर्फ उन्हीं क्षेत्रों में निर्यात कर सकेंगे जिनमें तुलनात्मक रूप से वे लाभ की स्थिति में है। इससे अंतरराष्ट्रीय बाजार में प्रतिस्पर्द्धा कई गुना बढ़ेगी।

भारत को सिर्फ लाभ ही नहीं बल्कि कपड़ा और पोशाक के निर्यात में अपनी जगह बनाए रखने के लिए भी दुगने प्रयास करने होंगे। अतः सुधरी हुई व्यवस्था का लाभ तभी मिलेगा जब यह क्षेत्र चुनौतियों का सामना करने के लिए स्वयं को तैयार कर ले।

(3) कृषि पर समझौता

कृषि पर हुए समझौते ने कुछ कटु सत्य उद्घाटित किए हैं। पहला-विकसित एवं विकासशील दोनों प्रकार के देशों में कृषि उद्योग को पारदर्शी बनाने की इच्छा शक्ति की कमी। दूसरा-विश्व व्यापार संगठन का प्रयोग उदारीकरण के लिए ही नहीं किन्तु किसी क्षेत्र में उदारीकरण की प्रक्रिया को रोकने के लिए भी किया जा सकता है- जैसा कि इस मामले में हुआ।

कृषि पर हुए समझौते के तीन घटक हैं- कृषि उत्पादों के निर्यात हेतु दी जाने वाली सब्सिडी में कमी, आयात व्यवस्था का उदारीकरण और घरेलू उत्पादकों को दी जाने वाली सब्सिडी में कमी। आयात तो खुला पर जैसे विभिन्न देशों में आयात दरें एक-दूसरे से अधिक करने की होड़ लग गई। यूरोपीय समुदाय ने सन् 1989-93 की तुलना में यह दर दो-तिहाई से भी अधिक बढ़ाई तो अमेरिका ने तीन-चौथाई। विकासशील देश भी पीछे नहीं रहे। परिणामस्वरूप अंतरराष्ट्रीय बाजार में आयात-व्यवस्था के उदारीकरण का कृषि उत्पाद मूल्य पर कोई प्रभाव ही नहीं पड़ा।

बाजार प्रवेश के नियमों ने औपचारिक रूप से पक्षपात के नए अवसर पैदा कर दिए। इनसे सरकारी खरीद एजेंसियों के अस्तित्व को मान्यता मिल गई। चूँकि एजेंसियों को प्रायः एकाधिकार प्राप्त होता है इसलिए ये पक्षपात कर कृषि उत्पादों के क्रय-विक्रय मूल्यों को प्रभावित कर सकती हैं।

सकल मापन समर्थन गणनाओं में कई प्रकार की सरकारी सहायताओं और सब्सिडी को शामिल नहीं किया गया। ध्यान रहे ये सहायताएँ जिन्हें 'ब्लू-बाक्स' या 'ग्रीन-बाक्स' सूची में रखा गया है, अधिकतर विकसित देशों में ही प्रचलित हैं।

कम आमद वाले विकासशील देशों में जिनमें भारत भी शामिल है, कृषि के प्रति पक्षपात-पूर्ण रवैया रहता है और उत्पादकों की तुलना में उन पर न केवल वास्तविक कर-देयता अधिक होती है बल्कि सारी व्यवस्था कम उत्पादन को प्रोत्साहित करती है। भारत को ही लें तो उसके माल की आवाजाही पर ही भंडारण-सीमा, एकाधिकार वाली सरकारी खरीद एजेंसियाँ, ढांचागत मुश्किलें और उस पर निरोधक नीति तंत्र आदि अनेकानेक प्रतिबंध हैं।

किसानों के प्रति पक्षपात से भरी इस व्यवस्था में बहुत अधिक सुधार की आवश्यकता है। ये सुधार राष्ट्रीय स्तरों पर भी किए जा सकते हैं, लेकिन बहुदेशीय वार्ताओं और इनमें लगने वाले समय ने विभिन्न देशों को इन सुधारों को टालने का एक बहाना दे दिया है। विश्व व्यापार संगठन का प्रयोग कम से कम कृषि के मुद्दे पर उदारीकरण को टालने के लिए किया गया।

(4) सब्सिडी और समतुल्य उपायों पर समझौता

एससीएम समझौते के तहत 'गैट' सरकारों को ऐसी सब्सिडी देने के अधिकार से रोकता है, जो व्यापार पर महत्वपूर्ण असर डाल सकते हैं। इसके नियम जटिल हैं। सब्सिडी आखिर क्या हैं? समझौते में सब्सिडी की व्याख्या की गई है: जो सरकार द्वारा किसी उद्योग को धन के सीधे हस्तांतरण (अनुदान, ऋण आदि) के रूप में दी गई हो, या उस राजस्व से छूट जिसे वसूला जाना चाहिए था, या वस्तुओं की खरीद, सेवा या सामग्री प्रदान कर कोई लाभ दिया गया हो। सब्सिडी निम्न प्रकार से दी जा सकती है :-

मिलती हो। उदाहरण के लिए निर्यात से हुई आय पर आयकर छूट, विदेशी मुद्रा धारण योजनाएँ, सरकार से कम दर पर निर्यात ऋण, उत्पाद पर लगने वाले अप्रत्यक्ष कर से अतिरिक्त अप्रत्यक्ष कर-राहत आदि।

NOTES

(B) अनुमति योग्य या 'एम्बर सब्सिडी': इस प्रकार की सब्सिडी तब तक दी जाने की अनुमति है जब तक इससे किसी अन्य सदस्य राष्ट्र के हितों को नुकसान न पहुँचे। उदाहरण के लिए किसी खास उद्यम समूह, औद्योगिक क्षेत्र या भौगोलिक अवस्थिति के लिए सब्सिडी देना अनुमति योग्य है।

(C) अनुमति योग्य (कार्यवाही न किए जाने योग्य) या ग्रीन सब्सिडी: ऐसी सब्सिडी जो विशिष्ट न हो और आर्थिक कारणों से दी जाती हो तथा सभी पर लागू होती हो और किसी एक उद्यम की कीमत पर दूसरे को लाभ न पहुँचाती हो। इसके खिलाफ कार्यवाही नहीं की जा सकती। कार्यवाही न किए जाने योग्य सब्सिडी पर आयातक देश समतुल्य कर आदि नहीं लगा सकते। उदाहरण के लिए, सरकार द्वारा लघु और मध्यम आकार के उद्योगों (एम एम ई) को, उन्हें उनके कर्मचारियों की संख्या या आकार से पहचान कर दी गई सब्सिडी के खिलाफ कार्यवाही नहीं की जा सकती।

यद्यपि गैर-कार्यवाही किए जाने योग्य सब्सिडी समेत किसी भी प्रकार की सब्सिडी विवाद से परे नहीं है। अगर यह साबित हो जाए कि किसी भी सब्सिडी से आयातक देश के उद्योगों को भौतिक अथवा अपूरणीय क्षति हुई है तो इसके खिलाफ विश्व व्यापार संगठन के विवाद समाधान निकाय या एस सी एम समिति में जाया जा सकता है। अगर फैसला वादी के पक्ष में गया तो वादी देश समतुल्य उपाय कर सकता है। भारत के मुख्य व्यापारिक साझीदार देशों के विरोध के चलते ही भारत द्वारा निर्यातकों को आय कर पर दी जाने वाली छूट क्रमशः 2005 तक समाप्त की जा रही है।

(5) सेफगार्ड एवं डंपिंग रोधी उपायों पर समझौते

सेफगार्ड पर हुआ समझौता आयातक देशों को थोड़े समय के लिए आयात पर प्रतिबंध लगाने के लिए अधिकृत करता है बशर्ते कि सक्षम प्रतिकार द्वारा की गई जाँच से यह सत्य स्थापित हो जाता हो कि आयात की मात्रा में वृद्धि (या तो स्वतः या घरेलू उद्योगों के अनुपात में) से उसी तरह के या सीधे प्रतिस्पर्द्धात्मक उत्पाद बनाने वाले घरेलू उद्योगों को गंभीर क्षति पहुँच रही है। यह उन उपायों का प्रावधान भी करता है जिन्हें आयातक देश लगा सकते हैं, मसलन बद्ध दर से अधिक तट कर या मात्रात्मक प्रतिबंध लगाना आदि। ये आमतौर पर अति कृपापात्र राष्ट्र (एमएफएन) आधार पर लगाए जाने चाहिए यानी सभी स्रोतों (देशों) पर समान रूप से लगाए जाने चाहिए। अगर विकासशील देशों के उद्योग चाहते हैं कि नए उद्योगों के विकास और मौजूदा उद्योगों के अधिक विकास के लिए उन्हें संरक्षण की आवश्यकता है तो उन्हें अपनी सरकारों से 'विकास के उद्देश्य से सेफगार्ड कार्यवाही' के प्रावधान लागू करने के लिए कहना होगा।

डंपिंग-रोधी उपायों पर समझौता (ए डी पी) नियमों में ऐसे दो प्रकार के अनुचित व्यापार व्यवहार का वर्णन हैं जो स्वस्थ प्रतिस्पर्द्धा के मार्ग में अड़चन पैदा करते हैं। पहला- अगर माल को सब्सिडी से लाभ पहुँचता हो। दूसरा- अगर, निर्यातित वस्तुएँ विदेशी बाजार में 'डम्प' की जा रही हों। डंपिंग-रोधी व्यवहार पर समझौता (ए डी पी) देशों के अनुचित व्यापार व्यवहार से लाभान्वित हो रहे आयात उत्पादों पर क्षतिपूरक शुल्क लगाने की अधिकृत करता है। दोनों ही समझौतों में क्षति तय करने की शर्तें और प्रक्रियाएँ एक जैसी हैं।

डंपिंग क्या है ?: अगर कोई कंपनी अपने उत्पाद को, घरेलू बाजार में उत्पाद के बिक्री मूल्य से कम कीमत पर निर्यात करती है या उत्पादन लागत से कम कीमत पर बेचती है तो कहा जाता है कि वह आयातक देश में अमुक उत्पाद की डंपिंग कर रही है। भारत में डंपिंग के बहुत से मामले सामने आए हैं जिनसे घरेलू उद्योगों को भारी नुकसान हुआ है। अब तक भारत में ऐसे 50 से भी अधिक मामलों की जाँच की जा चुकी है और चीन, अमेरिका, रूस, थाइलैंड, कोरिया, जापान, ब्राजील, मेक्सिको, इंडोनेशिया, इटली आदि देशों से आने वाले रसायनों से ले कर ग्रेफाइट इलेक्ट्रोड तक पर अंतिम डंपिंग-रोधी शुल्क लगाया जा चुका है। इसके अतिरिक्त करीब एक दर्जन मामलों की जाँच चल रही है। अब तक भारत में ऐसे ही मामलों की जाँच की गई है या की जा रही है जिनमें बड़े उद्योग शामिल हैं, विश्व व्यापार संगठन के जरिए मिले अधिकारों के प्रति अज्ञानता ने छोटे उद्योगों को ऐसे मामले शुरू करवा पाने से वंचित कर रखा है।

कुछ महत्वपूर्ण बातें

1. विश्व व्यापार संगठन समझौते सरकारों को ऐसे मामलों में डंपिंग के खिलाफ कार्यवाही करने की अनुमति देते हैं, जिनमें प्रतिस्पर्द्धा घरेलू उद्योगों को वास्तविक (भौतिक) क्षति हुई है।
2. वाणिज्य एवं उद्योग मंत्रालय में डंपिंग रोधी अन्वेषण के लिए विशेष विभाग बनाया गया है। यह विभाग मामलों की जाँच करने के बाद डंपिंग-रोधी संस्तुति कर इसे वित्त-विभाग मंत्रालय के पास भेज देता है।

3. इस बात के दिशा-निर्देश हैं कि डंपिंग-रोधी जाँच के लिए आवेदन कैसे और किसको दिया जाए। सरकार द्वारा यह मामला हाथ में लेने से पहले बहुत सी शर्तें पूरी करनी पड़ती हैं, जैसे कि प्रायः सम्बद्ध आयात घरेलू उत्पाद का कम से कम 25 प्रतिशत होना चाहिए इत्यादि।

4. आवेदन पत्र में घरेलू उत्पादन की मात्रा, कथित डम्प किए गए उत्पाद के उद्गम, निर्यातक, घरेलू बाजार में निर्यात उत्पाद की बिक्री मूल्य, अन्य देशों में निर्यात मूल्य, क्षति आदि के बारे में विस्तृत सूचनाएँ होनी चाहिए। इस काम में विशेषज्ञता और अनुभव आवश्यक होता जा रहा है।

5. उल्लेखनीय है कि आरोपी निर्यातक को भी दावे के प्रतिवाद में साक्ष्य उपलब्ध करा कर अपने हितों की रक्षा करने का अधिकार है। आरोप प्रमाणित करने की जिम्मेदारी कमोबेश उस प्रभावित उद्योग की है जो डंपिंग-रोधी प्रक्रिया शुरू करने का आग्रह कर रहा है। साक्ष्यों के आधार पर निष्कर्ष निकालने से पहले इसकी गहराई से जाँच-हड़ताल की जानी चाहिए।

सिर्फ डंप किए गए या सब्सिडी प्राप्त निर्यात के आधार डंपिंग शुल्क तब तक नहीं लगाया जा सकता जब तक कि घरेलू उद्योगों की क्षति प्रमाणित न हो जाए और आयातित वस्तु को अनुचित व्यापार व्यवहार से लाभ न पहुँच रहा हो।

(6) सेवाओं के व्यापार पर आम समझौता

सेवा क्या है?: ऐसी कोई भी चीज जिसे आपके पैरों पर गिराया न जा सके, फिर भी बाजार में बेची जा सके, सेवा है। 'द इकोनेमिस्ट' द्वारा दी गई यह सामान्य परिभाषा सेवा और वस्तुओं के अंतर को स्पष्ट करने के लिए काफी है। सेवाएँ अमूर्त और अदृश्य हैं, वस्तुएँ मूर्त और दृश्य हैं। सेवाओं का वस्तुओं का तरह भंडारण नहीं किया जा सकता। जहाँ वस्तुओं का संरक्षण तटकर के द्वारा किया जाता है, वहीं यह संरक्षण सेवाओं को घरेलू नियम/कानूनों द्वारा प्रदत्त कराया जाता है।

सेवा एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें दुनिया में भारत की महाशक्ति बनने की प्रबल संभावना है। मानव संसाधनों और सहायक शोध संस्थानों और विश्वविद्यालयों की उपलब्धता के कारण अपनी तुलनात्मक श्रेष्ठता की वजह से भारत में इस क्षेत्र में अपार संभावनाएँ हैं। 'कस्टमाईज्ड' साफ्टवेयर निर्यात में विश्व बाजार के तकरीबन 20 फीसदी पर कब्जा कर के उसने अपनी सफलता की अमिट कहानी लिख भी दी है।

हाल ही में संशोधित आयात-निर्यात नीति ने पहली बार सेवा क्षेत्र को समुचित मान्यता दे कर इसमें एक नया अध्याय जोड़ दिया है।

बाजार प्रवेश के लिए भारत की वचनबद्धता इन क्षेत्रों में है- इंजीनियरिंग, कम्प्यूटर, आधारित शोध और विकास, तकनीकी उपचार और विश्लेषण, मूल्यवर्द्धित दूरसंचार, सड़कों और पुलों का निर्माण, अस्पताल से जुड़े उपकरण, होटल और अन्य आवास, सिनेमा और वीडियो वितरण, ट्रेवल एजेंसी और टूर आपरेटर और घरेलू हवाई माल परिवहन।

(7) बौद्धिक संपदा पर आधारित नए कानून

बौद्धिक संपदा की वस्तुओं का सृजन मानव मन और मानव बुद्धि से होता है। इसलिए इन्हें बौद्धिक संपदा कहा जाता है। व्यापार से जुड़े बौद्धिक संपदा अधिकार पर समझौता (ट्रिप्स) बौद्धिक संपदा अधिकार पर मौजूदा अंतरराष्ट्रीय कन्वेंशनों पर आधारित है। इसके प्रावधान सात प्रकार की बौद्धिक संपदा पर लागू होते हैं- पेटेंट, कापीराइट और संबद्ध अधिकार, ट्रेडमार्क, औद्योगिक डिजाइन, समेकित सर्किट के ले आउट डिजाइन, भौतिक सूचक और अज्ञात सूचनाएँ।

समझौता पाँच प्रमुख पहलुओं को छूता है:

1. व्यापार प्रणाली और अंतरराष्ट्रीय बौद्धिक संपदा अधिकार समझौते के बुनियादी सिद्धांतों को कैसे लागू किया जाए?
2. बौद्धिक संपदा अधिकारों का पर्याप्त संरक्षण कैसे हो?
3. विभिन्न देश इन अधिकारों का प्रवर्तन लागू कैसे करें?
4. विवादों का निपटारा किस प्रकार हो?
5. नई व्यवस्था लागू होने के दौरान विशेष संक्रमणकालीन व्यवस्थाएँ क्या हों?

इस समझौते का विभिन्न बौद्धिक संपदा पर प्रभाव आगे दी गयी तालिका में देखा जा सकता है। भारतीयों द्वारा बौद्धिक संपदा अधिकार पर कठोर, सभी की पहुँच वाली और कम लागत वाली व्यवस्था, बौद्धिक पहल द्वारा संपदा के सृजन का मार्ग प्रशस्त करेगी। नए पेटेंट कानून का औषधि उद्योग पर महत्वपूर्ण प्रभाव होगा।

था, केवल प्रक्रिया पेटेंट की अनुमति थी (ताकि पेटेंट किए हुए उत्पाद को आम आदमी की पहुँच में रखा जा सके)। इसका अर्थ है कि किसी भी पेटेंट किए हुए उत्पाद की प्रक्रिया में मामूली हेरफेर के साथ उत्पादन किया जा सकता था। साथ ही औषधि मूल्य नियंत्रण आदेश (डी पी सी ओ) के कारण अतिरिक्त क्षमताओं का उपयोग बल्क ड्रग के निर्यात के लिए किया गया, क्योंकि घरेलू बाजार मूल्य आकर्षक नहीं थे (औषधियों का निर्यात मुख्यतः रूस, अफ्रीका के उन देशों में किया गया जहाँ पेटेंट कानून कठोर नहीं थे)। अब उत्पाद पेटेंट को शामिल कर लिया गया है। इससे क्या होगा? भारतीय औषधि उद्योग में शीघ्र ही अमूल-चूल परिवर्तन (छोटे उद्योगों की अपेक्षा बड़ी इकाइयों और बहुराष्ट्रीय कंपनियों के पक्ष में) 1.1.95 के पहले पेटेंट किए गए उत्पादों का उत्पादन अलग प्रक्रिया से संभव होगा मगर इस समझौते के बाद जिन उत्पादों का पेटेंट कराया गया है, उनका बिना लाइसेंस के उत्पादन नहीं किया जा सकेगा। आवश्यक लाइसेंस मुश्किल (लाइसेंस दिए जाने के पहले पेटेंट धारक की बात सुननी होगी) पेटेंट किए गए उत्पाद के 'बिक्री के लिए आयात' हेतु पेटेंट धारक से लाइसेंस लेना होगा। पहले संरक्षण की अवधि आवेदन से सात साल या पेटेंट की सीलिंग से पाँच साल थी (खाद्य और कृषि रसायनों के लिए 14 वर्ष)। अब सभी को एक समान 20 वर्ष के लिए संरक्षण मिलेगा। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने जिन आवश्यक दवाओं (तकरीबन 275) को सूचीबद्ध किया है उनमें से बमुश्किल 10 प्रतिशत पेटेंट व्यवस्था में हैं। फिर डी पी सी ओ पर गैट का कोई असर नहीं पड़ेगा।

आज यह क्षेत्र जिन चुनौतियों का सामना कर रहा है उन्हें डॉ. परमिंदर सिंह (तत्कालीन सी एम डी, रेनबैक्सी लेबोरेटीरज लि) के शब्दों में यों कहा जा सकता है - "ट्रिप्स समझौते को मानने की बात की हमने शुरूआत कर दी है। हमें अब इस चुनौती का सामना करने के लिए कदम उठाने होंगे— तकनीक पर निर्भरता से इस उद्योग को खोजोन्मुखी बनना होगा। सरकारी प्रयोगशालाओं, उद्योगों और वृहदजगत के बीच एक तारतम्यता बैठकर बहुत कुछ हासिल किया जा सकता है। हालांकि हमने काफी कीमती वक्त बर्बाद कर दिया है (इस बहस में कि उत्पाद पेटेंट कब किया जाए) मगर अब भी परिस्थितियों को अपने पक्ष में करने में बहुत देर नहीं हुई है।"

उक्त समझौतों के अन्तर्गत अन्य सहायक समझौते हैं, जिनका प्रयोग निम्न वर्णित तालिका से स्पष्ट होता है:-

भारतीय व्यापार पर विश्व व्यापार संगठन समझौतों का प्रभाव

समझौते	समझौते का उद्देश्य	भारतीय नीति/कानूनों पर प्रभाव	व्यापार प्रभाव
1. तटकर और व्यापार पर आम समझौता (गैट)	• रोकता है: सामान्य व्यापार को प्रभावित करने की सरकारी/संगठनों की कोशिशों को (सदस्य राष्ट्रों के बीच और घरेलू तथा विदेशी एवं कानूनी रूप से आयातित विदेशी माल के बीच भेदभाव को)। • समझौतों के क्रियान्वयन और विवादों के निष्पादन के दिशानिर्देश तय करता है।	• भारत ने गैट वार्ताओं के बीच ही आर्थिक सुधार शुरू किए। • आयात शुल्कः अधिकांश तटकर लाइंस पर डब्ल्यू.टी.ओ. के मानदंडों का अनुपालन। • गैट समझौते के अनुरूप मुक्त व्यापार तंत्र के लिए वचनबद्ध, और बहुत से कानूनों में संशोधन होंगे। • भारत की मात्रात्मक प्रतिबंधों को खत्म करने की योजना को अमेरिका द्वारा चुनौती दी गई थी। डब्ल्यू.टी.ओ. द्वारा दिए गए फैसले के फलस्वरूप भारत ने 1.4.2001 से आयात पर लगे मात्रात्मक प्रतिबंध हटाए।	• सभी प्रकार के उत्पादन पर असर। • आयातित वस्तुओं की सहज पहुँच के कारण बढ़ती हुई स्पर्द्धा। लघु उद्योगों के लिए आरक्षित उत्पादों में से तकरीबन सभी ओजीएल (मुक्त आयात की अनुमति) में क्यूआर हटाने से सभी उत्पादों का आयात बढ़ेगा। • डब्ल्यू.टी.ओ. की अगुआई में बाहरी उदारीकरण तेजी से पूरा, आधे-अधूरे घरेलू उदारीकरण से घरेलू उद्योगों की स्पर्द्धात्मकता बुरी तरह प्रभावित होगी (उद्योग पहले ही ढांचागत कमी, मूल्य संवर्द्धित कर (वैट)) का न होना, पुराने श्रम कानून, मंत्रालयों के बीच तालमेल की कमी, आर्थिक गुणवत्ता सेवा-बैंकिंग, बीमा, भूतल परिवहन आदि की अनुपलब्धता से जूझ रहे हैं।

NOTES

			• छोटे और मझोले उद्यमों के लिए यह आवश्यक कि वे तुलनात्मक लाभप्रदता का पुनर्मूल्यांकन करें। इनमें से बहुतों को अपना मौजूदा व्यापार बदलना होगा, मगर कठोर कानून और नियम इसमें आड़े आएंगे। सिर्फ वही उद्यम बचे रह पाएंगे और तरक्की करेंगे-चाहे वे घरेलू बाजार में सक्रिय हों या विदेशी बाजार में जिनकी दृष्टि अंतरराष्ट्रीय हो (अधिकांश उत्पाद श्रेणियों में)।
(a) गैट की धारा VII के क्रियान्वयन पर समझौता (माल का मूल्यांकन)	• देशों से अपेक्षा है कि वे संमझौते में आयात मूल्यांकन के लिए तयशुदा सिद्धांतों का पालन करें। सीमाशुल्क विभाग के मनमाने फैसलों को रोकता है।	• भारत ने समझौते के अनुरूप सीमाशुल्क कानून अधिसूचना संख्या 26(NT)/24.05.95 के जरिए आवश्यक संशोधन किया।	• अधिक पारदर्शी व्यवस्था है, आयातक और निर्यातकों दोनों को लाभ होगा। • आयातक द्वारा वर्णित मूल्यांकन को निरस्त करने पर सीमाशुल्क विभाग को लिखित में कारण बताना होगा। • मूल्य निर्धारण के स्पष्ट दिशा निर्देश तय कर दिए गए हैं।
(b) प्री-शिपमेंट निरीक्षण पर समझौता (पी एस आई)	• मूल्य निर्धारण में पी एस आई कम्पनियों के मनमाने उपयोग को रोकना (तकरीबन 30 विकासशील और अल्प विकसित देश इनका उपयोग करते हैं)।		• इस परिष्कृत प्रणाली से उन भारतीय कम्पनियों को फायदा होगा जो पी एस आई कम्पनियों (एस जी एस, ब्यूरो बेरिटास आदि) की सेवाएँ लेने वाले देशों को निर्यात करती हैं। • निर्यात मूल्य तय करने में पी एस आई कम्पनियों के मनमानेपन पर रोक लगाई जा सकेगी।
(c) व्यापार पर तकनीकी अवरोध पर समझौता (टीबीटी)	• आयातक देशों द्वारा बाध्यकारी मानकों के दुरुपयोग को रोकना। • मानक अंतरराष्ट्रीय मानकों के इर्द-गिर्द रखने की सिफारिश करता है। • 'पूछताछ बिन्दु' बनाने को कहता है जहाँ से मानकों के बारे में सूचनाएँ हासिल की जा सकें।	• भारतीय मानक ब्यूरो (बी.आई.एस.) निर्देशों का पालन कर रहा है (अधिकांश भारतीय मानक विश्व मानकों पर आधारित है)। • बी.आई.एस. पूछताछ बिन्दु के रूप में भी कार्य करेगा।	• मानकों के अंतरराष्ट्रीय से इलेक्ट्रिकल मशीनरी, उपभोक्ता वस्तुओं, औषधियों, डिटरजेंट, आटोमोबाइल, बिजली के घरेलू और इलैक्ट्रॉनिक उपकरण, कीटनाशक, खतरनाक रसायन, उर्वरक, खिलौने आदि के भारतीय निर्यातकों को लाभ होगा क्योंकि अधिकांश देशों में इन वस्तुओं के आयात पर बाध्यकारी उत्पाद मानक लागू हैं।

			स्थापित किए जाने से सूचनाएँ प्राप्त करना आसान हो जाएगा। ● समझौते में पी पी एम (प्रक्रिया और उत्पादन विधियाँ) भी शामिल हैं। भारतीय निर्यातकों से भेदभाव के लिए इनका दुरुपयोग किया जा सकता है। खास असर कृषि/प्रसंस्कृत तथा औषधि उत्पादों आदि पर।
(d) स्वच्छता और पादप स्वच्छता उपयोग पर समझौता (एस पी एम)	● उपर्युक्त अनुसार (सिवाय इसके कि एम एफ एन नियम का पालन आवश्यक नहीं) देश किसी अन्य देश विशेष से आयात पर इस आधार पर रोक लगा सकते हैं कि उनसे मनुष्यों/ पशुओं वनस्पतियों को नुकसान हो सकता है।	● अधिकांश भारतीय मानक अंतरराष्ट्रीय मानकों के अनुरूप हैं (क्रियान्वयन में सुधार अपेक्षित)।	● ताजें फलों, सब्जियों, प्रसंस्कृत फल उत्पाद और जूस, मांस और मांस उत्पाद, डेयरी उत्पाद आदि का निर्यात करने वाली कम्पनियों को बाध्यकारी मानकों को समझना होगा। ● उन्हें एफ ए ओ, कोडेक्स एलीमेंटेरियस आदि जैसे अंतरराष्ट्रीय संगठनों में चल रहे विकास कार्यों का पता होना चाहिए जिनका कृषि, प्रसंस्कृत खाद्य, डेयरी उत्पाद आदि के उनके व्यापार पर गंभीर असर पड़ सकता है।
(e) आयात लाइसेंस क्रियाओं पर समझौता	● आयात लाइसेंस जारी करने में पारदर्शिता सुनिश्चित करना। लाइसेंस जारी करने की समय-सीमा का निर्धारण।	● व्यवस्था काफी सुधरी है। हालांकि अभी भी पूरी तरह नहीं। लेटलतीफी और भेदभावकारी शक्तियों का बारंबार दुरुपयोग। पारदर्शिता लाने के लिए ईडीआई प्रणाली कायम की जा रही है।	● भारत और अन्य देशों में व्यवस्था में सुधार से छोटे और मझोले उद्यमों पर इसका सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा जिन्हें प्रतिबंधात्मक व्यापार व्यवस्था से काफी नुकसान उठाना पड़ता है।
(f) निर्यात पर लागू होने वाले नियम	● निर्यात उत्पादकों को अपरोक्ष करों (जैसे उत्पादक कर) से मुक्ति, प्रत्यक्ष कर लाभ निषेध (जैसे कि निर्यात से होने वाली आय पर आयकर छूट)। ● अगर समय का तकाजा हो तो यह नियंत्रण के लिए देशों को निर्यात पर शुल्क लगाने की अनुमति देता है। मगर अन्य प्रतिबंध लगाने की इजाजत नहीं देता (कुछ मामलों को छोड़ कर)।	● आयात-निर्यात नीति में डी.ई.पी.बी., अग्रिम लाइसेंस, विशेष इम्प्रेस्ट लाइसेंस और ड्राबैक के माध्यम से अप्रत्यक्ष करों का प्रभाव खत्म करने के लिए योजनाएँ हैं। ● सरकार निर्यात आय पर आयकर छूट देती है (आयकर अधिनियम की धारा 80 एच.ए.सी)। 1. विकसित देश इसे सब्सिडी मानते हैं और शिकायत है कि 'गैट' के अनुसार यह निषिद्ध है। 2. उदाहरण के लिए निर्यात उत्पाद में लगने वाली वस्तुओं के आयात पर सीमा शुल्क,	निर्यातकारी कम्पनियों को सरकार से ऐसी योजनाओं की माँग करने का अधिकार है जो निर्यात उत्पाद पर लगाने वाले प्रत्यक्ष कर के प्रभाव को कम कराती हों। ऐसी योजनाओं के अभाव में भारतीय उत्पाद अंतरराष्ट्रीय रूप से अलाभकर स्थिति में होंगे क्योंकि सभी देशों में ऐसी योजनाएँ हैं।

NOTES

			उत्पाद, बिक्री कर/मूल्य संवर्धित कर (वैट), कारोबार कर, स्टाम्प, हस्तांतरण, इन्वेंटरी, उपकरण कर आदि समेत।	
	(g) सब्सिडी और समतुल्य कदमों पर समझौता (एसपीएम)	• निर्यात सब्सिडी पर रोक लगता है। अनुमति योग्य सब्सिडी की इजाजत देता है। • विकासशील देशों से इन्हें 2003 तक चरणबद्ध रूप से खत्म करने (कुछ अपवादों को छोड़ कर) तथा संक्रमण काल में सब्सिडी का स्तर तथा दायरा 'फ्रीज' करने को कहता है।	• आयात-निर्यात नीति में शुल्क वापसी योजनाएँ जारी करते हुए गैट के दिश-निर्देशों का सावधानी से पालन किया जा रहा है और इस बात का ध्यान रखा जा रहा कि वे डब्ल्यूटीओ में विवादित न हों।	• उद्यमियों को यह समझना होगा कि किस बात की अनुमति है और किसकी नहीं। उदाहरण के लिए सरकारों द्वारा छोटे और मझोले उद्योगों को दी जाने वाली सब्सिडी, अनुसंधान और विकास के लिए दी जाने वाली सब्सिडी या मौजूद उत्पादन सुविधाओं के लिए दी जाने वाली सब्सिडी की अनुमति है। • संक्रमणकाल (2003 तक) में भी आयातक देश भारतीय उत्पादों पर शुल्क बढ़ा कर सब्सिडी को समतुल्य कर सकते हैं। • आयात की दृष्टि से संवेदनशील वस्तुओं, कपड़ा, चर्म उत्पाद आदि पर आयातक देश निर्यात सब्सिडी दे सकते हैं।
	(h) सेफगार्ड उपायों पर समझौता	• संक्रमणकाल में घरेलू निर्माताओं को क्षति पहुँचाने वाले आयात में अचानक बढ़ोत्तरी के खिलाफ देश कदम उठा सकते हैं।	• वित्त मंत्रालय में इसके लिए अपेक्षित कानूनी व्यवस्था की गई है।	• कुछ मामलों में अनुचित आयात वृद्धि से घरेलू निर्माताओं को क्षति पहुँची रही हो तो विकासशील देश शुल्क बढ़ा कर व सीमा से अधिक या मात्रात्मक प्रतिबंध लगा सकते हैं (1.4.95 से चार वर्ष तक जिसे दस वर्ष तक बढ़ाया जा सकता है) • नए या मौजूदा उद्योगों के विकास के लिए भी सेफगार्ड उपाय किए जा सकते हैं।
	(i) डंपिंग उपायों पर समझौता	• अनुचित व्यापार व्यवहार का लाभ पा रही आयातित वस्तुओं को रोकने की अनुमति।	• वाणिज्य मंत्रालय में डम्पिंग-रोधी महानिदेशालय की स्थापना। • अब तक 50 से अधिक मामलों में डम्पिंग-रोधी शुल्क और कुछ मामलों में अस्थायी शुल्क लगाए जा चुके हैं।	• घरेलू निर्माताओं के लिए सबसे महत्वपूर्ण अनुचित आयात से बहुत सारे क्षेत्रों को नुकसान पहुँचा है। ऐसे आयात के बहुत से मामलों में कार्यवाही की गई है। ज्यादातर बड़ी इकाइयाँ इन क्षेत्रों में सक्रिय हैं। छोटे और मंझोले उद्यमों को जिन मामलों में नुकसान पहुँच रहा है, उनमें इन उद्यमों के आने की वजह से कोई कदम नहीं उठाया जा सका है।

निवेश उपाय (ट्रिप्स)	निवेश उपायों की मनाही करता है जिन्हें देश, निवेशकों पर लगाते हैं।	नीतियों और औद्योगिक नीतियों पर सीधा प्रभाव जैसे लघु उद्योग क्षेत्र, ऊर्जा, खनन, दूरसंचार, होटल और पर्यटन, एनबीएफसी, सड़क और राजमार्ग, पेट्रोलियम आदि में विदेशी निवेश की अनुमति/मनाही आदि।	फिलहाल पाँच ट्रिप्स (निवेश शर्तों) पर रोक। सन् 2000 में इस पर फिर विचार होगा। • निर्यात प्रगति अपेक्षा, अधिकांश शेयर स्थानीय हाथों में आदि की शर्त रखने की इजाजत • भारत की 'आटो' नीति और 'ट्रिप्स' में सामंजस्यता नहीं।
(k) बाजार प्रवेश वार्ताएँ (Market Access Negotiations)	• 1 जनवरी 2000 तक विकसित देश 5 बराबर किश्तों में तटकर में 40% और विकसित देश 30% कटौती करेंगे। • और अधिक तटकर समूह बद्धता के घेरे में (विकसित देशों में 99% विकासशील देशों में 73%)।	• प्रायः सभी तटकर समूहों पर सीमाशुल्क में तदनुसार कमी। क्रमशः समझौते का पालन (शुल्क की शीर्ष पर 300% से घटकर 50%, तैयार माल पर 150% से घटकर 40%)। • सन् 2003 तक भारत अधिकतम सीमा शुल्क 20% करने की तैयारी में अर्थात् सामान्य कर सीमा 10-15% हो जाएगी।	• घरेलू निर्माताओं के लिए प्रतिस्पर्द्धा में भारती वृद्धि। • कमी के बावजूद विकसित देशों में, विकासशील देशों द्वारा निर्यातित वस्तुओं पर तटकर दरें 12 से 30%।
• वस्त्र और परिधान पर समझौता	• विकासशील देशों पर लगाए गए क्यूआर और मल्टी फाइबर समझौता, 2005 तक (चार चरणों) खत्म कर दिए जाएंगे।	प्रभावः कपड़ा/परिधान निर्यात और आयात पर। परिधानों को लघु उद्योग आरक्षित सूची से बाहर किया गया।	अवसरः भारत से वस्त्र/परिधान निर्यात के लिए महत्वपूर्ण कोटा प्रणाली खत्म कर दी जाएगी। असली लाभ 2002 के बाद मिलेगा। चुनौती प्रतिस्पर्द्धा कई गुना बढ़ जाएगी। कोटा लागू करने वाले देश सेफगार्ड उपाय करने के लिए स्वतंत्रा होंगे। भारत के खिलाफ पहले ही दंडात्मक कार्यवाही की जा चुकी है। परिधानों का आयात शुरू होगा।
• कृषि पर समझौता	• कृषि पर सब्सिडी (खासतौर पर विकसित देशों में) खत्म कर तटकर में बदली जाएंगी। विकसित देशों द्वारा तटकर में 36%, विकासशील देशों द्वारा 24% की कटौती। अभी तक बंद बाजारों में न्यूनतम पहुँच।	• भारत पर किसानों को दी जा रही सब्सिडी खत्म करने का दायित्व नहीं (एएमएस गणनाओं के अनुसार यह ऋणात्मक है)। • भारत द्वारा प्राथमिक उत्पादों पर 100% प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थों पर 150%, खाद्य तेलों पर 300% की ऊंची तटकर दर।	• अधिक सब्सिडी और मात्रात्मक प्रतिबंधों के नाम पर की जा रही रोकटोक हटने से भारतीय कृषि उत्पादों के लिए बाजार बढ़ेगा। उदाहरण के लिए जापान जैसे बंद बाजारों को घरेलू खपत का कम से कम 3% चावल बाहर से खरीदना पड़ेगा। • भारत द्वारा कई कृषि उत्पादों पर लगाए गए मात्रात्मक प्रतिबंध हटने से घरेलू प्रतिस्र्द्धा बढ़ेगी। घरेलू उदारीकरण के बिना कृषि को वांछित लाभ नहीं मिल सकेगा।

• सरकारी खरीद पर समझौता	• वस्तुओं की खरीद पर वादों के मुताबिक एमएफएन और राष्ट्रीय व्यवहार का दर्जा देना।	• भारत फिलहाल इस समझौते में शामिल नहीं है। • मुख्य रूप से कपड़ा, फुटवियर, कम्प्यूटर हार्डवेयर और सॉफ्टवेयर, दूरसंचार उपकरण, • बिजली के साज सामान, औषधि, कृषि, खाद्य पदार्थ, वाहन/ कलपुर्जे, कागज/स्टेशनरी आदि।	• सरकारें बड़ी मात्रा में सामान खरीदती हैं (अक्सर सकल घरेलू उत्पाद का 10-15% तक)। भारत इस समझौते का पक्षकार नहीं है, इसलिए भारत सरकार अधिक कीमत पर भी केवल घरेलू निर्माताओं से सामान खरीद सकती है। आगामी वार्ताओं में इस अधिकार को समाप्त करने के लिए भारी दबाव पैदा होगा। सरकार/सार्वजनिक उपक्रमों को आपूर्ति करने वाले घरेलू निर्माताओं पर इसका गंभीर प्रभाव होगा। • माल और सेवाओं का निर्यात करने वाले भारतीय निर्यातक इस समझौते के हस्ताक्षरी देशों को भी माल बेच सकते हैं। केवल अमेरिका इसकी अनुमति नहीं देता।
• सरकारी व्यापारिक उपक्रमों पर समझौता	• ऐसे उपक्रमों से अपनी गतिविधियाँ व्यावसायिक रूप से चलाने की संस्तुति करता है। • विश्व व्यापार संगठन को इनके कामकाज की जानकारी देनी होगी।	• एसटीसी, एमएमटीसी जैसी सरकारी खरीद एजेंसियों आदि का पुनर्गठन और उनकी गतिविधियों का व्यवसायीकरण।	• फिलहाल इस समझौते का दायरा बहुत सीमित है। ऐसी आशंका है कि बातचीत के आगामी दौर में सार्वजनिक पेट्रोलियम कम्पनियों जैसी एजेंसियों का एकाधिकार खत्म होगा।
• सेवाओं के व्यापार पर आम समझौता (गैट्स)	• सभी सेवाएँ गैट्स में शामिल (12 सेक्टर)। देशों से अति कृपापात्र राष्ट्र सिद्धांत, पारदर्शिता, अर्हताओं की परस्पर मान्यता आदि को सुनिश्चित करने को कहता है। • उदारीकरण वादों की देशवार सूची।	• आयात-निर्यात नीति (1999 तक संशोधित) में पहली बार सेवा अध्याय को व्यापार के बराबर दर्जा दिया गया है। • भारत द्वारा 10 सेवा क्षेत्रों को खोलने का वादा। • बैंकिंग क्षेत्र (निजी क्षेत्र के बैंक खोलने की अनुमति), दूरसंचार क्षेत्र (सेबी की तर्ज पर ट्राई), बीमा क्षेत्र (आई आर ए का गठन) आदि का आंशिक उदारीकरण।	• सकल घरेलू उत्पाद में सेवाओं का हिस्सा 50% से अधिक। प्रायः सभी प्रमुख क्षेत्रों में सरकार का एकाधिकार (बैंकिंग, बीमा, परिवहन-रेल आदि)। इन क्षेत्रों के उदारीकरण से भारतीय कम्पनियों में प्रतिस्पर्द्धात्मक क्षमता बढ़ेगी। • अकाउंटेसी, डाटा प्रोसेसिंग और साफ्टवेयर, मैनेजमेंट कंस्लटेंसी, कानूनी सेवाओं, लाभप्रदता अध्ययन जैसी सेवाओं के निर्यात की अपार संभावनाएं। ई-कॉमर्स और इंटरनेट से सेवा व्यापार के अवसर और बढ़ेंगे।

NOTES

[illegible]	[illegible]	● [illegible] कानून (1970), ट्रे[illegible]	● [illegible] व्यापार पर प्रभाव।
बौद्धिक सम्पदा अधिकार (ट्रिप्स)	ट्रेडमार्क, औद्योगिक डिजाइन, आईसी के लिए लेआउट डिजाइन, भौगोलिक सूचक और अज्ञात सूचनाओं (ट्रेड सीक्रेट) जैसे बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के संरक्षण की व्यवस्था। ● देश एमएफएन और राष्ट्रीय व्यवहार के सिद्धांत का पालन करेंगे। ● विकासशील देश पाँच वर्षों में, अल्पविकसित देश 11 वर्षों में इन्हें लागू करेंगे।	एंड मर्कंडाइज ऐक्ट (1958), डिजाइन ऐक्ट (1911), कापीराइट कानून (1957) आदि में संशोधन। ● ट्रिप्स समझौते के चलते संविदा कानून (1972), ला ऑफ टार्टस, कम्पनी कानून (1956), आयकर अधिनियम (1961), एमआरटीओ एक्ट (1969) आदि कानूनों के कतिपय प्रावधानों में भी संशोधन करना होगा। ● कुछ नए अधिनियम पारित करने होंगे।	छोटे/मंझोले उद्योगों का मुख्य तकनीकी स्रोत रिवर्स इंजीनियरिंग, आई.पी.आर. व्यवस्था के कारण मुश्किल होगा और 'कानून की' जानकारी नहीं कहना कोई बचाव नहीं होगा। (उल्लंघनकर्ता को ही बेगुनाही साबित करनी होगी)। ● तकनीकी हस्तांतरण के मामले बढ़ सकते हैं (व्यावसायिक स्तर पर)। क्योंकि काउंटरफीट (नकल) व्यापार पर प्रभाव रोक होगी। (संशोधित कानूनों के कारण)। ● भारत के अनुसंधान और विकास संस्थानों के लिए देश-विदेश में अपार संभावनाएँ खुलेंगी।
(i) पेटेंट	● प्रक्रिया और उत्पाद दोनों के पेटेंट दिए जाएंगे। ● अवधि 20 वर्ष ● अलग बाध्यकारी लाइसेंस अलग-अलग मान्यता में ही। ● माइक्रो ऑरगेनिज्म पर पेटेंट, देयता। पादक प्रजातियों का संरक्षण पेटेंट या 'अपने प्रकार की अकेली व्यवस्था' या दोनों से।	भारतीय कानून में आंशिक संशोधन (1994)। औषधियों, कृषि रसायनों और खाद्य सामग्री के उत्पाद पेटेंट की अनुमति। पेटेंट का जीवनकाल 20 वर्ष होगा। माइक्रो ऑर्गनिज्म का भी पेटेंट कराया जा सकेगा। द्वितीय संशोधन विधेयक पारित। पौध प्रजातियों के लिए नया कानून।	● औषधि, कृषि रसायनों और खाद्य सामग्री पर असर (पेटेंट किए गए उत्पादों का बिना लाइसेंस के उत्पादन नहीं)। ● भारत को 1 जनवरी 2000 तक का संक्रमणकाल मिला हुआ है। इन तीनों क्षेत्रों के लिए पाँच वर्ष का अतिरिक्त समय, यानी पेटेंट 1 जनवरी 2005 के बाद किए जा सकेंगे। (इसमें यह शर्त शामिल है कि आवेदनकर्ता को पाँच वर्षों के लिए विशिष्ट विपणन अधिकार (ईएमआर) मिल सकेगा। 1 जनवरी 1995 से अथवा पेटेंट देने/न देने की तिथि से, जो भी पहले हो।)
(ii) कापीराइट्स	● कापीराइट की परिभाषा विस्तृत की गई- साफ्टवेयर, साउंड रिकॉर्डिंग, फिल्म आदि शामिल। कम से कम 50 साल का संरक्षण फोटोग्राफी का संरक्षण फोटोग्राफी के लिए 25 साल।	● संशोधित विधेयक संसद द्वारा पारित।	● इसका लाभ भारतीय साफ्टवेयर, संगीत और फिल्म उद्योग तथा लेखकों, प्रकाशकों आदि को मिलेगा।
(iii) ट्रेडमार्क	● ट्रेड और सर्विस मार्क शामिल, सात वर्ष का संरक्षण (अनंतकाल तक पुनर्नवीनीकरण)	● नया संशोधित विधेयक संसद द्वारा पारित।	● जालसाजी व्यापार पर प्रभावी असर। ● कंपनियों/उत्पादों के नाम चुनने में लघु और मध्यम उद्यमों को सावधानी बरतनी चाहिए।

			दूसरे के ब्रांड नाम का कंपनी के नाम के रूप में उपयोग नहीं किया जा सकता (मारुति, उषा, रिलायंस जैसे नाम नहीं रखे जा सकेंगे।)
(iv) औद्योगिक और लेआउट डिजाइन	• शामिल हैं: मूल एवं नवीन औद्योगिक डिजाइन तथा आई.सी. के लेआउट डिजाइन। 10 वर्ष का संरक्षण	• नया संशोधित विधेयक संसद द्वारा पारित।	• भारतीय डिजाइनों, परिधानों, वस्त्र/परिधान उद्योग, आईसी निर्माताओं पर असर जो संरक्षित डिजाइनों का उपयोग करते हों।
(v) अज्ञात सूचनाएँ और ट्रेड सीकेट	• इन्हें बौद्धिक संपदा नहीं मानता मगर आपसी मान्यताओं से इनके संरक्षण को कहता है।	• तकनीकी ज्ञान समझौते और संविदा कानून पर असर।	• कर्मचारियों, सलाहकारों, लाइसेंसधारकों, उप ठेकेदारों आदि पर गोपनीय सूचनाएँ बताने की मनाही। • अनुमति देने के पहले सरकार अज्ञात परीक्षण आँकड़े देने को कह सकती है (मसलन औषधि उत्पाद में)।
(vi) भौगोलिक सूचक	• देशों को ऐसे ट्रेडमार्क देने से रोकता है जो वस्तुओं की भौगोलिक उत्पत्ति के बारे में भ्रामक सूचनाएँ देते हों। जैसे शैम्पेन-फ्रांस के एक खास इलाके की शराब है। हर शराब शैम्पेन नहीं हो सकती। इसी प्रकार दार्जिलिंग चाय।	• नया संशोधित विधेयक संसद द्वारा पारित। • भारत, पेरिस कन्वेंशन या लिस्बन समझौते (भौगोलिक सूचकों पर) आदि महत्वपूर्ण समझौतों की सदस्यता ग्रहण कर रहा है जो विश्व बौद्धिक संपदा संगठनों से शासित हैं।	• कृषि/खाद्य उत्पादों पर गहरा असर, सुधरी हुई व्यवस्था से लाभ। • भौगोलिक सूचकों पर कोई कानून न होने से बासमती चावल, दार्जिलिंग चाय, अल्फांसों आम आदि पर विवाद सामने आ रहे हैं।

प्रश्न
(Questions)

1. विश्व व्यापार समझौतों का वर्णन कीजिए और बताइये कि विकासशील देशों पर उनका क्या प्रभाव पड़ेगा?
2. WTO विकासशील देशों के प्राथमिक उपचार सम्बन्धी प्रावधान बतलाइये।
3. भारतीय व्यापार पर विश्व व्यापार संगठन समझौतों का प्रभाव समझाइये।
4. WTO और भारत पर एक विस्तृत टिप्पणी लिखिये।

अपनी प्रगति की जाँच करें
Test your Progress

19

WTO - क्षेत्रीय सामूहिक एवं तकनीक प्रभाव का उत्पाद कारोबार

(PRODUCT BUS OF REGIONAL GROUPINGS, AND TECHNICAL STANDARD)

NOTES

भूमिका :- छोटे और मध्यम दर्जे के उद्यमों के लिए ग्राहकों में अपनी पहचान बनाना और उन्हें अपने प्रति आकर्षित करना कठिन कार्य है। माल चाहे कितना भी बढ़िया हो तो भी खुदरा बिक्री दुकानों, स्थानीय बाजारों, वितरण नेटवर्क में पैठ बनाने तथा ग्राहकों के बीच उत्पाद को लोकप्रिय बनाने के लिए बहुत अधिक निवेश की आवश्यकता होती है। इस निवेश से कई फर्मों का खर्च बजट से भी अधिक हो सकता है। उत्पादन छोटे पैमाने पर होने के कारण छोटे और मध्यम दर्जे के कई उद्यमों को अपने उत्पादों को जोरदार प्रचार करके, उनका स्थान बनाने और ग्राहकों के बीच उन्हें लोकप्रिय बनाने के लिए कठिनाई का सामना करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में उनके पास और क्या विकल्प रह जाता है? इस संदर्भ में क्षेत्रीय सामूहिक चिन्ह एवं तकनीकी प्रभाव उत्पाद की लोकप्रियता में वृद्धि करता है।

एक पुरानी कहावत है कि "यदि आप किसी को हरा न सके तो उससे दोस्ती कर लें"। इस कहावत में बड़ी ही बुद्धिमानी की बात छुपीहुई है। पेसवियन इंस्टट्यूट फार दि डिफेंस आफ काम्पटिशन एंड दि प्रोटेक्शन आफ इंटिलेक्चुअल प्रापर्टी (आईस एन डी ई सी ओ पी आई) के लुइस के एलोंसो ग्रेशिया का कहना है कि "छोटे और मध्यम दर्जे के उद्यमों के समक्ष आने वाली बड़ी चुनौती यह नहीं है कि उनका आकार छोटा है बल्कि उनका अलग-थलग होना है।" एलोंसो ग्रेशिया ने यहां उन कठिनाइयों को इंगित किया है जिनका सामना संगठित हुए बिना अलग-अलग कार्य कर रहे छोटे और मध्यम दर्जे के उद्यमों को अपनी पहचान कार्य कर रहे छोटे और मध्यम दर्जे के उद्यमों को अपनी पहचान बनाने के लिए कहना पड़ता है हालांकि बाजार में अपने उत्पादों की पहचान बनाने के लिए वे ऐसा करते हैं।

क्षेत्रीय सामूहिक:- सामूहिक रुप से कार्य करने से छोटे और मध्यम दर्जे के उद्यम, अपेक्षाकृत छोटे उद्यमों को मिलने वाले लाभ और सामूहिक शक्ति के फायदे दोनों ही साथ-साथ हासिल कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, छोटी कंपनियों के अधिकारी तंत्र अपेक्षाकृत कम व्यापक होता है और बाजार स्थिति के अनुरुप अपने को ढालने के लिए उनमें काफी लचीपालन होता है। क्षेत्रीय सामूहिक रुप से कार्य करने से बड़ी कंपनियों के समान ही व्यापक पैमाने पर उत्पादन से होनी वाली किफायत का लाभ उठा सकते हैं व प्रसद्धि ब्रांड नाम का उपयोग कर सकते हैं। बहुत से देशों में इन फायदों की जानकारी है और वे भौगोलिक व औद्योगिक सेक्टरों के आधार पर बनाए गए संघों अथवा संस्थानों में शामिल हो गए हैं।

अधिकांश देशों के बौद्धिक सम्पदा कानून के अन्तर्गत सामूहिक चिन्हो की संरक्षा के लिए उपबंध किए गए हैं। सामान्यत: सामूहिक चिन्ह ऐसे प्रतीक होते है जिनसे इनका प्रयोग करने वाले विभिन्न उद्यमों के माल या सेवाओं के बारे में यह पता चलता हो कि उनका प्रारंभ किस स्थान विशेष से हुआ। इसके अतिरिक्त वे तत्संबंधी सामग्री, विनिर्माण विधि या उनकी अन्य साझी विशेषताओं को भी इंगित करते हैं। इन चिन्हों का स्वामी एक संघ होता है और उद्यम उस संघ के सदस्य होते हैं। इसके अलावा सार्वजनिक या सहकारी संस्था या कोई अन्य निकाय भी इनके स्वामी हो सकते हैं। सामूहिक चिन्ह का एक सुप्रसद्धि उदाहरण "इंटरफ्लोरा" हैं। इसका उपयोग पूरे विश्व में फूल बेचने वाली कंपनियों द्वारा किया जाता है।

क्षेत्रीय सामूहिक चिन्ह के स्वामी को कुछ मानकों का अनुपालन सुनिश्चित करना होता है। प्राय: ये मानक, सामूहिक चिन्ह का सदस्यों द्वारा उपयोग किए जाने के बारे में बनाए गए नियमों में नियत किए गए होते हैं। इस प्रकार सामूहिक चिन्ह के जरिए जनता को उस उत्पाद की कुछ खासियतों के बारे मं बताया जाता है जिसमें उक्त चिन्ह प्रयुक्त किया गया हो। अधिकांश देशों में सामूहिक चिन्ह संबंधी आवेदन के साथ, उसके प्रयोग के लिए बनाए गए नियमों की प्रति भी प्रस्तुत की जानी होती है।

क्षेत्रीय सामूहिक चिन्हों का प्रयोग प्राय: किसी स्थान से जुड़े खास उत्पादों के प्रचार के लिए किया जाता है। सामूहिक चिन्ह बना दिए जाने से उक्त उत्पादों की स्थानीय बाजार में पैठ बनाने में सहायता मिली है और कभी कभार वे अंतरराष्ट्रीय बाजार में भी पहुंच जाते हैं। इतना ही नहीं इससे स्थानीय उत्पादकों के बीच सहयोग व्यवस्था भी कायम हुई है। वास्तव में जब कतिपय मानक व मानदण्ड तथा साझी नीति निर्धारित की जा रही हो तो उसके साथ-साथ

NOTES

सामूहिक चिन्ह बनाने का कार्य भी किया जाना चाहिए। इस प्रकार सामूहिक चिन्ह, स्थानीय विकास का सशक्त माध्यम सिद्ध हो सकते हैं।

किसी दूसरे स्थान के उत्पादों की बिक्री सामूहिक चिन्हों के अंतर्गत की जा सकती है और बहुत से देशों में उत्पाद के मूल स्थान का उल्लेख किए जाने की आवश्यकता होती है। इन देशों में भौगोलिक संकेतकों का पंजीकरण करवाना आवश्यक है जबकि कई में ऐसा नहीं है। उक्त संकेतकों से यह पता चलता है कि उत्पाद मूलतः किस देश, क्षेत्र या स्थान का है क्योंकि उत्पाद की गुणता, प्रतिष्ठा या अन्य विशेषताएँ उनके मूल स्थान से ही पहचानी जाती है। कुछ उत्पादों मुख्यताः वाइन व स्पिरिट के भौगोलिक संकेतकों को अन्य उत्पादों के ऐसे ही संकेतकों और सामूहिक चिन्ह के अन्तर्गत बेचे जाने वाले उत्पादों की तुलना में बहुत अधिक संरक्षा प्राप्त है।

प्रमाणीकरण

कई देश प्रमाणीकरण चिन्हों को भी संरक्षा प्रदान करते हैं। ये चिन्ह प्रायः निर्धारित मानकों के अनुपालन के संदर्भ में दिए जाते हैं और इन्हें प्राप्त करने के लिए सदस्य होना आवश्यक नहीं है। इन्हें कोई भी प्रयुक्त कर सकता है परंतु उसे यह प्रमाणित करना होगा कि उत्पादों के संबंध में कतिपय निर्धारित मानकों का अनुपालन किया गया है। प्रसिद्ध प्रमाणीकरण चिन्हों में वूलमार्क चिन्ह शामिल है जिससे यह प्रमाणित होता है कि जिन उत्पादों पर यह लगाया गया है वे 100 प्रतिशत ऊन से बने हुए हैं। इसी प्रकार फ्रांस में लेबल रुज उच्च गुणवत्ता वाले कृषि उत्पादों के लिए प्रयुक्त किया जाता है।

बहुत से देशों में सामूहिक चिन्हों व प्रमाणीकरण चिन्हों में यह अंतर है कि सामूहिक चिन्हों का उपयोग उद्योग के विशिष्ट समूह ही कर सकते हैं जैसे कि किसी संघ के सदस्य। दूसरी ओर, प्रमाणीकरण चिन्ह के स्वामी द्वारा नियत मानकों का अनुपालन किया हो। प्रमाणीकरण चिन्ह के संबंध में एक महत्वपूर्ण बात यह है कि जो संस्था पंजीकरण के लिए आवेदन करती है उसे संबंधित उत्पादों को प्रमाणित करने के लिए सक्षम मान लिया जाता है।

छोटे और मध्यम दर्जे के उद्यम अपने समूह के उत्पादों की संयुक्त रुप से बिक्री करने के लिए सामूहिक चिन्हों को पंजीकृत करवा सकते हैं और ऐसा करके अपने उत्पाद की पहचान बना सकते हैं। वे प्रमाणीकरण चिन्हों को भी प्रयुक्त कर सकते हैं। जिनसे यह प्रमाणित होगा कि उनके उत्पादों के संबंध में कुछ पूर्व निर्धारित मानक अपनाए गए हैं। सामूहिक और प्रमाणीकरण चिन्ह दोनों को किसी उत्पाद के निर्माता के ट्रेडमार्क के साथ भी प्रयुक्त किया जा सकता है। इससे कंपनियां अपने उत्पादों को प्रतिस्पर्धी के उत्पादों से अलग दर्शा सकती हैं और साथ ही साथ सामूहिक/प्रमाणीकरण चिन्ह उत्पादों या सेवाओं के प्रति उपभोक्ताओं में प्राप्त विश्वास का लाभ भी उठा सकती हैं। सामूहिक या प्रमाणीकरण चिन्ह के रुप में प्रयुक्तलेबल इस बात का प्रमाण होगा कि उत्पाद उन विशिष्ट मानको पर खरे उतरे हैं जो सामूहिक या प्रमाणीकरण चिन्ह को प्रयुक्त किए जाने के लिए निर्धारित किए गए हैं।

अतः सामूहिक और प्रमाणीकरण चिन्ह छोटे और मध्यम दर्जे के उद्यमों के लिए उपयोगी साधन सिद्ध हो सकते हैं इनसे वे, अपने छोटे स्वरुप और बाजार में अलग-अलग पड़ जाने के कारण उत्पन्न चुनौतियों का सफलतापूर्वक सामना कर सकते हैं। पंजीकरण प्रक्रिया तथा सामूहिक व प्रमाणीकरण चिन्हों के प्रयोग के विषय में और सूचना राष्ट्रीय औद्योगिक संपत्ति कार्यालयों से प्राप्त की जा सकती है।

काजामार्का पेरु डेरी उपोत्पाद

काजामार्का पेरु का एक क्षेत्र है जो समुद्र तल से 3,000 मीटर की ऊंचाई पर स्थित है। अपनी भौगोलिक स्थिति और प्राकृतिक विशेषताओं के कारण यहां के पशु बहुत पौष्टिक और बढ़िया दूध देते हैं। यह क्षेत्र अपने पनीर, दही, ब्लामांज, मक्खन और अन्य दुग्ध उत्पादों के लिए विख्यात है और काजामार्का नाम इस क्षेत्र के दुग्ध उत्पादों संबंधी कार्यकलापों से जुड़ा हुआ है। इसके दुग्ध उत्पाद शहर में छोटे बाजों और चलते-फिरते विक्रेताओं के माध्यम से बेचे जाते हैं। ये उत्पाद उत्तम कोटि के होते हैं और बहुत विख्यात हैं।

यदि ख्याति देश के अन्य शहरों के उत्पादकों को इस बात के लिए प्रेरित कर रही है कि वे अपने उत्पादों के विपणन के लिए काजामार्का नाम का प्रयोग करें। इस प्रकार वास्तविक काजामार्का उत्पादों की ख्याति का अनुचित प्रयोग हो रहा है और अनेक मामलों में इस नाम के साथ जुड़ी गुणवत्ता में कमी पाई जाती है।

इस क्षेत्र में चलाए गए जोरदार अभियान के कारण दूध से बनी चीजों के 80 उत्पादकों को एकजुट करना संभव हुआ। इन उत्पादकों के सांझा उद्देश्य इस प्रकार है :

- अपने उत्पाद लीमा (आदर्श बाजार) में उतारने में समर्थ होना और इनका विपणन वितरण नेटवर्क में करना,
- अंततः अपने उत्पाद निर्यात करने में सक्षम होना,

- सामूहिक चिन्ह स्कीम के अन्तर्गत कार्य करना।

अंततः 37 उत्पादकों ने उत्पादक संघ के रुप में सामूहिक चिन्ह को पंजीकृत करवाया और अब ये उत्पाद को बाजार में उतारने के लिए विपणन संबंधी पहलुओं पर कार्य कर रहे हैं। इसके साथ-साथ वे स्वयं उत्पाद गुणवत्ता और समांगीकरण पहलुओं पर संयुक्त रुप से कार्य कर रहे हैं।

उत्पादक यह पहले ही अनुभव कर चुके हैं कि औद्योगिक संपत्ति से उन्हें सहायता मिली है, वे स्वयं इस विषय में रुचि ले रहे हैं और उन्होंने गुणवत्ता और समांगीकरण के विषयों पर एकजुट होकर कार्य करने की नीति अपनाई हैं।

सामूहिक चिन्हों के साथ सफल प्रयोगों ने न केवल छोटे व्यवसायियों को अपनी विपणन लागत घटाने में सक्षम बनाया है, बल्कि उन्हें और अधिक प्रतिस्पर्धात्मक भी बनाया है। इस प्रकार से कम लागत पर अपने उत्पादों को सुरक्षित और विशिष्ट बनाए रखने में सफल हुए हैं। परिणामस्वरुप उन्हें अत्यधिक बचत का लाभ मिला है और उनके उत्पादों में ग्राहकों का विश्वास भी बढ़ा है।

किसी चिन्ह को तैयार करने में आने वाली लागत और विपणन तथा विज्ञापन अभियान की लागत बहुत अधिक हो सकती है, सामूहिक चिन्ह एक किफायती माध्यम के रुप में सामने आए हैं जो पेरु में तैयार किए जाने वाले उत्पादों की विशिष्ट पहचान बनाने के साथ-साथ जिन क्षेत्रों में उत्पाद निर्मित होते हैं, उनकी विशेषताओं को उजागर करने का कार्य भी करते हैं।

उत्पाद कारोबार

बाजार में सफलता प्राप्त करने के लिए बौद्धिक संपदा के विभिन्न घटकों के महत्व को समझना और इनका कारोबार की रणनीति के एक अभिन्न अंग के रुप में कारगर प्रयोग करना अत्यंत आवश्यक है। कारोबार में, विनिर्माण संबंधी गुप्त बातों अथवा अन्य उपयोगी जानकारी को अपने तक सीमित रखकर प्रतिस्पर्धा में आगे बने रहने के लिए बौद्धिक सम्पदा की जरुरत पड़ती है। उत्पादों की गुणवत्ता बनाए रखने, उनकी बिक्री व उपभोक्ताओं तक वस्तुएं तथा सेवाएं पहुंचाने के लिए बौद्धिक सम्पदा का पूर्ण उपयोग करना जरुरी होता है ताकि लम्बे समय तक ग्राहकों का भरोसा बना रहे।

अपने प्रतिस्पर्धियों से आगे रहने के लिए, व्यवसायियों को या तो लगातार बिल्कुल नए उत्पादों और सेवाओं को बाजार में लाना होगा या फिर अपने मौजूदा उत्पादों और सेवाओं की गुणवत्ता में समय-समय पर थोड़ा बहुत सुधार करना होगा। ग्राहक की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर भी बदलाव करने पड़ते हैं, इसलिए, रोजमर्रा के जीवन में प्रयोग होने वाले लगभग प्रत्येक उत्पाद अथवा सेवा में धीरे-धीरे परिवर्तनों को देखते हुए कमोबेश बदलाव होता ही रहता है, जैसे किसी उत्पाद के डिजाइन में बदलाव अथवा आकार-प्रकार और उपयोगिता में सुधार आदि। व्यवसासी उत्पादों की गुणवत्ता बनाए रखने, उनकी बिक्री तथा अपने उपभोक्ताओं तक सेवाएं पहुंचाने के प्रति भी सजग रहते हैं। इन सभी के लिए मौलिक तथा अभिनव दोनों प्रकार की जानकारी का होना अनिवार्य है।

कारोबार के लिए ऐसी जानकारी के सफल प्रबंधन के लिए बौद्धिक संपदा सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। मुख्य बौद्धिक सम्पदा अधिकार हैं- (1) पेंटेंट (आविष्कारों के मामलों में), (2) ट्रेडमार्क, (3) औद्योगिक डिजाइन, (4) बहुमूल्य गुप्त जानकारी अथवा ट्रेड सीक्रेट, और (5) कॉपीराइट तथा इससे संबद्ध अथवा समवर्गी अधिकार।

यह संभावना है कि कोई भी उद्योग अथवा कारोबार, चाहे परम्परागत हो अथवा आधुनिक, चाहे वह कोई भी उत्पाद बनाता हो अथवा किसी भी प्रकार की सेवा प्रदान करता हो, इस आशय से कि उनका उचित लाभ अथवा बाजार में बनी उसकी साख का फायदा कोई अन्य उद्योग अथवा कारोबार न उठाने पाए, बौद्धिक सम्पदा का सदैव उपयोग करेगा। प्रत्येक उद्योग अथवा कारोबार को अपनी बौद्धिक सम्पदा की पहचान करने, उसकी रक्षा करने तथा उनका प्रबंधन करने के लिए व्यवस्थित उपाय करने चाहिए ताकि वह उसके स्वामित्व से हर संभव लाभकारी परिणाम प्राप्त कर सके।

यदि कोई कारोबार अथवा औद्योगिक उद्यम किसी अन्य कारोबार अथवा औद्योगिक उद्यम की बौद्धिक सम्पदा का उपयोग करने का इरादा रखता हो तो उसे ऐसी संपदा को खरीद लेने अथवा लाइसेंस लेकर उसका उपयोग करने का अधिकार प्राप्त करने पर विचार होगा ताकि किसी प्रकार का विवाद न उठे और परिणामस्वरुप खर्चीली मुकदमेबाजी में न उलझना पड़े। यदि कोई कारोबार अथवा उद्योग बौद्धिक सम्पदा प्रणाली के संबंध में अनभिज्ञ होने के कारण अन्य किसी कारोबार अथवा उद्योग के बौद्धिक सम्पदा अधिकारों का अनजाने ही उल्लंघन कर बैठता है तो उसे कानूनी समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है। इसलिए, बाजार में सफलता प्राप्त करने के लिए बौद्धिक सम्पदा प्रणाली की बुनियादी जानकारी होना पूर्वापेक्षा बन चुकी है।

प्रत्येक उद्योग अथवा कारोबार को अपने उत्पादों अथवा सेवाओं का विज्ञापन करने और उन्हें बाजार में बेचने के लिए किसी न किसी ट्रेड नाम की और प्रायः एक या एक से अधिक ट्रेकमार्कों की जरुरत होती है। नये ट्रेड नाम अथवा ट्रेडमार्क का चुनाव करते समय किसी व्यवसायी को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वह ऐसे अन्य कारोबारों अथवा औद्योगिक उद्यमों के साथ विवाद में न फंस जाए जो समान अथवा समान लगने वाले ट्रेडनामों अथवा ट्रेडमार्कों का पहले से ही प्रयोग कर रहे हैं अथवा जिनके पास ऐसे ट्रेडनामों अथवा ट्रेडमार्कों के कानूनी अधिकार हैं। किसी व्यापारी को अच्छी तरह से जांच पड़ताल और चयन करने के बाद ही अपने ट्रेडनाम और ट्रेडमार्क की रक्षा करनी चाहिए।

अधिकांश उद्यमों के पास ग्राहक सूचियों से लेकर बिक्री युक्तियों तक कारोबार की ऐसी बहुमूल्य गोपनीय जानकारी होती है जिसे वे सुरक्षित रखना चाहते हैं। हो सकाता है कई उद्यमों ने अपने मूल डिजाइन तैयार किए हों या फिर ऐसे कार्य किए हों या उनके प्रकाशन, प्रसार अथवा फुटकर बिक्री में सहायता की हो जिसका कापीराइट हो। हो सकता है कुछ उद्यमों ने किसी उत्पाद का आविष्कार किया हो। हो सकता है कुछ उद्यमों ने किसी उत्पाद का आविष्कार किया हो। ऐसी प्रत्येक स्थिति में संबंधित उद्यम को चाहिए कि वह अन्य उद्यमों के बौद्धिक सम्पदा अधिकारों से उत्पन्न हो सकने वाले कानूनी विवाद से बचने के लिए पर्याप्त समय और शक्ति लगाए।

ऐसे सभी मामलों में, उद्यम को इस बात पर विचार करना चाहिए कि वह बौद्धिक सम्पदा प्रणाली का अपने फायदे के लिए न्यूनतम लागत पर किस प्रकार उपयोग कर सकता है। बौद्धिक सम्पदा किसी भी उद्यम के कारोबार विकास और प्रतिस्पर्धा रणनीति के पहलुओं उत्पाद विकास से लेकर उत्पाद डिजाइन तक, सेवा प्रदान करने से लेकर विपणन तक और वित्तीक संसाधन जुटाने से लेकर निर्यात करने अथवा लाइसेंसिस या विक्रय विशेष अधिकार (फ्रेंचाइज) देकर अपने कारोबार को विदेशों में बढ़ाने तक में सहायक हो सकती है।

ट्रेडमार्कों की भूमिका

प्रबंध के क्षेत्र में सुविख्यात गुरु पीटर ड्रकर ने कहा था कि "व्यापारिक उद्यम के दो मूल कार्य होते हैं : विपणन और नवीनता। विपणन और नवीनता से ही लाभप्रद परिणाम प्राप्त होते हैं, बाकी सब तो केवल लागत होती है।" इन दो मूल कार्यों से ही किसी भी कारोबार में ग्राहकों को अच्छी किस्म के उत्पाद और सेवाएं मुहैया कराकर आर्थिक लाभ कमाने की एकमात्र आकांक्षा पूरी होती है। बौद्धिक सम्पदा इन दोनों कार्यों को करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है और विपणन प्रक्रिया में ट्रेडमार्कों का विशेष महत्व होता है।

बाजार में उपलब्ध प्रत्येक उत्पाद के ऐसे प्रतिस्पर्धी उत्पाद होते हैं जो लगभग समरुप, होते हैं जिन्हें पूर्णतया उनके स्थान पर प्रयोग किया जा सकता है। ग्राहकों की अपेक्षाओं पर खरा उतरना एक चुनौतीपूर्ण कार्य हैं,

विशेषकर एक ही जरुरत को पूरा करने के लिए प्रतिस्पर्धी बाजार में अनेक एक जैसे उत्पाद उपलब्ध होने के कारण ग्राहकों की रुचि और पसंद लगातार बदलती रहती हो। ऐसी स्थिति में, संभवतः वही कारोबार भरोसेमंद ग्राहक वर्ग बना सकता है जो इन चुनौतियों का सामना कर सकता है।

तकनीकी प्रभाव :- **ट्रेडमार्क** प्रत्येक कारोबार को अपने उत्पाद के प्रति विश्वास, भरोसा और निष्ठा पैदा करने के लिए अपनी अलग पहचान, छवि अथवा साख बनानी होती है और उसे कायम रखना होता है। तभी वह अपनी तथा अपने उत्पादों की पहचान अपने प्रतिस्पर्धियों से अलग बना सकता है। साथ ही उसे ऐसी युक्ति भी विकसित करनी चाहिए कि उत्पादक को विश्वास और साख जैसी कारोबार की बहुमूल्य संपत्तियों से भी जोड़ा जा सके। कारोबार प्रायः विशिष्ट ट्रेड नाम और तकनीकी प्रभाव के आधार पर ट्रेडमार्क अपनाते है।

ट्रेड नाम और ट्रेड मार्क उत्पादों की प्रतिस्पर्धी उत्पादों से अलग पहचान बनाने की विपणन नीति और परिश्रम से बनाई गई छवि अथवा साख को ग्राहकों तक पहुंचाकर दीर्घकालिक सकारात्मक और प्रायः भावनात्मक-संबंध बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। प्रत्येक कारोबार में ग्राहकों को ब्रांड की जानकारी देकर इस प्रकार आकर्षित करना चाहिए कि वे ब्रांड का पता लगने के बाद शीघ्र ही उसे पसंद करने लगें और उस ब्रांड के प्रति इस हद तक उनका आग्रह हो कि वे उसके विकल्प को स्वीकार न करें और उस ब्रांड के लिए आर्थिक कीमत देने के लिए भी तैयार हों। प्रभाव उत्पाद अधिक लोकप्रिय हो जाने से भी ग्राहक आकर्षित होते हैं।

तकनीक प्रभाव द्वारा स्वीकृत ब्रांड अथवा ट्रेडमार्क बाजार के उत्पादों में वैधानिक उत्पाद माना जाता है। निस्संदेह, किसी उत्पाद का ब्रांड अथवा संकल्पना है क्योंकि कोई सशक्त ब्रांड बनाना और किसी कारोबार की ब्रांड ईक्विटी स्थापित करना किसी एक अथवा कायम रखने की तुलना में बड़ी चुनौती होती है। सशक्त ब्रांड और सफल ब्रांड आम तौर पर बाजार शेयर में योगदान, बिक्री, लाभ मार्जिन, भरोसा और बाजार की जागरुकता के रुप में सफलता इंगित करता है। परन्तु किसी ब्रांड की अंतिम सफलता का पता इस बात से भी चलता है कि ग्राहक को संबंधित ब्रांड वाले उत्पाद से कितनी संतुष्टि मिली है।

व्यापारिक प्रतिष्ठान प्रायः एक ही देश में अथवा विभिन्न देशों में विभिन्न ग्राहक वर्गों की अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए अपनी बाजार नीति को विविधता प्रदान करने के लिए ट्रेडमार्कों के पोर्टफोलियों का प्रयोग करते हैं। सशक्त ब्रांड छवि बनाना आसान काम नहीं है। उत्पादों के कारगर विपणन के लिए ट्रेडमार्कों का प्रयोग करने के लिए राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तरों पर ट्रेडमार्क कानून एवं पद्धति की पूरी जानकारी होनी चाहिए जिसके लिए व्यावासायिक मार्गदर्शन प्राप्त करना आवश्यक हो जाती है, क्योंकि यह एक विशेषज्ञतापूर्ण कार्य है। तथापि, अच्छा ट्रेडमार्क तैयार करने के लिए कुछ मूल बातों का ध्यान में रखा जाना चाहिए।

- मूल रुप से विशिष्ट होना चाहिए, जो तकनीक प्रभाव पर आधारित हो,
- याद रखने और बोलने में सरल होना चाहिए,
- कारोबार के उत्पाद अथवा छवि के अनुकूल होना चाहिए,
- कानूनी प्रतिबंधों से रहित होना चाहिए,
- सकारात्मक प्रभाव वाला होना चाहिए।

ब्रांड/ट्रेडमार्क कोई शब्द, चिन्ह आकृति, अथवा देश का कानून यदि अनुमति दे तो ध्वनि अथवा गंध, अधिक बातों का संयोजन हो सकता है।

ब्रांड का मूल्य

ब्रांडों का मूल्य अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में अलग अलग होता है। कुछ विकसित अर्थव्यवस्थाओं में कारोबारों के हाल ही में किए गए सर्वेक्षण के अनुसार, यह औद्योगिक क्षेत्र में फर्म के कुल मूल्य का लगभग 10 प्रतिशत, वित्तीय सेवाओं और ऑटोमोटिव क्षेत्रों में लगभग 40 प्रतिशत तथा खाद्य अथवा विलासिता की वस्तुओं के क्षेत्र में लगभग 70 से 90 प्रतिशत तक है।

किसी ब्रांड का मूल्य उस ब्रांड की अन्य बौद्धिक सम्पदा और अमूर्त संपत्तियों के मूल्य को निकालने के बाद, अच्छी राशि प्राप्त हो सकती है। विश्व के सर्वाधिक मूल्यवान विश्वव्यापी ब्रांडों के अन्तरब्रांड 2001 वार्षिक सर्वेक्षण के निष्कर्षों से इस बात का स्पष्ट पता चलता हैं जिनके बारे में सावधानी बरतने, उनकी देखभाल करने, संवृद्धि और सुरक्षित रखने की जरुरत होती है, अन्यथा उनका मूल्य घट सकता है, या अपना अस्तित्व खो सकते हैं।

प्रभाव ट्रेडमार्क सुरक्षित

व्यर्थ के खर्चों से बचने और जोखिम कम करने के लिए प्रमुख उपाय यह है कि ट्रेडमार्क को जल्द से जल्द पंजीकृत करवाया जाए ताकि यह कानूनी रुप से सुरक्षित हो जाए और अन्य लोग इसका फायदा न उठा सकें। पंजीकृत कराने का काम अक्सर नए, उत्पाद के परीक्षण विपणन से काफी पहले ही करा लिया जाता है ताकि ऐसा न हो कि उसके विज्ञापन और संवर्धन संबंधी अन्य कार्यकलापों पर व्यर्थ खर्च करना पड़ जाए और अंत में पता चले कि ब्रांड नाम तो मौजूद ही नहीं रह गया है।

कुछ देश अपंजीकृत ट्रेडमार्कों को कुछ सीमा तक सुरक्षा प्रदान करते हैं, अधिकांश देशों में ऐसी सुरक्षा सफल पंजीकरण होने पर दी जाती है। कई देश प्रयोग से पहले ही पंजीकरण कर लेते हैं, लेकिन यदि ट्रेडमार्क का संबंधित उत्पाद संबंध में किसी निश्चित अवधि तक प्रयोग न किया जाए तो उसे रद्द भी कर दिया जाता है।

जागरुक व्यवसायी अपने कर्मचारियों, डीलरों, वितरकों, समाचार-पत्र संपादकों, विश्वकोशों के प्रकाशकों और आम जनता को इस बात की जानकारी देने के लिए सक्रिय उपाय करते हैं कि उनके ट्रेडमार्क से केवल उन्हें के विशिष्ट उत्पादों की पहचान हो, इसलिए उनका सही ढंग से प्रयोग किया जाना चाहिए।

एक अन्य महत्वपूर्ण उपाय, जो प्रत्येक व्यवसायी को करना चाहिए वह यह कि ट्रेडमार्कों के पोर्टफोलियों की वार्षिक समीक्षा की जाए ताकि इस बात की जांच होती रहे कि क्या (1) घरेलू अथवा निर्यात बाजारों में प्रयोग किए जा रहे अथवा प्रयोग किए जाने के लिए प्रस्तावित सभी ट्रेडमार्कों का पंजीकरण कराने, (2) यदि ट्रेडमार्क कानून के अंतर्गत अपेक्षित हो तो ट्रेडमार्क के लाइसेंसिंग को रिकार्ड में दर्ज कराने, (3) ट्रेडमार्क लाइसेंसधारी अथवा विक्रय विशेष अधिकार प्राप्त व्यक्ति आदि द्वारा दी गई उत्पाद की गुणवत्ता पर समुचित नियंत्रण रखने, और (4) ट्रेडमार्क के पंजीकरण का नवीकरण कराने के संबंध में समय पर कार्यवाही की गई है।

डिजाइन का प्रभाव

किसी भी वस्तु की ऊपरी साज-सज्जा का ग्राहक पर निश्चित रुप से पहला प्रभाव पड़ता है और उसे खरीदने या न खरीदने का निर्णय लेने में यह बात महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। अच्छी व्यवसायी ग्राहक की बदलती पसंद का

ध्यान में रखता है ताकि ऐसे बेहतर उत्पाद बनाए जा सकें जो कार्य में अच्छे सिद्ध हों और देखने में भी अच्छे लगते हों। अतः कंपनी की कारोबारी नीति व उसकी सफलता में डिजाइन की मुख्य भूमिका होती है।

NOTES

डिजाइन प्रबंधन की आधारभूत बातें

सर्वोत्तम डिजाइन प्रबंधन के लिए सबसे महत्वपूर्ण एवं प्रमुख बात यह है कि बहुमूल्य डिजाइनों के संरक्षण के लिए कोई लागत प्रभावी प्रणाली होनी चाहिए ताकि उत्पाद कोई आम वस्तु बनकर न रह जाए और कम मूल्य के उसी जैसे उत्पादों के लिए उनकी नकल को रोका जा सके। इसके लिए राष्ट्रीय या क्षेत्रीय डिजाइन कार्यालय में नए, अनूठे या मूल डिजाइनों का पंजीकरण कराना आवश्यक हो जाता है।

"डिजाइन" औद्योगिक डिजाइन या "डिजाइन पेंटेंट" शब्दों का जब बौद्धिक सम्पदा कानून व प्रक्रिया में प्रयोग किया जाता है तब उनका एक विशेष अर्थ होता है। अधिकांश मामलों में इनका अभिप्राय ऊपरी दिखावट (स्वरुप) से होता है, अर्थात् ये आकार, सज्जा, पैटर्न या सजावट की विशेषताओं को इंगित करते हैं अथवा हाथ, औजार या मशीन से बनाई गई वस्तुओं में निहित उक्त किन्हीं भी विशेषताओं के संयोजन को दर्शाते हैं। ये पहलू उनके उपयोग की विशेषताओं से अलग होते हैं। उपयोग की विशेषताओं को बौद्धिक संपदा के अन्य प्रकार के अधिकारों के जरिए संरक्षित किया जा सकता है जैसे कि पेटेंट, उपयोगिता मॉडल या व्यापारिक गोपनियता (ट्रेड सीक्रेट)। बहुत से देशों में, विनिर्मित वस्तु या हस्तशिल्प की दिखावट के संबधं में इस बात पर ध्यान दिया जाता है कि उसके स्वरुप की सुस्पष्ट व विशिष्ट खूबियां क्या हैं और नयापन लाने के स्थान पर ग्राहक का किस प्रकार की वस्तु चाहिए, इस बात का अधिक ध्यान दिया जाता है।

डिजाइन, दो या तीन आयामी हो सकते हैं। उदाहरण के लिए वस्त्र वालपेपर व कार्पेट डिजाइन द्वि-आयामी है जबकि खिलौने का आकार, पैकेज, कार, विद्युत उपकरण, मोबाइल फोन, फर्नीचर मदें, रसोई में प्रयुक्त होने वाले बर्तनों की आकृति व सजावट त्रि-आयामी डिजाइन के उदाहरण हैं। कतिपय परिस्थितियों में रंग, बनावट या वस्तु की सामग्री आदि डिजाइन की विशिष्टताएं हो सकती है। कुछ देशों में कम्प्यूटर आइकान को हाल ही में औद्योगिक डिजाइन मानकर संरक्षित किया गया है।

प्रश्न
(Question)

1. उत्पादक कारोबार में बौद्धिक सम्पदा की भूमिका स्पष्ट कीजिए।
2. क्षेत्रीय सामूहिक चिन्हों का महत्व बताइयें।
3. तकनीक प्रभाव ट्रेडमार्क का निर्माण किस प्रकार किया जाता है। बतलाइये।
4. डिजाइन प्रबंधन में बौद्धिक सम्पदा से सम्बन्धित प्रावधानों का उल्लेख कीजिए।

अपनी प्रगति की जाँच करें
Test your Progress

सीमा शुल्क मूल्यांकन
(CUSTOMS VALUATION)

विकासशील राष्ट्रों में भारतीय वैधानिक नियमनों की अहम भूमिका है, जिसके अन्तर्गत सीमा शुल्क में आयातित माल का मूल्यांकन 'मूल्यांकन नियमों' के अंतर्गत किया जाता है। ये नियम विश्व व्यापार संगठन मूल्यांकन समझौते (WTO Valuation Agreement) पर आधारित होते हैं। मूल्यांकन के नियम केवल आयात की जाने वाली वस्तुओं पर लागू होते हैं, निर्यात की जाने वाली वस्तुओं पर नहीं। विश्व व्यापार समझौते के परिप्रेक्ष्य में भारत में 'सीमा शुल्क मूल्यांकन नियम, 1988' प्रभावशील हैं और इन नियमों में समयानुसार परिवर्तन एवं संशोधन किये गये है। सीमा शुल्क अधिनियम 1962 की धारा 14 (1) के अनुसार आयातित माल का मूल्य केन्द्र सरकार द्वारा बनाए गए नियमों के अनुसार किया जाता है। इस संदर्भ में सीमा शुल्क मूल्यांकन नियम, 1988 को 18 अगस्त में लागू किया गया है।

सीमा शुल्क मूल्य निर्धारण के लिए आयातित माल के मूल्यांकन के लिए मूल्यांकन नियमों 4 से 9 के अंतर्गत निम्नलिखित 6 पद्धतियाँ अपनाई जाती है: -

1. आयातित वस्तुओं का संव्यवहार मूल्य जो कि बीजक में दिया हो, अर्थात् निर्यातक के बिल में जो मूल्य उल्लेखित किया हो,
2. समान पहचान वाली वस्तुओं का संव्यवहार मूल्य,
3. आयातित वस्तु के समान गुण वाली वस्तुओं का संव्यवहार मूल्य,
4. आयातित वस्तु के समान भारत में बेची जाने वाली वस्तुओं का मूल्य,
5. गणना किया हुआ मूल्य जो कि विदेशी निर्यातक की लागत और उसमें उचित लाभ जोड़ने पर ज्ञात होता है,
6. अन्य पद्धतियाँ जो कि उपलब्ध आँकड़ों एवं उचित आधार पर निर्भरी करती हैं।

उपरोक्त पद्धतियाँ सीमा शुल्क मूल्य निर्धारण में क्रमशः प्रयुक्त की जाती हैं।

उपरोक्त पद्धतियों के संदर्भ में मूल्यांकन नियमों का विस्तृत विवेचन इस प्रकार है-

1. मूल्यांकन का मूल आधार : संव्यवहार मूल्य
(Basic Rule of Valuation : Transaction Value)

मूल्यांकन नियम 4 के अनुसार आयातित माल का मूल्यांकन सामान्यतया उसके संव्यवहार मूल्य (Transaction Value) के आधार पर किया जाता है। संव्यवहार मूल्य से आशय ऐसे मूल्य से है जो भारतीय आयातकर्ता ने विदेशी निर्यातक को चुकाया या देय है। दूसरे शब्दों में, माल का बीजक मूल्य सामान्य रुप से माल का संव्यवहार मूल्य होता है।

माल की चुकायी गयी या देय कीमत में वह प्रत्येक भुगतान शामिल होता है जो केता द्वारा विकेता को या उसके लाभ के लिये माल के संबंध में चुकाया गया है। यह भुगतान प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष माध्यम से भी हो सकता है। संव्यवहार मूल्य से संबंधित प्रमुख बिन्दु निम्न प्रकार हैं-

(अ) संव्यवहार मूल्य में जोड़ी जाने वाली मदें

संव्यवहार मूल्य का निर्धारण करने के लिए निम्नलिखित सेवाओं की लागत और भुगतानों को आयातित माल की वास्तविक कीमत, जो बीजक में दर्शायी गयी है,में जोड़ा जायेगा-

(1) **क्रेता द्वारा वहन की गयी लागतें एवं सेवाएँ**- निम्नलिखित लागत एवं सेवाएँ जो कि क्रेता द्वारा वहन की गई हैं, परन्तु आयातित माल की चुकाई गई कीमत में सम्मिलित नहीं हैं-

(i) कमीशन एवं दलाली, परन्तु इसमें क्रय कमीशन (Buying commission) शामिल नहीं होता है,

(ii) कन्टेनरों की लागत जो कि माल सहित खरीदे जाते हैं,

(iii) पैकिंग की लागत।

(2) **क्रेता द्वारा माल या सेवाएँ विदेशी निर्यातक को उपलब्ध करना** - यदि आयातक द्वारा निम्न माल एवं सेवाओं को बिना मूल्या या घटी दरों पर, ऐसे माल के उत्पादन तथा निर्यात हेतु विक्रय के संबंध में, उपयोग हेतु प्रदान

NOTES

किया जाता है, तो उसके द्वारा प्रदत्त ऐसे माल तथा सेवाओं का उपयुक्त विभाजित मूल्य (apportionable value) जो आयातित माल के मूल्य में नही शामिल है, उसे शामिल किया जायेगा।

(a) ऐसे माल से संबंधत सामांग्रयों, हिस्से, पुर्जे तथा इसी प्रकार की मदों का मूल्य,

(b) टूल्ज, टाइयों, मोल्ड, ड्राईंग्स, ब्लूप्रिंट, तकनीकी नक्शों, पार्टस तथा ऐसे आयातित माल के उत्पादन में काम आने वाली ऐसी ही मदें,

(c) ऐसे आयातित माल के उत्पादन में उपयोग की गई सामग्री का मूल्य तथा ,

(d) ऐसे माल के उत्पादन के लिए आवश्यक इंजीनियरिंग (engineering), विकासात्मक (development), कलात्मक कार्य (art work), अभिकल्पना कार्य (design work) तथा योजनाओं (plans) तथ स्कैचों (sketches) जिनको भारत के अतिरिक्त अन्य किसी स्थान पर सम्पन्न किया गया है, उनका मूल्य।

(3) **क्रेता द्वारा चुकाये गये लाइसेंस शुल्क**- अगर क्रेता ने माल को आयात करने के लिए शर्त के अनुसार कोई रॉयल्टी तथा लाइसेन्स शुल्क चुकाये हैं और वे विक्रय मूल्य में पहले से शामिल नहीं किये गये हों, तो इन्हें माल के मूल्य में जोड़ा जायेगा।

(4) **बाद में भुगतान योग्य राशि**- अगर आयातकर्त्ता विदेशी विकेता को आयातित माल भारत में आने के पश्चात पुनः विक्रय के मूल्य का कोई भाग प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रुप से देने के लिए उत्तरदायी हैं, तो ऐसी राशि मूल्य निर्धारण के लिए जोड़ी जायेगी।

(5) **अन्य पक्ष को भुगतान**- वे सभी भुगतान जो कि माल के आयात करने की शर्त के अनुसार किये गये हैं और जो कि केता ने विकेता को या केता ने किसी तीसरे व्यक्ति को विक्रय संबंधित बाध्यता को पूर्ण करने के लिए किए हैं, शामिल किये जायेंगे।

(6) **अन्य व्यय**- नियम 9 (2) के अनुसार आयातित माल के मूल्य में निम्न शामिल होंगे-

i. आयातित माल को आयात स्थान पर लाने के लिए परिवहन की लागत।

ii. माल को चढ़ाने, उतारने एवं ढुलाई (landing) एवं सम्भलाई के खर्चे।

iii. बीमा की लागत।

(ब) संव्यवहार मूल्य में शामिल नहीं की जाने वाली मदें

यदि क्रेता स्वयं अपने आप माल के संबंध में भारत में आने के बाद कुछ गतिविधियाँ करता है, तो इन गतिविधियों की लागत, माल की कीमत में शामिल नहीं की जायेगी-

(a) निर्माण, स्थापना, अनुरक्षण तथा तकनीकी सहायता के रुप में चार्ज की गयी राशि जो कि माल को आयात करने बाद आयातित माल के संबंध में लगायी गयी हो।

(b) भारत में आयात करने के बाद माल के परिवहन की लागत।

(c) भारत में शुल्क और कर जो माल के संबंध में चुकाये गये हैं।

(स) संव्यवहार मूल्य स्वीकृत करने की दशाएँ

निम्नलिखित शर्तों की पूर्ति होने पर सीमा शुल्क योग्य मूल्य या कर-निर्धारण मूल्य के रुप में संव्यवहार मूल्य को आधार लिया जा सकता है-

(a) विक्रय व्यापार की सामान्य प्रक्रिया के अंतर्गत पूर्णतः प्रतियोगी दशाओं में होना चाहिए।

(b) सामान्य प्रतियोगी मूलय में से असामान्य कटौती या बट्टा नहीं दिया जाना चाहिए।

(c) विक्रय में से विशेष बट्टा नहीं दिया जाना चाहिए।

(d) संव्यवहार मूल्य का मूल्यांकन नियम 9 के अनुसार समायोजन किया जाना चाहिए, अर्थात् इसमें कमीशन, दलाली, पैकिंग की लागत, केता द्वारा विदेशी निर्यातक को बिना मूल्य या रियायती मूल्य पर निर्गमित आदि बीजक मूल्य में जोड़े जाऐंगे।

(e) क्रेता पर आयातित वितरण पर किसी प्रकार का प्रतिबंध नहीं होना चाहिए।

(f) विक्रेता को वस्तु के निर्यात के बाद अलग से कोई प्रतिफल नहीं मिलना चाहिए।

(g) क्रेता और विक्रेता एक-दूसरे से संबंधित नहीं होना चाहिए।

(द) संव्यवहार मूल्य स्वीकृत नहीं होने की दशाएँ

यदि माल का विक्रय या कीमत से संबंधित कोई शर्तें या प्रतिफल जुड़े हुए हैं जिसके कारण माल का मूल्य निर्धारित नहीं किया जा सकता है, तो संव्यवहार मूलय को स्वीकृत नहीं किया जायेगा। ये शर्तें या प्रतिफल निम्न हैं-

(a) यदि विक्रेता माल की कीमत उस माल के साथ दूसरे माल खरीदने पर ही बताता है।

(b) माल की कीमत क्रेता द्वारा विक्रेता को अन्य माल बेचने के आधार पर बताई जाती है।

लेकिन अगर कोई शर्त माल के उत्पादन या विक्रय से संबंधित है, तो यह संव्यवहार मूल्य को अस्वीकृत नहीं करेगी। अगर क्रेता स्वयं माल के विपणन संबंधित खर्चे वहन करता है, तो वह खर्च माल की कीमत में शामिल नहीं किये जायेंगे।

2. तद्रुप माल का संव्यवहार मूल्य
(Transaction value of identical goods)

मूल्यांकन नियम 5 के अनुसार, आयातित माल का मूल्य, एक जैसी पहचान वाला माल जो भारत में निर्यात हेतु उसी समय बेचा गया हो और भारत में आयात किया गया हो, के संव्यवहार मूलय के बराबर होगा।

तद्रुप माल (Identical goods) वह आयातित माल है जो कि निम्न शर्तों को पूरा करें-

(i) वह माल भौतिक लक्षण, गुणवत्ता तथा प्रतिष्ठा की दृष्टि से, मूल्यांकन किये जा रहे माल के समान हो। आकार या स्वरुप में मूली अन्तर हो सकता है, लेकिन जिससे माल के मूल्य पर प्रभाव पड़ता है।

(ii) ऐसे माल का उत्पादन उसी देश में हुआ हो जिस देश में मूल्यांकन किये जा रहे माल का उत्पादन हुआ है।

(iii) वह माल उसी निर्माता द्वारा बनाया जा रहा हे जिसने मूल्यांकन किये जा रहे माल को बनाया है। यदि ऐसा न हो पाये तो उसी देश के अन्य निर्माता का माल लिया जा सकता है।

चूंकि वह आयातित माल, जिसे उत्पादन अथवा निर्यात हेतु विक्रय के संदर्भ में, इंजीनियरिंग कार्य, विकास कार्य, कलात्मक कार्य, अभिकल्पना कार्य आदि केता द्वारा बिना किसी चार्ज अथवा अपेक्षाकृत नीची लागत पर, प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्षतः भारत में किया गया हो, तो तद्रुप माल में सम्मिलित नहीं किया जायेगा।

3. समरुप माल का संव्यवहार मूल्य
(Transaction value of similar goods)

मूल्यांकन नियम 6 के अनुसार यदि माल के मूल्यांकन में संव्यवहार मूल्य (पहली विधि) या समान पहचान वाले माल (identical goods) के संव्यवहार मूल्य की दूसरी विधि प्रयोग न की जा सके तो समरुप माल के आधार पर मूल्यांकन किया जाएगा। समरुप माल से आशय निम्न है-

(i) सभी दृष्टियों से समान, समान लक्षण तथा समान तत्वों वाला सामान तथा समान कार्य करने वाला सामान हो। गुणवत्ता, प्रतिष्ठा तथा ट्रेडमार्क के संबंध में माल वाणिज्यिक तौर पर अन्तः परिवर्तनीय हो।

(ii) माल एक ही देश में निर्मित हो, तथा

(iii) उसी उत्पादक द्वारा तैयार किया गया हो- यदि ऐसा माल उपलब्ध न हो तो उसी देश के अन्य उत्पादक द्वारा निर्मित माल का मूल्य विचारणीय होता है।

4. निगणात्मक मूल्य
(Deductive Value)

मूल्यांकन निमय 7 के अनुसार जब आयातित माल के मूल्यांकन करने के लिये घोषणा पत्र प्रस्तुत किया गया है और उसी समय अगर ऐसे माल या समरुप माल या तद्रुप माल भारत में बेचे जाते हैं, तो आयातित माल का मूल्य ऐसे समरुप, तद्रुप या आयातित माल जो कि सर्वाधिक संकलित मात्रा (greatest aggregate quantity) में असम्बन्धित व्यक्तियों को बेचा जाता है, के इकाई मूल्य (unit price) पर आधारित होगा।

इस इकाई मूल्य में से निम्न कटौती की जायेगी-

1. इस तरह के आयातित माल को बेचने पर लाभ एवं सामन्य खर्चे तथा इसके अतिरिक्त जो कमीशन का भुगतान होता है।

2. माल के परिवहन एवं बीमा एवं इससे संबंधित खर्चे जो भारत में व्यय किये गये हैं।

3. माल के आयात अथवा विक्रय हेतु देय सीमा शुल्क और अन्य कर।

इसी प्रकार संगगणित मूल्य के माध्यम से आयातित माल का मूल्य संगगणित मूल्य के कि निम्न का योग होगा-

1. आयातित माल का उत्पादन करने के लिए प्रयुक्त सामग्री का मूल्य और निर्माण तथा और
2. मूल्यांकित होने वाले माल के समान वर्ग एवं किस्म के माल के विक्रय पर होने वाला त जोड़े जायेंगे। यह माल निर्यात होने वाले देश में उत्पादित होना चाहिए।
3. खर्चों की लागत और मूल्य।

5. आखिरी पद्धति
(Residual method)

यदि आयातित माल का मूल्यांकन पहले दिये गये नियमों के अनुसार नहीं किया जा मूल्य वह होगा जो कि धारा 14 (1) के प्रावधानों और इन नियमों के सामान्य प्रावधानों को ध्यान जायेगा। यह मूल्य युक्तियुक्त उपाय (reasonable means) और मूल्य के जो आँकड़े भारत आधार पर निकाला जायेगा।

इस नियम में निम्न आधार पर माल का विक्रय नहीं निर्धारित किया जायेगा-

1. भारत में बने माल का विक्रय मूल्य,
2. ऐसी विधि जिसमें दो वैकल्पिक मूल्यों में से सबसे ज्यादा मूलय को सीमा शुल्क के लि है,
3. निर्यात करने वाले देश में उस माल का घरेलू बाजार में बेचे जाना वाला मूल्य,
4. समरुप एवं तद्रुप माल के संगणनित मूल्य को छोड़कर उत्पादन की लागत,
5. भारत के अतिरिक्त किसी और देश को माल का निर्यात मूल्य,
6. न्यूनतम सीमा शुल्क मूल्य,
7. मनमानी (arbitrary) या काल्पनिक (fictitious) मूल्य।

प्रश्न
(Question)

1. कस्टम शुल्क मूलयांकन नियमों की विवेचना कीजिए।
2. सीमा शुल्क (Customs) मूल्यांकन पर एक टिप्पणी लिखए।
3. सीमा शुल्क क्या है? यह विश्व व्यापार संगठन समझौतो से किस प्रकार आधारित है?

अपनी प्रगति की जाँच करें
Test your Progress

सुझाव पत्र (विद्यार्थियों के लिये)

नाम — कार्यक्रम का नाम —

नामांकन नं. — कोर्स का नाम —

फोन नं.— सत्र —

ई–मेल आईडी —

प्रिय छात्र–छात्राओं,

विश्वविद्यालय के द्वारा दूरस्थ शिक्षण संस्था में पंजीकृत छात्र–छात्राओं को दी जाने वाली पाठ्यसामग्री को हमेशा बेहतर बनाने का प्रयास रहा है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु आपके विचार एवं सुझाव आंमत्रित है, कृपया आपको प्रदान की जाने वाली पाठ्य–सामग्री के संबंध में अपने विचार एवं सुझाव 500 शब्दों में लिखकर प्रेषित करें, ताकि उक्त विचार एवं सुझाव का अमल करते हुये हम अपने पाठ्य सामग्री को और अधिक सरल, सहज एवं रोचक बनाया जा सकें।

सुझाव –

छात्र का नाम एवं हस्ताक्षर

सुझाव पत्र (विषय विशेषज्ञ/पाठ्यक्रम समन्वयक/कार्यक्रम समन्वयक के लिये)

नाम — पद —

विभाग/विषय — पता —

फोन नं.— सत्र —

ई–मेल आईडी —

प्रिय विषय विशेषज्ञ/पाठ्यक्रम समन्वयक/कार्यक्रम समन्वयक,

विश्वविद्यालय के द्वारा दूरस्थ शिक्षण संस्था में पंजीकृत छात्र–छात्राओं को दी जाने वाली पाठ्यसामग्री को हमेशा बेहतर बनाने का प्रयास रहा है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु आपके विचार एवं सुझाव प्रार्थनीय है, कृपया आप इस पाठ्य–सामग्री के संबंध में अपने विचार एवं सुझाव 500 शब्दों में लिखकर प्रेषित करें, ताकि उक्त विचार एवं सुझाव का अमल करते हुये हम अपने पाठ्य सामग्री को और अधिक सरल, सहज एवं रोचक बनाया जा सकें।

सुझाव —

धन्यवाद,

नाम एवं हस्ताक्षर